सं॰

* श्रीः *

असली सन् १८७५

का

सत्यार्थप्रकाश।

स्वामि दयानन्द सरस्वतिना

निर्मितः

कामताप्रसाद दीक्षितेन प्रकाशितः

तृतीयावृत्ति ३००० | संवत् १९८६ | मूल्यम् २)

क—

—ताप्रसाद दीक्षित

ौंधा जि० कानपुर

प्रिण्टर—

पं० वेदनिधि मिश्र

बी. एन. प्रेस इटावा।

सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदड़

मदोन्माद्यदुद्दामदिग्दन्तिगण्डान्
मदोन्माद्यदिन्दीवरालीविराजन् ।
अनायासमायासमानाशयन्नः
स पायादपायादुमायास्तनूजः ॥१॥

उन्नीसवीं शताब्दी में एक दयानन्द नाम का पुरुष हुआ। जब उसका पाश्चात्य विद्या के शिक्षित पुरुषों से समागम हुआ तब दयानन्द जी ने वेदों को पश्चिमीय सांचे में ढाल देने का साहस किया। उन्हों ने एक ग्रन्थ लिखा। जिसमें प्रमाण तो वैदिक शास्त्र के रक्खे किन्तु उनका अर्थ जो किया उससे ईसाई धर्म की सिद्धि हुई। उन्होंने अपने ग्रन्थ में यह दिखला दिया कि वेद, मन्त्र, ब्राह्मण, उपनिषद्, कात्यायन आदि श्रौतसूत्र और पारस्कर आदि गृह्यसूत्र मनुस्मृति प्रभृति समस्त स्मृतियां महाभारत आदि इतिहास समस्त ही हिंदु-ग्रन्थों में ईसाई धर्म का प्रतिपादन है। इस बात को सिद्ध करने के लिये जो ग्रन्थ लिखा उसका नाम सत्यार्थप्रकाश है। दयानन्द जी ने इस ग्रन्थ की बनवाई में विपुल धन लेकर यह ग्रन्थ मुरादाबाद निवासी श्री १०५ राजा जयकृष्णदास जी को बेच दिया। मान्यवर राजा साहब ने इस पुस्तक को

स्टार प्रेस बनारस में छपवा कर संवत् १९३३ में संसार के सन्मुख रख दिया। इस सत्यार्थप्रकाशके सिद्धान्तों का अवलम्बन कर स्वामी दयानन्द जी ने एक नया मत निकाला। इस मत का नाम आर्यसमाज रक्खा और घूम २ कर भारतवर्ष में अनेक आर्यसमाजें स्थापित कीं। दैवयोग से उक्त स्वामी जी संवत् १९४० की पवित्र तिथि (?) नरकचतुर्दशी को मर गये।

समाजों का कृत्य।

स्वामी दयानन्दजी की मृत्युके पश्चात् आर्यसमाजियोंकी दृष्टि में उक्त स्वामीके लेख सर्वथा मिथ्या सिद्ध हुए। यद्यपि जीवितकाल में स्वामीजी को आर्यसमाजों ने परिव्राजक, महर्षि बाल ब्रह्मचारी, वेदों के उद्धारक प्रभृति कई एक उपाधियां दी थीं किन्तु मृत्यु के पश्चात् आर्यसमाजों ने यह उत्तम रीति से समझ लिया कि स्वामीजी भंग के नशे में चूर रहते थे, विशेष कुछ लिखे पढ़े भी नहीं थे, जो उनके जी में आता था अण्डबण्ड लिख देते थे इत्यादि कई एक कारणों से आर्यसमाजियोंने स्वामी दयानन्दजी को अयोग्य समझा और उनके बनाये हुये सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ को नष्ट करने का उद्योग किया। आठ पंडित नौकर रक्खे गये। परोपकारिणी सभाका द्रव्य खर्च करके प्रतिनिधि की अध्यक्षता में समाज के प्रचार करने वाला ग्रन्थ बना। इस ग्रन्थ का नाम "सत्यार्थप्रकाश" रक्खा और कर्ता में स्वामी दयानन्द जी का नाम रख दिया।

निस्सन्देह यहां पर आर्यसमाज ने संसार को बहुत धोका दिया है। जब ग्रन्थ आठ पंडितों ने लिखा तो फिर स्वामी दयानन्द जी के नाम से क्यों प्रकाशित किया गया? स्वामी दयानन्द जी तो उस समय में जिन्दा भी नहीं थे क्या मरे हुये स्वामी दयानन्द भूत होगये थे जो पण्डितों के कान में बतला जाते थे और पण्डित लिख देते थे। वास्तव में प्रत्येक आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द के नाम पर दाँत पीसता था और इस बात की फिकर में रहता था कि कब हमको अवसर मिले हम दयानन्द के सिद्धान्तों को पैरों के नीचे कुचल डालें। स्वामी दयानन्द का मृत्यु हो गया। आर्यसमाज को अवसर मिला तब इन्होंने यह चौकड़ी खेली कि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश को तो संसार से उड़ा दो और एक नया ग्रन्थ बना कर उसका नाम सत्यार्थ प्रकाश रख दो और निर्माता में दयानन्द का ही नाम लिख दो।

अयोग्यता।

आज तक किसी भी ईसाई ने ऐसा नहीं किया कि "मसीह" की धर्म पुस्तक "बाइबिल" को तो छिपादे और दूसरी नकली बाइबिल बना दे। कोई मुसलमान ऐसा नहीं कर सकता कि "हज़रत मुहम्मद" को उपलब्ध हुई कुरानशरीफ को गुम कर दे और इस नाम से दूसरी पुस्तक बना दे। हिन्दु, पारसी आदि जितने धर्म संसार में हैं उनमें से किसी मनुष्य

ने भी ऐसा नहीं किया कि अपने पूज्य नेताकी पुस्तकको दबा कर उसी नाम की पुस्तक पूज्य नेता के नाम से बना ले। वास्तव में आर्यसमाज का यह कार्य अयोग्य है और धार्मिक मनुष्य इसको घृणाकी दृष्टिसे देखतेहैं। जो आर्यसमाज अपने पूज्य महर्षि के साथ में इस प्रकार का कपट कर लज्जित नहीं होता तो दूसरों के साथ में उसको कपट करने से कितनी लज्जा होगी? यदि आप सच पूछें तो लज्जा, धर्म, न्याय, विचार ये चारों पदार्थ आर्यसमाजियों के पास जा नहीं सकते यही कारण था कि आर्यसमाज ने स्वामी दयानन्द के साथ में इतना कपट किया।

प्रमाण ।

संवत् १९४० के पश्चात् जितने सत्यार्थप्रकाश पबलिक के सम्मुख आये हैं उन सबके निर्माता स्वामी दयानन्द जी नहीं हैं। आर्यसमाजियों के कुछ प्रमाण दे कर हम इसकी पुष्टि करते हैं।

(१) आर्यसमाज लाहौर के सेक्रेटरी महात्मा धर्मपाल अपने उर्दू में छपवाये हुये सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में यह लेख देते हैं कि स्वामी दयानन्द का बनाया हुआ सत्यार्थप्रकाश तो प्रथमावृत्ति ही है और द्वितीयावृत्ति स्वामी दयानन्द का बनाया नहीं किन्तु आर्यसमाजका बनायाहै। जब एक आर्य-समाजी अपने मुख से कहता है औरअपनी लेखनी से लिखता है इससे अधिक और क्या प्रमाण होगा। फिर आर्यसमाजी

भी कैसा, कोई साधारण पुरुष नहीं किन्तु लाहौर समाज का "मंत्री" केवल मन्त्री ही नहीं किन्तु जिसने दो लाख आर्य समाजियों से महात्मा होने की डिगरी पाई है ऐसे प्रतिष्ठित पुरुष की साक्षी ही बहुत है। जब समाजका एक मान्य प्रतिष्ठित पुरुष इस बात को अपने लेख में लिखता है तब फिर दूसरे साक्षी की कोई आवश्यकता नहीं।

कई एक साधारण आर्य समाजी यह कहते और लिखते हैं कि धर्मपाल तो आर्यसमाज का शत्रु है। हम मानते हैं कि इस समय में धर्मपाल आर्यसमाज का शत्रु है क्योंकि जो मनुष्य जिस दिन से आर्यसमाज छोड़ता है समाज उसको उसी दिन शत्रु की डिगरी दे देता है यह डिगरी केवल धर्मपाल को ही नहीं मिली किन्तु स्वामी शान्त्यानन्द सरस्वती और वेदव्याख्याता पं० भीमसेनजी शर्मा को भी मिल चुकी है किन्तु यह डिगरी तो समाज छोड़ने पर मिलती है उसी नियम से समाज छोड़नेपर धर्मपाल को बाद में मिली है किन्तु हम उस समय का लेख पेश करते हैं जब कि धर्मपाल लाहौर समाज का मन्त्री था आज चाहे जो कुछ हो किन्तु उस समय में यह समाजियों का मान्य नेता तथा वेदभाष्यकार था। जैसी प्रतिष्ठा समाज में इस पुरुष ने पाई है ऐसी आज तक किसी ने भी नहीं पाई। यह समय वह था कि आर्य्य समाजी इसको बड़े अदब के साथ नमस्ते करते थे और प्रतिष्ठितसे प्रतिष्ठित समाजी का सिर इसके चरणोंकी तरफ

झुकता था। आर्यसमाज में ऐसा एक भी मनुष्य न था और न है कि जिसने आर्यसमाज से महात्मा धर्मपाल की डिगरी पाई हो। यह उस समय धर्म की रक्षा करने वाला था और आर्यसमाजियों का महात्मा था। उस समय का इनका लेख काफी प्रमाण है। उस समय ये महात्मा ही थे, आज भले ही कोई समाज का शत्रु कहे क्योंकि इसने समाज छोड़ दिया है पूजनीय दशा का हमने प्रमाण दिया है उस दशा में, इनको नेता समझा जाता था, समाज के नेता का प्रमाण तोषदायक हो सकता है।

द्वितीय प्रमाण।

संयुक्तप्रान्तीय आर्यप्रतिनिधि सभा के सभापति पण्डित तुलसीराम जी स्वामी लिखते हैं कि— स्वामी दयानन्द के बदले अन्यों ने इस मन्त्र को भी (मुक्ति से लौटने वाले) सत्यार्थ प्रकाश और वेदभाष्य में अन्यथा व्याख्यान करके मिला दिया क्योंकि सत्यार्थप्रकाश की द्वितीयावृत्ति आर्यसमाज प्रयाग की बनाई और वैदिक प्रेस कमेटी की निगरानी में छपी है। और स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के देहान्त के पश्चात्………सारे भारतवर्ष के आर्यसमाजी, परोपकारिणी सभाके सभासद्, आर्यप्रतिनिधि सभायें उनके अधिकारी और पं० लेखराम जैसे अन्वेषणकर्ता—जिन्हों ने सत्यार्थ प्रकाश के लिखित पत्रों से सब पाठ को एक वार वैदिक प्रेस में जाकर ढुंढ़वाया, और मिलवाया, और जहां

जहां सत्यार्थप्रकाश में ग्रन्थों के नाम मात्र थे अध्याय, सूक्त, मन्त्र, श्लोक आदि के ब्योरे न थे ? उन सबको अपने घोर परिश्रमसे ढूंढ़कर लिखवाया और छपवाया। देखो वेदप्रकाश अगस्त सन् १९१० ई० पृ० १८२ ।

असली सत्यार्थ प्रकाश।

स्वामी दयानन्दकृत असली सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाजियों की कृपा से अप्राप्य हो गया। हमने एक प्रति सत्यार्थप्रकाश के लिये अस्सी रुपये मूल्य लगा दिया किन्तु इतने मूल्य पर भी हमको न मिल सका। पांच वर्ष के पश्चात् एक भूखी बुढ़िया सत्यार्थप्रकाश बेचने आई जो किसी समय से उसके घर में रक्खा था। हमारे मान्य मित्र स्वर्गीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र ने अस्सी रुपये बुढ़िया को दे दिये और वह सत्यार्थप्रकाश लेकर मेरे नाम रजिस्ट्री कर दिया। मैंने पं० जी के रुपये भेज दिये और सत्यार्थप्रकाश छपाने के लिये वकीलों की सम्मति ली गवर्नमेंट इण्डिया से रजिस्ट्री की नकल मंगवाई। २० अप्रैल सन् १८७७ को इस सत्यार्थ प्रकाश की रजिस्ट्री राजाजयकृष्णदास के नाम से हुई थी। हमने सत्यार्थप्रकाश छपने के लिये "धर्म प्रेस मेरठ को दे दिया और अनेक समाचार पत्रों में हमने सूचना दे दी कि "धर्मप्रकाश मासिक सीरीज़" के उपहारमें हम असली स्वामी दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश देंगे।

हा हा कार ।

इन नोटिसों को पढ़ते ही आर्यसमाजों में हा हा कार मच गया। आर्यमित्र आदि आर्यसमाज के पत्रों में लिखा गयाकि वह सत्यार्थप्रकाश जो आर्यसमाज ने रद्द कर दिया था पं० कालूराम शास्त्री के उद्योग से फिर पबलिक के सामने आता है इसके छपने से आर्यसमाजियों की बड़ी क्षति होगी और मनुष्यों को आर्यसमाज से घृणा हो जायगी इस कारण पं० कालूराम शास्त्री को छपाने से रोक दिया जावे । यदि वे नहीं मानें तो उन पर फौजदारी और दीवानी दोनों केश चलाये जावें। आर्यसमाज के प्रत्येक समाचारपत्र ने हमको खूब धमकियां बतलाईं और यह भी लिखा कि कालूराम का इलाज करने के लिये आर्यसमाज ने कई हजार रुपये चन्दा कर लिया है। सन् १९१५ के नवम्बर से फर्वरी सन् १९१७ तक कालूराम का इलाज खूब छपता रहा। जब अधिक आन्दोलन हुआ तब अगस्त सन् १९१७ के धर्मोदय मासिकपत्र ने भी एक लेख लिखा—

धर्मोदय ।

पं० कालूराम शास्त्री पर आर्यसमाज का आक्रमण ।

जौलाई मास के आर्यसमाज के उर्दू पत्र आर्य समाचार के पढ़ने से विदित हुआ है कि पं० कालूराम जी शास्त्री ने जो सन् १८७५का सत्यार्थप्रकाश छपाकर प्रकाशित किया है। उस विषय को आर्यसमाज की सार्वदेशिक सभा

में पेश किया था, जिसमें महाशय मदनमोहन जी सेठ मन्त्री यू० पी० प्रतिनिधि सभा का तहरीरी कानूनी मशव्वदा पेश होकर यह तजवीज हुआ कि परोपकारिणी सभासे दरख्वास्त की जावे कि वह कानूनी चाराजोई शास्त्री जी के खिलाफ अमल में लावे नालिश दायर करने की मियाद शुरू साल सन् १९१८ तक है। हम भारतवर्ष की सम्पूर्ण सनातन धर्म सभाओं से अपील करते हैं कि वे इस मुकद्दमे के दायर होते ही चन्दा शुरू करदें क्यों कि यह मुकाबला सनातनधर्म और आर्यसमाज का है। इसलिये सनातनधर्मी मात्र को इस चन्दे में सम्मिलित होना चाहिये। हमारा श्री सनातनधर्म युक्तप्रदेशमण्डल भी सब प्रकार की सहायता के लिये प्रस्तुत है और हम अपनी शाखा सभाओं से भी अनुरोध करते हैं कि वे इस कार्य में यथेष्ट सहायता करें क्यों कि पं० कालूरामजी ने सनातन धर्म का बड़ा भारी उपकार साधन किया। उन्हों नें धर्मप्रकाश, मूर्तिपूजा मीमांसा, अवतार मीमांसा, आदि पुस्तकों को प्रकाशित करके आर्यसमाज की जड़ हिला दी है मूर्ति पूजामीमांसा, और अवतार मीमांसा के ऊपर एक एक सहस्र का पुरस्कार होने पर भी अब तक किसी आर्यसमाजी की उत्तर लिखने की हिम्मत नहीं हुई। जिस सन् ७५ के सत्यार्थप्रकाशमें मृतक श्राद्ध, मांस भोजन विधानादि आर्यसमाजकी जड़को काटने वाले कितनेही विषय भरे पड़ेहैं जिस सत्यार्थप्रकाश में स्वामीदयानन्दजीने बंध्या गौ तकका

हवन में चढ़ा देना लिखा है, जिस सत्यार्थ प्रकाश की पुस्तकों को आर्यसमाजी बड़े यत्न से खोज खोज कर संसार से बिदा करनेमें लगे हुये थे, जिस सत्यार्थप्रकाशको शास्त्रार्थ के समय पेश करने से आर्यसमाजी घोर रूप से पराजित होते हैं, पं० कालूराम जी ने उसी सत्यार्थप्रकाश को छपा कर आर्यसमाज की पोल खोल दी है। पं० कालूराम जी के व्याख्यानों, शास्त्रार्थों और पुस्तकों से आर्यसमाजीजगत् में हलचल मच गई है। इसी से आर्यसमाजी क्रोध और विद्वेष के वशीभूत होकर प० कालूराम जी के विरुद्ध मुकद्दमा चलाने पर उतारू हुए हैं। परन्तु हम अपने आर्यसमाजी भाइयों को मित्रभाव से सम्मति देते हैं। कि वे इस मुकद्दमे के परिणाम को भली भांति सोच समझ कर अदालत की शरण लें। कहीं 'गये थे नमाज पढ़ने और रोजे गले पड़े" वाली कहावत चरितार्थ न हो और जैसे पेशावार की अदालत में एक सनातन धर्मी के विरुद्ध मुकद्दमा दायर करने पर सत्यार्थप्रकाश को फोश पुस्तक और स्वामी दयानन्द को जिनाकारी की तालीम देने वाला सरकारी फैसले से सिद्ध करा लिया था कहीं इस मुकद्दमे में भी सन् ७५ वाला सत्यार्थप्रकाश ही स्वामी दयानन्द जी का असली सत्यार्थप्रकाश अदालती फैसले से सिद्ध न हो जावे और शेष अब तक के छपे हुये सारे सत्यार्थप्रकाश नकली सिद्ध हो जावें क्यों कि प्रत्येक एडीशन के सत्यार्थप्रकाश में आर्यसमाजियों ने मनमानी काट छांटकी है जिसके

करने का आर्यसमाजियोंको कोई अधिकार नहीं है। पेशावर वाले मुकद्दमे का फैसला सामने आने पर तो आर्यसमाज की गर्दन अब तक लज्जा से नीची हो जाती है और यदि सन् ७५ वाला सत्यार्थ प्रकाश ही असली है शेष सब नकली हैं। यह बात भी अदालत में सिद्ध होगई है तो आर्यसमाज की बची बचाई प्रतिष्ठा भी धूल में मिल जायगी। आशा है कि दम भरने वाले हमारे आर्यसमाजी मित्र इस व्यर्थ के झगड़े में समाज का और सनातनधर्मियों का धन नष्ट न करावेंगे।

मुकद्दमा चलने के घोर आन्दोलन में आर्यसमाज के प्रसिद्ध पत्र 'वेदप्रकाश" ने भाद्रपद संवत् १९७४ में लिखा है कि—

क्या आर्यसमाज कोर्ट में जायगा।

"पं० कालूराम शास्त्री ने पुराना सत्यार्थप्रकाश छापा है। उस पर मुकद्दमा चलाने को आर्यमित्र दो मास से उसका रहा है। हमारी समझ में पुराने सत्यार्थप्रकाशसे आर्यसमाज को विशेष हानि नहीं होगी किन्तु लाभ ही अधिक है। मूर्ति पूजा का, पुराणों का, भूतप्रेतों का, तीर्थों का, अवतारवाद का सभी का खण्डन उसमें है। केवल श्राद्ध का घपला है सो स्वामी जी ने पुराने सत्यार्थ प्रकाश से १ वर्ष पूर्व सन् ७४ में पंचमहायज्ञविधि में मृतक श्राद्ध का खण्डन कर दिया है। २—मांस प्रकरण को सनातनी भी नहीं मानते हैं। ऐसी दशा में उस पर मुकद्दमा चलाकर उसकी और प्रसिद्धि कर

देनी है। इस विषय में श्रद्धानन्दजी भूतपूर्व लाला मुन्शीराम जी देहली स्टेशन पर हमको मिले थे उनकी भी यही राय है जो हमने ऊपर लिखा है। न्यायालय में जाना योग्य वह भी नहीं समझते हैं। यदि यह मामला अदालत में गया तो न जाने क्या हो। आशा है कि आर्य भाई न्यायालय में नहीं जावेंगे।

नोटिस।

हमारे ऊपर मुकद्दमा चलानेके लिये पं० वंशीधरजी एम० ए० मन्त्री परोपकारिणी सभा ने नोटिस दिया। नोटिस में यह धमकी दी कि जितने सत्यार्थ प्रकाश बिके हों उनका रुपया और शेष समस्त सत्यार्थप्रकाश हमारे यहां भेज दो वरना आप पर दीवानी और फौजदारी दोनों केश चलाये जावेंगे। पं० वंशीधर जी ने हमको नोटिस तो दे दिया किन्तु नोटिस का उत्तर न पा सके। १५ दिन के अन्दर ही इस संसार से चल बसे। नोटिस का उत्तर किसी और ही व्यक्ति को मिला जो उस समय मन्त्री का काम करता था।

उत्तर।

हमने जो नोटिस का उत्तर दिया उसकी नकल इस प्रकार है—पं० वंशीधरजी नमस्कार! नोटिस आपका मिला उत्तरमें निवेदन है कि जब इस असली प्रथमावृत्ति सत्यार्थ-प्रकाश को उर्दू अक्षरों में धर्मपाल ने छापा था तब परोप-

कारिणी सभा कहां सो गई थी जो उस पर दावा नहीं किया और आज हमारे ऊपर दावे को तैयार है।। (२) जब इस सत्यार्थप्रकाश की रजिस्ट्री राजा जयकृष्णदास के नाम से हुई है तब तुम दावा करने वाले होते कौन हो। (३) तुम्हारे ऊपर दावा क्यों नहीं किया जाय जो तुम दयानन्द के नाम से झूँठे सत्यार्थप्रकाश बना कर छापते हो और संसार को धोखे में डालते हो। (४) यदि आपको दावा करना है तो अवश्य कीजिये किन्तु हमारा जो खर्चा पड़ेगा उसके आप जिम्मेदार होंगे। यह नोटिसका उत्तर हमने भेज दिया।

आर्यसमाज का रुदन।

नोटिस का उत्तर वकीलोंको दिखाया गया। बा० घासी-राम एम० ए० वकील मेरठ आदि समस्त वकीलों ने कहा कि तुम्हारा दावा चल नहीं सकता। वकीलोंके इस कथनको सुनकर आर्यसमाज के घर २में रोना मच गया। कोई कहता था कि नाक कट गई। कोई कहता था कि अकेले पं० कालू-राम ने अढ़ाई लाख आर्यसमाजियों के मुखपर स्याही फेर दी। चिल्लाकर अपने घर बैठ रहे। इसके बाद वेदप्रकाश ने फाल्गुण संवत् १९७० के अङ्क में यह लिखा—

आर्यसमाज का वकीलमंडल।

जहां देखो वहां ही चाहे पञ्जाब चाहे यू० पी० या अन्य प्रदेश, समाजोंकी अन्तरंग सभा, प्रतिनिधिकी अन्तरंगसभा, सभी में वकीलों की संख्या अधिक है। यू०पी० की प्रतिनिधि

सभा में अन्तरंग सभा में आधेसे अधिक वकील रहते हैं । मेरठ समाजकी अन्तरंगमें भी यही दशा है। प्रधानपद, मंत्रीपद पर ईश्वरकी कृपासे वकील ही अधिक रहते हैं। परोपकारिणी सभाको रिजूल्यूशनोंकी भरमार करके सत्यार्थप्रकाश छपाने का पं० कालूरामजीपर मुकद्दमा चलानेको वाध्य किया गया यह सब सेठ मदनमोहन मंत्रीसभा यू०पी०के आर्यमित्रके लेखों का प्रतिफल था। शोर मचाया गया। समाजों ने एक स्वर होकर प्रस्ताव पास किये कि नालिश अवश्य हो। परोपकारिणीने कुम्भकर्णी अभ्यास छोड़ा। मेरठ आर्यसमाजको काम सौंपा। कुल खर्चा देना पास किया सब कुछहुआ, आर्यमित्र ने पुकार मचाई कि कोई वकील पैरवी को मिले, एक नहीं मिला। नालिश नहीं हुई। मियाद गुजर गई। फरवरी सन् १८ खतम हुआ। वकील क्यों नहीं मिला? इसका उत्तर हम चाहते हैं। यदि मुकद्दमा कमजोर था तो वकीलों ने प्रस्ताव पास करने से पूर्व क्यों नहीं सोचा था। रौला क्यों मचाया था। यदि उपेक्षा की बात थी तब भी क्यों रौला मचाया था। कोई लोग यह फल निकालते हैं कि इस मुकद्दमे में मेहनताना तो मिलता नहीं केवल अन्य खर्च सभा देती। यह है हमारे लीडरों का त्याग। यदि कहीं किसी शास्त्रार्थ के समय सफर खर्च देना स्वीकार होने पर भी आर्यसमाज का कोई विद्वान् न जावे या एक भी पण्डित न जाय तो क्या फल निकाला जाता? यह है आर्यसमाज के लीडर वकीलों की धर्मदृढ़ता

का नमूना। कानूनी बातों में नियमों के बनाने में, आगे बढ़ कर लीडर बनने में हो इतिश्री नहीं है। धर्म की व्यवस्था देनेमें भी यही लोग आगे बढ़ते हैं हम सहयोगी आर्यमित्र को समझाते हैं कि वह आगे से ऐसे प्रस्ताव पास कराने के लिये व्यर्थ समय को नष्ट न करे।

भगादो।

जिस प्रकार डण्डेको देखकर कुत्ता और गुलेलको देखकर बन्दर, चीतेको देखकर हिरण; बिल्लीको देखकर चूहा, धुयेंको देखकर मच्छर भाग जाते हैं उसी प्रकार इस असली सत्यार्थ प्रकाश को देखकर आर्यसमाजी रफूचक्कर हो जाते हैं और उस स्थान में जब तक वह सत्यार्थप्रकाश रहता है कोई भी आर्य-समाजी अपने मुंह से धर्म विषय की बात नहीं कहता। आर्यसमाजियोंको भगानेके लिये इस सत्यार्थप्रकाश को साथ रखना आवश्यकीय है। स्वामी दयानन्दजी ने इस सत्यार्थ प्रकाश में अनेक घृणित लेख लिखे हैं उन में से एक लेख हम नीचे लिखते हैं देखिये—

स्वामी जी की धार्मिकता।

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३०३में स्वामीजी लिखते हैं कि 'जहां जहां गोमेधादिक लिखे हैं वहां वहां पशुओंमें नरों का मारना लिखा है इससे इस अभिप्राय से नरमेध लिखा है कि मनुष्य नर को मारना कहीं नहीं क्यों कि जैसी पुष्टि बैलादिक नरों में

है वैसी स्त्रियों में नहीं है और एक बैलसे हजारहां गैयां गर्भवती होती हैं इससे हानि भी नहीं होती सोई लिखा है । गौरनुबन्ध्योऽग्नीषोमीयः यह ब्राह्मणकी श्रुतिहै इसमें पुल्लिंग निर्देश से यह जाना जाता है कि बैल आदिक को मारना गायों को नहीं सो भी गोमेधादिक यज्ञोंमें अन्यत्र नहीं क्योंकि बैल आदि से भी मनुष्यों का बहुत उपकार होता है इस से इनकी भी रक्षा करनी चाहिए और जो बन्ध्या गाय होती है उसको भी गोमेध में मारना लिखा है । स्थूलपृषती माग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत । यह ब्राह्मणकी श्रुति है इसमें स्त्रीलिंग और स्थूल पृषती विशेषण से बन्ध्या गाय ली जाती है क्यों कि बन्ध्यासे दुग्ध और वत्सादिकों की उत्पत्ति होती नहीं और जो मांस न खाय सो घृत दुग्धादिकों से निर्वाह करे क्यों कि घृत दुग्धादिकों से भी बहुत पुष्टि होती है सो जो मांस खाय अथवा घृत दुग्धादिकों से निर्वाह करे वह भी सब अग्नि में होम के बिना न खाय क्योंकि जीव मारनेके समय पीड़ा होती है उस से कुछ पाप भी होता फिर जब अग्नि में वे होम करेंगे तब परमाणु से उक्त प्रकार सब जीवों को सुख पहुँचेगा एक जीव की पीड़ा से पाप भया था सो भी थोड़ा सा गिना जायगा अन्यथा नहीं" ।

हरफन मौला स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में इस लेख को भंग पी कर लिखा या शराब पीकर लिखा या वैदिक धर्मी लोगों के चित्त पर आघात पहुंचाने के लिये वेदों को

संसारसे उखाड़ देने के लिये जान बूझ कर लिखा। इस लेख के पढ़ने से हिन्दू मात्र का रोमाञ्च खड़ा हो जाता है और चित्त पर एक गहरा आघात लगकर चित्त कांपने लगता है। कोई भी हिन्दू सन्तान ऐसे कठोर लेख को अपनी लेखनी से नहीं लिख सकता और फिर स्वामी दयानन्द की धृष्टता को देखिये। वेदों के प्रमाणों से सिद्ध करते हैं। चोरी और सीना जोरी। धन्य है आर्यसमाज तुझ को; तूने इस दारुण लेख के ऊपर दयानन्द जी को "स्वामी" "परिव्राजकाचार्य" 'श्री १०८" "महर्षि" आदि की उपाधियाँ दे दीं। वास्तव में औरंगजेब आदि बादशाह जिन वेदों को नहीं मिटा सके उन वेदों को आर्यसमाज संसार से उड़ाकर ही मानेगा।

आर्यसमाज में मांस।

इस लेख से आर्यसमाजियों में मांस का प्रचार बढ़ा। जोधपुर की आर्यसमाज ने एक बड़ा भारी पुस्तक लिखा जिसमें वेदके प्रमाण दे देकर मांस खाना धर्म बतलाया गया। वेदव्याख्याता पं० भीमसेन जी शास्त्री ने इस पुस्तक के खण्डन में मांस भोजन विचार नामक पुस्तक लिखी जिसमें यह अच्छी तरह दिखलाया गया कि मांस खाने के प्रेम से दयानन्दियों ने वेद का गला घोट कर कुछ के कुछ अर्थ कर डाले (२) 'राव रोशनसिंह जी वंगरा जिला जालोन" ने वेदसार नामक पुस्तक लिखी जो पं० तुलसीराम जी के स्वामी प्रेस मेरठ में छपी इस में यह दिखलाया गया कि आर्यसमाजियों के दो भेद हैं

एक सिद्धान्ती और दूसरे इष्टी । सिद्धान्ती वह हैं जो मांस खाते हैं और इष्टी वह हैं जो मांस खाने को अच्छा समझते हैं इन दो को छोड़ कर तीसरा कोई मनुष्य आर्यसमाजी नहीं हो सकता (३) इसी सत्यार्थप्रकाश की कृपा से पंजाब के आर्य-समाजियों में दो पार्टियां बनी हैं एक घास पार्टी और दूसरी मांसपार्टी । यह सब जो कुछ हुआ स्वामी दयानन्द के लेख का फल था । कठोर हृदय स्वामी दयानन्द जी और मांसको लिख देते किन्तु वेद में जिस को "अघ्नी" लिखा उस को तो बचा देते परन्तु यह सौभाग्य हिन्दुओंको कहाँ मिल सकता था जो स्वामी दयानन्द जी जीभ के मजे के आगे धर्म को कोई चीज समझते । धिक्कार है उन लीडरों को जो स्वामी दयानन्द जी को महर्षि, वेदज्ञाता, व देश का उद्धारक मानते हैं ।

चालबन्द ।

आज कल जब आर्यसमाजियों के आगे असली सत्यार्थ प्रकाश रक्खा जाता है और उसमें यह घृणित लेख दिखलाया जाता है तब दयानन्द के इस दारुण लेख से उनका भी हृदय कांप जाता है और वे एक चालबाजी खेलते हैं यह कह देते हैं कि यह सत्यार्थप्रकाश कालूरामने छपवाया है,यह दुष्ट इबारत पं॰ कालूराम ने ही मिला दी होगी । इस चालबाजी को आगे रख आर्यसमाजी दयानन्द को दूध का धुला सिद्ध करने का साहस करते हैं ।

इस सत्यार्थप्रकाश को अवलोकन कर पं० प्यारेलाल जी शास्त्री प्रोफेसर मेरठ कालेज तथा विद्यारत्न पं० गोकुलचन्द जी मेरठ और मस्ताना योगी सूफी लक्ष्मणप्रसादजी फिरोजपुर पंजाब एवं पण्डित रलियाराम जी अमृतसर तथा महा-महोपाध्याय चतुर्वेदी गिरिधर शर्मा जयपुर इसी प्रकार विद्यारत्न पं० कन्हैयालालजी शास्त्री मेरठ तथा यू० पी० मण्डल के मन्त्री बा० अवधबिहारीलाल जी बी० ए० एल० एल० बी० मेरठ तथा पं० श्रवणलालजी झालरापाटन राजपूताना एवं स्वर्गीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र मुरादाबाद एवं बाबू मुरारीलाल जी साहब मन्त्री सनातनधर्म पंजाब प्रभृति ने हमको चिट्ठियां लिखी हैं कि आपका छापा हुआ सत्यार्थप्रकाश सन् १८७५ के छपे हुये सत्यार्थ प्रकाशसे हूबहू मिलता है एक अक्षरका भी फर्क नहींहै ! ये समस्त चिट्ठियां अनावश्यक होने से इस आवृत्ति में नहीं छापीं।

आर्यसमाजियों के प्रमाण।

नं० (१) मेरठ ता० २१। २। १९१६ श्रीमन् महाशय नमस्ते ! आपका भेजा सत्यार्थ प्रकाश पुराना सन् १८७५ का छपा जैसा उसकी नकल मिली। पाठ मिलाने से ज्ञात हुआ कि पाठ ज्यों का त्यों है परन्तु न जाने आपने इससे क्या लाभ सोचा है जब कि ग्रन्थकार स्वयं उसे अमान्य कर दुबारा छपा गये। इसका विशेष उत्तर वेदप्रकाश में छपेगा।

आपका सुहृद् छुट्टनलाल स्वामी।

नं० (२) लाला मुन्शीराम उर्फ श्रद्धानन्द ने "एक आदिम सत्यार्थ प्रकाश "नामक ग्रन्थ बनाया है उसके पृष्ठ १० में लिखते हैं कि "कालूराम की विचित्र कल्पनायें"। पहिली कल्पना यह है कि जिस समय यह सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाजियों को दिखलाया जावेगा उस समय आर्यसमाजी फौरन कह देंगे कि यह इबारत पं० कालूराम ने मिला दी होगी, अपनी आरम्भिक सूचना में इन्होंने इसी पर बड़ा बल दिया है और यह लिख कर कि आर्य लोग चालाकी से बात को उड़ाने लगते हैं अपने सनातनधर्मी भाइयों को सम्मति दी है कि आर्यों से यह कह दो कि "जब तक कोई आर्य समाजी मेल साबित कर के प्रतिशब्द १०) इनाम न ले लेगा तब तक यह नहीं माना जा सकता कि कालूराम ने इसमें मिलाया है" फिर लिखते हैं "इस पर अड़ जाना चाहिये चाहे वह कितनी ही कोशिश करे कुछ भी कहे किन्तु तुम यही कहो कि मिलाने का सबूत दो वह कुछ भी नहीं दे सकेगा" इस सूचना से पहिले के चार पृष्ठ भी सनातनी प्रचारकों आदि की साक्षी से भर दिये हैं कि कालूराम ने अक्षरशः पहिले सत्यार्थ प्रकाश की ठीक ठीक नकल छपी है। जब नकल ठीक छापी गई है तो कोई आर्यसमाजी क्यों कहेगा कि कोई "इबारत कालूराम ने अपनी तरफ से मिला दी होगी" यह तो वही मसल है कि सूत न कपास कोरी से लट्ठम लट्ठा प्रतिलिपि जब ठीक है तो कोई ऐसा विवाद कर ही नहीं सकता

तब कालूराम ने ११ व्यक्तियों से साक्षी मांगने और उन्हें पहिले सत्यार्थ प्रकाश का अपनी छपाई पुस्तकके साथ मिलान करने का कष्ट क्यों उठाया और उन सज्जनों का भी समय क्यों व्यर्थ नष्ट किया? इसका कारण है। जिस वकील का मुकद्दमा कमजोर होता है वह पहिले कुछ अशुद्ध कल्पना करके अपने विरोधी वकील को बुरा भला कहने लगता है। परन्तु जब आगे चल कर मुकद्दमे का पोल खुल जाता है। तो ऐसी कल्पना स्वयम् उस वलील के विरुद्ध पड़ती है। अच्छा तो यहांप्रथम ५ पृष्ठ (चार पृष्ठ साक्षियों की सम्मतियों के और पांचवां पृष्ठ सूचना वाला) तो व्यर्थहैं क्योंकि कोई आर्य समाजी यह कहेगा ही नहीं कि इस छपे हुये ग्रन्थ में कालूरामने कोई "इबारत अपनी तरफ से मिला दी होगी।

(१) हमने सन् १५ वाले सत्यार्थ प्रकाश में विज्ञापन दिया उस विज्ञापन के ऊपर से कोई भी आर्यसमाजी बनावट सिद्ध नहीं कर सका (२) अनेक विद्वानों ने चिट्ठियां लिखीं कि इसमें कोई मिलावट नहीं है। चालाक आर्यसमाजियों की दृष्टि में यह सब पण्डित झूठे हैं। आर्य समाजी रात दिन झूठ बोलतेहैं, झूठ लिखते हैं, धोखा देते हैं; मनुष्यों की आंखों में धूल झोंकते हैं अतएव यह सबको मिथ्यावादी समझते हैं (३) पं० छुट्टनलालजी स्वामी भाद्रपद संवत् १९७४ के वेदप्रकाश में लिखते हैं कि मांस का खाना तो सनातनधर्मी भी नहीं मानते। यदि सत्यार्थप्रकाशमें मांस

खाना नहीं था तो इस लेख की कौन आवश्यकता थी ॥ सत्यार्थप्रकाश के लिखे हुये गोमांस भक्षण पर पं० छुट्टनलाल का दिल घबरा गया और उन्होंने इस तरीके पर लिखा।फिर छुट्टनलाल यह लिखते हैं कि सत्यार्थप्रकाश पर मुकद्दमा चलने से वह और प्रसिद्ध हो जावेगा इसकी प्रसिद्धि से डरने का नमूना गोभक्षण ही है ॥ पं० छुट्टनलाल का समस्त लेख "क्या आर्यसमाज कोर्ट में जायगा,, शीर्षक लेख हम पीछे लिख आये (४) पं० छुट्टनलाल की चिट्ठी में साफ लिखा है कि कालूराम का छापा हुआ सत्यार्थप्रकाश ज्यों का त्यों है छुट्टनलाल भी आर्यसमाज के दुश्मन हैं और बेईमानी करते हैं (५) आदिम सत्यार्थप्रकाश में लाला मुंशीराम लिखते हैं कि कालूराम ने विज्ञापन क्यों दिया पण्डितों की चिट्ठियां क्यों छापीं। कोई भी आर्यसमाजी यह कहेगा ही नहीं कि कालूराम ने मिला दिया इनकी दृष्टि में भी तो हमारा सत्यार्थ प्रकाश ज्यों का त्यों है किन्तु धर्म कर्म रहित चालाक आर्यसमाजी अब भी कालूराम का ही मिलाया मानते हैं ।

अन्य विचार ।

कोई २ आर्यसमाजी यह भी कहता है कि "स्टार प्रेस" के सनातनधर्मियों ने पहिले ही उसमें मिला दिया होगा। आर्यसमाज चाहे जितनी भी चालबाजी करे किन्तु सत्य सत्य ही रहेगा। यदि किसी ने मिला दिया था तो फिर

हस्तलिखित कापी में दो कलम क्यों नहीं होगई जिस हस्त-लिखित कापी से सन् १८७५ में सत्यार्थप्रकाश छपा है उसमें आरम्भ से अन्त तक एक ही मनुष्य के हस्ताक्षर हैं क्या मिलाने वाला अपने अक्षरों को भी बदल लेगा। (२) हस्त-लिखित कापीसे मिलाने पर छपे हुये सत्यार्थप्रकाश में न कोई शब्द घटता है न बढ़ता है हां कुछ शब्द अशुद्ध छपे हैं (३) प्रूफ तो स्वामी दयानन्द जी ने देखा है असली कापी के साथ छपनेवाली कापीको स्वामीदयानन्दजीने स्वतः मिलाकर प्रूफ शोधा है यानी कुछ इबारत मिलाई थी या घटाई थी तो फिर प्रूफ शोधनेके समय स्वामीदयानन्दजीने ठीक क्यों नहीं किया और यदि उनका प्रूफ शोधना ठीक है तो फिर कैसे मिलाया हुआ माना जावेगा (४) जब समस्त सत्यार्थप्रकाश छपगया तब स्वामीदयानन्दजीने फिर देखा जितने शब्द अशुद्ध रह गये थे उनका शुद्धाशुद्ध पत्र बनाया वह शुद्धाशुद्धपत्र सन् १८७५ के सत्यार्थ प्रकाश में छपा। जब स्वामी दयानन्द शुद्धाशुद्ध पत्र बना गये तो मिलाया हुआ उनको क्यों नहीं दीख पड़ा। दीख तो तब पड़े जब किसीने मिलाया हो। फिर स्वा०दयानन्दजीने सत्यार्थप्रकाश में विषय सूची लिखी १९३३ से संवत् १९४० तक स्वामीजी जीवित रहे यदि किसीने मिलाया था तो नित्य सत्यार्थप्रकाश पढ़ने वाले स्वामी दयानन्दजी आठ वर्ष तक भी न देख पाये और फिर मरने के बाद क्या स्वामी दयानंद

जी भूत हो गये जो आर्यसमाजियों के कानों में कहते फिरते हैं कि किसी ने मिला दिया ।

वास्तव में बात यह है कि स्वामी दयानन्द जी धर्म कर्म को तो मानते नहीं थे और हरफनमौला थे । गोभक्षण के लेख से उनके हृदय के भाव आगे आ जाते हैं और आर्यसमाजी उनको परिव्राजक, वेदोद्धारक, महर्षि कहते हैं । ऊपर के लेख से स्वामी दयानन्द जी के साथ २ आर्यसमाजियों के हृदय की करुणा का दृश्य भी आगे आ जाता है । अब ये इज्जत के बचाने के लिये, नकली धार्मिक बनने के लिये, हृदय विदारक लेख को टालकर स्वामी दयानन्द जी को दूध का धुला सिद्ध करना चाहते हैं किन्तु इस विषय में इनकी समस्त चालाकियां विफल हो जाती हैं और ये औंधे मुख गिर जाते हैं किन्तु निर्लज्ज इतने हैं कि यह फिर भी नहीं शरमाते । प्रत्येक मनुष्य को इन चालबाजोंसे बचना चाहिये और जब ये सना-तनधर्म का खण्डन करें तब असली सत्यार्थप्रकाश और यह लेख इनके आगे रख देना चाहिये फिर तो ये घुड़दौड़ से भागते नजर आवेंगे ।

द्वितीयावृत्ति भी गलत ।

जब द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश बना तब आर्यसमाजी कहा करते थे कि यह सर्वथा शुद्ध है और स्वामी दयानन्दकृत है किन्तु आर्यसमाजियों की दृष्टि में यह भी गलत निकला

(१) द्वितीयावृत्ति चतुर्थ समुल्लासमें 'या चेदक्षत योनिः' श्लोक का पाठ था अब उसमें 'सा चेदक्षत योनिः' कर दिया (२) इसी श्लोक के अर्थ में द्वितीयावृत्ति में लिखा था कि पुनर्विवाह न करना चाहिये सन्१८६८में उसके स्थानमें 'पुनर्विवाह होना चाहिये' यह पाठ कर दिया (३) द्वितीयावृत्ति के चतुर्थ समुल्लासमें लिखाथा कि 'गर्भवती स्त्रीसे एक वर्ष समागम न करने के समयमें पुरुष वा स्त्रीसे न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे' इसके स्थानमें सन् १८६७ में 'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसीसे नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदे' यहाँपर 'दीर्घरोगी पुरुष की' इतना पाठ बढ़ा दिया (४) द्वितीयावृत्ति पृष्ठ २२५ पंक्ति २६ में 'आर्यवाचो म्लेच्छवाचः' ऐसा पाठ था सन् १८६७ में उसके स्थान में 'म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः' पाठकर दिया (५) द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ३३४ पंक्ति १२ में 'रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति" ऐसा पाठ था उसके स्थानमें "रथेन वायु वेगेन भाग०स्कं०१०अध्य०३६ श्लोक ३८। जगाम गोकुलं प्रति भाग० स्कं० १० अ० ३८ श्लो० २४" ऐसा पाठ कर दिया। 'जगाम गोकुलं प्रति' यह पाठ भी भागवत में नहीं है (६) द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ६५ पंक्ति ११ में "ऋतुकालाभिगामीस्यात्स्वदारनिरतः सदा। ब्रह्मचर्येत्रभवति यत्र तत्राश्रमे वसन्" ऐसा पाठ था उसके स्थानमें "ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदार-

निरतः सदा। पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतोरतिकाम्यया। निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्। ब्रह्मचर्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्" ऐसा पाठ कर दिया (७) द्वितीयावृत्ति पृष्ठ २२३ पंक्ति ७ में "मनुष्या ऋषयश्च ये ततो मनुष्या अजायन्त। यह यजुर्वेद में लिखा है" उस के स्थान में ११ वीं आवृत्ति में "मनुष्या ऋषयश्च ये ततो मनुष्या अजायन्त। यह यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है' ऐसा पाठ कर दिया। (८) द्वितीया वृत्ति पृष्ठ ३३८ पंक्ति २६ में "छादयत्यर्क मिन्दुर्विधुं भूमिभाः" यह सिद्धान्त शिरोमणि का वचन लिखा था किन्तु सन् १८६७ में 'छादयत्यर्क मिन्दु र्विधुं भूमिभाः यह 'ग्रहलाघव के चौथे अध्याय का चौथा श्लोक है' ऐसा पाठ लिख दिया। ग्रहलाघव में अध्याय हैं ही नहीं अधिकार हैं। जब इस प्रकार के पाठ बदलने से आर्य समाज को शान्ति न मिली तब हार मान कर परोपकारिणी सभा ने 'आर्यमुसाफिर' अखबार आगरामें ३१ जौलाई सन् १६०८ में एक विज्ञापन छपवाया उस विज्ञापन को भी पढ़िये, वह यह है। "सूचना दीजिये। प्रायः समाजों से शिकायत आई है और आती रहती है कि सत्यार्थ प्रकाश के प्रमाणों के पते आदि तथा छापे की अशुद्धियां रह गई हैं कई महाशय अन्य प्रकार की अशुद्धियाँ भी बतलाया करते हैं जो इन्हें विपक्षी लोगों से वादाविवादके समय मालूम हुई हैं इस गड़ बड़ को दूर करने के वास्ते सभा ने सत्यार्थ प्रकाश के शुद्ध

कराने का प्रबंध किया है इस लिये सब आर्यसमाजों सामाजिक पुरुषों विशेष कर आर्यविद्वानों तथा उपदेशकोंसे प्रार्थना है कि वह अपनी अपनी सम्मति से शीघ्र सुचित करें कि उन्हें सत्यार्थ प्रकाश में किस प्रकार संशोधन अभीष्ट है जिस प्रकार की अशुद्धियां उक्त ग्रन्थ में जिन महाशयों को मालूम हों शीघ्र सभा के दफ्तर में लिख भेजें अति कृपा होगी । निवेदक-हरविलास साडा, सहायक मंत्री परोपकारिणी सभा अजमेर ।

कुठाराघात ।

आजकल के आर्यसमाजियों की लेखनी सत्यार्थप्रकाश के लिये कुठार का काम कर रही है । आर्यसमाजी कहा करते थे कि प्रथमावृत्ति तो गलत बन गया था किन्तु द्वितीयावृत्ति सर्वथा सत्य है । उस सर्वथा सत्य द्वितीयावृति की आर्यसमाज ने यह दुर्दशा कर डाली । हम आर्यश्रमाजियों से पूछते हैं कि द्वितीयावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश है या मिथ्यार्थ प्रकाश ? यदि मिथ्यार्थप्रकाश है तो तुम उसको सत्यार्थप्रका क्यों लिखते हो और यदि सत्यार्थप्रकाश को बदल कर मिथ्यार्थप्रकाश करोगे ? यदि यह सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्द का बनाया है तब तुम को बदलने का क्या स्वत्व है ? यदि स्वामी दयानन्द जी का बनाया नहीं है तब तुम इसके ऊपर स्वामी दयानन्द का नाम निर्माता में असत्यता से क्यों लिखते हो ? यदि स्वामी दयानन्द जी वास्तवमें महर्षि थे तब तुम महर्षिके लेख

की काट छांट क्यों करते हो ? यदि वे सत्यार्थप्रकाश लिखनेके योग्य ही नहीं थे तब तुम संसार को धोका देने के लिये उन को महर्षि क्यों बतलाते हो ? यदि ग्रन्थ स्वामी दयानन्द का बनाया है तब तुम को बदलने का कोई स्वत्व नहीं है। तुम बतलाओ कि तुमने किस स्वत्व से सत्यार्थप्रकाश की छीछा-लेदड़ कर डाली है ? हमारे इस प्रश्नको सुन कर आर्यसमाजी कुछ भी उत्तर नहीं दे सकते क्यों कि उनको इधर कुआ उधर खाई कैसा मामला सूझने लगता है अतएव वे अपनी चाला-कियों से हमारे ही लेख को अशुद्ध बतला देते हैं इस विषयमें जनता को हमारे इस लेख पर ध्यान रखना चाहिये। हमने जो यह छोटा सा विवेचन लिखा है वह नेक नीतिके साथ निर्णय करनेके लिये लिखा है। पाठक स्वतः इसका निर्णय करें और यह भी समझलें कि आर्यसमाजी वेद वेद चिल्ला कर नकली ईसाई बना रहे हैं। यदि इनकी यही चाल रही तो कुछ दिन के बाद सत्यार्थ प्रकाश के लेख को बदल बदल कर सर्वथा बाइबिल से मिला कर हिन्दू जाति को संसार से सर्वदा के लिये बिदा कर देंगे। इस भावी नाशको रोकनेके लिये उचित है कि प्रत्येक मनुष्य आर्यसमाज की इस चाल को जनता के कान में पहुँचा दे कि इनको सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदड़ करना ही इष्ट नहीं है किन्तु हिन्दूजाति और उसकी धर्मपुस्तक वेद को दुनियां से उखाड़ देने के लिये आर्यसमाज का यह उद्योग है। हम अपना धर्म समझ कर जनता को सूचना देते

हैं यदि जनता सुस्ती करेगी या इन की मीठी मीठी बातों में आ जावेगी तो अंत में वेद और हिन्दू जाति का नाश अवश्य हो जावेगा इसमें किसी प्रकारका भी मीन मेष न समझें ।

कालूराम शास्त्री,

अमरौधा, (कानपुर) ।

अथसत्यार्थप्रकाश

श्रीस्वामीदयानन्दरचित

श्रीराजा जयकृष्णदास बहादुर सी एस आई

की

आज्ञाऽनुसार

मुनशी हरिवंशलाल के अधिकार से इस्टार

प्रेस महल्लः रामापूर मे छापी गई ॥

सन् १८७५ ई०

बनारस

पहिलीबार १००० पुस्तकें मोल फ़ी पुस्तक २)

निवेदन १

यह पुस्तक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मेरे व्यय से रची है और मेरे ही व्ययसे यह मुद्रित हुई है उक्त स्वामी जी ने इस्का रचनाधिकार मुझको दे दिया है और उस्का मैं अधिष्ठाता हूँ और मेरी ओर से इस पुस्तक की रजिष्टरी कानून २० सन् १८४७ ई० के अनुसार हुई है सिवाय मेरे वा मेरी आज्ञा के इस पुस्तक के छापने का किसी को अधिकार नहीं है ।

द० श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर
सी एस आई

निवेदन २

जिस पुस्तक के आदि और अन्त में मेरे हस्ताक्षर और मोहर नहीं वह चोरी की है और इस्का क्रय विक्रय नहीं हो सक्ता ।

द० श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर
सी एस आई

निवेदन ३

इस पुस्तक के पाठकों से मेरी यह विनय पूर्वक प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ के छपवाने से मेरा अभिप्राय किसी विशेष

मत के खंडन मंडन करने का नहीं किन्तु इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि सज्जन और विद्वान लोग इस्को पक्षपात रहित होकर पढ़ें और विचारें और जिन विषयोंमें उनकी दयानन्द स्वामी के सिद्धान्तों से सम्मति न हो उन विषयों पर अपनी अनुमति प्रबल प्रमाण पूर्वक लिखें जिससे धर्म का निर्णय और सत्यासत्य की विवेचना हो मुख से शास्त्रार्थ करने में किसी बात का निर्णय नहीं होता परन्तु लिखने से दोनों पक्षों के सिद्धान्त ज्ञात हो जाते हैं और सत्य विषय का निर्णय हो जाता है इस लिये आशा है कि सब पण्डित और महात्मा पुरुष इस्की यथावत समालोचना करेंगे और यह न समझेंगे कि मुझको किसी विशेष मत की निन्दा अभिप्रेत हो छापने में शीघ्रता के कारण इस ग्रन्थ में बहुत अशुद्धता रह गयी हैं आशा है पाठक गण इस अपराध को क्षमा करेंगे।

अथ सत्यार्थप्रकाश ।

ओ३म्० शन्नोमित्रः शम्बरुणः शन्नोभवत्वर्यमा शन्नइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नोविष्णुरुरुक्रमः नमोब्रह्मणे नमस्तेवायोत्वमेव प्रत्यक्षम्ब्रह्मासि· त्वामेवप्रत्यक्ष म्ब्रह्मवदिष्यामि ऋतम्वदिष्यामि सत्यम्वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवत्व वतुमामवतु वक्तारम् ओ३म् शान्ति श्शान्ति श्शान्तिः ॥ १ ॥

ओ३म् । यह जो ॐकार सो बहुत उत्तम परमेश्वर का नाम है क्योंकि तीन जे अ उ और म् अक्षर इस में हैं वे सब मिल के एक ओम् अक्षर हुआ है इस एक अक्षर से बहुत परमेश्वर के नाम आते हैं जैसे अकार से विराट् अग्नि और विश्व इत्यादिकों का ग्रहण किया है उकार से हिरण्यगर्भ वायु और तैजसादिकों का ग्रहण किया है । मकार से ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादिकों का वेदादिक शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है ये सब नाम परमेश्वरही के हैं जो ऐसा कहे कि परमेश्वर से भिन्न अर्थों का ग्रहण क्यों नहीं होता है उससे पूछना चाहिये

कि विराट् और अग्नि इत्यादि जितने नाम हैं वे सब मनुष्य पृथिव्यादिक भूत देवलोक में रहने वाले जे देव और वैद्यकऽ शास्त्र में शुंठ्यादिकों के भी लिखे हैं और वे परमेश्वर के भी नाम हैं इन सभों में आप किनका ग्रहण करते हैं जो आप कहैं कि हमतो देवों का ग्रहण करते हैं अच्छा तो आपके ग्रहण करने में क्या प्रमाण है देव सब प्रसिद्ध हैं और वे उत्तम भी हैं इस्से मैं उनका ग्रहण कर्ता हूं मैं आपसे पूछता हूं कि परमेश्वर क्या अप्रसिद्ध है और परमेश्वर से कोई उत्तम भी है जो आप इस प्रमाण से उनका ग्रहण करते हैं और परमेश्वर तो कभी अप्रसिद्ध नहीं होता है उसके तुल्य कोई नहीं है तो उत्तम कैसे कोई होगा इस्से यह आपका कहना मिथ्या ही है आप के कहने में बहुत से दोषभी आवेंगे जैसे कि भोजन के लिये भोजन करने का पदार्थ किसी ने किसी के पास प्रीति से रखके कहा कि आप भोजन करें और वह उसका त्याग के अप्राप्त भोजन के लिये जहां तहां भ्रमण करै उसको बुद्धिमान न जानना चाहिये क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप आया जो पदार्थ उसको छोड़ के अनुपस्थित नाम अप्राप्त जो पदार्थ उस्की प्राप्ति के लिये श्रम कर्त्ता है इसी से वह पुरुष बुद्धिमान नहीं है ॥ किञ्च। उपस्थितं परित्यज्य अनुपस्थितं याचतेइति बाधितन्यायः। वैसा ही आपका कथन हुआ क्योंकि उन नामों के जे उपस्थित अर्थ मनुष्य शुंठ्यादिक औषधियों का परित्याग आप कर्ते हैं और अनुपस्थित जे देव उनके ग्रहण में आप श्रम कर्ते हैं इसमें कुछ भी प्रमाण वा युक्ति नहीं है और जो आप

ऐसा कहैं कि जहां जिसका प्रकरण है वहां उसी का ग्रहण करना योग्य है जैसे किसी को कहा कि सैन्धवमानय सैन्धव को तू ले आ तब उसको समय का बिचार करना अवश्य है क्योंकि सैंधव तो दो अर्थों का नाम है घोड़े का और लवण का भी है गमन समय में सैन्धव शब्द सुन के घोड़े को ले आवेगा और भोजन समय में लवण को ही ले आवेगा तब तो ठीक ठीक होगा और जो गमन समय में लवण को लेआवै और भोजन समय में घोड़े को ले आवै तब उसका स्वामी उसपर क्रुद्ध होके कहेगा कि तूं निर्बुद्धि पुरुष है क्यों कि गमन समय में लवण का क्या प्रयोजन है और भोजन समय में घोड़े का क्या प्रयोजन है जहाँ जिस को ले आना चाहिये वहां उसको क्यों तूं नहीं ले आया इस्से तूं मूर्ख है मेरे पास से चला जा इस्से क्या आया कि जहां जिस का ग्रहण करना उचित होय वहां उसी का ग्रहण करना योग्य है यह बात तो आपने अच्छी कही कि ऐसा ही जानना चाहिये और करना भी चाहिये हम लोगों को जहाँ जिसका ग्रहण करना उचित है वहां उसी का ग्रहण करना चाहिये कि। ओमित्ये तदक्षरमुद्गीथ मुपासीत। यह छान्दोग्य उपनिषद को बचन है और॥ ओमित्ये तदक्षरमिदम् सर्वन्तस्योपव्याख्यानम्। यह मांडूक्य उपनिषद का बचन है॥ ओ३म् खम्ब्रह्म। यह यजुर्वेद की संहिता का बचन है॥ प्रवीम्यो मेतत्। यह कठोपनिषद् का वचन है प्रशासितारंसर्वेषा मणीयांसमणोरपि। रुक्माभं-स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषम्परम्॥ एतमग्निम्बदन्त्ये के मनुम-

न्येप्रजापतिम् । इन्द्रमेकेपरेप्राण मपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ये दोनों मनुस्मृति के श्लोक हैं। सब्रह्मासविष्णुस्सरुद्रस्सशिवस्सोऽक्षरस्सपरमस्स्वराट्सइन्द्र स्सकालाग्निस्सचन्द्रमाः इत्यादिक कैवल्योपनिषद् के बचन हैं। अग्निमीडेपुरोहितं यज्ञस्यदेवमृत्विजम् होतारंरत्नधातमम् ॥ यह ऋग्वेद की संहिता का मंत्र है ॥ भूरसिभूमिरस्यदितिरसिविश्वधायाविश्वस्य भुवनस्यधर्त्री पृथिवीं यच्छपृथिवीं दृंहपृथिवीं माहिंसीः पुरुषंजगत् यह यजुर्वेद की संहिता का मन्त्र है। अग्नऽआयाहिवीतये गृणानो-हव्यदातये ॥ निहोतासत्सिबर्हिषि । यह सामवेद की संहिता का मंत्र है ॥ शन्नोदेवीरभिष्टय ऽआपोभवन्तु पीतये । शंयोरभि-स्रवन्तुनः ॥ यह अथर्ववेद की संहिता का मन्त्र है इत्यादिक प्रकरणों में इन बचनों से और इनके ठीक ठीक अर्थों के जानने से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है क्योंकि ओंकार और अग्न्यादिक नामों के मुख्य अर्थ से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है निरुक्त व्याकरण और कल्प सूत्रादिक ऋषि मुनियोंके किये व्याख्यानों से वैसेही ब्रह्मादिकों के किए संहिताओं के शतपथादिक ब्राह्मण वेदोंके व्याख्यान से भी और छः शास्त्रोंमें भी परमेश्वर का ग्रहण देखने में आता है उन नामों के अर्थों से और उसी तरह के विशेषणों से भी परमेश्वर का ग्रहण होता है और का नहीं होता इस्से क्या आया कि जहां जहां प्रार्थना स्तुति सर्वज्ञादि विशेषण और उपासना लिखी है वहां वहां परमेश्वर का ही ग्रहण होता है यह सिद्ध हुआ और जहां२ ऐसे प्रकरण हैं कि ॥ ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः श्रोत्राद्वायुश्च-

प्राणश्च मुखादग्निरजायत । तस्माद्देवाऽअजायन्त पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ये सब बचन यजुर्वेद की संहिता के हैं ॥ तस्माद्वा एतस्मादात्मनआकाशस्संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यःपृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्यो अन्नम् अन्नाद्रेतः, रेतसः सवाएषपुरुषोऽन्नरसमयः । यह तैत्तिरीयोपनिषद् का बचन है । इत्यादिक प्रकरणों में विराट् इत्यादिक नामों से परमेश्वर का ग्रहण किसी प्रकार से भी नहीं होता क्योंकि परमेश्वर का जन्म और मरण कभी नहीं होता है । इससे इसी प्रकार के प्रकरणों में विराट् इत्यादिक नामों से और जन्मादिक विशेषणों से भी परमेश्वर का ग्रहण शिष्टलोगों को कभी न करना चाहिये विराट् इत्यादिक नामों का अर्थ कर्ता हूँ जिससे इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण हो ॥ राजृदीप्तौ इस धातु से विराट् शब्द सिद्ध होता है । विविधन्नाम चराचरञ्जगत् राजते नाम प्रकाशते सविराट् विविध अर्थात् बहु प्रकार के जगत् को प्रकाश करै उसको नाम विराट् है अञ्चु गतिपूजनयोः । इस धातु से अग्नि शब्द सिद्ध होता है ॥ गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानंगमनम्प्राप्तिश्चेति पूजनन्नामसत्कारः अञ्चति अच्यतेवासोऽयमग्निः । जो ज्ञान स्वरूप सर्वज्ञ जानने प्राप्ति होने और पूजा के योग्य है उस का नाम अग्नि है ॥ विशप्रवेशने इस धातु से विश्व शब्द सिद्ध होता है ॥ विशंतिसर्वाणिभूतानि आकाशादीनियस्मिन्सविश्वः । प्रवेश करते हैं सब आकाशादिक भूत जिस में उस का नाम विश्व है इत्यादिक नाम अकार से लिये जाते हैं ॥ हिरण्यन्तेजसो नाम हिरण्यानि

सूर्यादीनितेजांसि गर्भेयस्य सहिरण्यगर्भः। अथवा हिरण्यानां सूर्यादीनान्तेजसाङ्गर्भः हिरण्यगर्भः। हिरण्यगर्भ शब्द का यह अर्थ है कि जिस्से सूर्यादिक तेज वाले पदार्थ उत्पन्न होके जिस के आधार रहते हैं उसका नाम हिरण्यगर्भ है अथवा सूर्यादिक तेजों का जो गर्भ नाम निवास स्थान उसका नाम हिरण्यगर्भ है इस में यह यजुर्वेद का मंत्र प्रमाण है ॥ हिरण्यगर्भःसमवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधारपृथिवींद्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥ इत्यादिक मन्त्रों से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है॥ वागतिगन्धनयोः। इस धातु से वायु शब्द सिद्ध होता है ॥ गन्धनंहिंसनं वातिसोऽयंवायुः चराचरञ्जगद्धारयतिवासवायुः। जो चराचर जगत् का प्रलय करै अथवा धारण करै और सब बलवानों से बलवान होय उसी का नाम वायु है॥ तिजनिशाने इस धातु से तैजस शब्द सिद्ध होता है जो अपने से आप ही प्रकाशित होय और सूर्यादिक तेजों का प्रकाश करने वाला होय उस का नाम तैजस है इत्यादिक नामों का उकार से ग्रहण होता है ईशऐश्वर्ये इस धातु से ईश्वर शब्द सिद्ध होता है ईष्टे असौईश्वरः सर्वैश्वर्यवान् योभवेत् सईश्वरः। जो सत्यविचारशील नाम सत्य जिस का ज्ञान है अनन्त जिस का ऐश्वर्य है उसका नाम ईश्वर है ॥ दोऽवखण्डने। इस धातु से दिति शब्द सिद्ध होता है अवखण्डनन्नामविनाशः। उस्सेक्तिन् प्रत्यय करने से दिति शब्द सिद्ध होता है दिति किस का नाम है कि जिस का विनाश होता है उस्से जबनञ् समास हुआ तब अदिति शब्द हुवा अदिति नाम जिस का कभी नाश

न होय। जो अदिति है वही आदित्य है ॥ ज्ञ अवबोधने धातु है उससे प्राज्ञ शब्द सिद्ध हुआ प्रकृष्टश्चासौज्ञश्च प्रज्ञः प्रज्ञएवप्राज्ञः जो ज्ञानी और सब ज्ञानियों से उत्तम ज्ञानवान् है उसका नाम प्राज्ञ है प्रजानाति वा चराचरज्जगत् सप्रज्ञः प्रज्ञएवप्राज्ञः सब पदार्थों को यथावत् जो जानता है उस का नाम प्राज्ञ है जैसा कि परमेश्वर का ओंकार उत्तम नाम है वैसा कोई भी नहीं इस का बहुत थोड़ा अर्थ किया गया है क्योंकि ओंकार की व्याख्या से और बहुत से अर्थ लिये जाते हैं यह ओंकार का नव नामों से अर्थ तो किया गया वे नव नाम परमेश्वर के ही हैं और इस मन्त्र में जितने मित्रादिक नाम हैं उनका अर्थ अब आगे किया जाता है क्योंकि जो प्रार्थना स्तुति और उपासना होती है सो श्रेष्ठ ही की होती है श्रेष्ठ जो अपने से गुणों में और सत्य सत्य व्यवहारों में अधिक है सोई श्रेष्ठ होता है उन सब श्रेष्ठों में भी परमेश्वर अत्यन्त श्रेष्ठ है क्योंकि परमेश्वर के तुल्य कोई भी न हुआ न है और न होगा जो तुल्य नहीं तो अधिक कैसे होगा कभी न होगा क्योंकि परमेश्वर के न्याय दया सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञान इत्यादिक अनन्त गुण हैं और वे सर्वदा सत्य ही हैं इससे सब मनुष्य लोगों को प्रार्थना स्तुति और उपासना परमेश्वर ही की करनी चाहिये परमेश्वर से भिन्न किसी की कभी न करनी चाहिये ब्रह्मा विष्णु महादेवादिक देव और दैत्य दानवादिक भी परमेश्वर ही में विश्वास कर्ते हैं उसी की प्रार्थ-ना स्तुति और उपासना कर्ते हैं और किसी की भी नहीं कर्ते इसका विचार अच्छी रीति से उपासना और मुक्ति के विषय

में लिखा जायगा पूर्वपक्ष मित्रादिक नामों से सखा और इन्द्रादिक देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उन का ग्रहण करना चाहिये उत्तरपक्ष उन का ग्रहण करना योग्य नहीं क्योंकि जो किसी का मित्र है वही और का शत्रु भी है और किसी से उदासीन भी वह देखने में आता है परमेश्वर तो सब जगत् का मित्र ही है और कोई मे उदासीन भी नहीं इस्से जो व्यवहार में किसी का मित्र होने किसी का शत्रु होने और किसी से उदासीन होने से उस का ग्रहण करना योग्य नहीं इस में महाभाष्य के बचन का प्रमाण भी है। प्रधाना प्रधानयोः प्रधाने कार्यं सम्प्रत्यः गौणमुख्ययोर्मुख्येकार्ये सम्प्रत्ययः। इसका अर्थ यह है कि प्रधान और अप्रधान गौण और मुख्य के बीचमें से प्रधान और मुख्य ही का ग्रहण होता है जैसे कि किसी से किसी ने पूंछा कियह कौन जाता है उसने उस्से कहा कि राजा जाता है इस में विचार करना चाहिये कि राजाके साथ बहुत से भृत्य हाथीघोड़े और रथ भी जातेथे परन्तु राजा के सामने उन का ग्रहण नहीं भयान होताहै न होगा किंतु राजाही का हुआ क्यों कि प्रधान और मुख्य के सामने अप्रधान और गौणों का ग्रहण नहीं होता है वैसे ही जो परमेश्वर सभों में प्रधान और सभों में मुख्य ही है मित्र शत्रु और उदासीन किसीका भी नहीं इसी से परमेश्वर ही का मित्रादिक शब्दों से ग्रहण करना उचित है। वृञ् वरणे वरईप्सायाम् ॥ इन दो धातुओं से वरुण शब्द सिद्ध होता है वृणोतिसर्वान्शिष्टान् मुमुक्षून्मुक्तान्धर्मात्मनोयस्सवरुणः। अथवा व्रियतेशिष्टैः मुमुक्षुभिः मुक्तैः धर्मात्मभिः यः स-

वरुणः परमेश्वरः अथवा वरयति शिष्टादीन् वर्यते वा शिष्टादिभिः सवरुणः परमेश्वरः जो वृणोति नाम स्वीकार कर्ता है शिष्ट मुमुक्षु और धर्मात्माओं को उसका नाम वरुण है सो वरुण नाम परमेश्वर का है। व्रियते नाम शिष्टादिक जिसका स्वीकार कर्ते हैं उसका नाम वरुण है अथवा वरयति नाम जो सब को प्राप्त हो रहा है उसका नाम वरुण है वर्यते नाम और जो सब श्रेष्ठ लोगों को प्राप्त होने के योग्य होय उसका नाम वरुण है और यह भी अर्थ होता है कि वरणो नाम श्रेष्ठः जो सभों से श्रेष्ठ होय उसका नाम वरुण है वैसा वरः वरो परमेश्वर ही है और दूसरा कोई भी नहीं। ऋगतिप्रापणयोः इस धातु से अर्यमा शब्द सिद्ध होता है जो सभों के कर्मों की यथावत् व्यवस्था को जाने और पाप पुण्य करने वालों को यथावत् पाप और पुण्यों की प्राप्ति का सत्य सत्य नियम करै उसी का नाम अर्यमा है इदि परमैश्वर्ये इस धातु से इन्द्र शब्द की सिद्धि होती है इन्दति परमैश्वर्यवान् योभवति सइन्द्रः जिसका परम ऐश्वर्य होय उस्से अधिक किसी का भी ऐश्वर्य न होवै उसका नाम इन्द्र है वृहत् शब्द है इसके आगे पति शब्दका समास है। वृहताम्महतामाकाशादीनांपतिः सवृहस्पतिः। जो बड़ों से भी बड़ा और सब आकाशादिक और ब्रह्मादिकों का जो स्वामी है उसका नाम वृहस्पति है। विष्लृव्याप्तौ॥ इस धातु से विष्णु शब्द सिद्ध हुआ है। वेवेष्टिनामव्याप्नोतिचराचरञ्जगत्सविष्णुः उरु नाम महान् क्रमः पराक्रमोयस्यसउरुक्रमः जो सब जगत् में व्यापक होय उरुक्रम नाम अनन्त पराक्रम जिस का है उसका

नाम उरुक्रम वही विष्णु है बृहवृहिवृद्धौ। इन धातुओं से ब्रह्म शब्द सिद्धहोता है जो सब के ऊपर बिराजमान होय और सब से बढ़ा होय उसका नाम ब्रह्म है बायु का अर्थ तो ॐकार के अर्थ से किया है वहीं जान लेना चाहिये शम् नाम है सुख का और कल्याण का भी नः यह पद से हम सब लोगों का ग्रहण होता है हे परमेश्वर ॐकारादिक जितने नाम हैं वे आप ही के हैं आप प्रत्यक्ष ही ब्रह्म हैं त्वामेवप्रत्यक्ष म्ब्रह्मवदिष्यामि॥ आप ही को मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा प्रत्यक्ष नाम, सब जगह में आप नित्यही प्राप्त हो ऋतम्वदिष्यामि। आप की जो यथार्थ आज्ञा है उसी को मैं कहूंगा और उसी कोही मैं करूँगा सत्यम्वदिष्यामि। और सत्य ही कहूंगा और करूँगा भी तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। ऐसा जो मैं आप की आज्ञा को कहने वाला और करने वाला मेरी आप रक्षा करें और उस आज्ञा से मेरी बुद्धि विरुद्ध न होय। उसी आज्ञा को मैं जो करने वाला उसी आज्ञा से मैं विरुद्ध कभी न कहूं क्योंकि जो आप की आज्ञा है धर्म रूपी ही है जो उस्से विरुद्धसो अधर्म है उसी आज्ञा को कहूं और करूं भी वैसी आप कृपा करें जब मैं उस आज्ञा को यथावत कहूंगा और करूँगा भी तब उस का मुख्य फल यही है कि आप की प्राप्ति का होना अवतुमामवतुवक्तारम्। यह फिर जो दूसरी वार पाठ है मन्त्र में वह आदर के वास्ते है जैसे कि किसी ने किसी से कहा त्वंग्रामङ्गच्छगच्छ। कहने से क्या जाना जाता है कि तूं ग्राम को शीघ्रही जा वैसे ही दूसरी बार पाठ से आप मेरी अवश्य ही रक्षा करें और

ॐशान्तिश्शान्तिश्शान्तिः। यह जो तीन बार पाठ है उसका अभिप्राय यह है कि अध्यात्मताप जो शरीर में रोगादिकों से होता है दूसरा शत्रु व्याघ्र और सर्पादिकों से जो होता है उसका नाम आधि भौतिक है तीसरा ताप वह है कि वृष्टि का अत्यन्त होना और कुछ भी वृष्टि का न होना अति शीत वा उष्णता का होना उसका नाम आधि दैविक ताप है हम लोगों की यह प्रार्थना है कि जगत के तीनों तापों की निवृत्ति आप की कृपा से होजाय भवानश्शन्नोभवतु। आप हम लोगों के अर्थात् सब संसार के कल्याण करने वाले हो आप से भिन्न कोई भी कल्याण कारक अथवा कल्याण स्वरूप नहीं है इस्से आप से ही प्रार्थना है कि सब जीवों के हृदय में आप ही आप प्रकाशित होवैं इस मन्त्र का संक्षेप से अर्थ पूर्ण होगया और आगे अन्य नामों के अर्थ लिखे जाते हैं॥ सूर्य आत्माजगतस्तस्थुषश्च। यह बचन यजुर्वेद का है जगत नाम प्राणियों का जो चलते फिरते हैं तस्थुष अप्राणि नाम स्थावर जो कि पर्वत वृक्षादिक हैं उन सभों का जो आत्मा होय उसका नाम सूर्य है अतसातत्यगमने। धातु है इस्से आत्मा शब्द सिद्ध हुआ अतति-सर्वत्रव्याप्नोतीत्यात्मा। जो सब जगतमें व्यापक होय उस्का नाम आत्मा है और परश्चासावात्माचपरमात्मा। जो सब जीवात्माओं से श्रेष्ठ होय उसका नाम परमात्मा है ईश्वर नाम सामर्थ्य वाले का है जो सब ईश्वरों में परम श्रेष्ठ होय उस्का नाम परमेश्वर है ब्रह्मादिक देवों में एक से एक ऐश्वर्यवाला है जैसा कि मनुष्यों में एक से एक ऐश्वर्यवाला है वैसे ही

ब्रह्मादिक देवोंमें जो सब से श्रेष्ठ होय और चक्रवर्त्यादिक राजाओं से परम नाम श्रेष्ठ होय उसका नाम परमेश्वर है जो यह सब ईश्वरों का ईश्वर होय और जिसके तुल्य ऐश्वर्यवाला कोई भी न होय उसी का नाम परमेश्वर है षुञ अभिषवे षूङ प्राणिगर्भविमोचने। इन दो धातुओं से सविता शब्द सिद्ध होता है। अभिषवः उत्पादनम् प्राणिगर्भविमोचनञ्च। सुनोति सूतेवा उत्पादयति चराचरञ्जगत्ससविता। जो सब जगत् की उत्पत्ति करै उसका नाम सविता है ॥ दिवुक्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ॥ इस धातु से देव शब्द की सिद्धि होती है। दीव्यतिसदेवः ॥ दीव्यति नाम स्वयं जो प्रकाश स्वरूप होय और जो सब जगत् को प्रकाश कर्त्ता है इस्से परमेश्वर का नाम देव है ॥ क्रीडतेसदेवः क्रीडते नाम अपने आनन्द से अपने स्वरूप में आप ही जो क्रीडा को करै अथवा क्रीडामात्र से अन्य की सहायता के विना जगत् को क्रीडा की नाईं जो रचै वा सब जगत् के क्रीडाओं का आधार जो होय इस्से परमेश्वर का नाम देव है। विजिगीषतेसदेवः विजिगीषते नाम सब का जीतने वाला और आप तो सदा अजेय है जिस्को कोई भी न जीतसके इस्से परमेश्वर का नाम देव है व्यवहारयति सदेवः व्यवहारयति नाम न्याय और अन्याय व्यवहारों का जो ज्ञापकनाम उपदेष्टा और सब व्यवहारों का जो आधार भी है इस्से परमेश्वर का नाम देव है द्योतयतिनाम। सब प्रकाशों का आधार जो अधिकरण है इस्से परमेश्वर का नाम देव है स्तूयतेसदेवः। स्तूयते नाम सब लोगों को स्तुति करने के

योग्य होय और निन्दा के योग्य कभी न होय इससे परमेश्वर का नाम देव है॥ मोदयतिसदेवः। मोदयति नाम आप तो आनन्द स्वरूप ही है औरों को भी आनन्द करावे जिसको दुःख का लेश कभी न होय इससे भी परमेश्वर का नाम देव है॥ माद्यतिसदेवः। माद्यति नाम आपतो हर्ष स्वरूप होय जिस को शोक का लेश कभी न होय औरों को भी हर्ष करावे इससे भी परमेश्वर का नाम देव है॥ स्वापयतिसदेवः। स्वापयति नाम प्रलय में सभों को शयन अव्यक्त में जो करावै इससे परमेश्वर का नाम देव है। कामयते काम्यतेवासदेवः। कामयते काम्यते नाम जिसके सब काम सिद्ध होय और जिसकी प्रीतिकी कामना सब शिष्ट लोग करें इससे भी परमेश्वर का नाम देव है॥ गच्छतिगम्यतेवासदेवः। गच्छति गम्यते नाम जो सभों में गत नाम प्राप्त होय जानने के योग्य होय उसको कहते हैं देव देव नाम परमेश्वर का है देव शब्द के एकादश अर्थ हैं॥ कुबिआच्छादने। इस धातु से कुबेर शब्द सिद्ध होता है जो आकाशादिकों का आच्छादक है उसका नाम कुबेर है इससे परमेश्वर का ना कुबेर है॥ पृथुविस्तारे। इस धातुसे पृथिवी शब्द सिद्धहुआ जो सब आकाशादिकों से विस्तृत है उस का नाम पृथिवी है इससे परमेश्वर का नाम पृथिवी है॥ जलप्रतिघाते। इस धातु से जल शब्द सिद्ध होता है॥ प्रतिहन्तिअव्यक्तपरमाण्वादीनिपरस्परंतज्जलम्। जो अव्यक्त से व्यक्त को और एक परमाणु से दूसरे परमाणु को अन्योन्य संयोग और वियोग के वास्ते जो हनन और प्रतिहनन करने वाला होय

उसका नाम जल है इससे परमेश्वरका नाम जल है हनन नाम एक से एक को मिलाना प्रतिहनन नाम दूसरे से तीसरे को मिलाना तीसरे को चौथे से मिलाना जगत की उत्पत्ति समय में सभों का संयोग करने वाला और प्रलय समय में वियोग का करने वाला वैसा परमेश्वर ही है दूसरा कोई भी नहीं ॥ जनीप्रादुर्भावे । ला आदाने इन धातुओं से भी जल शब्द सिद्ध होता है जनयति नाम उत्पादयतिसर्वञ्जगत् तज्जम् लाति-गृण्हातिनाम आदत्ते चराचरञ्जगत्तल्लम् जञ्चतलञ्चतज्ज-लम् ॥ ब्रह्म ज शब्द से सभों का जनक और ल शब्द से सभों का धारण करने वाला उसका नाम जल, जलनाम परमेश्वर का है काशृदीप्तौ । उस्से आकाश शब्द सिद्ध होता है ॥ आस-मन्तात सर्वतः सर्वञ्जगत्प्रकाशतेस आकाशः । जो परमेश्वर सब जगह से और सब प्रकार से सभों को प्रकाशता है इस्से परमेश्वर का नाम आकाश है ॥ अदभक्षणे । इस्से अन्न शब्द सिद्ध होता है ॥ अत्तिभक्षयतिचराचरंजगत्तदन्नम् । जो चरा-चर जगत् का भक्षक है और काल को भी खा के पचा लेता है उसका नाम अन्न है इस में प्रमाण है । अद्यतेऽत्तिचभूतानि तस्मादन्नन्तदुच्यते । यह तैत्तिरीयोपनिषद का बचन है ॥ अह-मन्नमहमन्नमहमन्नम् अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः । यह भी उसी उपनिषद् में है ॥ अन्नमत्तीत्यान्नादः । अन्न शब्द से चराचर जगत् का जो ग्राहक उस्का नाम अन्नादहै यह बचन परमेश्वर ही का है क्योंकि मैं अन्न हूं मैं ही अन्नाद हूं तीन वार इस श्रुति में पाठ आदर के वास्ते हैं जैसे कि त्वंग्रामङ्गच्छ

गच्छगच्छ। इस्से क्या लिया जाता है कि शीघ्र ही तूं ग्राम को जा और कहीं भी ठहरना नहीं इस प्रकार के व्यवहारों में जो बहुत वार का कहना है सो जैसे अनर्थक नहीं वैसे इस में भी अनर्थक नहीं इस विषय में व्यास जी का सूत्र भी प्रमाण है॥ अत्ताचराचरग्रहणात्। अत्ता नाम खाने वाले का है उसी का नाम आनन्द है चराचर नाम जड़ और चेतन सब जगत् उस के ग्रहण करने से परमेश्वर का नाम अत्ता और आनन्द है जैसे कि गूलर के फल में कृमि उत्पन्न हो के उसी में रहते हैं और उसी में नाश हो जाते हैं इस्से परमेश्वर का नाम अत्ता अन्न और आनन्द है वस निवासे इस धातु से वसु शब्द सिद्ध होता है॥ वसन्तिसर्वाणि भूतानियस्मिन्सवसुः। अथवा सर्वेषुभूतेषुयोवसतिसवसुः। सब आकाशादिक भूत जिस में रहते हैं उस का नाम वसु है अथवा सब भूतों में जो वास कर्ता है उस्का नाम वसु है इस्से वसु परमेश्वर का नाम है॥ रुदिरअश्रुविमोचने। रुदेर्णिलापश्च इस धातु से और सूत्र से रुद्र शब्द सिद्ध होता है॥ रोदयत्यन्यायकारिणोजनान्सरुद्रः। रोवाता है दुष्ट कर्म करने वाले जीवों को जो उस का नाम रुद्र है इस में यह श्रुति का भी प्रमाण है। यन्मनसाध्ययति तद्वाचावदति यद्वाचावदति तत्कर्मणाकरोति यत्कर्मणाकरोति तदभिसम्पद्यते। यह यजुर्वेद ब्राह्मण की श्रुति है इसका यह अर्थ है कि जो जीव मन से बिचारता है वही बचन से कहता है उसी को कर्त्ता है और जिसको कर्त्ता है उसी को ही प्राप्त होता है ऐसी

परमेश्वर को आज्ञा है कि जो जैसा कर्म करै सो वैसा ही फल पावै इस आज्ञा को कहने वाला परमेश्वर है उसकी आज्ञा सत्य ही है इससे जो जैसा करता है सो वैसा ही प्राप्त होता है इससे क्या आया कि दुष्ट कर्मकारी जितने पुरुष हैं वे सब दुष्ट कर्मों के फल प्राप्त होके रोदनही कर्ते है इस कारण से परमेश्वर का नाम रुद्र है नारायण भी नाम परमेश्वर का है ॥ आपो नाराइतिप्रोक्ता आपोवैनरसूनवः। तायदस्यायनंपूर्वन्तेननारायणःस्मृतः ॥ यह श्लोक मनुस्मृति का है आप नाम जलका है और नारसंज्ञा भी जल की है और वे प्राण जलसंज्ञक हैं वे सब प्राण जिसका अयन नाम निवासस्थान है इस्से परमेश्वर का नाम नारायण है सूर्य का अर्थ तो कर दिया है ॥ चदि आल्हादे। इस धातु से चन्द्रशब्द सिद्ध होता है चन्दतिसोयश्चन्द्रः जो आल्हाद नाम आनन्द स्वरूप होय और जो मुक्त पुरुष जिस को प्राप्त हो के सदा आनन्द स्वरूपही रहै उस्को दुःख का लेश कभी न होय इस्से परमेश्वर का नाम चन्द्र है ॥ मगिधातुर्गत्यर्थः। मङ्गेरलच् इस्से मङ्गल शब्द सिद्ध हुआ ॥ मङ्गतिसोयंमङ्गलः। जो आप तो मङ्गल स्वरूप ही हैं और सब जीवों के मङ्गल का वही कारण है इस्से परमेश्वर का नाम मङ्गल है ॥ बुध अवगमने। इस धातु से बुध शब्द सिद्ध होता है ॥ बुध्यतेसोयंबुधः। जो आप तो बोध स्वरूप होय और सब जीवों के बोधों का कारण होय इस्से परमेश्वर का नाम बुध है बृहस्पति का अर्थ प्रथम कर दिया है ॥ ईशुचिरपूतीभावे। इस

धातु से शुक्र शब्द सिद्ध होता है शुचिर्नाम। अत्यन्त पवित्र का जो आप तो अत्यन्त पवित्र होय औरों के पवित्रता का कारण होय इस्से परमेश्वर का नाम शुक्र है चरगतिभक्षणयोः। इस धातु से शनैस् अव्यय पूर्व पद से शनैश्चर शब्द सिद्ध होता है जो अत्यन्त धैर्यवान् होय और सब संसार के धैर्य का कारण होय इस्से परमेश्वर का नाम शनैश्चर है रहत्यागे। इस धातु से राहु शब्द सिद्ध होता है जो सबसे एकान्त स्वरूप होय जिसमें कोई भी मिला न होय और सब त्यागियों के त्याग का हेतु होय इस्से परमेश्वर का नाम राहु है। कित निवासेरोगापनयनेच। इस्से केतु शब्द सिद्ध होता है जो सब जगत् का निवासस्थान होय और सब रोगों से रहित होय मुमुक्षुओं के जन्म मरणादिक रोगों के नाश का हेतु होय इस्से परमेश्वर का नाम केतु है। यजदेवपूजासङ्गतिकरणदानेषु इस धातु से यज्ञ शब्द सिद्ध होता है॥ इज्यतेसर्वैर्ब्रह्मादिभिर्जनैस्सयज्ञः। सब ब्रह्मादिक जिसकी पूजा कर्ते हैं उसका नाम यज्ञ है॥ यज्ञोवैविष्णुरितिश्रुतेः यज्ञ का नाम विष्णु है और विष्णु नाम है व्यापक का इस श्रुति से भी परमेश्वर का नाम यज्ञ है॥ हुदानादनयोः। इस धातु से होम शब्द सिद्ध होता है। हूयतेसायंहोमः। जो दान नाम देने के योग्य है और अदन नाम ग्रहण करने योग्य है उसका नाम होम है सब दानों से परमेश्वर का जो दान नाम उपदेश का करना और सब ग्रहणों से जो परमेश्वर का ग्रहण नाम परमेश्वर में दृढ़ निश्चय का करना इस दान से वा ग्रहण से कोई भी उत्तमदान

वा ग्रहण नहीं है इस्से परमेश्वर का नाम होम है ॥ बन्धबन्धने इस धातु से बन्धु शब्द सिद्ध होता है जिसने सब लोक लोकांतर अपने२ स्थान में प्रबन्ध करके यथावत् रक्खे हैं और अपने २ परिधि के ऊपर सब लोक भ्रमण करें इस प्रबन्ध के करने से किसी से किसी का मिलना न होय जैसे कि बन्धु२ का सहाय कारी होता है वैसे ही सब पृथिव्यादिकों का धारण करना और सब पदार्थों का रचन करना इससे परमेश्वर का नाम बन्धु है पा पाने पारक्षणे । इन दो धातुओं से पिता शब्द सिद्ध होता है जैसे कि पिता अपनी प्रजा के ऊपर कृपा और प्रीति को कर्ता ही है तैसे परमेश्वर भी सब जगत के ऊपर कृपा और प्रीति कर्ता है इस्से परमेश्वर का नाम सब जगत का पिता है पितॄणांपितापितामहः । जितने जगत में पिता लोग हैं उन सभों के पिता होने से परमेश्वर का नाम पितामह है ॥ पिता महानांपिता प्रपितामहः । जगत में जितने पिताओं के पिता हैं उन सभों के पिता के होने से परमेश्वर का नाम प्रपितामह है ॥ मा माने माङ्माने शब्देच । इन दो धातुओं से माता शब्द सिद्ध होता है जैसे कि माता अपनी प्रजा का मान कर्त्री है और लाड़न कर्त्री है तैसे ही सब जगत का मान और लाड़न अत्यन्त कृपा और प्रीति करने से परमेश्वर का नाम माता है ॥ श्रोत्रस्यश्रोत्रंमनसोमनो यद्वाचोहवाचंसउप्राणस्यप्राणः । चक्षुसश्चक्षुरतिमुच्यधीराः प्रेत्याऽस्माल्लोकादमृताभवन्ति ॥ यह केनोपनिषद् का वचन है इसका यह अभिप्राय है कि जैसे श्रोत्रादिक अपने २ विषय को ग्रहण कर्ते हैं तथा सब श्रोत्रादिकों

का और श्रोतादिक विषयों को उनकी क्रिया को भी यथावत् जानता है इस्से परमेश्वर का नाम श्रोत्रका श्रोत्र है तथा मन का मन वाणी की वाणी प्राण का प्राण और चक्षु का चक्षु इस्से परमेश्वर के नाम श्रोत्र मन वाणी प्राण और चक्षु ये सब हैं बोधयन् बुद्धिर्भवति चेतयन्‌चित्तम्भवति। नाम सब को चेताने वाले हैं इस्से परमेश्वर,का नामचित्त और बुद्धि है॥ अहंकुर्वन्न-हङ्कारोभवति ।नाम अहङ्करोतीत्यहङ्कारः जो अव्याकृतादिक सब जगत का मैंहीं कर्ता हूं ऐसा जो ज्ञान का होना इस्से परमेश्वर का नाम अहङ्कार है ॥ जीवप्राणधारणे। इस धातु से जीव शब्द सिद्ध होता है ॥ जीवयतिसर्वान्‌प्राणिनःसजीवः। जो सब जीव और प्राणों का जीवन् धारण करने वाला है इस्से परमेश्वर का नाम जीव है ॥ आप्लृव्याप्तौ । इस धातु से अप् शब्द सिद्ध होता है सब जगत में व्यापक होने से परमेश्वर का नाम आप है ॥ जनीप्रादुर्भावे इस्से अज शब्द सिद्ध होता है॥नजायतइत्यजः। जिसका जन्म कभी न हुआ न है और न होगा इस्से परमेश्वर का नाम अज है ॥ सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म । यह तैत्तिरोयोपनिषद् का वचन है ॥ अस्तीतिसत् सतेहितंसत्यम् जो सब दिन रहे जिसका नाश कभो न होय ॥ इस्से परमेश्वर का नाम सत्य स्वरूप है और ज्ञान स्वरूप होने से परमेश्वर का नाम ज्ञान है जिसका अन्त नाम सीमा कभी नहीं अर्थात् देश काल और वस्तु का परिच्छेद नहीं जैसे कि मध्यदेश में दक्षिण देश नहीं दक्षिण देश में मध्यदेश नहीं भूतकाल में भविष्यत्काल नहीं और दोनों में वर्तमान काल नहीं तैसे ही पृथिवी आकाश नहीं

और आकाश पृथिवी नहीं ऐसा भेद परमेश्वर में नहीं है ऐसा ब्रह्महीं है किंतु सब देशों सब कालों और सब वस्तुओं में अखण्ड एक रस के होने से और कोई भी जिसका अन्त न लेसके इस्से परमेश्वर का नाम अनन्त है टुनदिसमृद्धौ। इस्से आनन्द शब्द सिद्ध होता है जो सब समृद्धिमान् सदा आनन्द स्वरूप और मुमुक्षु मुक्तों को जिस की प्राप्ति से सब समृद्धि और नित्यानन्द के होने से परमेश्वर का नाम आनन्द है॥ सत् शब्द का अर्थ सत्य शब्द के व्याख्यान में जान लेना और ज्ञान शब्द के व्याख्यान से चित् शब्द का अर्थ जान लेना इस्से परमेश्वर को सच्चिदानन्द स्वरूप कहते हैं॥ शुन्धशुद्धौ। इस्से शुद्ध शब्द सिद्ध होता है जो आप तो शुद्ध होय जिसको कुछ मलीनता के संयोग का लेश कभी न होय और सब शुद्धियों के हेतु के होने से परमेश्वर का नाम शुद्ध है बुध अवगमने। इस धातु से बुद्ध शब्द सिद्ध होता है जो सब बोधों का परमावधि नाम परम सीमा के होने से परमेश्वर का नाम बुद्ध है॥ मुच्लृमोचने। इस धातु से मुक्त शब्द सिद्ध होता है जो आप तो सदा मुक्त स्वरूप होय और सब मुक्त होने वालों के मुक्ति के साक्षात् हेतु होने से परमेश्वर का नाम मुक्त है॥ सदकारणवन्नित्यम्। जो सत् स्वरूप होय और कारण जिसका कोई भी नहीं इस्से परमेश्वर का नाम नित्य है ये सब मिलके ऐसा एक नाम हो जायगा॥ नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः। जो स्वभाव ही से नित्य शुद्ध बुद्ध और मुक्त के होने से परमेश्वर का नाम नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है॥ डुकृञ् करणे। इस

धातु से निराकार शब्द सिद्ध होता है ॥ निर्गतः आकारोयस्मा-त्सनिराकारः। जिसका आकार कोई भी नहीं इस्से परमेश्वर का नाम निराकार है ॥ अञ्जनं मायाऽविद्ययोर्नाम निर्गतमञ्ज-नंयस्मात् सनिरंजनः। माया नाम छल और कपट का है क्यों कि यह पुरुष मायावी है इस्से क्या जाना जाता है कि यह छली और कपटी है अविद्या अज्ञान का नाम है जिस को माया और अविद्या का लेश मात्र सम्बन्ध कभी न हुआ न है और न होगा इस्से परमेश्वर का नाम निरञ्जन है ॥ गणसंख्याने। इस धातु से गण शब्द सिद्ध होता है इसके आगे ईश शब्द रखने से गणेश शब्द सिद्ध होता है ॥ गणानांसमूहानांजगतामीशस्स-गणेशः। जो सब गणों का नाम संघातों का अर्थात् सब जगतों का ईश नाम स्वामी होने से परमेश्वर का नाम गणेश है ॥ विश्वस्यईश्वरः विश्वेश्वरः। विश्वनाम सब जगत का ईश्वर होने से परमेश्वर का नाम विश्वेश्वर है ॥ कूटेतिष्ठतीतिकूट-स्थः। जिसमें सब व्यवहार होय आप सब व्यवहारों में व्याप्त होय और सब व्यवहार का आधार भी होय परन्तु जिसके स्वरूप में व्यवहार का लेश मात्र भी विकार न होने से परमे-श्वर का नाम कूटस्थ है जितने देव शब्द के अर्थ लिखे हैं वेही अर्थ देवी शब्द के जान लेना चाहिये ॥ शक्लृशक्तौ। शक्नोति-ययासाशक्तिः जो सब पदार्थों को रचने का सामर्थ्य जिसमें है इस्से परमेश्वर का नाम शक्ति है ॥ लक्षदर्शनाङ्कनयोः। इस्से लक्ष्मी शब्द सिद्ध होता है लक्षयति नाम दर्शयति चराचरंजगत् सालक्ष्मीः जो सब जगत् को उत्पन्न करके देखावै उसका नाम लक्ष्मी है ॥ अङ्कयति चिन्हयति वा चराचरंजगत्सालक्ष्मीः। जो

सब जगत के चिन्हों को अर्थात् नेत्र नासिकादिक और पुष्प पत्र मूलादिक एक से एक विलक्षण जितने चिन्ह हैं उनके रचने और प्रकाशक के होनेसे परमेश्वर का नाम लक्ष्मीहै ॥लक्ष्यतेवेदादिभिश्शास्त्रैर्ज्ञानिभिश्चसापिलक्ष्मीः। वेदादिक शास्त्र और ज्ञानियों का लक्ष्यनाम दर्शन के योग्य होने से परमेश्वर का नाम लक्ष्मी है ॥ सृगतौ । इस्से सरसशब्द से मतुप् और ङीप् प्रत्यय के करने से सरस्वती शब्द सिद्ध होता है सरोनाम विज्ञानम् विज्ञानंनाम विविधंयत्ज्ञानम् तत्विज्ञानम् सरस् शब्द विज्ञान का वाचक है विविधनाम नानाप्रकार शब्द शब्दों का प्रयोग और शब्दार्थ सम्बन्धों का यथावत् जो ज्ञान उसका नाम विज्ञान है ॥ सरोनाम विज्ञानंविद्यतेयस्याः सासरस्वती। सर नाम विज्ञान सो अखण्डित विद्यमान है जिसको उसका नाम सरस्वती है वैसा परमेश्वर ही है इस्से सरस्वती नाम परमेश्वर का है ॥ सर्वाःशक्तयोविद्यन्तेयस्यससर्वशक्तिमान्। जिसको सब शक्ति नाम सब सामर्थ्य विद्यमान होय उसका नाम सर्व शक्तिमान् है अर्थात् जो किसी का लेशमात्र सामर्थ्य का आश्रय न लेवै और सब जगत उसका आश्रय कर्ता है इस्से परमेश्वर का नाम सर्व शक्तिमान् है धर्म न्याय और पक्षपात का त्याग ये तीन नाम एक अर्थ के वाचक हैं ॥ प्रमाणैरर्थपरीक्षणंन्यायः । यह न्यायशास्त्र सूत्रों के ऊपर वात्स्यायन मुनिकृत भाष्य का बचन है जो प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से सत्य सत्य सिद्ध होय उसका नाम न्याय है ॥ न्यायङ्कर्तुंशीलमस्यसोऽयंन्यायकारी। जिसका न्याय करने ही का

स्वभाव होय और अन्याय करने का लेशमात्र सम्बन्ध कभी न होय ऐसा परमेश्वर ही है इस्से परमेश्वर का नाम न्यायकारी है दय दान गति रक्षण हिंसादानेषु । इस धातु से दया शब्द सिद्ध होता है ॥ दय्यतेयासादया । दान नाम अभय का देना गतिर्नाम यथावत् गुण दोषों का विज्ञान रक्षण नाम है सब जगत की रक्षा का करना हिंसा नाम दुष्ट कर्मकारियों को दण्ड का होना आदान नाम सब जगत के ऊपर वात्सल्य से कृपा का करना इसका नाम दया है ॥ दयाविद्यतेयस्यसदयालुः । उस दया के नित्य विद्यमान होने से परमेश्वर का नाम दयालु है ॥ सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् । यह छान्दोग्योपनिषद् का बचन है इस्का अभिप्राय यह है कि हे सोम्य हे श्वेतकेतो श्वेतकेतु के जो पिता उद्दालक वे उस्से कहते हैं अग्रे नाम सृष्टि जब उत्पन्न नहीं भई थी तब एक अद्वितीय ब्रह्म परमेश्वर ही था और कोई भी नहीं था वैसा कोई परमेश्वर से भिन्न न हुआ न है और न होगा सदेव नाम जिस्का नाश किसी काल में कभी न होय ॥ इस्से श्रुति में सदेव यह बचन का पाठ है ॥ एकम् एव और अद्वितीयम् ये तीनों शब्दों से यह अर्थ जाना जाता है कि ॥ सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यंब्रह्मास्तीति । सजातीय भेद यह है कि मनुष्य से भिन्न दूसरे मनुष्यों का होना विजातीय भेद यह है कि मनुष्य से भिन्न विजातीय पाषाण और स्वगत भेद यह है कि जैसे मनुष्य में नाक कान सिर पांव एक से एक भिन्न अवयव हैं तैसे ही परमेश्वर में तीन प्रकार के भेद नहीं जब सजातीय परमेश्वर से भिन्न कोई

दूसरा वैसा ही परमेश्वर होय तब तो सजातीय भेद होय ऐसा दूसरा कोई परमेश्वर नहीं है इस्से परमेश्वर में सजातीय भेद नहीं है जैसे परमेश्वर का न्यायकारित्वादि गुण स्वभाविक हैं तैसा ही परमेश्वर से भिन्न अन्यायकारित्वादि विशिष्ट गुणवान् दूसरा विरुद्ध स्वभाव परमेश्वर होय तब तो परमेश्वर में विजतीय भेद आसकैं जैसा कि खुदा के विरुद्ध शैतान ऐसा कभी नहीं इस्से परमेश्वर में विजातीय परिच्छेद नहीं परमेश्वर निराकार और निरवयव है वैसे ही कोई प्रकार का भेद नहीं है इस्से परमेश्वर में स्वगत परिच्छेद नहीं इस्से परमेश्वर का नाम अद्वितीय है यही अद्वैत शब्द का अर्थ है॥ द्वयोर्भावोद्विताद्वितैवद्वैतम् नविद्यतेद्वैतयस्मिन्यस्यवातदद्वैतम्। दोनों विद्यमान ईश्वरों का जो होना उस्का नाम द्विता द्विता जिसको कहते हैं उसी का नाम द्वैत है नहीं है विद्यमान द्वैत जिस्में जिसको वा उसका नाम अद्वैत है अद्वितीय और अद्वैत परमेश्वर ही का नाम है॥ निर्गताः जन्मादयः अविद्यादयः सत्वादयः गुणाः यस्मात् सनिर्गुणः परमेश्वरः। जगत् के जन्मादिक अविद्यादिक और सत्वादिक गुणों से भिन्न हैं अर्थात् जगत के जितने गुण हैं वे परमेश्वर में लेश मात्र सम्बन्ध से भी नहीं रहते इस्से परमेश्वर का नाम निर्गुण है सच्चिनन्दादिगुणैः सहवर्तमानत्वात्सगुणः अपने नित्य स्वाभाविक सच्चिदानन्दादिक गुणों से सदा सहवर्तमान होने से परमेश्वर का नाम सगुण है कोई भी संसार में ऐसी वस्तु नहीं है जो कि केवल निर्गुण अथवा सगुण होय जैसे

कि पृथिवी में गन्धादिक गुणों के योग होने से सगुण है और वही पृथिवी चेतन और आकाशादिकों के गुणों से रहित होने से निर्गुण भी है वैसे ही अपने सर्वज्ञादिक गुणोंसे सदा सहित होने से परमेश्वर का नाम सगुण है और उत्पत्ति स्थिति नाश जड़त्वादिक जगत के गुणों से रहित होने से परमेश्वर निर्गुण भी है वैसे सब जगहों में विचार कर लेना॥ सर्वजगतान्तर्यन्तुं शीलमस्यसोऽन्तर्यामी। जो सब जगत के भीतर बाहर और मध्य में सर्वत्र व्याप्त होके सब को जानते हैं और सब जगत को नियम में रखने से परमेश्वर का नाम अन्तर्यामी है न्यायकारी नाम के अर्थ में शब्द की व्याख्या करदी है उस्से जान लेना धर्मेण राजते सधर्मराजः अथवा धर्मराजयतिप्रकाशयति सधर्मराजः। धर्म न्याय का और न्याय पक्षपात के त्याग का नाम है तिस धर्म से सदा प्रकाशमान होय अथवा सदा धर्म का प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम धर्मराज है॥ सर्वंजगत्करोतीतिसर्वजगत्कर्त्ता सो सब जगत् का करने वाला होने से परमेश्वर का नाम सर्व जगत् कर्त्ता है॥ निर्गतं भयंयस्मात्सनिर्भयः। जिसको किसी से किसी प्रकार का भय नहीं होता है इस्से परमेश्वर का नाम निर्भय है॥ नविद्यते-आदिः कारणंयस्यसः अनादिः। जिसका कारण कोई भी नहीं और अपने तो सब जगत का आदि कारण है इस्से परमेश्वर का नाम अनादि है॥ अणोरणीयान्महतोमहीयान्। यह मुण्डकोपनिषद् का वचन है जो सब सूक्ष्म पदार्थों से अत्यन्त सूक्ष्म के होने से परमेश्वर का नाम सूक्ष्म है और जो सब

बड़ों में अत्यन्त बड़ा है इससे परमेश्वर का नाम महान् है सब कल्याण गुणों से सदा युक्त रहने से परमेश्वर का नाम शिव है ॥ भगोविद्यतेयस्यसभगवान् । जो अनन्त ज्ञान अनन्त वैराग्यादिक नित्य गुणों से युक्त होने से परमेश्वर का नाम भगवान् है ॥ मानयतिचराचरञ्जगत् । अथवा सर्वैर्वेदादिभिश्शास्त्रैः शिष्टैश्चमन्यतेयः समनुः । जो सब जगत का मान करै अथवा सब वेदादिक शास्त्र और शिष्टलोक जिसको अत्यन्त मानैं इस्से परमेश्वर का नाम मनु है ॥ चिन्तितुंयोग्यश्चिन्त्यःनचिन्त्योऽचिन्त्यः । जो विषयासक्त पुरुषों से चिन्तने में नाम सम्यक् जानने में नहीं आते इस्से परमेश्वर का नाम अचिन्त्य है परन्तु ऐसा ज्ञान ज्ञानियों को होता है कि सर्व व्यापक जो परमेश्वर सो हृदय देश में भी है उस हृदयस्थ व्यापक परमेश्वर को जानने से सब अनन्त जो परमेश्वर उस्का ज्ञान निश्चित होता है जैसा मेरे हृदय में परमेश्वर है वैसा ही सर्वत्र है जैसे कि समुद्र के जलका एक विन्दु जीभ के ऊपर रखने से उसके स्वादादिकगुणों के जाननसे सब समुद्र के जल का ज्ञान होजाता है वैसे ही परमेश्वर का दृढ़ ज्ञान ज्ञानियों को होजाता है ॥ प्रमातुंयोग्यः प्रमेयः नप्रमेयः अप्रमेयः । जो परिमाणों से जिसका परिमाण तौलन नहीं होता इतना ही परमेश्वर में सामर्थ्य है ऐसा कोई भी नहीं कह सक्ता और न जान सक्ता है इस्से परमेश्वर का नाम अप्रमेय है ॥ प्रमदितुंनाम उन्मदितुंशीलमस्यसप्रमादी नप्रमादी अप्रमादी । जिस को प्रमाद नाम उन्मत्तता के लेशमात्र का भी सम्बन्ध नहीं है

इस्से परमेश्वर का नाम अप्रमादी है ॥ विश्वंविभर्तीतिविश्वंभरः जो विश्व का धारण और पोषण का कारण होने से परमेश्वर का नाम विश्वम्भर है कलसंख्याने । इस धातु से काल शब्द सिद्ध होता है ॥ कलयतिसर्वञ्जगत् सकालः जो सब जगत की संख्या और परिमाण को आदि अन्त मध्य को यथावत् जानने से परमेश्वर का नाम काल है उसका काल कोई भी नहीं है और वह काल का भी काल है ॥ प्रीञ्तर्पणेकान्तौच । इस धातु से प्रिय शब्द सिद्ध होता है ॥ प्रीणातिसर्वान्धर्मात्मनः । अथवा प्रीयतेधर्मात्मभिः सप्रियः । जो सब शिष्टों को और मुमुक्षुओं को अपने आनन्द से प्रसन्न करदे अथवा जिसको प्राप्त होके सब जीव प्रसन्न हो जांय इस से परमेश्वर का नाम प्रिय है शिव नाम कल्याण का है जो आप तो कल्याण स्वरूप होय और जिसको प्राप्त होके जीव भी कल्याण स्वरूप होय इस्से परमेश्वर का नाम शिवशंकर है इतने सौ १०० नाम परमेश्वर के विषय में लिख दिये परन्तु इन से भिन्नभी बहुत अनन्त नाम हैं उन का इसी प्रकार से सज्जन लोक विचार कर लेवैं कुछ थोड़ा सा परमेश्वर के बिषय में मैंने लिखा है किन्तु वेदादिक शास्त्रों में परमेश्वर के बिषय में जितना ज्ञान लिखा है उसके आगे मेरा लिखना ऐसा है कि समुद्र के आगे एक बिन्दु भी नहीं और जो यह लिखा है सो केवल उन बेदादिक शास्त्रों के पढ़ने पढ़ाने की प्रवृत्ति के लिये लिखा है जब सब लोक उन शास्त्रों के पठन पाठन में प्रवृत्त होंगे और जब उन शास्त्रों को ऋषि मुनियों के व्याख्यान की रीति से

पढ़के विचारेंगे तब सब लोगोंको परमेश्वर और अन्य पदार्थों का भी यथावत् ज्ञान होगा अन्यथा नहीं इस प्रकरण का नाम मङ्गलाचरण है ऐसा कोई कहे कि मङ्गलाचरण आदि मध्य और अन्त में किया जाता है ऐसा आप भी करेंगे वा नहीं ऐसा हम को करना योग्य नहीं क्योंकि वह बात मिथ्या है आदि मध्य और अन्त में जो मङ्गल करेगा तो आदि और मध्य के बीच में अमङ्गल ही को लिखेगा इससे यह बात मिथ्या है किन्तु शिष्टों को तो सदा मङ्गल ही का आचरण करना चाहिये और अमङ्गल का कभी नहीं इसमें कपिल ऋषि का प्रमाण भी है ॥ मङ्गाचरणंशिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुति-तश्चेति । इस सूत्र का यह अभिप्राय है कि मङ्गल नाम सत्य सत्य धर्म जो ईश्वर की आज्ञा उसका यथावत् आचरण उस का नाम मङ्गलाचरण है उस मङ्गलाचरण के करने वाले उन का नाम शिष्ट है उस शिष्टाचार के हेतु से मङ्गल ही का आचरण करना चाहिये और जो मङ्गल का आचरण करने वाले हैं उनको मङ्गल रूप ही फल होता है अमङ्गल कभी नहीं और श्रुतिसे यही आता है कि मङ्गल ही का आचरण करना चाहिये यान्यनवद्यानिकर्माणि तानिसेवितव्यानिनोइतराणीति । इस का यह अभिप्राय है कि अनवद्य नाम श्रेष्ठ ही का है धर्म रूप ही मङ्गल कर्म करना चाहिये अधर्म रूप अमङ्गल कर्म कभी न करना चाहिये इससे क्या आया कि आदि अंत और मध्य ही में मङ्गलाचरण करना चाहिये यह बात मिथ्या जानी गई कि सदा मङ्गलाचरण ही करना चाहिये अमङ्गल का कभी नहीं

और आज कल के पण्डित लोक जो कि मिथ्या ग्रंथ रचते हैं सत्यशास्त्रों के ऊपर मिथ्या टीका रचते हैं उनके आदि में जो श्रीगणेशायनमः शिवायनमः सीतारामाभ्यान्नमः दुर्गायैनमः राधाकृष्णाभ्यांनमः वटुकायनमः श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यान्नमः हनुमतेनमः। भैरवायनमः॥ इत्यादिक लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान् मिथ्या ही जान लेवें क्योंकि वेदों में और ऋषि मुनियों के किये ग्रंथों में किसी स्थान में भी ऐसे लेख देखने में नहीं आते हैं ऋषि लोक अथ शब्द का और उंकार शब्द का पाठ आदि में कर्ते हैं सो अधिकारार्थ नाम इतनी विद्या होने से इस शास्त्र पढ़ने का अधिकारी होता है वा आनन्तर्यार्थ आनन्तयार्थ नाम एक शास्त्र को करके उसके पीछे दूसरे का जो रचना अथवा एक कर्म करके दूसरे कर्म को करना इस वास्ते उंकार और अथ शब्द का पाठ ऋषि मुनि लोग कर्ते हैं उंकार वेदेषु अथकारंभाष्येषु यह कात्यायन मुनिकृतप्राति-शाख्य का वचन है वैसे ही मैं दिखाता हूं अथ शब्दानुशासनम् अथेत्ययंशब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यजे यह व्याकरण महाभाष्य के प्रारम्भ का वचन है॥ अथातोधर्मजिज्ञासा। यह भी मीमांसा शास्त्र के आरम्भ का वचन है॥ अथातोधर्मव्याख्या स्यामः। यह वैशेषिक दर्शन शास्त्र का प्रथम सूत्र है॥ प्रमाण प्रमेयेत्यादि॥ यह न्यायदर्शन शास्त्र के आरम्भ का बचन है॥ अथयोगानुशासनम् यह पातञ्जलदर्शन के प्रारम्भ का वचन है अथत्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः। यह साङ्ख्य-दर्शन शास्त्र के आरम्भ का वचन है॥ अथातोब्रह्मजिज्ञासा।

यह वेदान्त शास्त्र के प्रारम्भ का वचन है ॥ ओमित्येतदक्षर-मुद्गीथमुपासीत। यह छान्दोग्य उपनिषद् के प्रारम्भ का वचन है ॥ ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वन्तस्योपव्याख्यानम्। यह माण्डूक्यउपनिषद् का वचन है इत्यादिक और भी जानलेने देखना चाहिये कि ऋषि लोगों ने और बेदों में भी अथ और ओंकार अग्न्यादिक भी चारों वेदों के आरम्भ में अग्नि तथा इट् और शम् ये शब्द देखने में आते हैं परन्तु श्रीगणेशायनमः इत्यादिक वचन किसी वेद में और ऋषियों के ग्रन्थों में भी नहीं देखने में आते हैं इस्से क्या जाना जाता है कि वेदादिक शास्त्रों से और ऋषि मुनियों के किये ग्रंथों से भी यह नवीन लोगों का प्रमाद ही है ऐसा ही शिष्ट लोगों को जानना चाहिये और वैदिक लोक हरिःओम् इस शब्द का पठन पाठन के आरम्भ में उच्चारण कर्ते हैं यह सत्य है वा नहीं। यह भी मिथ्या ही है क्योंकि ओंकार का तो ऋषि ग्रंथों के प्रारम्भ में पाठ देखने में आता है परन्तु हरिः शब्द का पाठ कहीं देखने में नहीं आता है इससे हरिः शब्द का पाठ तो मिथ्या ही है पूर्वोक्त प्रातिशाख्य के प्रमाण से ओंकार तो उचित ही है यह प्रकरण तो पूर्ण हो गया इससे आगे शिक्षा के विषय में लिखा जायगा ॥ इति श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविरचिते प्रथमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

अथशिक्षांवक्ष्यामः । मातृमान्पितृमानाचार्यवान्पुरुषोवेद इतिश्रुतिः। प्रथम तो सब जनों को माता से शिक्षा होनी उचित है जन्म से लेके तीन वर्ष अथवा पांच वर्ष पर्यंत अपने

संतानों को सुशिक्षा अवश्य करै प्रथम तो सुश्रुत और चरक जो वैद्यक शास्त्र ग्रंथ हैं उनकी रीति से शरीर के स्वभाव के अनुकूल दुग्धादिकों में औषधों को मिला के वा संस्कार करके पुत्रों को और कन्याओं को पिलावे अथवा जो स्त्री उनको अपना दूध पिलावै सोई स्त्री उन श्रेष्ठ पदार्थों का भोजन करै जिससे कि उसी के दूध में उनका अंश आ जायगा जिससे बालकों के भी शरीर की पुष्टि बल और बुद्धि वृद्धि होय और शुद्ध स्थान में उनको रखना चाहिये शुद्ध सुगन्ध देशमें बालकों को भ्रमण कराना चाहिये जब उनका जन्म होय उसी दिन अथवा दूसरे तीसरे दिन धनाढ्य लोग और राजा लोग दासी वा अन्य स्त्री की परीक्षा करके कि उसके शरीरमें रोग न होय और दूध में भी रोग न होय उसके पास बालक को रख देवैं और वहां स्त्री उनका पालन करै परन्तु माता उस स्त्री के और बालकों के भी शिक्षा के ऊपर दृष्टि रक्खै और जो असमर्थ लोग हैं जिनको दासी वा अन्यस्त्री रखने का सामर्थ न होयतो छेरी अथवा गाय वा भैंसोंकेदूधसे बालकों का पोषण करैं जहां छेरी आदिकों का अभाव होय वहां जैसा होसके वैसा करैं और अञ्जनादिकों से नेत्रादिकों को भी पुष्टि से रोग निवारणार्थ करैं परन्तु बालकों की जो माता है सो उन्हों को दूध कभी न देवै स्त्रीके दूध देने से स्त्री का शरीर निर्बल और क्षीण हो जायगा जो स्त्री प्रसूत हुई वह भी अपने शरीर की रक्षा के लिये श्रेष्ठ भोजनादिक करै जो कि औषधवत् होय जिस्से फिर भी युवावस्था की नाईं उसका शरीर होजाय और दूध के रक्षा

के वास्ते उक्त वैद्यकशास्त्र में जैसा वह औषध सो यथावत् संपादन करके स्तन के ऊपर लेपन करके उस मार्ग के रोक देवै जिस्से कि दूध न निकल जाय इस्से स्त्री का शरीर फिर भी पूर्ण बलवान् होजाय जैसे कि युवती का शरीर उसके तुल्य उसका भी शरीर होजायगा इस्से जो सन्तान होगा सो वैसा ही फिर बलवान् और निरोग होगा। जो उक्त वैद्यकशास्त्र में जैसी कि रीति लिखी है उसी प्रकार के लेपन से योनि का संकोच और योनि का शोधन भी स्त्री लोग करें इस्से अपने पति का भी बल क्षीण न होगा जब कुछ बालक लोग समर्थ होंय तब उनको चलने बैठने मलमूत्र के त्याग और शौच नाम पवित्रता की शिक्षा करैं और हस्त पाद मुख नेत्रादिकों की सुचेष्टा की शिक्षा करैं जिस्से कि किसी अङ्ग से वे बालक लोग कुचेष्टा न करैं और खाने पीने की भी यथावत् शिक्षा करैं बालककी जिह्वा का शोधन करावैं क्योंकि कोमल जिह्वाके होने से अक्षरों का उच्चारण स्पष्ट होगा औषधों से और दन्तधावन से फिर बालक को बोलने की शिक्षा करैं तब माता श्रेष्ठ वाणी से स्थान और प्रयत्न के साथ भाषण करैं जैसे कि प इसका ओष्ठ तो स्थान है और दोनों ओष्ठों का मिलना सो स्पर्श प्रयत्न है ओष्ठ स्थान के और स्पर्श प्रयत्न के विना पकार का शुद्ध उच्चारण कभी न होगा। ऐसे ही सब वर्णों का स्थान और प्रयत्न ह्रस्व और दीर्घ विचार के माता उच्चारण करै वैसाही बालकों को करावै जिस्से कि वे बालक शुद्ध उच्चारण करैं गमन, आसन, सोना,

बैठना, इस्की भी शिक्षा माता करै जिस्से कि सब कर्म युक्त युक्तही करैं और यह भी उपदेश उनकी माता करैं कि माता पिता तथा ज्येष्ठ बन्धादिक मान्य लोगों को नमस्कार बालक लोग करैं रोदन हास्य और क्रीड़ासक्तक भी वे न होवें बहुत हर्ष शोक भी न करैं उपस्थ इन्द्रिय को हस्त से नेत्र नासिकादिकों के बिना प्रयोजन से मर्द्दन अथवा स्पर्श न करैं क्योंकि निमित्त से बिना उपस्थेन्द्रिय का मर्द्दन और बारम्बार स्पर्श के करने से वीर्य की क्षीणता होगी और हस्त दुर्गन्ध युक्त भी होगा इस्से व्यर्थ कर्म न करना चाहिये इतनी शिक्षा बालकों को पांच वर्ष तक करना चाहिये उसके पीछे माता और पिता अक्षर लिखने की और पढ़ने की शिक्षा करैं देवनागराक्षर और अन्यदेशों के भाषाक्षरों का लिखने पढ़ने का अभ्यास ठीक २ करावैं स्पष्ट लिखने पढ़ने का अभ्यास हो जाय इस्से यह भी अवश्य शिक्षा करना चाहिये और भूत प्रेतादिक हैं ऐसा विश्वास बालक लोग कभी न करैं क्योंकि वह बात मिथ्याही है जब भूत प्रेतादिकों की बात सुनके उनके हृदय में मिथ्या भय हो जाता है तब किसी समय में अन्धकार होनेसे शृगालादिक पशु पक्षि और मूषक मार्जारादिक अथवा चोर वा अपने शरीर की छाया देखने से शृगालादिकों के भागने का शब्द सुनके उसके हृदय में पूर्व सुनने के संस्कार के होने से अत्यन्त भूत प्रेतादिकों का विश्वास होने से भयभीत होके कम्प और ज्वरादिक होते हैं इस्से बहुत दुःख से पीड़ित होते हैं इस्से यह शङ्का का बहुत रीति से निवारण करना चाहिये

जिस्से कि उनको कभी भूत प्रेतादिकों के होने में निश्चय न होय वैद्यक शास्त्र में बहुत से मानस रोग लिखे हैं वे जब होते हैं तब उन्मत्त होके अन्यथा चेष्टा मनुष्य कर्ता है तब निर्बुद्धि लोग जानते हैं और कहते हैं कि इसके शरीर में भूत वा प्रेत आगया है फिर वे मिलके बहुतसे पाखण्ड कर्ते हैं कि मैं मंत्र से झाड़ झूड़ के पांच रुपैया मुझ को दे तो अभी निकाल देउं फिर उन के सम्बन्धी लोग उन पाखण्डियों से कहते हैं कि हम पांच रुपैया देंगे परन्तु इसके भूत को जल्दी आप लोग निकाल देवैं फिर वे मिल के मृदङ्ग झांझ इत्यादिकों को लेके उसके पास आके बजाते गाते हैं फिर एक कोई पाखण्ड से उन्मत्त होके नांचता कूदता है कि इसके शरीर में बडा भूत प्रविष्ट हुआ है वह भूत कहता है कि मैं न निकलूंगा इसका प्राण लेही के निकलूंगा वह नांचने कूदने वाला कहता है कि मैं देवी वा भैरव हूं मुझ को एक बकरा और मिठाई वस्त्र देओ तो मैं इस भूत को निकाल देऊँ तब उनके सम्बन्धी कहते हैं कि जो तुमचाहो सो लेलो परन्तु इस भूतको आप निकाल देवैं सब लोग उस उन्मत्त के गोड़ पैं गिर पड़ते हैं तब तो उन्मत्त बहुत नाचता कूदता है परन्तु कोई बुद्धिमान् उसको एक थपेड़ा वा जूता मार देवै तब शीघ्र ही उसकी देवी वा भैरव भाग जाते हैं क्योंकि वह केवल धूर्त धनादिक हरण करने के लिये पाखण्ड कर्ता है जे नाम मात्र तो पण्डित हैं ज्योतिश्शास्त्र का अभिमान कर्के कहते हैं कि सूर्यादि ग्रह क्रूर इनके ऊपर आये हैं इस्से यह पुरुष पीड़ित

है परन्तु इसके ग्रहों की शान्ति के लिये दान पाठ और पूजा जो करावै तो ग्रहों की शान्ति होजाय अन्यथा शान्ति न होगी उनको बहुत पीड़ा होगी और इनका मरण हो जाय तो आश्चर्य नहीं इनसे कोई पूंछे कि सूर्यादिक ग्रह सब आकाश में रहते हैं वे सब लोक हैं जैसा कि पृथिवी लोक है कैसे वे पीड़ा कर सकते हैं और जो ताराादिक उनके तेज हैं सब के ऊपर समान ही प्रकाश है कैसे एक के ऊपर क्रूर होके दुःख दे और दूसरे को शान्त होके सुख दे वह बात कभी नहीं हो सक्ती है जितने धनाढ्य और राजा लोग हैं उनके ऊपर सब मिल के आप के ऊपर क्रूरग्रह आये हैं ऐसा कहते हैं क्योंकि दरिद्रों से तो इतना धन नहीं मिल सक्ता है इस्से उन धनाढ्योंके पास जाके बारम्बार ग्रहों की कथा से भय देखा के बहुत धन को हरण कर लेते हैं जो कोई बुद्धिमान् उन से ऐसा कहे कि आप पण्डित लोग अपने घर में ग्रहों की शान्ति के लिये पूजा पाठ दान वा पुण्य क्यों नहीं कराते हैं तब वे सब पुरोहित पण्डितादिक मिलके कहते हैं कि तूं नास्तिक हो गया इस रीति से भय देखा के उनको उपदेशादिक बहुत प्रकार कह के उसी मार्ग में ले आते हैं परन्तु कोई बुद्धिमान् होता है सो उन के जाल में नहीं आता है वैसे ही मुहूर्त बिषय अथवा यात्रा में जाल रखते हैं धन लेने के लिये तथा जन्मपत्र का जो रचन होता है सो भी मिथ्या है वह जन्मपत्र नहीं है किन्तु शोक पत्र है ऐसा जानना चाहिये क्योंकि जन्म पत्र रच के पण्डित उस्का फल उनके पास आके कहते हैं इस बालक का १० वां बर्ष

अथवा३०वाँ वर्ष जब आवेगा तब इसके ऊपर बहुतसे क्रूर ग्रह आवैंगे यह बहुत सी पीड़ा पावेगा यह मरजावे तोभी आश्चर्य नहीं इस बात को सुन के बालक के माता अथवा पितादिक शोकातुर हो जाते हैं इससे इस पत्र का नाम शोक पत्र ही रखना चाहिये कभी इसके ऊपर विश्वास न करना चाहिये इसको बुद्धिमान् मिथ्या ही जानैं रोग निवृत्ति के लिये औष-धादिक अवश्य करैं इस रीति से बालकों को प्रथम ही माता वा पिता को शिक्षा का निश्चय करना वा कराना उचित है मारण मोहन उच्चाटन वशीकरणादिक विषय में सत्यत्व प्रतिपादन कहत हैं सो भी मिथ्या जानना चाहिये और तांबे का सोना कर्ता है पारे की चांदी बनाता है यह भी बात मिथ्या जानना चाहिए फिर उन बालकों को हृदय में अच्छी रीति से यह बात निश्चय कराना चाहिये कि वीर्य की रक्षा करने में निश्चित बुद्धि होय क्यों कि वीर्य की रक्षा से बुद्धि बल पराक्रम और धैर्यादिक गुण अत्यन्त बढ़ने हैं इस्से बालकों को बहुत सुख की प्राप्ति होती है इसमें यह उपाय है कि विषयोंकी कथा और विषयी लोगोंका सङ्ग विषयों का ध्यान कभी न करैं श्रेष्ठ लोगों का सङ्ग विद्या का ध्यान और विद्या ग्रहण में प्रीति सदा होने से विषयादिकों में कभी प्रवृत्त न होंगे जब तक ब्रह्मचर्य की पूर्ति और विवाह का समय न होय तब तक उन बालकों का माता पितादिक सर्वथा रक्षा करैं और ऐसा यत्न करैं कि जिसमें अपने बालक मूर्ख न रहैं किसी प्रकार से भ्रष्ट भी न होंय ऐसे ७ सात वर्ष

वा ८ आठवर्ष तक माता पिता यत्न करें प्रथम जो श्रुति लिखी थी कि मातृमान् नाम मात्रा शिक्षितः प्रथम माता से उक्त प्रकार से अवश्य शिक्षा होनी चाहिये पितृमान नाम पिता से भी शिक्षा होनी चाहिये आचार्यवान् नाम पांच वर्ष के पीछे व ८ आठवर्ष के पीछे आचार्य की शिक्षा होनी चाहिये जब तीनों से यथावत् शिक्षित पुत्र वा कन्या होंगे तब शिष्ट होंगे अन्यथा पशुवत् होंगे मनुष्य गुण जे हैं विद्यादिक वे कभी न आवेंगे और विद्यारूप धन की सन्तान को प्राप्ति कराना यही माता पिता और आचार्य का मुख्य फल है कि उनका लाड़न कभी न करना कराना चाहिये क्यों कि लाड़न में बहुत से दोष हैं और ताड़न में बहुत से गुण हैं इस में व्याकरण महाभाष्य की कारिका का प्रमाण है ॥ सामृतैःपाणिभिर्घ्नन्ति गुरवोनविषो-क्षितैः। लाडनाश्रयिणोदोषा स्तडनाश्रयिणोगुणाः ॥ इस का यह अर्थहै कि सामृतैः नाम अमृतके तुल्य ताड़न है जैसा कि हाथ से किसी को कोई अमृत देवै वैसा ही बालकोंका ताड़न है क्यों कि जो वे ताड़न से श्रेष्ठ शिक्षा को और सद्विद्या को ग्रहण करेंगे तब उनको प्रतिष्ठा सुख और मान सर्वत्र प्राप्त होगा उस्से धन और आजीविका भी उन को सर्वत्र होगी वे बहुत सुखी होंगे सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति नाम सदा गुरु लोक ताड़ना कर्ते हैं न विषोक्षितैः नाम विष से युक्त जो हाथ उस्से जो स्पर्श वह दुःख ही का हेतु होता है वैसा अभिप्राय उनका नहीं है किन्तु हृदय में तो कृपा परन्तु केवल गुण ग्रहण कराने के लिये माता पिता तथ गुर्वादिक ताड़न कर्ते हैं क्योंकि

लाड़ना श्रयिणोदोषाः नाम जो अपने सन्तानों का लाड़न करेंगे तो वे मूर्ख रहजांयगे पीछे जो कुछ उनके अधिकार में धन वा राज्य रहेगा उसका वे न पालन करेंगे न अधिक वृद्धि होगी उन पदार्थों का नाश ही करदेंगे फिर वे अत्यन्त दुःखी होजांयगे और दूसरे के आधीन रहेंगे यह दोष माता पिता तथा गुर्वादिकों का गिना जायगा इस्से क्या आया कि उनका लाड़न क्या किया किन्तु उन को मारही डाला ताड़ना श्रयि- णोगुणाः नाम अवश्य सन्तानों को गुण ग्रहण कराने के लिए सदा ताड़न ही कराना चाहिये क्योंकि ताड़ना के बिना वे श्रेष्ठ स्वभाव और श्रेष्ठ गुणों को कभी ग्रहण न करेंगे इस्से वैसाही करना चाहिये जिस्से अपने सन्तान उत्तम होंय उनको विद्या और श्रेष्ठ गुणों का ही आभूषण धारण कराना चाहिये और सुवर्णादिकों का कभी नहीं क्योंकि विद्यादिक गुण का जो आ- भूषण धारना है सोई आभूषण उत्तम है और सुवर्णादिकों का आभूषण का जो धारण है उस में गुण तो नहीं है किन्तु दोषही बहुत से हैं क्यों कि चौरादिक भी उनको मारके आभू- षणों को लेजाते हैं और आभूषणों को धारण करने वाले को बहुत अभिमान रहता है जो कोई उसके सामने विद्यावान् भी पुरुष होय तो भी वह तृण के बराबर उसकी गणना करेगा और अभिमान से गुण ग्रहण भी न करैगा और जब वे सोते हैं तब चौर आके उनकोमार डालते हैं अथवा अङ्ग भङ्ग करके आभूषण लेजाते हैं इस्से सुवर्णादिकोंका आभूषणधारना उचित नहीं और कभी चोरी न करैं किसी का पदार्थ उस की आज्ञा

के बिना एक तृण वा पुष्प भी ग्रहण न करैं क्योंकि जो तृणकी चोरी करेगा सो सबकी चोरी करेगा फिर उस को राज गृह में दण्ड होगा अप्रतिष्ठा भी होगी और निन्दा होगी उस का विश्वास कोई भी न करेगा इस्से मन से भी कभी चोरी करने की इच्छा न करनी चाहिये और मिथ्या भाषण भी करना न चाहिये क्योंकि मिथ्या भाषण जो करेगा सो सब पाप कर्मोंको भी करेगा और उसका विश्वास कोई भी न करेगा प्रतिज्ञा भी मिथ्या न करनी चाहिये प्रथम तो विचार करके प्रतिज्ञा करनी चाहिये जब प्रतिज्ञा की तब उस का पालन यथावत् करना चाहिये प्रतिज्ञा क्या होनी है कि नियम से जो कहना उस वक्त में आप के पास आऊंगा वा आप मेरे पास आवैं इस पदार्थ को मैं देऊँगा वा लेऊंगा सो जैसा कहै वैसा ही प्रतिज्ञा पालन करै अन्यथा कभी न करै प्रतिज्ञा की जो हानि है सो मनुष्य का महा दोष है इस्से प्रतिज्ञा की हानि कभी न करनी चाहिये अभिमान कभी न करना चाहिये अभिमान नाम अहङ्कार का है मैं बड़ा हूं मेरे सामने कोई कुछ भी नहीं इस्से क्या होगा कि कभी वह गुण ग्रहण तो न करेगा परन्तु मूर्खही रहजायगा छल कपट वा कृतघ्नता कभी न करनी चाहिये क्यों कि छल, कपट, और कृतघ्नता से, अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की क्या कथा और उस का उपकार कोई भी न करेगा छल कपट और कृतघ्न तो उस को कहते हैं कि हृदय में तो और बात बाहर और बात कृतघ्नता नाम कोई उपकार करै उस उपकार को न मानना सो कृतघ्नता कहाती है क्रोध

भी कभी न करना क्रोध से अपने अपनी ही हानि कर देवै और की भी हानि करले इस्से क्रोध भी न करना चाहिये किसी से कटुक बचन न कहै किन्तु मधुर बचन ही सदा कहै बिना बोलाये किसी से बोले नहीं और बहुत बकबाद कभी न करै जितना कहना चाहिये इतनाहीं कहे जिस्से कहना वा सुनना सो नम्रता से ही करै अभिमानसे कभी नहीं किसी से बाद बिबाद न करै नेत्र नासिकादिकों से चपलता कभी न करै जहाँ किसी के पास जाय वहां उसको पहिले ही नमस्कार करै और नीच आसन में बैठे न किसी को आड़ होय न किसीको दुःख होय न कोई उसको उठावै जिस्से गुण ग्रहण करै उसको पूर्व नमस्कार करै उससे बिरोध कभी न करै उसको प्रसन्न करके जैसे गुण मिले वैसाही करै पीछे भी मरण तक उसके गुणको माने जिस गुणको ग्रहण करै उस गुण का आच्छादन कभी न करै किन्तु उस गुणका प्रकाशही करना उचित है किसी पाखण्डी का विश्वास कभी न करै सदा सज्जनों का सङ्ग करै दुष्टों का कभी नहीं अपने माता और पिता वा आचार्य की आज्ञा पालन सदा करै परन्तु जो आज्ञा सत्यधर्म सम्बन्धी होय तो करै और जो धर्म बिरुद्ध आज्ञा होय तो कभी न करै परन्तु सेवाके लिये जो माता पिता और आचार्य आज्ञा देवैं उसको अपने सामर्थ्य के योग्य जरूर करै और माता पिता धर्म सम्बन्धी श्लोको को अथवा निघंटु वा अष्टाध्यायीको कण्ठस्थ करादेवैं परन्तु सत्य सत्य धर्म के विषय में और परमेश्वर के विषय में दृढ़ निश्चय करा देवैं जैसे कि पहिले प्रकरण मे परमेश्वर के विषय में

लिखा है वैसा उसी की उपासना में दृढ़ निश्चय करा देवैं और वस्त्र धारनेकी यथावत् शिक्षा करदेवैं जैसा कि धारना चाहिये भोजन की भी जितनी क्षुधा होय इस्से कुछ न्यून भोजन करैं जिस्से कि उनके शरीर में रोग न होय गहरे जल में कभी स्नान के लिये प्रवेश न करैं क्योंकि जो गम्भीर जल होगा और तरना न जानेगा तो डूब के मर जायगा अथवा जल-जन्तु होगा तो खा लेगा वा काटलेगा इस्से दुःखही होगा सुख कभी न होगा इसमें मनुस्मृती का प्रमाण भी है ॥ नानिज्ञाते जलाशये। इस्का यह अभिप्राय है कि जिस जल की परीक्षा यथावत् जो न जाने सो स्नान के लिये उस में प्रवेश कभी न करै किन्तु जल के तट पै बैठ के स्नान करै और बहुत कूदना फांदना न करै जिस्से कि हाथ पैर टूट जाय ऐसा न करै और मार्ग में जब चले तब नीचे दृष्टि करके चलैं क्योंकि कांटा और नीचा ऊंचा जीवजंतु देखके चलै जलको छान के पिये और वचन को विचार के सत्य ही बोले जो कुछ कर्म करै उस को पहिले बिचार ही के आरंभ करै इस्से क्या सुख वा हानि वा लाभ होगा किस रीति से इसको करना चाहिये कि जिस रीति से परिश्रम तो न्यून होय और उसकी सिद्धि अवश्य होय इस रीति से बिचार करके कर्मका आरम्भ करना चाहिये इसमें मनुस्मृतिके वचन का प्रमाण भी है ॥ दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतंजलंपिबेत्। सत्यपूतांवदेद्वाचं मनःपूतंसमाचरेत्॥ दृष्टिपूतं नाम आंख से देख देखके आगे चले वस्त्रपूतं नाम वस्त्र से छान के जल को पीवै क्योंकि जल में केश अथवा तृण

वा जीव रहते हैं छानने से शुद्ध हो जाता है इस्से जल छान ही के पीना चाहिये, सत्यपूतांवदेद्वाचम् नाम सत्य से दृढ़ निश्चय करके यही कहना सत्य है तब बिचार करके मुख से निकालना चाहिये क्योंकि बचन निकाला जो गया सो जो मिथ्या हो जायगा तब बुद्धिमान् लोग उस को जान लेंगे कि यह विचार शून्य पुरुष है इस्से बिचार करके सत्य ही कहना चाहिये मनःपूतंसमाचरेत् नाम मन से बिचार करके कर्म का आरम्भ करना चाहिये कि भविष्यत्काल में इस का फल क्या होगा ऐसा जो बिचार करके कर्म न करेगा उसको पश्चाताप ही होगा और सुख न होगा इस्से जो कुछ करना चाहिये सो बिचार के करना चाहिये इस रीति से आठ वर्ष तक बालकों की शिक्षा होनी चाहिये जो कुछ और शिक्षा लिखी है सत्य भाषणादिक सो तो सब को करना उचित है जिनके सन्तान सुशिक्षित होंगे वे ही सुख पावेंगे और जिनके सन्तान सुशिक्षित न होंगे वे कभी सुख न पावैंगे यह बाल शिक्षा तो कुछ कुछ शास्त्रों के आशयों से लिख दी परन्तु सब शिक्षा का ज्ञान जब वेदादिक सत्य शास्त्रों को पढ़ेंगे और बिचारेंगे तब होगा इसके आगे ब्रह्मचर्याश्रम और गुरु शिष्य की शिक्षा लिखी जायगी उसी के भीतर पढ़ने पढ़ाने की शिक्षा भी लिखी जायगी ॥ इति श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थ प्रकाशे सुभाषाबिरचिते द्वितीयःसमुल्लासः सम्पूर्णः ॥२॥

अथाध्ययनाध्यापनविधिंव्याख्यास्यामः। आठ वर्ष का
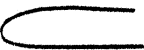
पुत्र और कन्याओं को पाठशाला में।पढ़ने के लिये आचार्य के पास भेज देवैं अथवा पाँचवे वर्ष भेज देवैं घर में कभी न रक्खैं परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन के बालकों का यज्ञोपवीत घर में होना चाहिये पिता यथावत् यज्ञोपवीत करै पिता ही उनको गायत्री मन्त्र का उपदेश करै गायत्री मन्त्र का अर्थ भी यथावत् जना देवै गायत्री मन्त्र में जो प्रथम ॐकार है उसका अर्थ प्रथम समुल्लास में लिखा है वैसा ही जान लेना ॥ भूरितिवैप्राणः भुवरित्यपानः स्वरितिव्यानः। यह तैत्तिरीयोपनिषद् का बचन है ॥ प्राणयतिचराचरञ्जगत्सप्राणः ।जो सब जगत् के प्राणों का जीवन कराता है और प्राण से भी जो प्रिय है इस्से परमेश्वर का नाम प्राण है सो भूः शब्द प्राण का वाचक है और भुवः शब्द से अपान अर्थ लिया जाता है ॥ अपानयति सर्वदुःखंसोपानः। जो मुमुक्षुओं को और मुक्तों को सब दुःख से छोड़ा के आनन्द स्वरूप रक्खै इस्से परमेश्वर का नाम अपान है सो अपान भुवः शब्द का अर्थ है व्यानयतिसव्यानः जो सब जगत् के विविध सुख का हेतु और विविध चेष्टा का भी आधार इस्से परमेश्वर का नाम व्यान है सो व्यान अर्थ स्वः शब्द का जानना तत् यह द्वितीया का एक बचन है सवितुः षष्ठी का एक बचन है वरेण्यं द्वितीया का एक बचन है ॥ भर्गः २ का एक बचन है ॥ देवस्य ६ का एक बचन है धीमहि क्रिया पद है धियः द्वितीया का बहुबचन है यः प्रथमा का एक बचन है नः षष्ठी का बहु बचन है, प्रचोदयात् क्रिया पद है, सविता शब्द का और देव शब्द का अर्थ प्रथम

समुल्लास में कह दिया है वहीं देख लेना ॥ वर्तुमर्हंवरेण्यं । नाम अति श्रेष्ठम् भर्गो नाम तेजः तेजोनाम प्रकाशः प्रकाशोनाम विज्ञानम् वर्तु नाम स्वीकार करने को जो अत्यन्त योग्य उस का नाम वरेण्य है और अत्यन्त श्रेष्ठ भी वह है धी नाम बुद्धि का है नः नाम हमलोगों की प्रचोदयात् नाम प्रेरयेत् हेपरमेश्वर हेसच्चिदानन्दानन्त स्वरूप हेनित्य शुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव हेकृपा निधे हेन्यायकारिन्हेअज हेनिर्विकार हेनिरञ्जन हेसर्वान्तर्यामिन् हे सर्बाधार हेसर्बजगत्पितः हे सर्वजगदुत्पादक हेअनादे हेविश्व-म्भर सवितुर्देवस्य तवयद्वरेण्यं भर्गः तद्वयंधीमहि तस्य धारणं वयं कुर्वी महि हेभगवन् यः सविता देवः परमेश्वरः सभगवान् अस्माकंधियः प्रचोदयादित्यन्वयः हेपरमेश्वर आप का जो शुद्ध स्वरूप ग्रहण करने के योग्य जो विज्ञान स्वरूप उसको हम लोग सब धारण करैं उसका धारण ज्ञान उसके ऊपर बिश्वास और दृढ़ निश्चय हम लोग करैं ऐसी कृपा आप हम लोगों पर करैं जिस्से कि आप के ध्यान में और आपकी उपासनामें हमलोग समर्थ होंय और अत्यन्य श्रद्धालु भी होंय जो आप सविता और देवादिक अनेक नामों से वाच्य अर्थात अनन्त नामों के अद्वितीय जो आप अर्थ हैं नाम सर्वशक्तिमान् सो आप हम लोगों की बुद्धियों को धर्म विद्या मुक्ति और आप की प्राप्ति में आपही प्रेरणा करैं कि बुद्धि सहित हम लोग उसी उक्त अर्थ में तत्पर और अत्यन्त पुरुषार्थ करने बाले होंय इस प्रकार की हम लोगों की प्रार्थना आपसे है सो आप इस प्रार्थना को अङ्गीकार करैं यह संक्षेप से गायत्री मन्त्र का अर्थ

लिख दिया परन्तु उस गायत्री मन्त्र का वेद में इस प्रकार का पाठ है ॥ ओंभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्व्वरेण्यम्भर्गोदेवस्यधीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् । इस मन्त्रको पुत्रोंको और कन्याओं को भी कण्ठस्थ करा देवें और इसका अर्थ भी हृदयस्थ करा देवें परन्तु कन्या लोगोंको यज्ञोपवीत कभी न कराना चाहिये और संस्कार तो सब करना चाहिये योगशास्त्र की रीति से प्राणों के और इन्द्रियों के जीतने के लिये उपाय का उपदेश करें सो यह योगशास्त्र का सूत्र है ॥ प्रच्छर्द्दनविधारणाभ्यांवाप्राणस्य । इसका यह अर्थ है कि छर्द्दननाम वमन है जैसे कि मक्खी वा और कुछ पदार्थ खाने से उदर से मुख द्वारा अन्न बाहर निकल जाता है और प्रकृष्टश्चतच्छर्द्दनञ्च प्रच्छर्द्दनम् अत्यन्त जो बल से वमन का होना उसका नाम प्रच्छर्द्दन है ॥ विधारणं नाम विरुद्धश्चतद्धारणञ्च विधारणम् जैसे कि उस अन्न का धारण पृथिवी में होता है उस्को देख के घृणा होती है तो ग्रहण की इच्छा कैसे होगी कभी न होगी यह दृष्टान्त हुआ परन्तु दृष्टान्त इसका यह है कि नाभिके नीचे से अर्थात् मूलेन्द्रिय से लेके धैर्य से अपान वायु को नाभि में ले आना नाभि से अपान को और समान को हृदय में ले आना हृदय में दोनों वे और तीसरा प्राण इन तीनों को बल से नासिका द्वार से बाहर आकाश में फेंक देना अर्थात् जो वायु कुछ नासिका से निकलता है और भीतर जाता है उन सबका नाम प्राण है उसको मूलेन्द्रिय नाभि और उदर को ऊपर उठाले तब तक वायु न निकले पीछे हृदय में इकट्ठा करके

जैसे कि वमन में अन्न बाहर फेंका जाता है वैसे सब भीतर के वायु को बाहर फेंक दे फिर उस को ग्रहण न करै जितना सामर्थ्य होय तब तक बाहर की वायु को रोक रक्खै जब चित्तमें कुछ क्लेश होय तब बाहर से वायु को धीरे धीरे भीतर लेजाय फिर उसको वैसा ही वारम्वार २० बार भी करेगा तो उसका प्राण वायु स्थिर हो जायगा और उसके साथ चित्त भी स्थिर होगा बुद्धि और ज्ञान बढ़ेगा बुद्धि इस प्रकार की तीव्र होगी कि बहुत कठिन विषय को भी शीघ्र जान लेगी शरीर में भी बल पराक्रम होगा और वीर्यभी स्थिर होगा तथा जितेन्द्रियता होगी सब शास्त्रों को बहुत थोड़े काल में पढ़लेगा इस्से यह दोनों उपदेशोंको यथावत् अपने सन्तानों को करदे फिर उस्को आचमन का उपदेश करै हाथ में जल लेके गायत्री मन्त्र मन से पढ़ेके तीनबार आचमन करै ॥ अंगुष्ठमूलस्यतले ब्राह्मन्तीर्थं प्रक्षचते । कायमंगुलिमूलेऽग्रे दैवंपित्र्यं तयोरधः ॥ अंगुष्ठ मूल के नीचे तल नाम हथेलीका जो मध्य है उस्का नाम ब्राह्मतीर्थ है कनिष्ठिका के मूल में जो रेखा है उसका नाम प्राजापत्य तीर्थ है अंगुलियोंका जो अग्रभाग है उसका नाम देव तीर्थ है तर्जनी और अंगुष्ठ इन दोनों के मूल जो बीच है उसका नाम पितृतीर्थ है आचमन समय में ब्राह्मतीर्थ से आचमन करै इतने जल से आचमन करै कि हृदय के नीचे पर्यन्त वह जल जाय उस्से क्या होता है कि कण्ठ में कफ और पित्त कुछ शान्त होगा फिर गायत्री मन्त्र को तो पढ़ता जाय और अंगुली से जल का छोंटा शिर और नेत्रादिकों के ऊपर देवे इस्से क्या

होगा कि निद्रा और आलस्य न आवेगा जैसे कि कोई पुरुष को निद्रा और आलस्य आता होय तो जलके छीटा से निवृत्त हो जाता है तैसे यहां भी होगा पीछे गायत्री मन्त्र से उपस्थान करै उपस्थान नाम परमेश्वर की प्रार्थना और अघमर्षण करै अघमर्षण उसका नाम है कि पाप करने की इच्छा भी न करना चाहिये संक्षेप से संध्योपासन कह दिया परन्तु यह दोनों बात एकान्त में जाके करना चाहिये क्यों कि एकान्त में चित्त की एकाग्रता होती है और परमेश्वर की उपासना भी यथावत् होती है इस में मनुस्मृति का प्रमाण भी है ॥ अपांसमीपेनियतो नैत्यकंविधिमास्थितः। सावित्रीमथधीयीत गत्वाऽरण्यंसमाहितः ॥ इसका यह अभिप्राय है कि जल के समीप जाके और जितनी आचमन प्राणायामादिक क्रिया उन को करके बन के शून्य देशमें बैठके गायत्रीको मनसे यथावदुच्चारण करके एक एक पद का अर्थ चिन्तन करके और प्राणायाम से प्राण चित्त और इन्द्रियों को स्थिरता करके परमेश्वर की प्रार्थना और स्वरूप बिचार से उक्त रीति से उस में मग्न हो जाय नाम समाधिस्थ होजाय ऐसेही नित्य दो बार द्विज लोक प्रातःकाल और सायङ्काल करैं एक घण्टा तक तो अवश्य ही करै इस्से बहुत सा सुख और लाभ भी होगा फिर वह पुत्रों को अग्निहोत्र का आचार सिखावै एक चतुष्कोण मिट्टीको वा तांबे को बेदि रच ले ⏢ ऊपर चौड़ी नीचे छोटी ऊपर तो १२ अंगुल नीचे चार ४ अंगुल रहैं ऐसी रचके चन्दन वा पलाश आम्रादिक श्रेष्ठ काष्ठों को लेके उस बेदि के परिमाण से खण्ड खण्ड कर

लेवै वेदी अच्छी शुद्ध करके उस वेदी में काष्ठों को यथावत् रक्खै उसके बीच में अग्नि रखदे उसके ऊपर फिर काष्ठ रख दे रख कर अग्नि प्रदीप्त करै और एक चमसा रखले हाथ की कोणी से कनिष्ठिका के अग्र पर्यन्त परिमाण से और इस प्रकार की प्रोक्षणीपात्र रखले ⌒ | उस्से डेढ़ा प्रणीता पात्र रखले —[] एक घृत पात्र रखले O प्रणीतामें तो जल रक्खै पीछे उसमें जब जब कार्य होय तब तब प्रोक्षणीमें प्रणीता से जल लेके चमसा को और घृत के पात्र को नित्य शुद्ध करै और कुशा को भी रखले जब जब होम करने का समय आवे तब सब पात्र को शुद्ध करके घृतपात्र में घृत को लेके अङ्गारों के ऊपर तपावै फिर उतार के आंख से देखके उसमें कुछ केश वा और जीव पड़े होंय तो उनको कुशाग्र से निकाल देवै पीछे अग्नि को प्रदीप्त करके चमसा में घृत को लेके ॐभूरग्नयेस्वाहा इदमग्नये इदन्नमम। इस मन्त्र से जो काष्ठ अग्नि से प्रदीप्त होय उसके बीच में एक आहुति देवै। ॐभुववायवेस्वाहा इदं वायवे इदन्नमम। इस्से दूसरी आहुति देवै। ॐस्वरादित्याय स्वाहा इदमादित्याय इदन्नमम। इस्से तीसरी आहुति देवै॥ ॐभूर्भुवः स्वः अग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्नमम। इस्से चौथी आहुति देनी॥ ॐसर्ववैपूर्णस्वाहा इस्से पांचवी आहुति देवै। और जो अधिक होम करना होय तो गायत्री मन्त्र से करदे ऐसे ही संध्योपासन के पीछे नित्य दो बार अग्निहोत्र सब करैं ॐकार भू आदिक और अग्न्यादिक

जितने इन मन्त्रों में नाम हैं वे सब परमेश्वर ही के हैं उनका अर्थ प्रथम प्रकरण में कह दिया है वहाँ जान लेना चाहिये और जो इस में तीन वार पाठ है सो प्रथम जो अग्नयेस्वाहा इसका यह अर्थ है कि जो कुछ करना सो परमेश्वर के उद्देशही से करना इदमग्नये दूसरा जो पाठ है उसका यह अभिप्राय है कि सब जगत् परमेश्वर के जनाने के लिये है क्योंकि कार्य जो होता है सो कारण ही वाला होता है इदन्नमम यह जो तीसरा पाठ है सो इस अभिप्रायसे है कि यह जो जगत है सो मेरा नहीं है किंतु परमेश्वर ही का रचा है किस लिये कि हम लोगों के सुख के लिये परमेश्वर ने कृपा करके सब पदार्थ बनाये हैं हम लोग तो भृत्यवत् हैं परमेश्वर ही इस जगत् का स्वामी है क्योंकि जो जिस का पदार्थ होता है उसका वही स्वामी होता है और जो इन मंत्रों में स्वाहा शब्द है उसका यह अर्थ है स्वम् आह सा स्वाहा अथवा स्वा नाम स्वकीय वाक् आह सा स्वाहा स्वम् नाम अपना जो हृदय सो सत्य ही है जैसा जो कर्त्ता है वैसा ही सो जानता है आह नाम कहने का है जैसा कि हृदय में होय वैसा ही वाणी से कहै ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है संध्योपासन अग्निहोत्र तर्पण बलि वैश्व देव और अतिथि सेवा पंच महा यज्ञों के प्रयोजन पीछे लिखेंगे अग्निहोत्र के आगे तर्पण करैं ॥ नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् । यह मनुस्मृति का वचन है ॥ अथ देवतर्पणम् ओं३म्ब्रह्मादयोदेवास्तप्यन्ताम् १ ओं३म्ब्रह्मा-दिदेवपत्न्यस्तप्यन्ताम्॥१॥ ओं३म्ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्१ओं३म्ब्रह्मा

दिदेवगणास्तृप्यन्ताम् १ इति देवतर्पणम्। अथर्षितर्पणम्। ॐमरीच्याद्यऋषयस्तृप्यन्ताम् २ ॐमरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम् २ ॐमरीच्यद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्२इत्यृषितर्पणम्। अथ पितृतर्पणम् ॐसोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम् ३ ॐअग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्३ ॐबर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् ३ ॐसोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्३ ॐहविर्भुजःपितरस्तृप्यन्ताम् ३ ॐआज्यपाःपितरस्तृप्यन्ताम् ३ ॐसुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम् ३ ॐयमादिभ्योनमः यमादींस्तर्पयामि ३ ॐपित्रेस्वधानमः पितरन्तर्पयामि ३ ॐपितामहायस्वधानमः पितामहन्तर्पयामि ३ ॐप्रपितामहायस्वधा नमः प्रपितामहन्तर्पयामि ३ ॐमात्रे स्वधानमः मातरंतर्पयामि ३ ॐपितामह्यै स्वधानामः पितामहींस्तर्पयामि ३ ॐप्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहींस्तर्पयामि ३ ॐअस्मत्पत्न्यैस्वधानमः अस्मत्पत्नींस्तर्पयामी ३ ॐसम्बन्धिभ्योमृतेभ्यः स्वधानमःसम्बन्धीन्मृतांस्तर्पयामि ३ ॐसगोत्रेभ्योमृतेभ्यः स्वधानमः सगोत्रान्मृतांस्तर्पयामि ३ इतितर्पणविधिः। पित्रादिकों में जो कोई जीता होय उसका तर्पण न करै और जितने मरगये होंय उनका तो अवश्य करै। उद्धृतेदक्षिणेपाणा वुपवीत्युच्यतेद्विजः। सव्येप्राचीनआवीति निवीतिःकण्ठ सज्जने॥ यह मनुस्मृति का श्लोक है इसका यह अर्थ है कि जैसे वामस्कन्ध के ऊपर यज्ञोपवीत सदा रहता ही है परन्तु उस यज्ञोपवीत को दहिने हांथ के अंगुठा में लगाले इस क्रिया के करने से द्विजों का नाम उपवीती होता है सो सब देव कर्मों को उपवीती

होके करैं पूर्वाभिमुख होके देवतर्पण करै और देवतीर्थ से कण्ठ में जब यज्ञोपवीत रक्खै और दोनों हाथ के अंगुष्ठा में यज्ञोपवीत को लगाने से द्विजों की निवीति संज्ञा होती है ब्राह्मतीर्थ से उत्तराभिमुख होके ऋषि तर्पण करना चाहिये और दक्षिणस्कन्ध में यज्ञोपवीत रक्खै और वाम अंगुष्ठ में यज्ञोपवीत लगाने से द्विजों का नाम प्राचीनावीती होता है दक्षिणाभिमुख प्राचीनावीति और पितृतीर्थ से पितृकर्म तर्पण और श्राद्ध करना चाहिये देव तर्पण में एक वार मन्त्र पढ़के एक अंजलि देवैं ऋषि तर्पण में दो बार मन्त्र पढ़के दो अंजलि देवैं दूसरी वार मन्त्र पढ़के दूसरी अंजलि देवै और पितृतर्पण में एक वार मन्त्र पढ़के एक अंजलि देवै दूसरी वार मन्त्र पढ़के दूसरी अंजलि देवै और तीसरी बार मन्त्र पढ़के तीसरी अंजलि देवै ॥ अथबलिवैश्वदेवम्। वैश्वदेवस्यसिद्धस्य गृह्येऽग्नौविधिपूर्वकम्। आभ्यःकुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणोहोममन्वहम् ॥ ओ३म् अग्नयेस्वाहा ओ३म्सोमायस्वाहा ओ३म्अग्नीषोमाभ्यांस्वाहा ओ३म्विश्वेभ्योदेवेभ्यः स्वाहा ओ३म् धन्वन्तरयेस्वाहा ओ३म् कुह्वैस्वाहा। ओ३म् अनुमत्यैस्वाहा ओ३म् प्रजापतयेस्वाहा ओ३म् सहद्यावापृथिवीभ्योस्वाहा। मृत्तिकाकी चतुष्कोण बेदी वा तांवे की रचके लवणान्न को छोड़के जोकि भोजन के लिये पदार्थ बना होय उससे उसमें दशाहुति देवैं |॰॰| पीछे इस प्रकार की रेखाओं से कोष्ठ रचके यथा क्रमसे उस २ दिशाओं में भागों को रखदे अपनी २ जगह में

ओं सानुगायेन्द्रायनमः इससे पूर्वदिशा में भाग देना ओं सानुगाययमायनमः। दक्षिण दिशा में भाग रक्खे ओं सानुगाय वरुणायनमः । इस मन्त्र से पश्चिम दिशा में भाग रक्खै ओं सानुगायसोमायनमः। इस मन्त्र से उत्तर दिशा में भाग रक्खै ओंमरुद्भ्योनमः। इस मंत्र से द्वारमें भाग रक्खै ओंअद्भ्यो नमः इस मंत्रसे वायव्यकोण में भाग रक्खै ओंवनस्पतिभ्योनमः इस मंत्र से अग्निकोण में भाग रक्खै ओंश्रियैनमः। इस मंत्र से ऐशान्यकोण में भाग रक्खै ओं भद्रकाल्यै नमः। इस मंत्र से नैर्ऋत्यकोण में भाग रक्खै ओंब्रह्मपतये नमः ओंवास्तुपतयेनमः ॥ इन दो मन्त्रोंसे कोठा के बीच में भाग रक्खै ओं विश्वेभ्योदेवेभ्योनमः ओं दिवाचरेभ्योभूतेभ्योनमः। ओं नक्तंचारिभ्योभूतेभ्योनमः। इन मन्त्रों से ऊपर हाथ करके कोष्ठके बीचमें तीनों भाग रख देवै ओं सर्वात्मभूतयेनमः। इस मंत्रसे कोष्ठके पीछे भाग रक्खै अपसव्य करके ओं पितृभ्यःस्वधा नमः इस मंत्र से कोष्ठ के भीतर दक्षिणदिशा में भाग रक्खै इन सोलहो भागों को इकट्ठा करके अग्निमें रखदे श्वभ्योनमः पतितेभ्योनमः श्वपग्भ्योनमः पापरोगिभ्योनमः वायसेभ्योनमः कृमिभ्योनमः इन छः मन्त्रों से शाक दाल इत्यादि सब अन्न मिलाके भूमि में छः भाग को रखके कुत्ता वा मनुष्यादिकों को देवै ॥ इति बलिवैश्वदेवम् । इसके पीछे अतिथि की सेवा करनी चाहिये अतिथि दो प्रकार के हैं एक तो विद्याभ्यास करने वाले दूसरे पूर्ण विद्यावाले नाम त्यागीलोग जो कि पूर्ण विद्यावाले पूर्ण वैराग्य और पूर्ण ज्ञान सत्यवादी

जितेन्द्रिय भोजन के समय प्राप्त जो होय उनका सत्कार अन्न जल और आसनादिकों से करै पीछे गृहस्थ लोग भोजन करैं वा साथ में भोजन करावैं अथवा भोजन के पीछे भी आवै तो भी सत्कार करना चाहिये नित्य पंच महायज्ञ करना चाहिये इनके करने में क्या प्रयोजन है इसका यह उत्तर है कि जिस्से इनको करना चाहिये प्रथम तो जिसका नाम संध्योपासन है सो ब्रह्मयज्ञ है उसके दो भेद हैं पढ़ना पढ़ाना जप परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना यह सब मिलके ब्रह्मयज्ञ कहाता है इसका फल तो बहुत लोग जानते हैं और कुछ लिख भी दिया है अब लिखना आवश्यक नहीं इसके आगे दूसरा अग्निहोत्र है और अग्निहोत्र का करना अवश्य है अग्निहोत्र से किस की पूजा होती है उत्तर परमेश्वर की पूजा होती है और संसार का उपकार होता है अग्निहोत्र में जितने मंत्र हैं वे तो परमेश्वर के स्वरूप स्तुति प्रार्थना और उपासना के वाचक हैं इस्से परमेश्वर की उपासना आती है और संसार का इस्से क्या उपकार है कि वेद ब्राह्मण और सूत्र पुस्तकों में चार प्रकार के पदार्थ होम के लिखे हैं एक तो जिसमें सुगन्ध गुण होय जैसे कि कस्तूरी केशरादिक और दूसरा जिसमें मिष्ट गुण होय जैसे कि मिश्री शर्करादिक और तीसरा जिसमें पुष्टिकारक गुण होय जैसा कि दूध घी और मांसादिक और चौथा जिसमें रोग निवृत्तिकारक गुण होय जैसा कि वैद्यकशास्त्र की रीति से सोमलतादिक औषधियां लिखी हैं उन चारों का यथावत्

शोधन उनका परस्पर संयोग और संस्कार करके होम करैं सायं और प्रातःक्योंकि संध्या काल और प्रातःकाल में मलमूत्र त्याग सब लोग प्रायःकरते हैं उसको दुर्गन्ध आकाश और वायु में मिलके वायुको दुष्ट कर देता है दुष्ट वायु के स्पर्श से अवश्य मनुष्यों का रोग होता है जैसे कि जहां२ मेला होता है। जिस२ स्थान में दुर्गन्ध अधिक है उस उस स्थान में रोग अधिक देखनेमें आता है और दुर्गन्धऔर दुष्ट वायु से जिस्को रोग होता है वही पुरुष उस स्थानको छोड़ के जहां सुगन्धवायु होय उस स्थान में जाने से रोग की निवृत्ति देखने में आती है इस्से क्या निश्चित जाना जाता है कि दुर्गन्ध युक्त वायु से बहुत से रोग होते हैं सब लोगों के मलसे जितना दुर्गन्ध होगा जब सब लोग उक्त सुगन्धादिक द्रव्यों का अग्नि में होम करैंगे उस दुर्गन्ध को निवृत्त करके वायु को शुद्ध कर देगा उस्से मनुष्योंका बहुत उपकार होगा रोगों के न होने से फिर वे सुगन्धादिकोंके परमाणु मेघमण्डल और जलमें जाके मिलेंगे उनके मिलने से सबको शुद्ध कर देंगे जोकि सूर्य की उष्णता का सुगन्ध दुर्गन्ध जल तथा रस के संयोग होने से सब अवयवों को भिन्न २ कर देता है जब अवयव भिन्न २ होते हैं तब लघु हो जाते हैं लघु होने से वायु के साथ ऊपर चढ़ जाते हैं जहां पृथ्वी से ऊपर ५० कोश तक वायु अधिक है इस्से ऊपर वायु थोड़ा है उन दोनों के सन्धि में वे सब परमाणु रहते हैं उस्से नीचे भी कुछ रहते हैं जब कि सुगन्ध दुर्गन्धि जल को वा रसको हमलोग मिलाते हैं तब वह पदार्थ

मध्यस्थ होता है वैसाही वह जल मध्यस्थ होता है जब सुन्धादिक गुण युक्त जो धूम है उसके परमाणु में अधिक तो जल है तथा अग्नि कुछ पृथिवी वायु और ये चार मिले हैं परन्तु वे भी वैसे सुगन्धादिक गुण युक्त नहीं है वे जब मध्यस्थ जलके परमाणु में जाके मिलते हैं तब उनको सुगन्धादिक गुण युक्त कर देते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं और जो कोई इस विषय में ऐसी शंका करै कि वह जल तो बहुत है होम के परमाणु थोड़े हैं कैसे उस सब जल को शुद्ध करेंगे उसका यह उत्तर है कि जैसे बहुत से शाक में अथवा बहुत सी दाल में थोड़ी सी सुगन्धित इलायची इत्यादिक और थोड़ा सा घी करछुल में वा पात्र में रखके अग्नि में तपाने से जब वह जलता है तब धूम उठता है फिर उसको दाल के पात्र में मिला के मुख बन्द करदे और छौंक देदे वह सब धूम जल होके सब अंशों में मिल जाता है फिर वह सुगन्ध और स्वादयुक्त होता है वैसेही थोड़े भी होम के परमाणु सब मध्यस्थ जल के परमाणु को शुद्ध करदेंगे फिर जब उसी जल की वृष्टि होगी और वही जल भूमि पर आवैगा उस जलके पीने से वा स्नान करने से रोग की निवृत्ति होजायगी और बुद्धि बल पराक्रम नैरोग्य बढ़ेंगे वैसेही उसी जल से अन्न घास वृक्ष और फल दूध घी इत्यादिक जितने पदार्थ होंगे वे सब उत्तम ही होंगे उनके सेवने से भी जितने जीव हैं वे सब अत्यन्त सुखी होंगे और

जो होम करने वाले हैं वे भी अत्यन्त सुख पावेंगे इस लोक में अथवा परलोक में क्योंकि अग्नियुक्त सुगन्ध के परमाणु को नासिका द्वार से जब भीतर मनुष्य ग्रहण करता है मल मूत्र त्याग समय में दुर्गंध युक्त जितने परमाणु मस्तक में प्राप्त हुये थे उन को निकाल देंगे वा सुगंधित करदेंगे तब उस मनुष्य के शरीर में सर्दी और आलस्य न होंगे उससे फूर्त्ति और पुरुषार्थ बढ़ेंगे पुष्प वा अतर के सुगन्ध से यह फल न होगा क्योंकि इस सुगन्ध में अग्नि के परमाणु मिले नहीं वे सब जगत् के उपकारक हैं इस्से उनको भी अवश्य सुखरूप उपकार होगा उस पुण्य से और जब अश्वमेधादिक यज्ञ होय तब तो असंख्य सब जीवों को सुख होय इस्से सब राजा धनाढ्य और विद्वान् लोग इस का आचरण अवश्य करें तर्पण और श्राद्ध में क्या फल होगा इस का यह समाधान है कि॥ तृप प्रीणने प्रीणनं तृप्तिः। तर्पण किस का नाम है कि तृप्ति का और श्राद्ध किसका नाम है जो श्रद्धा से किया जाता है मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है उस्से क्या आता है कि जीते भये की अन्न और जलादिकों से सेवा अवश्य करनी चाहिये यह जाना गया दूसरा गुण जिनके ऊपर प्रीति है उन का नाम लेके तर्पण और श्राद्ध करेगा तब उसके चित्त में ज्ञान का संभव है कि जैसे वे मरगये वैसे मुझ को भी मरना है मरण के स्मरण से अधर्म करने में भय होगा धर्म करनेमें प्रीति होगी तीसरा गुण यह है कि दायभाग बाटने में सन्देह न होगा क्योंकि इसका यह पिता है इसका

यह पितामह है इस का यह प्रपितामह है ऐसे ही छः पीढ़ी तक सभों का नाम कण्ठस्थ रहैगा वैसे ही इस का यह पुत्र है इस का यह पौत्र है इसका यह प्रपौत्र है इस्से दायभाग में कभी भ्रम न होगा चौथा गुण यह है कि विद्वानों का श्रेष्ठ धर्मात्माओं ही को निमन्त्रण भोजन दान देना चाहिये मूर्खों को कभी नहीं इस्से क्या आता है कि विद्वान् लोग आजीविका के बिना कभी दुःखी न होंगे निश्चिन्त हो के सब शास्त्रों को पढ़ावैंगे और बिचारेंगे सत्य २ उपदेश करेंगे और मूर्खों का अपमान होने से मूर्खों को भी विद्या के पढ़ने में और गुण ग्रहण में प्रीति होगी पाँचवां गुण यह है कि देवऋषि पितृ संज्ञा श्रेष्ठों की है देव संज्ञा दिव्य कर्म करने वालों की है पठन पाठन करने वालों की तो ऋषि संज्ञा है और यथार्थ ज्ञानियों की पितृ संज्ञा है उन को निमन्त्रण देगा तब उन से बात भी सुनेगा प्रश्न भी करेगा, उस्से उन को ज्ञान का लाभ होगा छठवां प्रयोजन यह है कि श्राद्ध तर्पण सब कर्मों में वेदों के मन्त्रों का कर्म करने के लिये कण्ठस्थ रक्खैंगे इस्से उस पुस्तक का नाश कभी न होगा फिर कोई उस विद्या का बिचार करेगा तब पदार्थ विद्या प्रगट होगी उस्से मनुष्यों को बहुत लाभ होगा सातवां प्रयोजन यह है कि॥ वसून्वदन्ति-वैपितॄन् रुद्रांश्चैवपितामहान्। प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषा-सनातनी। यह मनुस्मृति का श्लोक है इस का यह अभिप्राय है कि वसू जो है सोई पिता है जो रुद्र है सोई पितामह है जो आदित्य है सोई प्रपितामह है ये तीनों नाम परमेश्वर ही

के हैं इस्से परमेश्वर ही की उपासना तर्पण से और श्राद्ध से आई पितृ कर्म में स्वधा जो शब्द है उस का यह अर्थ है कि स्वन्दधातीति स्वधा अपने जनों को ज्ञानादिकों से धारण करै अथवा पोषण करै उस का नाम है स्वधा स्वधा नाम है परमेश्वर का किन्तु अपने ही पदार्थ को धारण करना चाहिये औरों के पदार्थ का धारण न करना चाहिये अन्याय से अथवा अपने ही पदार्थसे प्रसन्नता करनी चाहिये छल कपट वा पर पदार्थसे पुष्टि की इच्छा न करनी चाहिये इस प्रकार का स्वाहा और स्वधा का अर्थ शतपथ ब्राह्मण पुस्तक में लिखा है इतने सात प्रयोजन तो कह दिये और भी बहुत से प्रयोजन हैं बुद्धिमान् लोग बिचार से जान लेवैं और बलि बैश्व देव का प्रयोजन तो होम के नाईं जान लेना फिर यह भी प्रयोजन है कि भोजन के समय बलि बैश्व देव करैंगे वे भी सुगन्ध से प्रसन्न हो जांयगे और वह स्थान सुगन्ध युक्त होने से मक्खी मच्छरादिक जीव सब निकल जाँयगे उस्से मनुष्यों को बहुत सुख होगा यह प्रयोजन अग्निहोत्रादिक होम का भी जान लेना और अतिथि सेवा से बहुत गुणों की प्राप्ति होगी इत्यादिक बहुतसे प्रयोजन हैं इस्से अपने पुत्रोंको पिता सब उपदेश करदे उपदेश करके आचार्यके पास अपने सन्तानोंको भेजदे कन्याओं की पाठशाला में पढ़ाने वाली और नौकर चाकर सब स्त्री ही लोग रहैं पांच वर्षका बालक भी वहां न जाय वैसे ही पुत्रों की पाठशाला में पांच वर्षकी कन्या भी न जाय वे कन्या और पुत्र इन का परस्पर मेल भी न होय। ब्राह्मणक्षत्रियाणांवर्णा-

नामुपनयनङ्कर्त्तुमर्हति । राजन्योद्वयस्य वैश्यो वैश्यस्यैवेतिशूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीत मध्यापयेदित्येके । यह शुश्रुत के सूत्र स्थान के द्वितीयाध्याय का वचन है ब्राह्मणको अधिकार तीन वर्णोंके बालकोंका यज्ञोपवीत करानेका है क्षत्रिय को क्षत्रिय और वैश्य इनदो वर्णोंके बालकोंका यज्ञोपवीत कराने का अधिकारहै और वैश्यको वैश्यवर्णही का यज्ञोपवीत कराने का अधिकार है और शूद्र लोगोंकी कन्या भी कन्याओंके पाठशाला में पढ़ैं शूद्रों केबालक यज्ञोपवीत के बिना सब शास्त्रोंको पढ़ैं परन्तु वेद की संहिता को छोड़ के उनके जो आचार्य हैं वे प्रतिज्ञा पूर्वक नियम बांधें प्रथम तो काल का निमम करैं । षट्त्रिंशदाब्दिकंचर्यं गुरौत्रैवेदिकंव्रतम् । तदर्द्धिकंपादिकंवा ग्रहणान्तिकमेववा ॥ ब्रह्मचर्याश्रम का नियम २५ । ३० । ४० ४४ । ४८ वर्ष तक है अथवा उसका अर्द्ध १८ अथवा ६ नव वर्ष अथवा जबतक पूर्ण विद्या न होय तब तक यह मनुस्मृति का श्लोक है पूर्वोक्त शुश्रुत में शरीर की अवस्था धातुओं के नियम से४ प्रकार की लिखीहै ॥ वृद्धिर्यौवनंसंपूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति । षोड़श वर्ष से २५ वर्ष तक धातुओं की वृद्धि होती है और २५ वर्ष से आगे युवाऽवस्था का प्रारम्भ होता है अर्थात् सब धातु क्रम से बल को ग्रहण करते हैं उन के बल की अवधि ४० वें वर्ष सम्पूर्ण होती है उत्तम पुरुष के ब्रह्मचर्य का नियम ४०वर्ष तक होता है और छान्दोग्य उपनिषद् में ४४ वा ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य जो कर्त्ता है वह पुरुष विद्या पराक्रम और सब श्रेष्ठ गुणों में उत्तमों में भी उत्तम

होगा और ३० से ३६ वर्ष तक मध्यम ब्रह्मचर्य का नियम है और २५ से ३० वर्ष तक न्यून से न्यून ब्रह्मचर्य का नियम है इस्से न्यून ब्रह्मचर्य का नियम कभी न होना चाहिये जो कोई इस्से न्यून ब्रह्मचर्याश्रम करेगा अथवा कुछ भी न करेगा उस को धैर्यादिक श्रेष्ठ गुण कभी न होंगे सदा रोगी, भ्रष्टबुद्धि, विद्याहीन, कुत्सित, कर्मकारी ही होगा क्यों कि जिस के धातुओं की क्षीणता और विषमता शरीर में होगी उस मनुष्य को किसी रीति से सुख न होगा और कन्याओं का २० से २४ वर्ष तक उत्तम ब्रह्मचर्याश्रम है १६ वर्ष से आगे २० वर्ष तक मध्यम ब्रह्मचर्याश्रम का काल है १६ वें वर्षसे १७ वा १८ वर्ष तक अधम ब्रह्मचर्य का काल है १६ वर्ष से न्यून कन्याओं का ब्रह्मचर्य कभी न होना चाहिये जो कोई कन्या १६ वर्ष से न्यून ब्रह्मचर्याश्रम को करेगी वह विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम, धैर्यादिक गुणों से रहित और रोगादिक दोषों से युक्त होगी सदा दुःखी ही रहेगी इस्से ब्रह्मचर्याश्रम पुरुषों को वा कन्याओं को न्यून कभी न करना चाहिये॥

पञ्चविंशेततोवर्षे पुमान्नारीतु षोड़शे समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलोभिषक् ॥ यह शुश्रुत का बचन है इसका यह अर्थ है कि १६ वर्ष से न्यून कन्या का विवाह कभी न करना चाहिये और २१ वर्ष से न्यून पुरुषों का भी न करना चाहिये और जो कोई इस बात का व्यतिक्रम करै कि १६ से पहिले कन्याओं का विवाह करै और २५ वर्ष

से पहिले पुत्रों का विवाह करै उसको राजा दंड दे उनके माता पिता को भी और जो कोई अपने सन्तानों को पाठशाला में पढ़ने के लिये न भेजै उसको भी राजा दंड देवे क्यों कि सब लोगों का सत्य व्यवहार और धर्म व्यवहार की व्यवस्था राजा ही के अधीन है जिस देश का जो राजा होय उसी को इस व्यवस्था को प्रीति से पालन करना चाहिये सो गुरु जो आचार्य यह प्रथम तो उक्त नियम को करावै आगे और नियमों को भी। ऋतंचस्वाध्याय प्रवचनेच सत्यञ्चस्वाध्याय प्रवचनेच तपश्चस्वाध्याय प्रवचनेच दमश्चस्वाध्याय प्रवचनेच शमश्चस्वाध्याय प्रवचनेच अग्नयश्चस्वाध्याय प्रवचनेच अग्निहोत्रञ्च स्वाध्याय प्रवचनेच अतिथयश्च स्वाध्याय प्रवचनेच मानुषञ्च स्वाध्याय प्रवचनेच प्रजाचस्वाध्याय प्रवचनेच प्रजनश्चस्वाध्याय प्रवचनेच प्रजातिश्चस्वाध्याय प्रवचनेच ॥ यह तैत्तिरीयोपनिषद् का बचन है ऋत नाम है यथार्थ और सत्य २ ज्ञान का ब्रह्मचारी लोग और अध्यापक लोग सत्य २ बात की प्रतिज्ञा करैं कि सत्य २ ही को मानैंगे मिथ्या को कभी नहीं और कभी असत्य को न सुनेंगे न कहैंगे स्वाध्याय नाम पढ़ना प्रवचन नाम पढ़ाना सत्य २ पढ़ैंगे और सत्य २ पढ़ावेंगे सत्य ही कर्म करेंगे और करावेंगे तप नाम धर्मानुष्ठान का है सदा धर्म ही करेंगे और अधर्म कभी नहीं हम लोग जितेन्द्रिय होंगे किसी इन्द्रिय से

कभी पर पदार्थ और पर स्त्री ग्रहण न करेंगे इसका नाम दम है शम नाम अधर्म की मन से इच्छा भी न करनी अग्नयश्च नाम अग्नि में जगत् के उपकार के लिये सदा हम लोग होम करेंगे अग्निहोत्रञ्च नाम अग्निहोत्र का नियम सब दिन पालेंगे अतिथियों की सेवा सब दिन करेंगे मानुषञ्च नाम मनुष्यों में जैसा जिससे व्यवहार करना चाहिये वैसा ही करेंगे बड़ा छोटा और तुल्य इनको जैसा मानना चाहिये वैसा उसको मानेंगे और जिस रीति से प्रजा की उत्पत्ति करनी चाहिये प्रजा का व्यवहार और पालन जैसा करना चाहिये धर्म से वैसाही करेंगे प्रजनश्च नाम वीर्यप्रदान जो करेंगे सो धर्म ही से करेंगे प्रजातिश्च नाम जैसा कि गर्भ का पालन करना चाहिये और जन्म के पीछे भी जैसा पालन करना चाहिये वैसाही पालन उसका करेंगे परन्तु ऋतादि करेंगे स्वाध्याय प्रवचन का त्याग कभी नहीं करेंगे स्वाध्याय पढ़ना प्रवचन नाम पढ़ाना ऋतादिकों का ग्रहण ही पूर्वक स्वाध्याय और प्रवचन को सदा करना चाहिये इसका विचार सब दिन करेंगे इसके छोड़ने से संसार की बहुत सी हानि होजाती है इस प्रकार से शिष्यों के प्रति पुरुष कन्याओं को स्त्री पुरुषों को पुरुष शिक्षा करें ।

वेदमनूच्याचर्यौतेवासिन मनुशास्ति सत्यम्वदधर्मंचर स्वाध्यायान्माप्रमदः आचार्याय प्रियंधनमाहृत्य प्रजातन्तुम्माव्यवच्छेत्सीः सत्यान्नप्रमदितव्यम् धर्मान्नप्रमदितव्यम्

कुशलान्नप्रमदितव्यम् स्वाध्यायप्रवचनाभ्यांनप्रमदितव्यम् देवपितृकार्याभ्यांनप्रमदितव्यम् मातृदेवोभव पितृदेवोभव आचार्यदेवोभव अतिथिदेवोभव यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नोइतराणि यान्यस्माकंसुचरितानि तानित्वयो-पास्यानि नोइतराणि येकेचास्मच्छ्रेयांसोब्राह्मणास्तेषांत्व-यासनेन प्रश्वसितव्यम् श्रद्धयादेयम् अश्रद्धयादेयम् श्रियादे-यम् ह्रियादेयम् भियादेयम् संविदादेयम् अथयदिते कर्म विचिकित्सा वा वृत्त विचिकित्सावास्यात् ३ ये तत्रब्राह्मणाः समदर्शिनः युक्ता अयुक्ताः अलुक्षाधर्मकामाः स्युः यथातेत-त्रवर्तेरन् तथातत्रवर्त्तेथाः एषआदेश एषउपदेश एषावेदोप निषत् एतदनुशासनम् एवमुपासितव्यम् एवमुचैतदुपास्यम् ११ यह तैत्तिरीयोपनिषद् का बचन है इसी प्रकार से गुरु लोग शिष्यों को उपदेश करें हे शिष्य तूं सब दिन सत्य ही बोल और धर्मही को कर स्वाध्याय नाम पढ़ने में जैसे तुमको विद्या आवै वैसेही कर जब तक विद्या तुमको पूर्ण न होय तब तक ब्रह्मचर्य का त्याग न करना फिर जब विद्या और ब्रह्मचर्य भी पूर्ण होजाय तब जैसा तु-मारा सामर्थ्य होय वैसा उत्तम पदार्थ आचार्य को दे के प्रसन्न करना चाहिये और आचार्य भी उनको शीघ्र विद्या होय वैसाही करै केवल अपनी सेवा के लिये सब दिन भ्रम में न रक्खें कृपा करके विद्या पढ़ावें छल कपट आचार्य लोग कभी न करें क्योंकि सत्यगुणों का प्रकाशही करना

उचित है सब शिष्ट लोगों को जब ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या भी हो जाय तब उनको विवाह करना उचित है प्रजा का छेदन करना उचित नहीं और सत्य से प्रमाद न करना चाहिये अर्थात सत्य को छोड़ के असत्य से कोई व्यवहार न करना चाहिये धर्म ही से सब व्यवहारों को करना चाहिये धर्म से विरुद्ध कोई कर्म न करना चाहिये कुशलता को सब दिन ग्रहण करना चाहिये और दुराग्रह अभिमान को कभी न करना चाहिये नम्रता शरलता से सदा गुण ग्रहण करना चाहिये भूति नाम सिद्धि इनकी प्राप्ति में पुरुषार्थ सदा करना चाहिये और पढ़ने पढ़ाने से रहित कभी न होना चाहिये सब दिन पढ़ने पढ़ाने का पुरुषार्थ ही करना चाहिये देवकार्य नाम अग्निहोत्रादिक पितृकार्य नाम श्राद्ध तर्पणादिक उसको कभी न छोड़ना चाहिये माता पिता अतिथि और आचार्य इनकी सेवा कभी न छोड़नी चाहिये क्योंकि उनोंने जो पालन किया है वा विद्या दी है अथवा सत्य जो उपदेश करते हैं इस उपकार को कभी न भूलना चाहिये इनको अवश्य मानना चाहिये और जितने धर्म युक्त कर्म हैं उनको करना चाहिये और पाप कर्मों को कभी न करना चाहिये माता पिता आचार्य और अतिथि भी शास्त्र प्रमाण से धर्म विरुद्ध जो उपदेश करें अथवा पाप कर्म करावें उनको कभी न करना चाहिये और उनके जो सुकर्म हैं उनको तो अवश्य करना चाहिये उनके जो

दुष्टकर्म हैं उनको कभी न करना चाहिये वैसे ही मातादिक उपदेश करैं कि हम लोग जो सुकर्म करैं उनको तुम लोगों को अवश्य करना चाहिये हम लोग जो दुष्टकर्म करैं उनको कभी न करना चाहिये जो मनुष्य लोगों के बीच में विद्या वाले धर्मात्मा और सत्यवादी होंय उन का सब दिन सङ्ग करना चाहिये उन से गुण ग्रहण करना चाहिये उनके बचन में और उनमें अत्यन्त श्रद्धा करनी चाहिये शिष्य लोग जब सुपात्र और धर्मात्मा मिलैं तब श्रद्धा से उन को जो प्रिय पदार्थ हो उसको देवैं अथवा अश्रद्धा से भी देना चाहिये श्री नाम लक्ष्मी से देवैं दारिद्र्य होवै तो भी दान की इच्छा न छोड़नी चाहिये लज्जा और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये अर्थात् किसी प्रकार से देना चाहिये दान का बंधक भी न करना चाहिये परन्तु श्रेष्ठ सुपात्रों को देना चाहिये कुपात्रों को कभी नहीं किसी को अन्याय से दुःख न देना चाहिये सब लोगों को बन्धुवत् जानना चाहिये और सब लोगों से प्रीति करनी चाहिये किसी से विवाद न करना चाहिये सत्य का खण्डन कभी न करना चाहिये और जो तुम को किसी विषय वा किसी पदार्थ विद्या में सन्देह होय तब तुम लोग ब्रह्मवित् पुरुषों के पास जाओ वे कैसे होंय कि सर्वशास्त्रवित् निर्वैर पक्षपात कभी न करैं वे युक्त अर्थात् योगी अथवा तपस्वी होंय रूक्ष न म कठोर स्वभाव न होंय और धर्म काम में सम्पन्न होंय उनसे पूछ के संदेह निवृत्ति कर लेना वे जिस प्रकार से धर्म में वर्तमान

करैं वैसा ही तुम को धर्म में वर्तमान होना चाहिये यही आदेश है आदेश नाम परमेश्वर की आज्ञा है यही उपदेश है उपदेश नाम इसी का उपदेश कहना योग्य है यही वेदोपनिषत् है नाम वेदों का सिद्धान्त है और यही अनुशासन है अनुशासन नाम सुनियम और शिष्टाचार है ऐसे ही धर्म की उपासना करनी चाहिये इसी प्रकार जानना भी चाहिये इसी प्रकार कहना भी चाहिये गुरु शिष्य को परस्पर ऐसा वर्तमान करना चाहिये ॐसहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तुमा विद्विषावहै ॐशान्तिश्शान्तिश्शान्तिः सहनाम परस्पर रक्षा करैं गुरु तो शिष्यों की कुकर्मों से रक्षा करैं और शिष्य लोग गुरू की आज्ञा पालन और गुरू की सेवा से रक्षा करैं सदैव परस्पर भोग करैं अर्थात् जो शिष्य लोग कोई उत्तम अन्न पान वस्त्रादिकों को प्राप्त होंय सो पहिले गुरू को निवेदन कर के शिष्य लोग भोजनादिक करैं सहनाम परस्पर वीर्य को करैं वीर्य नाम पराक्रम नाम सत्य २ जो विद्या उस को बढ़ावैं जब गुरु यथावत् परिश्रम से विद्या दान करैंगे तब उनको भी विद्या तीव्र होगी शिष्य लोग यथावत् परिश्रम से और सुविचार से विद्या ग्रहण करैंगे तब उन की भी सत्य २ विद्या तीव्र होगी ऐसे सब गुरु शिष्य विचार करैं कि हम लोगों का पढ़ना पढ़ाना तेजस्वी नाम प्रकाशित होय जिस का शिष्य विद्यावान् नहीं होता उसका जो गुरु है उसी की निन्दा होती है बहुत से एक गुरू के पास पढ़ते हैं उनमें से कितने तो विद्यावान्

होते हैं और कितने नहीं गुरू तो यथावत् पढ़ावेंगे और कोई शिष्य यथावत् विद्या को ग्रहण न करेगा तब तो उस शिष्य की निन्दा होगी इस्से इस प्रकार का पढ़ना पढ़ाना करना चाहिये कि सत्य २ विद्या का प्रकाश होय और अविद्या जो अन्धकार उसका नाश होय ॥ कामात्मतान-प्रशस्ता नचैवेहास्त्यकामता । काम्योहिवेदाधिगमः कर्मयो-गश्चवैदिकः ॥ मनुष्यों को विषयों में जो कामात्मता नाम अत्यन्त कामना सो श्रेष्ठ नहीं और अकामता नाम कोई पदार्थ की इच्छा भी न करनी वह भी श्रेष्ठ नहीं क्यों कि विद्या का जो होना सो इच्छा ही से है धर्म विद्या और परमेश्वर की उपासना की तो कामना अवश्य ही करना चाहिये क्यों कि ॥ काम्योहिवेदाऽधिगमः । वेद विद्या की जो प्राप्ति है सो कामनाऽधीन ही है और वैदिक कर्म जितने हैं वे भी कामनाऽधीन ही हैं इस्से श्रेष्ठ पदार्थों की कामना सदा करनी चाहिये और अश्रेष्ठ पदार्थोंकी कामना कभी नहीं ॥ सङ्कल्पमूलः कामोवैयज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः व्रतानि-यमधर्माश्चसर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताःकाम का मूल सङ्कल्प है अर्थात् सङ्कल्प ही से काम की उत्पत्ति होती है हृदय से बाह्य पदार्थ की प्राप्ति की सूक्ष्म जो इच्छा उसको सङ्कल्प कहते हैं ब्रह्मचर्यादिक जितने व्रत हैं ये भी काम ही से सिद्ध होते हैं पाँच प्रकार के यम होते हैं अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहायमाः । यह योग शास्त्र का सूत्र है इसका यह अर्थ है कि अहिंसा नाम कोई से कभी भी वैर

न करना सत्य जैसा हृदय में है वैसा ही वचन कहना अस्तेय, नाम चोरी का त्याग बिना आज्ञा से किसी का पदार्थ न ग्रहण करना ब्रह्मचर्य नाम विद्या बल बुद्धि पराक्रम की यथावत् प्राप्ति करनी अपरिग्रह नाम अभिमान कभी न करना धर्म नाम न्याय का न्याय नाम पक्षपात का त्याग करना जैसे कि अपना प्रिय पुत्र भी दुष्ट कर्म के करने से मारा जाता होय तोभी मिथ्या भाषण न करै॥ अकामस्यक्रियाकाचि दृश्यतेनेहकर्हिचित् । यद्यद्धिकुरुतेकि-ञ्चित्तत्तत्कामस्यचेष्टितम् ॥ जिस पुरुष को कामना न होय तो उसको नेत्रादिकों की कुछ भी चेष्टा भी न होय इससे जो २ शरीर में कुछ भी चेष्टा होनी है सो २ काम ही से होता है ऐसा ही निश्चय जानना इससे क्या आया कि काम के विना कोई भी शरीर धारण नहीं कर सकता और खाना पीना भी नहीं कर सकता इसलिये श्रेष्ठ पदार्थों की कामना सब दिन करनी ही चाहिये दुष्ट पदार्थों की कभी नहीं और जो पुरुषार्थ को छोड़ेगा सो तो पाषाण और काष्ठ की नाँई होगा इससे आलस्य कभी न करना चाहिये और पुरुषार्थ को छोड़ना भी नहीं ॥ आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्त स्मार्त्त एवच । तस्मादस्मिन्सदायुक्तो नित्यंस्यादात्मवान्द्विजः ॥ शास्त्र को पढ़ के सत्य धर्म का आचरण जो न करै उसका पढ़ना व्यर्थ ही है सोई परम धर्म है परन्तु वह आचार वेदादिक सत्य शास्त्रोक्त और मनुस्मृत्युक्त ही लेना तिस हेतु से इस आचरण नाम धर्माचरण में द्विज

लोग अर्थात सब मनुष्य लोग युक्तयुक्तः संपूर्णफलं भागभवेत् ॥ जो पुरुष वेदोक्त आचार को नहीं होय ॥ आचाराद्विच्युतोविप्रो नवेदफलमश्नुते। आचारेणतुसंयुक्ता उसका जो विद्या का पढ़ना है उसका फल वह नहीं पाता और जो वेदादिकों को पढ़ के यथोक्त आचार करता है उसको संपूर्ण सुख रूप फल होता है ॥ योऽवमन्येततेमूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः। ससाधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिकोवेदनिन्दकः ॥ कुतर्क से जो कोई मनुष्य श्रुति नाम वेद स्मृति नाम धर्म शास्त्र ये दोनों धर्म के प्रकाशक हैं और धर्म के मूल हैं इनको जो न माने उसको सज्जन लोग सब अधिकारों से बाहर कर देवें क्योंकि वह नास्तिक है जो वेद नाम विद्या की निन्दा करता है सोई पुरुष नास्तिक होता है ॥ वेदःस्मृतिः सदाचारः स्वस्यचप्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधम्प्राहुः साक्षाद्धर्मस्यलक्षणम् ॥ श्रुतिस्मृतिसत्पुरुषोंका आचार और अपने हृदय की प्रसन्नता नाम जितने पाप कर्म हैं उनकी इच्छा जब पुरुष को होती है तब उसी समय भय, शङ्का और लज्जा से हृदय में अप्रसन्नता होती है और जितने पुण्य कर्म हैं उनमें नहीं होती इससे जिस २ कर्म में हृदय का अन्तर्यामी प्रसन्न होय वही धर्म है और जिसमें अप्रसन्न होय वही अधर्म जानना इसके उदाहरण चोरजारादिक हैं इसको साक्षाद्धर्म का ४ प्रकार का लक्षण कहते हैं ॥ अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानंविधीयते। धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणंपरमंश्रुतिः ॥ जो

मनुष्य अर्थों में नाम धनादिकों में आसक्त नाम लोभ नहीं करते हैं और काम नाम विषयासक्तिमें जो आसक्त नहीं नाम फसे नहीं हैं उन्हीको धर्मका ज्ञान होता है अन्यको कभी नहीं परन्तु जिनको धर्म जाननेकी इच्छा होय वे वेदादिक शास्त्र पढ़ें और विचारें उनका बिना पढ़नेसे धर्मका यथार्थ ज्ञान न होगा ॥ वेदास्त्यागश्चयज्ञाश्च नियमाश्चतपांसि । नविप्रदुष्टभावस्य सिद्धिङ्गच्छन्तिकर्हिचित ॥ वेद, विद्या, त्याग, यज्ञ, नियम और तप इतने विप्र दुष्ट नाम अजितेन्द्रिय पुरुष को कभी सिद्ध नहीं होते । इससे जितेन्द्रियता का होना सब मनुष्यों का आवश्यक है जितेन्द्रिय का लक्षण क्या है कि ॥ श्रुत्वास्पृष्ट्वाचदृष्ट्वाचभुक्त्वाघ्रात्वाचयोनरः । न हृष्यतिग्लायतिवा सविज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ जिस पुरुष को अपनी निंदा सुन के शोक न होय और अपनी स्तुति सुन के हर्ष न होय तथा दुष्टस्पर्श, दुष्टरूप; दुष्टरस और दुष्टगन्ध को पाके शोक न होय और श्रेष्ठस्पर्श, श्रेष्ठरूप, श्रेष्ठरस और श्रेष्ठगन्ध, को प्राप्त होके जिसको हर्ष नहीं होता उसको जितेन्द्रिय कहते हैं अर्थात् सब मनुष्यों को यही योग्यताहै कि न हर्ष करना चाहिये न शोक किन्तु न शोक में गिरै न हर्ष के मध्यहीमें सदा बुद्धिको रक्खै यही सुख का स्थान है ॥ ब्रह्माऽरम्भे ऽवसानेच पादौग्राह्यौ-गुरोः सदा; । संहत्यहस्तावध्येयं सहिब्रह्माञ्जलिः स्मृतिः ॥ जब शिष्य गुरू के पास पढ़ने का नित्य आरम्भ करैं तब आदि और अन्तमें गुरू को नमस्कार और पादस्पर्श करैं जब तक पढ़ें तथा गुरू के सन्मुख रहैं तब तक हाथ ही जोड़ के रहैं इसी

का नाम ब्रह्माञ्जलि है जब गुरू उठे तब आप ही पहिले उठै जो आप बैठा होय और गुरू आवैं तब अपने उठ के सन्मुख जाके गुरू को शीघ्र ही नमस्कार करै और उत्तम आसन पर बैठावै आप नीचे आसन पर बैठे और नम्र होके पूंछे अथवा पुनै। नापृष्टःकस्यचिद्ब्रूयान्नचान्यायेनपृच्छतः। जानन्नपिहिमेधावी जडवल्लोकआचरेत्। जब तक कोई न पूछे तब तक कुछ न कहै और जो कोई हठ; छल और कपट से पूंछे उससे कभी न कहै जाने तो भी मूर्खों के सामने मौन ही रहना ठीक है क्यों कि शठ लोग कभी न मानेंगे इस्से उनसे कहना व्यर्थ ही है। अधर्मेणचयःप्राह यश्चाधर्मेणपृच्छति। तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषंवा विगच्छति॥ जो कोई अधर्म से कहता और जो अधर्म से पूंछता है नाम छल, कपट, दोनों का विरोध होने से किसी का मरण अथवा विद्वेष हो जाय तो अवश्य होगा इस्से गुरू शिष्य अथवा कोई मनुष्य जो इस शिक्षा को मानेगा और यथावत् करेगा उस को बड़ा सुख होगा। आचार्यपुत्रःशुश्रूषुर्ज्ञानदोधार्मिकः शुचिः। आप्तःशक्तोऽर्थदः साधुः स्वोध्याप्यादशधर्मतः। आचार्य का पुत्र शुश्रूषु नाम सेवा का करने वाला तथा ज्ञान का देने वाला वा धार्मिक शुचि नाम पवित्र आप्त नाम पूर्ण काम और शक्त नाम समर्थ अर्थद नाम अर्थका देने वाला साधु नाम सत्य मार्गमें चलाने वाला और सत्य का उपदेश करने वाला इन दश पुरुषों को विद्वान् धर्म और परिश्रम से पढ़ावैं जिस्से कि वे विद्यावान् होंय क्यों कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और उन सभों की

स्त्री वे सब जब तक विद्या वाले न होंगे तब तक यथावत बुद्धि, बल, पराक्रम, वैराग्य और धर्म की उन्नति कभी न होगी आर्यावर्त्त देश की उन्नति तभी होगी जब विद्या का यथावत् प्रचार होगा और जब तक उक्त प्रचार में प्रवृत्त न होंगे तब तक सुख के दिन कभी न आवेंगे क्यों कि ब्राह्मण और सम्प्रदायिक लोग पढ़ के यथावत् धर्म में निश्चित तो नहीं होते किन्तु अपनी २ आजीविका और अपना २ सम्प्रदाय जो वेद विरुद्ध पाखण्ड उनहीं को बढ़ावेंगे और जीविका के लोभ से सब दिन छल कपट ही में रहेंगे कभी धर्म में चित्त न देंगे न धर्म को जानेंगे क्यों कि उन को पाखण्ड ही से सुख मिलता है इस्से पाखण्ड ही को बढ़ावेंगे धर्मको कभी नहीं जब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पढ़ेंगे उन को आजीविका नाश का भय तो नहीं है इस्से कभी छल कपट से असत्य न कहेंगे इस्से सत्य ही सत्य प्रवृत्ति होगी और वे क्षत्रियादिक जब तक न पढ़ेंगे तब तक आर्यावर्त्त देश वासियों के मिथ्याचार और पाखण्डों का नाश कभी न होगा जो राजा और जितने धनाढ्य लोग हैं उन को तो अवश्य सब शास्त्रों को पढ़ना चाहिये क्यों कि उन के पढ़े बिना कोई प्रकार से भी विद्या का प्रचार धर्म की व्यवस्था और आर्यावर्त्त देश की उन्नति कभी न होगी उन की बहुत सी हानि भी होगी क्यों कि उन के अधिकार में राज्य धन और बहुत से पुरुष रहते हैं जब वे विद्वान्, बुद्धिमान, जितेन्द्रिय और धर्मात्मा होंगे तब उन के राज्य में धर्म और विद्या का प्रचार होगा उन का धन अनर्थ

में कमी न जायगा और उन के सङ्गी सब श्रेष्ठ धर्मात्मा होंगे इस्से सब देशस्थों का उपकार होगा केवल आर्यावर्त्त बासियों का नहीं किन्तु सब देशस्थ मनुष्यों को ऐसा ही करना उचित है कि पक्षपात का छोड़ना सत्य का ग्रहण करना और जितने मत हैं वे सब मूर्खों ही के कल्पित हैं और बुद्धिमानों का एक ही मत अर्थात् सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना है इस्से क्या आया कि जो लाभ विद्या के प्रचार से होता है ऐसा लाभ कोई अन्य प्रकार से नहीं होता ये सब श्लोक मनुस्मृति के हैं जो पढ़ना अथवा पढ़ाना सो शास्त्रोक्त प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से सत्य२ परीक्षित करके ही पढ़ना और पढ़ाना भी ॥ इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्। यह गोतम मुनि का सूत्र है सो प्रत्यक्ष सब को अवश्य मानना चाहिये। अक्षस्य २ प्रतिविषयंवृत्तिः प्रत्यक्षम्। अक्ष नाम इन्द्रिय का है इन्द्रिय इन्द्रिय के प्रति विषय ग्रहण करने वाली जो वृत्ति तज्जन्य जो ज्ञान इस को प्रत्यक्ष कहते हैं सो जब किसी वाह्य व्यवहार को जीव को इच्छा होती है तब मन को संयुक्त हो के जीव प्रेरणा कर्त्ता है तब मन इन्द्रियों को अपने २ विषयों के प्रति प्रेरता है तब इन्द्रियों का और विषयों का सन्निकर्ष होता है अर्थात् सम्बन्ध होता है सम्बन्ध किसका नाम है कि उन उन इन्द्रिय और विषयों का जो यथावत् वृत्ति नाम वर्तमान का होना अथवा ज्ञान का होना उस का नाम है सन्निकर्ष सन्निकर्षोवृत्तिर्ज्ञानंवा। यह वात्स्यायन भाष्य का बचन है इस पुस्तक

में बारम्बार न लिखा जायगा परन्तु ऐसा जानना कि जो कुछ लिखा जायगा सो गौतम सूत्रादि के अनुसार ही से और वात्स्यनादिक मुनि के भाष्यों के अभिप्राय से लिखा जायगा उसमें जिन को शङ्का अथवा अधिक जानना चहे सो उन ग्रन्थों में देखले वैसा प्रत्यक्षज्ञान ठीक २ यथावत् तत्वस्वरूप जानना उस के भिन्न जो होगा उस को भ्रम नाम अज्ञान कहा जायगा जैसे कि । व्यवस्थितः पृथिव्यांगन्धः अप्सुरसः रूपन्तेजसि वायौ स्पर्शः । ये सूत्र और अभिप्राय वैशेषिक सूत्रकार मुनि के हैं इन्द्रियों से गुणों का ग्रहण होता है द्रव्य का कभी नहीं क्यों कि । श्रोत्र ग्रहणोयोऽर्थः सशब्दः । यह वैशेषिकका सूत्र है ऐसे सब सूत्र हैं मह लोग श्रोत्र नाम कर्णेन्द्रिय से शब्दहो का ग्रहण कर्ते है और स्पर्शादिकों का नहीं ऐसे ही स्पर्शेन्द्रिय से स्पर्श ही का ग्रहण कर्ते हैं तथा नेत्र से रूप का जीभ से रस का और नासिका से गन्ध का ये शब्दादिक आकाशादिकों के गुण हैं गुणों ही को इन्द्रियों से ग्रहण करते हैं आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इनका ग्रहण इन्द्रियों से कभी नहीं होता मन से तो जीव आकाशादिकों का प्रत्यक्ष ग्रहण कर्त्ता है क्यों कि जो जिस का स्वाभाविक गुण है वह उस्से भिन्न कभी नहीं होता जैसे कि पृथ्वी का स्वाभाविक गुण गन्ध है सो पृथ्वी से भिन्न कभी नहीं रहता और गन्ध से पृथ्वी भी भिन्न नहीं रहती इन दोनों के सम्बन्ध से जीव को गन्ध के ज्ञान होने से पृथ्वी का भी प्रत्यक्ष होता है वैसे ही रस, रूप, स्पर्श और शब्दों का जीभ नेत्र त्वक् और श्रोत्र

से ग्रहण होने से जल, अग्नि, वायु और आकाश का भी मन से जीव को प्रत्यक्ष होता है सो प्रत्यक्ष किस प्रकार का लेना कि पृथ्वी में जल; अग्नि और वायु के प्रबन्ध होने से रस, रूप और स्पर्श भी ये तीनों गुण देख पड़ते हैं परन्तु तीन गुण स्पर्शादिक वायु आदिकों के संयोग निमित्त ही से हैं वैसे ही जल में रूप और स्पर्श मिले हैं तथा अग्नि में स्पर्श और वायु में शब्द आकाश में कोई नहीं एक शब्द ही अपना स्वाभाविक गुण है वायु में जो शब्द है सो आकाश के संयोग निमित्त से और जल में जो गन्ध है सो पृथ्वी के संयोग से है ऐसे ही अन्यत्र जान लेना सो प्रत्यक्ष ज्ञान ऐसा लेना कि अव्यपदेश्य नाम संज्ञा से जो होता है जैसे कि घट एक पदार्थ की संज्ञा है इस संज्ञा से जिस का नाम कि घट है वह घट शब्द के उच्चारण से कि यूं घड़े को ला जब वह घड़ा लेने को चला जिस वक्त उसने घड़े को देखा उस वक्त जो घट संज्ञा सो उस को न देख पड़ी किन्तु जैसी घट की आकृति और रूप वही तो देख पड़ा और घट शब्द नहीं फिर वह घड़े को लेके जिस ने आज्ञा दी थी उसके पास घड़े को रख के बोला कि यह घड़ा है उसने घड़े को प्रत्यक्ष देखा परन्तु उसमें घड़ा ऐसा जो नाम उस को उसने भी न देखा के जो संज्ञा बिना पदार्थ मात्र का ज्ञान होना उसको अव्यपदेश्य कहते हैं और जो व्यपदेश्य ज्ञान है सो तो शब्द प्रमाण में है प्रत्यक्ष में नहीं और दूसरा प्रत्यक्ष ज्ञान का अव्यभिचार यह विशेषण है सो जानना चाहिये व्यभिचार ज्ञान इस

प्रकार का होता है कि अन्य पदार्थ में भ्रम से अन्यपदार्थ का ज्ञान होना जैसे कि लकड़ी के स्तम्भ में पुरुष का ज्ञान रज्जु में सर्प का सीप में चांदी और पाषाणादिक मूर्ति में देव का ज्ञान इत्यादिक ज्ञान सब व्यभिचार हैं उस समय में तो यथार्थ भ्रम से देखने में आते हैं परन्तु उत्तर काल में स्तम्भादिकों का साक्षात् प्रत्यक्ष निर्भ्रम तत्त्वज्ञान के होने से पुरुषादिकों का जो भ्रम से ज्ञान हुआ था सो नष्ट हो जाता है इससे क्या आया कि जिस ज्ञान का कभी व्यभिचार नाम नाश न होय उस को कहते हैं अव्यभिचार ज्ञान सो प्रत्यक्ष अव्यभिचार ही लेना अन्य नहीं और इस प्रत्यक्ष का तीसरा विशेषण व्यवसायात्मक है व्यवसाय नाम है निश्चय का और जो जिसका तत्त्व स्वरूप है उस का नाम है आत्मा जब तक उस पदार्थ का तत्त्व नाम स्वरूप निश्चय न होय तब तक व्यवसायात्म ज्ञान नहीं होता और जब उसके स्वरूप का यथावत् ज्ञान का निश्चय होता है उसको व्यवसायात्मक कहते हैं जैसे कि दूर से श्वेतबालुका देखी अथवा घोड़ा देखा उस के नेत्र से सम्बन्ध भी भया परन्तु उसके हृदय में निश्चय न हुआ कि यह वस्त्र अथवा बालू अथवा और कुछ है यह घोड़ा अथवा गैया अथवा और कुछ है जब तक यथावत् वह निकट से न देखेगा तब तक सन्देह की निवृत्ति न होगी और जब तक सन्देह की निवृत्ति न होगी तब तक सन्देहात्मक नाम भ्रमात्मक ज्ञान रहेगा उस को प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं जानना और जो

सत्य २ दृढ़ निश्चित तत्त्वज्ञान है उसको उक्त प्रकारसे प्रत्यक्ष ज्ञान जानना इस प्रकार से थोड़ा सा प्रत्यक्ष के विषय में लिखा परन्तु जिस का अधिक जानने की इच्छा होय सो षड्दर्शनों में देख लेवै इससे आगे दूसरा अनुमान प्रमाण है ॥

अथतत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टञ्च ।

यह गौतममुनि का सूत्र है अथ नाम प्रत्यक्ष लक्षण लिखने के अनन्तर अनुमान लक्षण का प्रकाश करते हैं तत्पूर्वक नाम प्रत्यक्ष पूर्वक जिस में पहिले प्रत्यक्ष का होना आवश्यक होय और अनुमान पीछे मान नाम ज्ञान होना उस का नाम अनुमान है सो अनुमान प्रत्यक्ष पूर्वक ही होता है अन्यथा नहीं यह अनुमान तीन प्रकार का होता है एक तो पूर्ववत् दूसरा शेषवत् तीसरा सामान्य तो दृष्ट पूर्ववत् इसका नाम है कि जहां कारण से कार्य का ज्ञान होना जैसे बादल के विना वृष्टि कभी नहीं होती सो बादलोंकी उन्नति गर्जना और विद्युत् इन को देख के अवश्य वृष्टि होगी ऐसा ज्ञान होता है तथा परमेश्वर के विना सृष्टि कभी नहीं होती क्यों कि रचना करने वाले के विना रचना कभी नहीं होती और बादल जो है सो वृष्टि का कारण है परमेश्वर जो है सो जगत् का कारण है यह पूर्ववत् अनुमान है और शेषवत् यह है कि जहां कार्य से कारण का ज्ञान होना जैसे कि पहिले नदी में थोड़ा प्रवाह वेग भी न्यून अथवा सूखी देखते थे फिर जब वह पूर्ण हुई देख के उसके प्रवाहका शीघ्र चलना वृक्षकाष्ठ घासादिक वहे जाते देख के अवश्य

ज्ञान होता है कि वृष्टि ऊपर कहीं भईहीं है इस संसार की रचना देख के अवश्य रचना करने वाला परमेश्वर ही है इसका नाम शेषवत् अनुमान है तीसरा सामान्य तो दृष्ट अनुमान है जैसे कि चल के ही स्थान से स्थानान्तर में जाता है किसी पुरुष को अन्य स्थान में कहीं बैठा देखा फिर दूसरे काल में अन्य स्थान में उसी पुरुष को बैठा देखा इस्से देखने वाले ने क्या जाना कि यह पुरुष इस स्थान से चल के ही आया है क्यों कि बिना गमन स्थान से स्थानान्तर में कोई भी नहीं जा सकता ऐसा सामान्य से नियम है इस प्रकार का सामान्य से दृष्टि अनुमान है उस का गमन तो हमने देखा नहीं परन्तु उसको गमन का ज्ञान हो गया अथवा पूर्ववत् नाम किसी स्थान में अग्नि नाम अङ्गारे को काष्ठादिकों में मिला हुआ और उसमें धूम भी निकलता हुआ देखा था उसने जान लिया कि अग्नि और काष्ठादिकों का संयोग जब होता है तब धूम अवश्य निकलता है फिर किसी समय उसने दूर स्थान में धूम को देखा देखने से उसको ज्ञान भया कि अग्नि अवश्य है इस प्रकार की अनेक विधि पूर्ववत् अनुमान होता है सो जान लेना शेषवत् नाम किसी ने बुद्धि से विचार करके कहा कि यह पुरुष उत्तम पण्डित है इस्से कया आया कि अन्य ऐसा कोई पण्डित नहीं और मूर्ख भी बहुत से हैं इस स्थान में चिन्ता करने से ऐसा जाना गया ऐसे अन्य भी बहुत

प्रकार का शेषवत् अनुमान जान लेना सामान्य दृष्टि नाम जैसे कि मनुष्य के शिर में प्रत्यक्ष शृङ्ग के नहीं देखने से अदृश्य मनुष्यों के शिर में भी शृङ्ग का नहीं होना ऐसा निश्चित् जाना जाता है इसका नाम सामान्य से दृष्ट अनुमान है इससे आगे तीसरा उपनाम प्रमाण है॥ प्रसिद्ध साधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्। यह गौतम मुनि का सूत्र है प्रसिद्ध नाम प्रगट साधर्म्य नाम तुल्य धर्मता एक का दूसरे से होना साध्य नाम जिस को जनावै साधन नाम जिस्से जनावै जिस की उपमा जिस्से की जाय उस का नाम उपमान प्रमाण है किसी ने किसी से पूछा कि गवय नाम नीलगाय किस प्रकार की होती है उसने उत्तर दिया कि जैसी यह गाय होती है वैसा ही गवय होता है उसने उसके उपदेश को हृदय में रख लिया फिर उसने कभी कालान्तर में किसी स्थान में बन में व अन्यत्र उस पशु को देख के जान लिया कि यही नीलगाय है क्यों कि गाय के तुल्य होने से ज्ञान का निश्चय होगया अथवा किसी ने किसी से कहा कि तूं देवदत्त नाम मनुष्य के पास जा तब उसने उस्से पूंछा कि देवदत्त कैसा है उसने उस्से कहा कि जैसा यह यज्ञदत्त है वैसा ही देवदत्त है फिर वह वहां गया उसने यज्ञदत्त के तुल्य देवदत्त को देख के निश्चय जान लिया कि यही देवदत्त है तब देवदत्त ने कहा कि आपने मुझको कैसे जाना उसने कहा मुझसे किसी ने कहा था कि यज्ञदत्त ही के समान देवदत्त है उस यज्ञदत्त के समान होने से आप को मैंने

ज्ञान लिया इस का नाम उपमान प्रमाण है चौथा शब्द प्रमाण है ॥ आप्तोपदेशः शब्दः। यह गौतम मुनि का सूत्र है। आप्तः खलुसाक्षात् कृतधर्मा यथादृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयुक्त उपदेष्टा साक्षात् करणमर्थस्याप्तिस्तया प्रवर्ततइत्याप्तः ऋष्यार्य-म्लेच्छानां सामानंलक्षणम्। यह वात्स्यायन मुनिका भाष्य है आप्त किस को कहते हैं कि साक्षात् कृतधर्मा जिसने निश्चय करके धर्म ही किया था करता होय और करै अधर्म कभी नहीं और जिसमें काम; क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोकादिक दोषोंका लेश कभी न होय विद्यादिक गुण सब जिस में होय वैर किसी से न होय पक्षपात कभी न करै और सब जीवों के ऊपर कृपा करै अपने हृदय में सत्य २ जानने से जैसा सुख भया वैसा ही सब जीवों को सत्य २ उपदेश जनाने सुख प्राप्त कराने की इच्छा से जो प्रेरित होके उपदेश करै और आप्ति उसका नाम है कि जो जैसा पदार्थ है उस का वैसा ही ज्ञान का होना उस आप्ति से युक्त होय नाम सबकाम जिसके पूर्ण होंय, छल कपट और लोभ से जो कभी प्रवृत्त न होय किन्तु एक परमेश्वर की आज्ञा जो धर्म और सब जीवों के कल्याण के उपदेश की इच्छा जिसको होय उसको आप्त कहते हैं सब आप्तों में भी आप्त परमेश्वर है उस आप्त परमेश्वर का और उस प्रकार के उक्त आप्त मनुष्यों का जो उपदेश है शब्द प्रमाण उसको कहते हैं उन्हीं का प्रमाण करना चाहिये इनसे विपरीत मनुष्यों के उपदेश का कभी प्रमाण न करना चाहिये आप्त कोई देश विशेष में होता है अथवा सब देशों में होता

हैं इसका यह उत्तर है कि ऋष्यार्य म्लेच्छानांसमानंलक्षणाम् ऋषि नाम यथार्थ मंत्रद्रष्टा यथार्थ पदार्थों के बिचार के जानने वाले उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्याचल पूर्व में समुद्र और पश्चिम में समुद्र इन चारों के अवधि पर्यन्त देश में रहने वाले मनुष्यों का नाम आर्य है इस देश से भिन्न देशों में रहने वाले मनुष्यों का नाम म्लेच्छ है म्लेच्छ नाम निन्दित नहीं किंतु म्लेच्छअव्यक्ते शब्दे। इस धातु से म्लेच्छ शब्द सिद्ध होता है उसका अर्थ यह है जिन पुरुषों के उच्चारणमें वर्णों का स्पष्ट उच्चारण नहीं होता उनका नाम म्लेच्छ है सब देशों में और सब मनुष्यों में आप्त होने का सम्भव है असम्भव कभी नहीं अर्थात् ऋषि आर्य और म्लेच्छ इनमें आप्त अवश्य होते हैं क्योंकि जो किसी मनुष्यों में उक्त प्रकार का लक्षण वाला मनुष्य होगा उसी का नाम आप्त होगा यह नियम नहीं है कि इस देश में होय और अन्य देशमें न होय आर्य नाम है श्रेष्ठका और जो हिन्दू नाम इनका रक्खा है सो मुसल्मानोंने ईर्ष्यासे रक्खा है उसका अर्थ है दुष्ट, नीच, कपटी, छली और गुलाम इससे यह नाम भ्रष्ट है किंतु आर्यों का नाम हिन्दु कभी न रखना चाहिये॥ आसमुद्रात्तुवैपूर्वादासमुद्रात्तुपश्चिमात् । तयोरेवान्तरंगिर्योरार्यावर्त्तंविदुर्बुधाः। आर्यै रावर्त्तः सआर्यावर्त्तः जो देश आर्यों से नाम श्रेष्ठोंसे आवर्त्त नाम युक्त होय उसका नाम आर्य्यावर्त्त देश है सो देश हिमालयादिक अवधि से कह दिया सो जान लेना यह शब्द प्रमाण दो प्रकारका होता है सू० सद्विधोदृष्टाऽ-

दृष्टार्थत्वात् । जिस शब्द का अर्थ प्रत्यक्ष देख पड़ता है सो तो दृष्टार्थ शब्द है और जिस शब्दका श्रवण तो प्रत्यक्ष होता है और उसका अर्थ प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता उसका नाम अदृष्टार्थ शब्द है जैसे कि स्वर्गादिक शब्दों का अर्थ देखने में नहीं आता इस प्रकार के शब्द का नाम अदृष्टार्थ शब्द है दृष्टार्थ शब्द यह है कि जैसे पृथिव्यादिक इतने प्रत्यक्षादिक ४ प्रकार के भेद हैं एक तो प्रमाता होता है कि जो पदार्थ को प्रमाणों से जान लेता है जिसका नाम जीव है प्रमाणों का करने वाला प्रमिणोति सप्रमाता येनार्थं प्रमिणोतितत्प्रमाणम् जिससे अर्थ को यथावत् जाने उसका नामप्रमाण है प्रत्यक्षादिक तो कह दिये जैसे कि नेत्रसे जीव जो है सोरूप को ज्ञान लेता है योऽर्थः प्रतीयतेतत्प्रमेयम् । जिसकी प्रतीति होती है उसका नाम प्रमेय है जैसा कि रूप नेत्र से देखा गया यद्वर्थविज्ञानंसप्रमितिः । जो अर्थ का यथावत् तत्त्वविज्ञान होना उसका नाम प्रमिति है प्रमाता प्रमाण, प्रमेय, और प्रमिति इन चार प्रकार की विद्या को भी यथावत् ज्ञान लेना चाहिये और भी ४ प्रकार की जो विद्या है उसको जानना चाहिये हेयम् नाम त्याग करनेके जो योग्य होय जैसे कि अधर्म और ग्राह्य नाम ग्रहण करनेके योग्य जैसा कि धर्म दूसरा तस्यनिवर्तकम् नाम हेय जो अधर्म उसकी निवृत्ति का जो ज्ञान से करना और पुरुषार्थ से तस्य प्रवर्तकम् ग्राह्य जो धर्म उसकी जो प्रवृत्ति हृदय में विचार से और पुरुषार्थ से होनी तीसरा हानमात्यन्तिकम् जो हेय अधर्म का अत्यन्त

त्याग कर देना पुरुषार्थ से और विचार से स्थान मान मात्यन्तिकम् नाम ग्राह्य जो धर्म उसकी दृढ़स्थिति हृदय में हो जानी कि हृदय और आचरण से धर्म का नाश कभी न होय चौथा तस्योपायोऽधिगन्तव्यः। हेय जो अधर्म उसके त्याग के उपाय को प्राप्त होना और धर्म के ग्रहण के उपाय को प्राप्त होना वह उपाय सत्पुरुषों का संग, श्रेष्ठबुद्धि और सद्विद्या के होनेसे प्राप्त होता है इतने ४ अर्थपद होते हैं इनको सम्यक् जाननेसे निःश्रेयस जोमोक्ष नाम नित्यानन्द परमेश्वर की प्राप्ति और जन्म मरणादिक दुखों को अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है इससे इस ४ प्रकार की विद्या को भी सज्जनों को अवश्य जानना चाहिये ४ प्रकार के जो प्रमाण हैं उनका विषय लिखा गया और इनकी परीक्षा भी संक्षेप से इससे आगे लिखी जाती है सो जान लेना॥ प्रत्यक्षादीनाम प्रामाण्यं त्रैकाल्यासिद्धेः। इत्यादिक परीक्षामें गोतम मुनि प्रणीत सूत्रों ही को लिखेंगे सो आप लोग जान लेवें प्रत्यक्षादिकों का प्रमाण नहीं है क्योंकि तीन कालों की असिद्धिके होनेसे पूर्वा पर सहभाव नियमके भंग होने से कि पहिले प्रमाण होता है वा प्रमेय देखना चाहिये कि पहिले जो प्रमाण सिद्ध होय और पीछे प्रमेय तो विना प्रमेय के प्रमाण किसका होगा वा पहिले प्रमेय होय प्रमाण पीछे होय प्रमेय तो बिना प्रमाण के प्रमेय कैसे जाना जायगा और जो संग में दोनों का ज्ञान होय तो बिना प्रमेय से प्रमाण की उत्पत्ति ही नहीं इस से किसी प्रकार से भी प्रत्यक्षादिकों

का प्रमाण नहीं हो सकता तथाहि पूर्वंहि प्रमाणसिद्धौनेन्द्रि यार्थसन्निकर्षात्प्रत्यक्षोत्पत्तिः । यह गोतममुनि का सूत्र है जैसे कि गन्धादि विषय का जो प्रत्यक्ष ज्ञान सो गन्धादिकों का और नासिकादिक इन्द्रियों का सम्बन्ध होने से प्रत्यक्ष की उत्पत्ति होती है अन्यथा नहीं और जो कोई कहे कि पहिले प्रमाण की उत्पत्ति होती है पीछे प्रमेय की अच्छा तो गन्धादिकों का तो सम्बन्ध भी उत्पन्न नही भया उनके सम्बन्ध के विना प्रत्यक्ष की उत्पत्ति ही नहीं होती फिर इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमित्यादि प्रत्यक्ष का जो लक्षण किया है सो व्यर्थ हो जायगा क्योंकि आपने प्रमाण की उत्पत्ति प्रमेय के सम्बन्ध से पूर्व ही मानी है इससे आप के मत में यह दोष आवेगा अच्छा तो मैं प्रमेयों के सम्बन्ध के पीछे प्रमाणों की उत्पत्ति मानता हूं फिर क्या दोष आवेगा अच्छा सुनो सूत्र ॥ पश्चात्सिद्धौनप्रमाणेभ्यः प्रमेयसिद्धिः । पहिले प्रमेय की सिद्धि मानेंगे तो प्रमाणों ही से प्रमेय की सिद्धि होती है यह जो आपका कहना सो मिथ्या हो जायगा जो आप एक संग प्रमाण और प्रमेय मानेंगे तो भी यह दोष आवेगा सूत्र ॥ युगपत्सिद्धौप्रत्यर्थनियतत्वात्क्रमवृत्तित्वाभावोबुद्धीनाम् । यह जो बुद्धि है सो एक विषय को जानकर दूसरे विषय को जान सकती है दोनों को एक समय में नहीं जान सकती जैसे कि एक वस्त्र को देखा देख के जब रूप की बुद्धि होती है तब इतना यह वस्त्र भारी है उसको न जानैगी और जब भार का मन विचार करता है तब रूप का नहीं कर सकता जब रूप का तब

भार का नहीं ॥ सूत्र ॥ युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसोलिंगम् । एक काल में दोनों ज्ञान को न ग्रहण करै किन्तु एकको ग्रहण कर के फिर दूसरे का ग्रहण करै उसीका नाम मन है वैसे ही प्रमाण और प्रमेय एक काल में दोनों का ज्ञान कभी नहीं होता जिस समय प्रमाणका ज्ञान होता है उस समय प्रमेय का नहीं जिस समय प्रमेय का ज्ञान होता है उस समय प्रमाण का नहीं यह सब जीवों का अनुभव सिद्ध बात है इस बात में आप के कहने से दोष आवेगा ऐसा भी कहना आप को उचित नहीं इस पूर्वपक्ष का यह समाधान है कि ॥ सूत्र ॥ उपलब्धिहेतोरुपलब्धिविषयस्य चार्थस्यपूर्वापरसहभावानियमाद्यथादर्शनविभागवचनम् ॥ भाष्य उपलब्धि का हेतु नाम प्रकाशक जिससे कि ज्ञान होता है और उपलब्धि का विषय जिसका ज्ञान होता है जैसा कि घटादिक इनका पूर्वापर सह भाव नाम यह इससे पूर्व वा यह पर ऐसा नियम नहीं सर्वत्र देखने में आता इससे जैसा जहां योग्य होय वैसा वहां लेना चाहिये देखना चाहिये कि सूर्य का दर्शन तो पीछे होता है और दो घड़ी रात्रि से पहिले ही प्रकाश हो जाता है इससे वृक्षादिक पदार्थों का पहिले ही दर्शन हो जाता है जब दीप को जलाते हैं तब दीप का दर्शन तो पहिले होता है फिर दीप के प्रकाशसे अन्य सब पदार्थों का दर्शन पीछे होता है सूर्य और दीप अपना प्रकाश आपही करते हैं और अन्य पदार्थों का भी एक काल में प्रकाश करते हैं यह तो दृष्टान्त हुआ वैसा ही प्रमाणों के दृष्टान्त में जानना चाहिये कहीं तो पहिले प्रमाण होता

है कहीं प्रमेय अन्य समय में दोनों एक ही सङ्ग में होते हैं जैसे कि। सूत्र। त्रैकाल्यासिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः। आपने प्रत्यक्षादिक प्रमाणों का जो निषेध किया सो तीनों कालों को मान के किया अथवा नहीं जो आप भूत काल नाम बीते भये काल में प्रमाणों को सिद्ध न मानेंगे तो आपने निषेध किस का किया और जो भविष्यत्काल में होने वाले प्रमाणों का आपने निषेध किया तो प्रमाण उत्पन्न भी नहीं भये पहिले निषेध कैसे होगा और जो वर्तमान काल में प्रत्याक्षादिक प्रमाण सिद्ध हैं तो सिद्धों का निषेध कोई कैसे करेगा। सूत्र। सर्वप्रमाणप्रतिषेधाच्च प्रतिषेधानुपपत्तिः किसी प्रमाण को आप न मानेंगे तो आपके प्रतिषेध की प्रमाण से सिद्धि कैसे होगी जब प्रतिषेध में कोई प्रमाण नहीं है तब प्रतिषेध अप्रमाण होगा तब कोई शिष्ट इस प्रमाण के निषेध को न मानेगा वह आप का निषेध ही व्यर्थ हो गया इस्से आप को भी प्रमाणों को अवश्य मानना चाहिये। सूत्र। त्रैकाल्याप्रतिषेधश्च शब्दादातोद्यसिद्धिवत्तत्सिद्धेः तीन कालों का निषेध नहीं हो सकता जैसा कि वीण अथवा बांसुलि वा कोई वादित्र कोई दूर बजाता होय उनका शब्द दूसरे सुन के पूर्व सिद्ध वादित्र को जान लिया जाता है कि यह वीण का शब्द है और जब वीणा देखी तब भविष्यतकाल में जो होने वाला शब्द इस को जान लिया कि वीणा आगे बजाने से शब्द होगा और जब सन्मुख वीण को और उसके शब्द को भी एक काल में देखता और सुनता है तब वीण

और वीण के शब्द को भी जान लेता है वैसी ही व्यवस्था प्रमाणों की जान लेना ॥ सूत्र प्रमेयताच्चतुलाप्रमाण्यवत् की नाईं है तुला से हो घृतादिक द्रव्यों को तोल के प्रमाण कर लेते हैं इसमें तुला तो प्रमाण स्थानी है और घृतादिक प्रमेय स्थानी हैं परन्तु वहीतुला दूसरी तुला से तौली जाय तब प्रमेय संज्ञा भी उसकी होती है वैसे ही जब प्रत्याक्षादिक प्रमाणों से रूपादिक विषयोंको चक्षुरादिकोंसे हम लोग देखते हैं तब तो प्रत्यक्षादिक और चक्षुरादिक प्रमाण हैं रूपादिक विषय प्रमेय हैं और जब प्रत्याक्षादिक क्या होते हैं ऐसी आकांक्षा होगी तब वे ही प्रमेय हो जायेंगे क्यों कि ऐसा लक्षण वाले को प्रत्यक्ष प्रमाण कहना और ऐसा लक्षण जिसका होय वह अनुमान होता है इत्यादिक सब जान लेना तीन प्रकार से शास्त्र की प्रवृत्ति होती है १ एक उद्देश्य, २ दूसरा लक्षण, ३ तीसरी परीक्षा, उद्देश्य इसका नाम है कि नाम मात्र से पदार्थ को गणना करनी जैसा कि द्रव्य गुण कर्म सामन्य विशेष और समवाय लक्षण इसका नाम है कि निश्चत जो जिसका धर्म है उससे पृथक् कभी न होय जैसाकि पृथिवी में गन्ध जल में रस इत्यादिक गन्ध ही पृथिवी को जानता है और गन्ध ही से पृथिवी जानी जाती है गन्ध रसादिकों से विशेष है और गन्ध से रसादिक विशेष हैं परस्पर ये गन्धादि वे निवर्तक और ज्ञापक हो जाते हैं इससे गन्ध पृथ्वीका लक्षण है और रसादिक जलादिकों का लक्षण हैं। गन्ध का लक्षण नासिका, नासिका का लक्षण मन,

मन का लक्षण आत्मा, आत्मा का लक्षण भी आत्मा ही है और कोई नहीं लक्षण का भी लक्षण होता है वा नहीं लक्षणके लक्षण कभी नहीं होता जो कोई लक्षण का लक्षण कहता है सो मूर्ख पुरुष है वा जिसने ग्रन्थ में लिखा है वह भी मूर्ख पुरुष है क्यों कि पृथ्वी का लक्षण गन्ध है गन्ध का लक्षण नासिका सो नासिका के प्रति गन्ध लक्ष्य है क्योंकि नासिका ही से गन्ध जाना जाता है और नासिका मन से जानी जाती है इस्से नासिका का लक्षण मन है नासिका मन का लक्ष्य है मनका लक्षण आत्मा है क्योंकि आत्मा हीसे मन जाना जाता है आत्माके प्रति मन लक्ष्य है क्योंकि मेरा मन सुखी वा दुःखी है सो आत्मा मनको ही जानके कहता है इस्से मन आत्मा का लक्ष्य है आत्मा और परमात्मा परस्पर लक्ष्य और लक्षण हैं क्यों कि आत्मा परमात्मा को जान सकता है और अपने को आप भी जान लेता है तथा परमात्मा सब काल में आत्माओं को जानता है और आप को भी आप सदा जानता है वे अपने आप ही के लक्ष्य और लक्षण भी हैं इस्से आगे जो तर्क करना है सो मूढ़ ही का धर्म है क्यों कि इस के आगे जो तर्क कुतर्क करता है उसका ज्ञान और बुद्धि नष्ट होजाती है इस्से सज्जनों को और बुद्धिमानों को अवश्य जानना चाहिये कि यही ज्ञान की परम सीमा है और यही परम पुरुषार्थ है जो कोई लक्षण का लक्षण करता है उसके मतमें अनवस्था दोष प्रसङ्ग आवेगा कही भी अवस्था न होगी क्यों कि लक्षण का लक्षण उस का लक्षण२ ऐसा वाद करता२ मर जायगा कुछ हाथ नहीं आवेगा

और जैसा कि लक्षण का लक्षण करता है वैसा लक्ष्यका लक्ष्य उसका लक्ष्य २ यह भी अनवस्था दूसरी उसके मतमें आवेगी इस्से बुद्धिमानों को ऐसी बात न कहनी चाहिये और न सुननी चाहिये कुछ थोड़ी सी प्रमाणों के विषय में परीक्षा लिख दी है और अधिक जानने की जिस को इच्छा होय वह गोतमसूत्र के २ अध्याय से लेके ५ पंचमाध्याय की पूर्त्ति पर्य्यन्त देख लेवै इतने ४ प्रमाण हैं परन्तु चारों में और ४ चार प्रमाण मानना चाहिये। न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्। यह गोतम मुनि का पूर्वपक्ष का सूत्र है ४ चार ही प्रमाण नहीं किन्तु ८ आठ प्रमाण हैं ऐतिह्य नाम जो बहुत काल से सुनते सुनाते चले आये उसका नाम ऐतिह्य है अर्थापत्ति किसी ने किसी से कहा कि बादल के होने ही से वृष्टि होती है इस्से क्या आया कि बिना बादल से वृष्टि नहीं होती इस का नाम अर्थापत्ति है सम्भव नाम मण के जानने से आधा मण पसेरी सेर और छटांक को जो विचार से ज्ञान हो जाय उस का नाम सम्भव है क्यों कि मण ४० सेर का होता है उस का आधा २० सेर होगा २० सेर के चतुर्थांश की पसेरी होगी उस्का ५ पांचवां अंश सेर होगा सेर का १६ सोलवाँ अंश छटांक होगा ऐसा विचार करने से जो ज्ञान होता है उसका नाम सम्भव है यह सप्तम प्रमाण है आठवां अभाव किसी ने किसी से कहा है कि तूं अलक्षित नाम अदृष्ट मनुष्य को ला जो कि तूने नहीं देखा है वह जाके जिस को उसने कभी न देखा था उसी को ले आवेगा देखने के अभाव

से उसको ज्ञान होगया इस्से अभाव भी आठवां प्रमाण मानना चाहिये इस का समाधान यह है कि। सूत्र । शब्दऐतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्तिसम्भवाभावानर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः। चारही प्रमाण मानना चाहिये उसका जो आपने निषेध किया सो अयुक्त है क्यों कि आप्तों का उपदेश जो है सो शब्द है उसी में ऐतिह्य भी आगया क्यों कि देव श्रेष्ठ होते हैं और असुर अश्रेष्ठ होते हैं यह भी तो आप्तों ही के उपदेश से सत्य २ जाना जाता है मूर्खों के उपदेश से कभी नहीं वैसे ही प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष को जानना उसका नाम अनुमान है इस अनुमानमें अर्थापत्ति सम्भव और अभाव ये तीनों गणना कर लीजिये इस्से चार ही प्रमाण का मानना ठीक है यह गोतममुनि का अभिप्राय है पूर्व मीमांसा दर्शन और वैशेषिक दर्शन में प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण माने हैं तथा योगशास्त्र और सांख्यशास्त्र में प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द तीन प्रमाण माने हैं वेदान्त शास्त्र में प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति और अनुपलब्धि ये छः प्रमाण माने हैं और जो कोई आठ प्रमाण मानें तो भी कुछ दोष नहीं इन उक्त प्रमाणों से ठीक २ परीक्षा कर के शास्त्र को पढ़े वा पढ़ावै और जो पुस्तक इन प्रमाणों से विरुद्ध होय उन को न पढ़े और न पढ़ावै इन से विरुद्ध व्यवहार अथवा परमार्थ कभी न करना और मानना भी न चाहिये। अथ पठन पाठन विधिं वक्ष्यामः। प्रथम तो अष्टाध्यायी को पढ़ें और पढ़ावें सो इस क्रम से वृद्धिरादैच् यह तो पाठ भया वृद्धिः आत् ऐच् यह

पदच्छेद भया आदैचौं वृद्धि संज्ञा स्यात् यह सूत्र का अर्थ है कि आ, ऐ, और औ, इन तीन अक्षरों की वृद्धि संज्ञा कि वृद्धि नाम है इस प्रकार से पाणिनि मुनि जी की जो बुद्धिमान अष्टाध्यायी के आठ अध्याय को पढ़ ले छः महीने में अथवा आठ महीने में पढ़ लेगा इसके पीछे धातुपाठ को पढ़े उस में भवति भवतः भवन्ति इत्यादिक तिङन्त रूपों को और भावः भावौ भावाः इत्यादिक सुबन्त रूपों को उन्हीं सूत्रों से साध २ के पढ़लेतीन मासमें दशगण दशलकार और बुभूषति इत्यादिक प्रक्रिया के रूपों को भी पढ़ लेगा वहीं सब अष्टाध्यायी के सूत्रों के उदाहरण और प्रत्युदाहरण होवेंगे इसके पीछे उणादि और गणपाठ को पढ़े उस में वायुः वायू वायवः इत्यादिक रूप और बहुत से शब्दों का ज्ञान होगा एक मास में उस को पढ़ लेगा उस के पीछे सर्व विश्व उभ उभय इत्यादिक गण-पाठ के साथ अष्टाध्यायी की द्वितीयानुवृत्ति नाम दूसरी बार पढ़े उस के सूत्रों में जितने शब्द हैं और जितने पद उन को सूत्रों से सिद्ध कर लेवेगा और सर्वादि गणों के सर्वः सर्वौ सर्वे ऐसे पुल्लिङ्ग में रूप होते हैं सर्वा सर्वे सर्वाः इत्यादिक स्त्री लिङ्ग में रूप होते हैं और सर्वं सर्वे सर्वाणि इत्यादिक नपुंसक में रूप होते हैं इन को भी पढ़ लेवे सूत्रों से साध के ऐसे दूसरी बार अष्टाध्यायी को ४ वा ६ छः मास में पढ़लेगा इस प्रकार से १६ वा १८ अठारह मास में पाणिनि मुनि के किये ४ चार ग्रंथों को पढ़ लेगा फिर इस के पीछे पतञ्जलि मुनि का किया महाभाष्य जिस में अष्टाध्याय्यादिक चार

ग्रंथों की यथावत् व्याख्या है बहुत से वार्त्तिक सूत्र हैं सूत्रों के ऊपर और अनेक परिभाषा हैं अनेक प्रकार के शास्त्रार्थ शङ्का और समाधान हैं उन को यथावत् पढ़ले जब उसको पढ़ लेगा तब सब व्याकरण शास्त्र उसका पूर्ण हो जायगा वह महा वैय्याकरण कहावेगा फिर विद्वान् संज्ञा भी उसकी हो जायगी सो अठारह १८ महीने में सब महाभाष्य का पढ़ना सम्पूर्ण हो जायगा ऐसे मिल के ३ वर्ष तक व्याकरण शास्त्र सम्पूर्ण होगा उस के सम्पूर्ण पठन होने से अन्य सब शास्त्रों का पढ़ना सुगम हो जायगा इस में कोई सज्जन को शंका मत हो कि यह बात सत्य नहीं है किन्तु इस प्रकार से पढ़ना और पढ़ाना होय तीन ३ वर्ष में सम्पूर्ण व्याकरण को पढ़ै और पूर्त्ति न होय तब शंका करनी चाहिये पहिले जो शंका करनी सो व्यर्थ ही है इस्से जिन पुरुषों का बड़ा भाग्य होगा वे ही इस रीति में प्रवृत्त होंगे और उन को शीघ्र विद्या भी हो जायगी वे बहुत सुख पावेंगे और जो भाग्यहीन हैं वे तो सुख की रीति को कभी न मानेंगे व्याकरण के नाम से जो जाल रूप कौमुद्यादिक ग्रन्थ चन्द्रिका सारस्वतादिक और मुग्ध बोधादिकों के ५० वर्ष तक पढ़ने से भी जैसा बोध नहीं होता है उस्से हजार गुणा अष्टाध्याय्यादिक सत्य ग्रन्थों के पढ़ने से तीन वर्ष में बोध हो जाता है इसमें विचार करना चाहिये कि सत्य ग्रन्थों के पढ़ने में बड़ा लाभ होता है वा मिथ्या जाल रूप ग्रन्थों के पढ़ने में जालरूप ग्रन्थों के पढ़ने में कुछ भी लाभ नहीं होगा

क्यों कि जालरूप ग्रन्थों में इस प्रकार का व्यर्थ विवाद लिखा है उसको पढ़ाने और पढ़ने वाले भी वैसे ही हठी, दुराग्रही और विरुद्धवादी होंगे ऐसे ही देख भी पड़ते हैं क्यों कि जैसा ग्रन्थ पढ़ेगा वैसी ही बुद्धि उसकी होगी इस प्रकार का बड़ा एक जाल बनाया है कि मरण तक एक शास्त्र भी पूर्ण नहीं होता उसको अन्य शास्त्र पढ़ने का अवकाश कैसे होगा कभी न होगा एक शास्त्र के पढ़ने से मनुष्य की बुद्धि संकुचित ही रहती है विस्तृत कभी नहीं होती सब दिन उसकी शंकाही बनी रहतीहै सब पदार्थों का निश्चय कभी नहीं होता और जो व्याकरण का पढ़ना है सो तो वेदादिक अन्य शास्त्रों के पढ़ने के ही लिये है जब वह एक व्याकरण ही में वाद विवाद करता २ मर जायगा तब हाथ में उसके कुछ भी न आवेगा इस्से सब सज्जन लोगों को ऋषि मुनियों की पठन पाठन की जो रीति है उसी में चलना चाहिये जाली लोगों की रीति में कभी नहीं क्यों कि आर्य्यावर्त्त मनुष्यों के बीच में कपिलादिक ऋषि मुनि जितने भये हैं वे बड़े विद्वान् और बड़े धर्मात्मा पुरुष भये हैं उनके सहस्रांश में भी इस समय जो आर्य्यावर्त्त में मनुष्य हैं वे बुद्धि, विद्या और धर्माचरण में नहीं देख पड़ते इस लिये उनका आचरण हम लोगों को करना उचित है कि उसी से आर्य्यावर्त्त के लोगों की उन्नति होगी अन्यथा कभी नहीं व्याकरण को तीन वर्ष तक सम्पूर्ण पढ़के कात्यायनादि मुनिकृत जो कोश यास्क मुनिकृत जो निघण्टु और यास्क मुनिकृत निरुक्तको पढ़े और

और पढ़ावै उसमें अव्ययार्थ एकार्थ कोश और अनेकार्थ कोश नाम और नामियों का आप्तों के लिये संस्कृतसे जो सम्बन्ध है डेढ़ वर्ष के बीच में उसका ज्ञान हो जायगा उसके पीछे पिङ्गल मुनि के किये जो छन्दों के सूत्र भाष्य सहित को पढ़ै पीछे यास्कमुनि के किये काव्यालङ्कार सूत्र और उसके ऊपर वात्स्यायन मुनि के भाष्य को पढ़ै उससे गायत्र्यादिक छन्दों का काव्य अलङ्कार और श्लोक रचने का भी यथावत् ज्ञान छः मास में होवेगा और अमर कोशादिक जो कोश ग्रन्थ और श्रुतिबोधादिक जो छन्दो ग्रन्थ वे सब जाल ग्रन्थ ही हैं इनके दश वर्ष के पढ़ने से जो बोध नहीं होता सो उक्त निघण्ट्वादिक सत्यशास्त्रों के पढ़ने से दो वर्ष में होगा इससे इनका ही पढ़ना और पढ़ाना उचित है इनके पीछे पूर्व मीमांशाशास्त्र को पढ़ै जो कि जैमिनि मुनि के किये सूत्र हैं उनके ऊपर व्यास मुनि जी की अधिकरण माला व्याख्या के सहित पढ़ै चार मासके बीच में पढ़लेगा और इसी शास्त्र के साथ मनुस्मृति को पढ़ै सो एक मास में मनुस्मृति को पढ़लेगा उसके पीछे वैशेषिकदर्शन जो कि कणादमुनि के किये सूत्र हैं उसके ऊपर गोतममुनि जी का किया जो प्रशस्त पादभाष्य और भारद्वाज मुनि की किये सूत्रों की वृत्ति के सहित पढ़ै उसके पढ़ने में दो मास जायंगे उसके पीछे न्यायदर्शन जो कि गोतम मुनि के किये सूत्र उनके ऊपर वात्स्यायन मुनि का किया भाष्य उसको पढ़ै इसके पढ़ने में चार मास

जायंगे इसके पीछे पातञ्जल दर्शन नाम योगशास्त्र जो कि पतञ्जलि मुनि के किये सूत्र उसके ऊपर व्यासमुनि जी का किया भाष्य इसको एक मास में पढ़लेगा उसके पीछे सांख्य-दर्शन जो कि कपिल मुनि के किये सूत्र उनके ऊपर भागुरि मुनि का किया भाष्य इसको भी एक मास में पढ़ लेगा इस के पीछे ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, मांडूक्य, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, और बृहादारण्यक इन दश उपनिषदों को पांच महीने के बीच में पढ़ लेगा और इसके पीछे वेदान्तदर्शन को पढ़े जो कि व्यास मुनि के किये सूत्र उनके ऊपर वात्स्यायन मुनि का किया भाष्य अथवा बौधायन मुनि का किया भाष्य वा शङ्कराचार्य जी का किया भाष्य पढ़े जब तक बौधायन और वात्स्यायन मुनि का किया भाष्य मिले तब तक अन्य भाष्य को न पढ़े इसको छः मास में पढ़ लेगा इनको छः शास्त्र कहते हैं इनके पढ़ने में दो वर्ष काल जायगा दो वर्ष के बीच में सब पदार्थ विद्या पुरुष को यथावत् आवैगी और इनके विषय में बहुत से जाल ग्रन्थ लोगों ने रचे हैं जैसेकि पाराशर स्मृत्यादिक १७ सतरह पूर्व मीमांसा शास्त्र के विषय में जाल ग्रन्थ लोगों ने रचे हैं तथा वैशेषिकदर्शन और न्यायदर्शन के विषय में तर्कसंग्रह, न्यायमुक्तावली, जगदीशी, गदाधरी, और मथुरानाथी इत्यादिक जालग्रन्थ लोगों ने रचेहैं ऐसे ही योग-शास्त्र के विषय में हठ प्रदीपिकादिक मिथ्या ग्रन्थ लोगों ने रचे हैं तथा सांख्य शास्त्र के विषय में सांख्यतत्त्वकौमुद्यादिक जाल ग्रन्थ लोगों ने रचे हैं और वेदान्तशास्त्र के विषय में

पञ्चदशी, वेदान्तसंज्ञा, वेदान्तमुक्तावली, आत्मपुराण, योगवाशिष्ठ और पूर्वोक्त दश उपनिषदों को छोड़ के गोपालतापिनी नृसिंहतापिनी, रामतापिनी और अल्लोपनिषत् इत्यादिक बहुत उपनिषद जाल रूप लोगों ने रची हैं वे सब सज्जनोंको त्याग करने के योग्य हैं इन जाल ग्रन्थों में जो सत्य है सो सत्य शास्त्रों ही का विषय है उसका लिखना ग्रन्थान्तर में अयुक्त है क्योंकि जो बात सत्य शास्त्रोंमें लिखी ही है उसका फिर लिखना व्यर्थहै जैसे कि पीसे भये पिसान को फिर पीसना वैसा ही यह है किन्तु पिसानभी उड़ जायगा तथा सत्य शास्त्र की बात भी उनके हाथ से उड़ जायगी और जो सत्य शास्त्रों से विरुद्ध बात है सो तो कपोल कल्पित मिथ्याही है इस्से इनका पढ़ना और पढ़ाना मिथ्याही जानना चाहिये इस्से कुछ फल न होगा और जो कोई पढ़ता है या पढ़ेगा एक शास्त्र को मरण तक भी पूर्त्ति न होगी और कुछ बोध भी उस को न होगा इससे सज्जन लोगों को सत्यशास्त्रों ही का पढ़ना और पढ़ाना उचित है जाल ग्रन्थों का कभी पूर्व पक्ष छः शास्त्रों में भी अन्योन्यविरोध और परस्पर खण्डन देख पड़ता है एक का दूसरे से दूसरे का तीसरे से ऐसा ही सर्वत्र है जैसा कि जाल ग्रन्थों में एक शास्त्र के विषय में बहुत सी परस्पर विरुद्ध टीका और मूल ग्रन्थ हैं वैसा ही विरोध सत्य शास्त्रों में भी देख पड़ता है जो दोष आपने जाल ग्रन्थोंमें लिख दिया वही दोष सत्यशास्त्रों में भी आया फिर सत्य शास्त्रों का पढ़ना और जाल ग्रन्थों का न पढ़ना आप कहते हैं इसमें क्या प्रमाण है उत्तर कि यह

आप लोगों को जाल ग्रन्थों के पढ़ने और सुनने से भ्रान्ति हो गई है कि सत्य शास्त्रों में भी विरोध और परस्पर खण्डन है यह बात आप लोगों की मिथ्या ही है देखना चाहिये कि आज कल के लोग टीका वा ग्रन्थ रचते हैं सो द्वेष बुद्धि ही से रचते हैं कि अपनी बात मिथ्या भी होय तो भी सत्य कर देते हैं तब सब लोग उसको कहते हैं कि वह बड़ा पंडित है इस प्रकार के जो धूर्त्त मनुष्य हैं वेही टीका वा ग्रन्थ रचते हैं उन में इसी प्रकार की मिथ्या धूर्त्तता रखते हैं उनको जो पढ़ता है वा पढ़ाता है उस की भी बुद्धि वैसी ही भ्रष्ट हो जाती है सो मिथ्या वाद में ही प्रवृत्त होता है और सत्य वा असत्य का विचार कभी नहीं करता उसको तो यही प्रयोजन रहता है कि दूसरे को सत्य बात को भी खण्डन कर के अपनी मिथ्या बात को मण्डन कर के जिस किस प्रकार से दूसरे का पराजय करना अपना विजय कर लेना उससे प्रतिष्ठा करना और धन लेना पीछे विषय भोग करना यही आज काल के पण्डितों की क्षुद्रबुद्धि और सिद्धान्त हो गया है इस प्रकार के कितने मौलवी और पादरी लोग भी देखने में आते हैं पण्डितादिकों में कोई जो सत्य कथन करे तब वे सब धूर्त्त लोग उससे विरोध करते हैं उसका नाम नास्तिक रखते हैं और उससे सब दिन विरोध ही रखते हैं क्यों कि उन की बुद्धि वैसी ही है इस दोष के होने से सत्य शास्त्रों का जो यथावत् अभिप्राय है उस को जानते भी नहीं इससे वे कहते हैं कि सत्य शास्त्रों में भी परस्पर विरोध है परन्तु मैं आप लोगों

से कहता हूं कि छः शास्त्रोंमें लेशमात्र भी परस्पर विरोध नहीं है क्यों कि इन का विषय भिन्न २ है और जो बिरोध होता है सो एक विषय में परस्पर विरुद्ध कथन के होने से होता है जैसे कि एक ने कहा गन्धवाली जो होती है सो पृथ्वी कहाती है इसी विषय में दूसर ने कहा कि नहीं जो रस वाली होती है सोई पृथिवी होती है क्यों कि पृथ्वी में क्षार मिष्टादिकरस प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं इस प्रकार के विषय को बिरोध जानना चाहिये और जो ऐसा कहै कि गन्धवाली जो पृथ्वी होती है और रसवाला जल होता है सो एक तो पृथ्वी के विषय में व्याख्या करता है और दूसरा जल के विषय में दोनों का विषय भिन्न होने से व्याख्या भी भिन्न होगी परन्तु उस का नाम बिरोध नहीं जैसे कि किसी ने ज्वर के विषयमें चिकित्सा निदान औषध और पथ्य को लिखा और दूसरे ने कफ के विषय में चिकित्सादिक लिखे उसको विरोध नहीं कहना चाहिये वैसे ही षट् शास्त्रों के विषय और भी सब वेदादिक शास्त्रों के विषय में जानना चाहिये जैसे कि धर्मशास्त्र नाम पूर्व मीमाँसा में धर्म और धर्मी दो पदार्थों को मानते हैं और कर्मकाण्ड जो कि वेदोक्त है संध्योपासन से लेके अश्वमेध पर्यन्त कर्मकाण्ड कहा है अब इसमें आकाङ्क्षा होती है कि धर्म और धर्मी किसको कहते हैं तब इसीको वैशेषिक दर्शनमें स्पष्ट व्याख्या की है कि जोद्रव्य है सो तो धर्मी है और गुणा-दिक सब धर्म हैं फिर भी आकाङ्क्षा होती है कि गुण को क्यों नहीं द्रव्य और द्रव्य को क्यों नहीं गुण कहते उसका

विचार न्यायदर्शन में किया है कि जिन प्रमाणों से द्रव्य गुणादिक सिद्ध होते हैं उसको द्रव्य और उन्हीं को गुण मानना चाहिये सो तीनों शास्त्रों से श्रवण नाम सुनना और मनन नाम उसीका विचार करना इसबात तक लिखा उस्से आगे जितने पदार्थ अनुमान से सिद्ध होते हैं उतने प्रत्यक्ष से जैसा तीन शास्त्रों में कहा है वैसा ही है अथवा नहीं उसको विशेष विचार से और योगाभ्यास से उपासना काण्ड जो कि चित्तवृत्तिके निरोधसे लेके कैवल्य पर्यन्त उपासना काण्ड कहाता है उसकी रीति योगशास्त्र में लिखी है जो देखना चाहैं सो उसमें देख लेवैं सबके तत्व को यथावत् जानना चाहिये इसलिये योगशास्त्र है फिर कितने भूत और तत्व हैं उसकी भिन्न २ गणना और वैसा ही निश्चय का होना उस लिये सांख्य शास्त्र का आवश्यक रचन हुआ इन पांच शास्त्रों का महाप्रलय तक व्याख्यान है जिसमें कि स्थूल भूतों का नाश होना है और सूक्ष्मों का नहीं फिर उसी सूक्ष्म भूतों से जैसी उत्पत्ति स्थूल की होती है और जिस प्रकार से प्रलय होता है वह बात सब लिखी हैं महाप्रलय तक परमाणु और प्रकृत्यादिक सूक्ष्म भूत बने रहते हैं उनका लय नहीं होता फिर कार्य और परम कारण का विचार वेदान्त शास्त्र में किया कि सब प्रकृत्यादिक भूतों का एक एक अद्वितीय अनादि परमेश्वर ही कारण है और परमेश्वर से भिन्न सब कार्य हैं क्यों कि परमेश्वर ही में सब प्रकृत्यादिक सूक्ष्म भूत रचे हैं सो परमेश्वर के सामने तो संसार

सब आदि है और अन्य जीवों के सामने अनादि परमाणु प्रकृत्यादिक भूत भी अनित्य हैं क्यों कि परमाणु और प्रकृति इनका ज्ञान अनुमान से होता है वैसा नाश भी अनुमान से हम लोग जान सकते हैं परमेश्वर तो सब जगत का रचने वाला है अन्य ब्रह्मादिक देव और सब मनुष्य शिल्पी हैं क्योंकि नवीन पदार्थ रचनेका किसीका सामर्थ्य नहीं है बिना परमेश्वर के जगत् का रचने वाला कोई नहीं है सो वेदान्त शास्त्र में ज्ञान काण्ड का निश्चय किया है जो कि निष्काम कर्म से लेके परमेश्वर की प्राप्ति पर्यन्त ज्ञानकाण्ड है निष्काम कर्म यह है कि परमेश्वर की प्राप्ति जो मोक्ष उसके बिना भिन्न फल कर्मों से नहीं चाहना सो निष्काम कर्म कहाता है इस्से विचारना चाहिये कि षट् शास्त्रों में कुछ भी विरोध नहीं है किन्तु परस्पर सहायकारी शास्त्र हैं सब शास्त्र मिलके सब पदार्थ विद्या छः शास्त्रों में प्रकाश करती हैं और उक्त जो जाल पुस्तक हैं उनमें केवल विरोध ही है उनका पढ़ना और पढ़ाना व्यर्थ ही है किन्तु सत्य शास्त्रों के पठन न होने से और जाल ग्रन्थों के पढ़ने से आर्यावर्त्त देश के लोगों की बड़ी हानि हो गई है इस्से सज्जन लोगों का ऐसा करना उचित है कि आजतक जो कुछ भ्रष्टाचार भया सो भया इस्से आगे हम लोगों के ऋषि मुनि और श्रेष्ठ राजा लोग जो कि पहिले भये थे उन की जो मर्यादा और वेदादिक सत्यशास्त्रोक्त जो मर्यादा उसी पर चलने से और सब पाखण्डों को छोड़ने ही से आर्यावर्त्त देश की बड़ी उन्नति होगी अन्य प्रकार से कभी न होगी इन

सब शास्त्रों को पढ़के ऋग्वेद को पढ़ै उसका आश्वलायनकृत जो श्रौत सूत्र बह्वृच जो ऋग्वेदका ब्राह्मण और कल्पसूत्र इनके साथ साथ मन्त्रों का अर्थ पढ़ै और स्वर को भी पढ़ै सो दो वर्ष के भीतर सब ऋग्वेद को पढ़ लेगा तथा यजुर्वेद की संहिता उसके साथ २ कात्यायन; श्रौतसूत्र, तथा गृह्यसूत्र तथा शतपथ ब्राह्मण स्वर अर्थ और हस्तक्रिया के सहित यथावत् पढ़ै डेढ़ वर्ष तक यजुर्वेद को पढ़ लेगा इसके पीछे सामवेद को पढ़ै गोभिल श्रौतसूत्र तथा राणायनश्रौतसूत्र और कल्पसूत्र साम ब्राह्मण तथा गोभिल राणायन गृह्यसूत्र के साथ २ पढ़ै दो वर्ष में सब सामवेद को पढ़ लेगा इस के पीछे अथर्ववेद को पढ़ै शौनकश्रौतसूत्र, शौनकगृह्यसूत्र: अथर्व ब्राह्मण और कल्पसूत्र के साथ २ सो एक वर्ष में पढ़ लेगा ऐसे साढ़े छः वा सात वर्ष में चारों वेदों को पढ़लेगा चारों वेदों को जो संहिता है उन्हीं का नाम वेद है फिर उन्हीं वेदों की जितनी अन्य २ शाखा हैं वे सब वेदों के व्याख्यान हैं बिना पढ़े सब विचार मात्र से आजांयगी तथा आरण्यक बृहदारण्यकादिक व्याख्यान हैं उनको भी विचार करने से जान लेगा चारों वेदों को पढ़ के आयुर्वेद को पढ़ै जो कि ऋग्वेद का उपवेद है उसमें धन्वन्तरिकृत निघण्टु, चरक और सुश्रुत इन तीनों ग्रन्थों को शस्त्रक्रिया, हस्तक्रिया और निदानादिक विषयों को यथावत् पढ़ै सो तीन वर्ष में पढ़लेगा और वैद्यक शास्त्र के विषय में शार्ङ्गधरादि जाल ग्रन्थों का पढ़ना और पढ़ाना व्यर्थ ही जानना इसके पीछे यजुर्वेद का जो उपवेद

धनुर्वेद उसको पढ़ै उसमें शस्त्र विद्या जो कि शस्त्रों का रचना और शस्त्रों का चलाना और अस्त्र विद्या जो कि आग्नेयास्त्रादिक पदार्थ गुणों से होते हैं उन को यथावत् रच लेना अग्न्यादिक अस्त्रों के विषयों का बिस्तार राजधर्म में लिखेंगे और युद्ध समय में व्यूह की रचना यथावत् जान लेवे जैसे कि सूचीव्यूह सूईका अग्रभाग तो बहुत सूक्ष्म होता है और उस अग्र भाग से पहिले २ स्थूल होता है उस्से सूत स्थूल होता है इसी प्रकार से सेना को रचके शत्रु की सेना वा दुर्ग वा नगरमें प्रवेश करैं तब उसके बिजय का सम्भव होता है ऐसा ही शकटव्यूह, मकरव्यूह और गरुड़व्यूहादिकों को जान लेवे उसको दो वा तीन वर्ष में पढ़ लेगा उसके आगे सामवेद का जो उपवेद गान्धर्व वेद उस को पढ़ै उसमें वादित्रराग, रागिणी, कालताल स्वर पूर्वक गान विद्या का अभ्यास करैं दो वर्षमें उसको पढ़लेगा इसके आगे अथर्ववेद का जो उपवेद अर्थवेद नाम शिल्पशास्त्र उसमें नाना प्रकार कला यत्न और नाना प्रकार के द्रव्यों को मिलाने से नाना प्रकार व्यवहारों के यानों की और दूरवीक्षण, अणुवीक्षण, नाम दूरस्थित पदार्थों को निकट देखे और अणुवीक्षण नाम सूक्ष्म पदार्थ भी स्थूल देख पड़ै इत्यादिक पदार्थों को रचले जैसे कि अग्नि का ऊर्ध्वगमन स्वभाव है और जल का नीचे जाने का स्वभाव है सो किसी पात्र में जल को करके चूल्हे के ऊपर रक्खे और उसके नीचे अग्नि करै फिर उतने ही भार वाले पात्र से उस पात्र का मुख बन्ध करै जब अग्नि से जल ऊपर उड़ेगा तब इतना बल हो

जायगा कि ऊपर का पात्र नाचने लगेगा वा गिर पड़ेगा इसी प्रकार से पदार्थों के अनुकूल गुणों को और विरुद्ध गुणों को जानने से पृथिवीयान, जलयान और आकाशयानादिक पदार्थों को रच लेगा जैसे कि महाभारत में उपरिचरवसु राजा इन्द्रादिक देव तथा राम लङ्का से अयोध्या को आकाश मार्ग से आया उपरिचरादिक राजा लोग और इन्द्रादिक देव वे भी आकाश मार्ग से जाते और आते थे तथा जैसे कि आज काल अङ्गरेज लोगों ने रेल तारादिक बहुत से पदार्थ रचे हैं वे सब शिल्पशास्त्र के विषय हैं और उन से बहुत से उपकार हैं। उस को भी तीन वर्ष में पढ़ लेगा पढ़ के पीछे अपनी बुद्धि से बहुत सी शिल्प विद्या की उन्नति करलेगा पीछे ज्योतिश्शास्त्र को पढ़ै उसमें गणित विद्या यथावत् जानै उससे बहुत सा उपकार होता है दो वा तीन वर्षमें उसको पढ़लेगा और ज्योतिश्शास्त्र में जो फल विद्या है सो व्यर्थ ही है भृग्वादिक मुनियों के किये सूत्र और भाष्यों को पढ़ै मुहूर्त्त चिन्तामण्यादिक जाल ग्रंथों को कभी न पढ़ै इस प्रकार से साढ़े २७॥ वा २८ वर्ष तक पढ़ लेगा सम्पूर्ण विद्या उस को आजायगी फिर उसको पढ़ने की आवश्यकता कुछ न रहेगी सब विद्याओं से वह पूर्ण हो के पुरुषों में पुरुषोत्तम हो जायगा और उसके शरीर से संसार में बड़ा उपकार होगा क्यों कि जैसे अपने विद्याको पढ़ा है वैसे ही पढ़ावेगा इस्से जैसा मनुष्यों का उपकार होता है वैसा किसी प्रकार से नहीं होता ऐसे ३६ वर्ष की जब आयु होगी तब तक पुरुषों को विद्या भी पूर्ण हो जायगी और जो

पुरुष ४०, ४४, और ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रक्खेगा उस पुरुष के भाग्य और सुख को हम लोग नहीं कह सकते कि कितना होगा जिस देश में राज्याभिषेक जिसका होना होय वह तो सब विद्यासे युक्त होवै और ३६, ४०,४४वा ४८ वर्ष तक अवश्य ब्रह्मचर्याश्रम करै उसीको राजा होना उचित है क्यों कि जितने उत्तम व्यवहार हैं वे सब राजा ही के आधीन हैं और सब दुष्ट व्यवहारों का बन्ध करना सो भी राजा ही के आधीन है इससे राजा और धनाढ्य लोगों को तो अवश्य सब विद्या पढ़नी चाहिये क्यों कि जो वे सब विद्याओं को न पढ़ेंगे तो अपने शरीरकी भी रक्षा न कर सकेंगे फिर धर्मराज्य और धनकी रक्षा तो कैसे करेंगे और जितनी कन्या लोग हैं वे भी पूर्वोक्त व्याकरण, धर्मशास्त्र, वैद्यकशास्त्र; गानविद्या और शिल्पशास्त्र इन पांच शास्त्रों को तो अवश्य पढ़ें और जो अधिक पढ़ें तो उनका सौभाग्य बड़ा होगा १६ वर्ष से न्यून ब्रह्मचर्य कन्या लोग कभी न करैं और जो १८, २० वा २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम करेंगी तो उन का अधिक अधिक सौभाग्य और सुख होगा जब तक स्त्री और पुरुष लोग उत्क्रान्ति पर ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त न करेंगे तो उनका अभाग्य और दुःख ही जानना परस्पर स्त्री और पुरुषों का विरोध और दुःख और भ्रान्ति होगी जिन व्यवहारों से सुख वृद्धि होती है उनको भी न जानेंगे सर्वदा दीन रहेंगे और प्रमादसे धनादिकोंका नाश करेंगे कहीं प्रतिष्ठा और आजीविका भी उनकी न होगी परस्पर व्यभिचारी होंगे उससे वीर्य

का नाश होगा फिर बहुत से शरीरमें रोग होंगे रोगों से सदा पीडित रहेंगे वेमूर्ख होंगे इससे कभी सुखन पावेंगे इससे सब स्त्री और पुरुष लोग सब पुरुषार्थ से अवश्य विद्या ही को पढ़ें इससे मनुष्यों को अधिक लाभ कोई नहीं है क्योंकि आपही आपना उपदेष्टा, रक्षक, धर्मग्राहक और अधर्म त्याग करने वाला होता है इससे बड़ा कोई लाभ नहीं है विद्या के पढ़ने और पढ़ाने में जितने विघ्न रूप व्यवहार हैं उनको जब तक मनुष्य नहीं छोड़ता तब तक उसको विद्या कभी नहीं होती प्रथम विघ्न बाल्यावस्था में जो विवाह का करना सोई बड़ा विघ्न है क्योंकि शीघ्र विवाह करने से विषयी होगा और विषय ही की चिन्ता करेगा शरीर में धातु पुष्ट तो होंगे नहीं और सब धातुओं का सार जो कि सब धातुओं का राजा घर में जैसेकि दीपक प्रकाशक होताहै जैसा ब्रह्माण्डमें सूर्य प्रकाशक है वैसा ही शरीर में वीर्य है इस अपरिपक्व वीर्य और अत्यन्त वीर्य के नाश से बुद्धि, बल पराक्रम, तेज और धैर्य का नाश हो जाता है आलस्य, रोग, क्रोध और दुर्बुद्धि इत्यादि येसब दोष उसमें हो जायेंगे फिर कैसे उसको विद्या हो सकती है कभी न होगी क्योंकि जितेन्द्रिय, धैर्यवान, बुद्धिमान, शीलवान, विचारवान जो पुरुष होता है उसी को विद्या होती है अन्य को नहीं इससे ब्रह्मचर्य का अवश्य करना उचित है दूसरा विद्या का नाशक विघ्न पाषाणादिक मूर्त्ति पूजन, ऊर्द्ध्वपुण्ड्र; त्रिपुण्ड्रादिक तिलक, एकादशी, त्रयोदश्यादिकव्रत, काश्यादिक तीर्थों में विश्वास, रामकृष्ण, नारायण, शिव भगवतीऔर गणेशादिक

नामों से पाप नाश होने का विश्वास यह भी विद्या धर्म और परमेश्वर की उपासना का बड़ा भारी विघ्न है क्यों कि विद्या का फल यही है कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन करना जो कि धर्म रूप है परमेश्वर को यथावत् जानना मुक्ति का होना यथावत् व्यवहार और परमार्थ का धर्म से अनुष्ठान करना यही विद्या होने का फल है सोई फल मिथ्या बुद्धि से पाषाणादिक मूर्त्ति में और तिलकादिकों ही में मान लेते हैं और सम्प्रदायी लोग मिथ्या उपदेश करके धूर्तता और अधर्म का निश्चय करा देते हैं पीछे वे सम्प्रदायी लोग ऐसे कहते और उनके चेले सुनते हैं कि मूर्त्ति पूजादिक प्रकार ही से आप लोगों की मुक्ति होगी यही परम धर्म है ऐसा सुन के उन विद्या हीन मनुष्यों को निश्चय हो जाता है कि यही बात सत्य है सब कहने और सुनने वाले वैसे हैं जैसे कि पशु हैं वे ऐसा भी कहते हैं कि सम्प्रदायी और नाममात्र से जो पण्डित लोग आजीविका के लोभ से यही बात वेद में लिखी है ऐसी बात कहने वाले और सुनने वाले ने वेद का दर्शन भी कभी नहीं किया वेद में इन बातों का सम्बन्ध लेशमात्र भी नहीं है परन्तु अन्ध परंपरा की नांई कहते और सुनते चले जाते हैं उन को सुख वा सत्य फल कुछ भी नहीं होता क्यों कि बाल्यावस्था से लेके यही मिथ्याचार करते रहते हैं कि इसका दर्शन अवश्य करैं और तिलक माला धारण करैं काश्यादिक तीर्थों में जाके वास करैं और नाम स्मरण करैं एकादश्यादिक व्रत करैं और पुष्प ले आवैं चन्दन घसैं धूप दीप करैं नैवेद्य धरैं परिक्रमा

करैं पाषाणादिक मूर्त्तिका प्रक्षालन करके जल ग्रहण करैं और कूदैं नाँचैं कूदें और बाजे बजावैं रथ यत्रादिकोंका मेला करैं और परस्पर व्यभिचार करैं मेले में उन्मत्तवत् होके घूमते घुमाते इत्यादिक मिथ्या व्यवहारोंहीमें फसे रहते हैं फिर उनको विद्या लेशमात्र भी न आवैगी क्यों कि मरण तक उनको अवकाश ही न मिलेगा फिर कैसे वे पढ़ें और पढ़ावेंगे यह विद्याका नाशक दूसरा विघ्न है तीसरा विघ्न यह है कि माता, पिता और आचार्य्यादिक पुत्र और कन्याओं को लाड़न में हो रखते हैं कुछ शिक्षा व ताड़न नहीं करते इससे भी विद्या का नाश हो होता है चौथा विघ्न यह है कि गुरु, पण्डित और पुरोहित ये तीनों विद्या तो पढ़ते नहीं फिर वे हृदय से यही चाहते हैं कि मेरे चेले और मेरे यजमान मूर्ख ही बने रहैं क्यों कि वे जो पण्डित हो जायंगे तो हम लोगों का पाखण्ड उनके सामने न चलेगा इससे हम लोगों की अजीविका नष्ट हो जायगी इस लिये वे सदा पढ़ने पढ़ाने में विघ्न ही करते हैं धनाढ्य और राजा लोगों के ऊपर अत्यन्त विघ्न करते हैं कि ये लोग विद्याहीन बने रहैं इनसे हम लोगों की आजीविका बड़ी है धनाढ्य और राजा लोग भी आलस्य और विषय सेवामें फस जाते हैं इससे वे भी पढ़ना नहीं चाहते धनाढ्य वा राजपुत्र पढ़ना भी चाहैं तो वैरागी आदि सम्प्रदायी और पण्डित लोग छल और कपट रखते हैं यथावत् पढ़ाते भी नहीं यहां तक वे छल और विघ्न करते हैं कि चेला और पुत्र वा बन्धुपुत्र भी विद्यावान् न हो जाय क्यों कि उनकी प्रतिष्ठा

होने से मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी इस्से जो कुछ गुण जानते भी हैं उसको छिपा रखते हैं इस लिये विद्या लोप आर्य्यावर्त्त देश में हो गया है सब लोगों को विद्या का प्रकाश करना उचित है किसी को भी विद्या गुप्त रखना योग्य नहीं और पांचवां विघ्न यह है कि भङ्गापान, अफीम और मद्यपान करने से बहुत सा प्रमाद होता है और बुद्धि भी नष्ट होजाती है उस्से भी विद्या का नाश होता है छठवां विघ्न यह है कि राजा और धनाढ्य लोगों का घाट, मन्दिर, क्षेत्रों में सदावर्त, विवाह त्रयोदशाह, तीर्थस्थान, और बागों के रचने में बहुत धन नष्ट हो जाता है किन्तु गृहस्थ लोगों के जितना आवश्यक हो उतना ही स्थान रचें निर्वाह मात्र विद्या प्रचार में किसी का धन नहीं जाता और विचार के न होने से गुणवान पुरुषों की प्रतिष्ठा भी नहीं होती किन्तु पाखण्डों ही की होती है उस्से मनुष्यों का उन्माद बहुत हो जाता है सप्तम विघ्न यह है कि पांचवें वर्ष पुत्रों व कन्याओं को पाठशाला में पढ़ने के लिये नहीं भेजते उन के ऊपर राजा का दण्ड न होने से भी विद्या का नाश होता है और विषय सेवा में अत्यन्त फंस जाते हैं इस्से भी विद्या नाश होता यह आठवां विघ्न विद्या का नाशक है इत्यादिक और भी विद्या नाश करने के विघ्न बहुत हैं उनको सज्जन लोग विचार करलेवें जब सोलह वर्ष का पुरुष होय तब से लेके जब तक वृद्धा-वस्था न आवै तब तक व्यायाम करै बहुत न करै किन्तु ४०

बैठक करै और २० वा ३० दण्ड करै कुछ भीत खम्भे वा पुरुष से मल्ल करै फिर लाट करै उसको भोजन से एक घण्टे पहिले करै सब अभ्यास जब कर चुके उससे एक घण्टे पीछे भोजन करै परन्तु दूध जो पीना होय तो अभ्यास के पीछे शीघ्र ही पीवे उससे शरीर में रोग न होगा जो कुछ खाया वा पीया सो सब परिपक्व हो जायगा सब धातुओंकी वृद्धि होती है तथा वीर्य की भी अत्यन्त वृद्धि होती है शरीर दृढ़ हो जाता है और हड्डियां बड़ी पुष्ट हो जाती हैं जाठराग्नि शुद्ध प्रदीप्त रहता है और सन्धि से सन्धि हाड़ों की मिली रहती है अर्थात् सब अङ्ग सुन्दर रहते हैं परन्तु अधिक न करना अधिक के करने से उतने गुण न होंगे क्योंकि सब धातु शुष्क और रूक्ष हो जाते हैं इससे बुद्धि भी वैसी रूक्ष हो जाती है और क्रोधादिक भी बढ़ते हैं इससे अधिक न करना चाहिये यह बात सुश्रुतमें लिखी है जो देखना चाहै सो देख लेवै उन बालकों के हृदय में वीर्य के रक्षण में जितने गुण लिखे हैं इस पुस्तक में और जितने दोष लिखे हैं वे सब माता पिता और आचार्यादिक निश्चय दृष्टान्त देदे के करा देवैं जैसे कि वीर्य की रक्षा में सुख लाभ होता है उसका हजारवां अंश भी विषय भोग में वीर्य के नाश करने से नहीं होता परन्तु जैसा नियम सत्यशास्त्रोंमें कहा है उसका कुछ अंश इसमें भी लिखा है उस प्रकार से जो वीर्य की रक्षा करेगा उस को बहुत सा सुख होगा जो प्रमाद और भांग आदिक नशा करेगा वह पागल

भी हो जाय तो आश्चर्य नहीं इस्से युक्ति पूर्वक विद्या और बल से ही वीर्य की रक्षा करनी चाहिये अन्यथा वीर्य की रक्षा कभी न होगी जब वीर्यकी रक्षा न होगी तब विद्या भी न होगी जब विद्या न होगी तब कुछ भी सुख न होगा उसका मनुष्य शरीर धारण करना ही पशुवत हो जायगा ॥ सैषानन्दस्यमीमांसा-भवति युवास्यात्साधुयुवाध्यापकः आशिष्ठोद्रढिष्ठोवलिष्ठः तस्येयंपृथिवीसर्वावित्तस्यपूर्णास्यात्सएकोमानुष आनन्दः श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य तेयेशतंमानुषा आनन्दाः सएको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य तेयेशतंमनुष्य-गन्धर्वाणामानन्दाः सएको देवगन्धर्वाणामानन्दः श्रोत्रियस्य-चाकामहतस्य तेयेशतंदेवगन्धर्वाणामानन्दाः सएकः पितॄणां-चिरलोकलोकानामानन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य तेयेशतं पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दाः सएकः आजानजानान्देवा-नामानन्दः श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य तेयेशतमाजानजानान्दे-वानामानन्दाः सएकः कर्मदेवानामानन्दः येकर्मणादेवानपि-यन्ति श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य तेयेशतंकर्मदेवानामानन्दाः सएकोदेवानामानन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य तेयेशतंदेवा-नामानन्दाः सएकइन्द्रस्यानन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य तेये-शतमिन्द्रस्यानन्दाः सएकोबृहस्पतेरानन्दः श्रोत्रियस्य चाका-महतस्य तेयेशतंबृहस्पतेरानन्दाः सएकः प्रजापतेरानन्दः श्रो-त्रियस्य चाकामहतस्य तेयेशतंप्रजापतेरानन्दाः सएकोब्रह्मण-आनन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य सयश्चायंपुरुषेयश्चासावा-दित्येसएकः ॥ यह तैत्तिरीयोपनिषद की श्रुति है सो देखना

चाहिये कि जैसा विद्या से आनन्द होता है वैसा कोई प्रकार से आनन्द नहीं होता इसमें इस श्रुति का प्रमाण है युवावस्था हो साधु युवा नाम उस में कोई दुष्ट व्यसन न हो अध्यापक नाम सब शास्त्रों को पढ़ के पढ़ाने का सामर्थ्य जिस को हो अर्थात् सब विद्याओं में पूर्ण होय आशिष्ट नाम सत्य जिस की इच्छा पूर्ण हो दृढिष्ठ अतिशय नाम अत्यन्त जो शरीर और बुद्धिसे दृढ़ हो अर्थात् कोई प्रकार का रोग जिसके शरीर में न होय बलिष्ठ नाम अत्यन्त बलवान् होवै और जिस की वित्त नाम धन से सब पृथ्वी पूर्ण होय अर्थात सार्वभौम चक्रवर्त्ती होवै इसको मनुष्य लोग के आनन्द की सीमा कहते हैं और जो कोई केवल विद्यावान् ही है और किसी प्रकार की कामना जिसको नहीं है अर्थात विद्या, धर्म और परमेश्वर की प्राप्ति के बिना किसी पदार्थ के ऊपर जिस को प्रीति न होवै ऐसा जो श्रोत्रिय ॥ श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते। यह अष्टाध्यायी का सूत्र है व्याकरण पठन से लेके वेद पठन तक जिसका पूर्ण पठन हो गया है उस को श्रोत्रिय कहते हैं उस श्रोत्रिय नाम विद्यावानको वैसा ही आनन्द होता है जैसा कि पूर्वोक्त चक्रवर्त्तीको उस्से भी अधिक होने का सम्भव है क्योंकि चक्रवर्त्ती राजा को तो राज्य के अनेक कार्य रहते हैं इस्से चित्त की एकाग्रता नहीं होती और जो वह पूर्ण विद्वान् है सो तो सदा परमेश्वर के आनन्द में मग्न रहता है लेशमात्र भी दुःख का उसको सम्भव नहींहै उस चक्रवर्त्तीके मनुष्यानन्द से शतगुण आनन्द मनुष्य गन्धर्वों को है मनुष्य गन्धर्वों के आनन्द से शतगुण अधिक आनन्द देव गन्धर्वों को है देव गन्धर्वों से

पितृलोग वासियों को शतगुण आनन्द है और पितृलोगों से अधिक शतगुण आनन्द आजान नामक देवों को है आजान देवों से शतगुण आनन्द कर्म देवों को है जो कि कर्मों से देव होते हैं उनसे शतगुण आनन्द देव लोग वासी नाम देवों को है उन देवों से शतगुण आनन्द इन्द्र को है इन्द्र से शतगुण आनन्द बृहस्पति को है और बृहस्पति से प्रजापति को अधिक शतगुण आनन्द है और प्रजापति से ब्रह्मा को अधिक शतगुण आनन्द है जो २ आनन्द चक्रवर्त्ती और मनुष्य गन्धर्वों से शतगुण अधिक २ गणाते आये सो सब आनन्द विद्या वाले पुरुष को होता है क्योंकि जो आनन्द मनुष्य में है सोई सूर्य लोग में आनन्द है किन्तु एक ही अद्वितीय परमेश्वर आनन्द स्वरूप सर्वत्र पूर्ण है उस परमेश्वर को विद्यावान् यथावत् जानता है उस परमेश्वर के जानने और उनको यथावत् योग होने से उस विद्वान् को पूर्ण अखण्ड आनन्द होता है उस आनन्द के लेश मात्र आनन्द में ब्रह्मादिक आनन्दित हो रहे हैं और उस आनन्दको जिसने पाया है उस सुखको कोई गणना अथवा तौलना कभी नहीं कर सकता यह आनन्द विद्या के बिना किसी को कभी नहीं हो सकता इससे सब मनुष्यों को विद्या ग्रहण करनेमें अत्यन्त यत्न करना योग्यहै यह ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा तो संक्षेप से लिखी गई इसके आगे चौथे प्रकरण में विवाह और गृहाश्रम की शिक्षा लिखी जायगी ॥

इति श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषा विरचिते तृतीयः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥३॥

अथ विवाह गृहाश्रम विधिम्वक्ष्यामः ॥

पुरुषोंका और कन्याओंका ब्रह्मचर्य्याश्रम और विद्या जब पूर्ण हो जाय तब जो देश का राजा होय और अन्य जितने विद्वान् लोग वे सब उनकी परीक्षा यथावत् करैं जिस पुरुष वा कन्या में श्रेष्ठ गुण, जितेन्द्रियता, सत्य बचन, निरभिमान, उत्तम बुद्धि; पूर्णविद्या, मधुरवाणी, कृतज्ञता, विद्या और गुण के प्रकाश में अत्यन्त प्रीति जिसमें काम क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, कृतघ्नता, छल कपट, ईर्ष्या, द्वेषादिक दोष न होवैं पूर्ण कृपासे सब लोगोंका कल्याण चाहैं उसको ब्राह्मणका अधिकार देवैं और यथोक्त पूर्वोक्त गुण जिसमें होय परन्तु विद्या कुछ न्यून होय शूर. वीरता, बल और पराक्रम ये तीन गुण वाला जो ब्राह्मण भया उससे अधिक हो उसको क्षत्रिय करैं और जिसको थोड़ी सी विद्या होवै परन्तु व्यापारादिक व्यवहारों में नाना प्रकारों के शिल्पों में देश देशान्तर से पदार्थों का ले आने और ले जाने में चतुर होवै और पूर्वोक्त जितेन्द्रियादिक गुण भी होवै परन्तु अत्यन्त भीरु होवै उसको वैश्य करना चाहिये और जो पढ़ने लगा जिसको शिक्षा भी भई परन्तु कुछ भी विद्या नहीं आई उसको शूद्र बनाना चाहिये इसी प्रकार से कन्याओं की भी व्यवस्था करनी चाहिये इसमें यह प्रमाण है ॥ शूद्रोब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैतिशूद्रताम् । क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैवच ॥ यह मनुस्मृति का श्लोक है इसका यह अभिप्राय है कि विद्यादिक पूर्वोक्त गुणों

से जो शूद्र युक्त होवै सो ब्राह्मण होजाय और पूर्वोक्त विद्यादिक गुणों से जो ब्राह्मण रहित हो जाय अर्थात् मूर्ख होय सो शूद्र होजाय और जिसमें क्षत्रियका गुण होवे वह क्षत्रिय जिसमें वैश्य का गुण होय वह वैश्य अर्थात् जो शूद्र के कुल में उत्पन्न भया सो मूर्ख होय तब तो वह शूद्र ही बना रहै और वैश्य के जैसे गुण हैं वैसे गुण उसमें होने से वह शूद्र । वैश्य हो जाय क्षत्रिय के गुण होने से वह क्षत्रिय और ब्राह्मण के गुण होने से वह शूद्र ब्राह्मण हो जाय तथा वैश्य कुल में उत्पन्न भया उसको वैश्य के गुण होने से वह वैश्य ही बना रहै और मूर्ख होनेसे शूद्र होजाय तथा वह क्षत्रिय और ब्राह्मण के गुण होनेसे वह क्षत्रिय और ब्राह्मण भी वैसे ही क्षत्रिय कुलमें जो उत्पन्न भया उसको क्षत्रिय वर्ण के गुण होनेसे वह क्षत्रियही बना रहे ब्राह्मण वैश्य और शूद्रके गुण होनेसे ब्राह्मण वैश्य और शूद्र भी हो जांय तथा ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न भया ब्राह्मण के गुण होने से वह ब्राह्मण ही रहे क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के गुण होनेसे क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी वहब्राह्मण हो जाय ऐसा ही मनुष्य जाति के बीच में सर्वत्र जान लेना तैसे चारों वर्णों की कन्याओं में भी उन २ उक्त गुणों के होने से ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा हो जांय उनको वर्ण क्रम से अधिकार भी दिये जांय ॥ अध्यापनमध्ययनं यजनंयाजनंतथा । दानम्प्रतिग्रहंचैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ अध्यापन नाम विद्याओंका प्रकाश करना नाम पढ़ाना अध्ययन नाम पढ़ना यजन नाम अपने घर में यज्ञों का करना याजन नाम

यजमानों के घर में यज्ञोंका कराना दान नाम सुपात्रों को दान का देना प्रतिग्रह नाम धर्मात्माओं से दान का लेना इन षट्कर्मों को करने और कराने में ब्राह्मणों को अधिकार देना उचित है प्रजानांरक्षणंदान मिज्याध्ययनमेवच । विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्यसमासतः ॥ प्रजाकी यथावत् रक्षा करना अर्थात् श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों का ताड़न करना पक्षपात का छोड़ के सुपात्रों को दान देना अपने घर में यज्ञों का करना और अध्ययन नाम सब सत्य शास्त्रोंका पढ़ना विषयेषु अप्रसक्ति नाम विषयों में फस न जाना यह संक्षेप से क्षत्रियों का अधिकार कहा पूर्वोक्त क्षत्रियों को इसअधिकार को देवैं ॥ पशूनांपालनंदान मिज्याध्ययनमेवच । वणिक्पथंकुसीदञ्च वैश्यस्यकृषिमेवच ॥ गाय आदिक पशुओं की रक्षा करना सुपात्रों को दान देना अपने घर में यज्ञों का करना सत्यशास्त्रों का पढ़ना धर्म से व्यापार का करना धर्म से सूद नाम व्याज का लेना और कृषिनाम खेती का करना इन सात कर्मों का अधिकार वैश्यों को देना ॥ एकमेवहिशूद्रस्य प्रभुःकर्मसमादिशत् । एतेषामेववर्णानां शुश्रूषमनुसूयया ॥ ये चार श्लोक मनुस्मृति के हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की निन्दा को छोड़ के सेवा करना इस एक कर्म का शूद्रोंको अधिकार देना कि तीनों वर्णों की यथावत् सेवाकरै ॥ ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यःकृतः । ऊरूतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रोऽअजायत ॥ यह यजुर्वेद की संहिता का मन्त्र है ॥ वेदाहमेतपुरुषमहान्तमादित्यवर्णन्तमसःपरस्तात् । यह भी उसी अध्याय का वचन है

पुरुष नाम है पूर्ण का पूर्ण नाम परमेश्वर का परमेश्वर के विना पूर्ण कोई नहीं होसकता क्योंकि सावयव और मूर्त्तिमान जो होता है सो एक ही देश में रहता है सर्व देश में व्यापक नहीं हो सकता उस अध्यायमें परमेश्वर ही का ग्रहण होता है क्योंकि पुरुष से सब जगत् की उत्पत्ति लिखी है सो परमेश्वर ही से सब जगत् की उत्पत्ति होती है अन्य से नहीं उसी परमेश्वर को अवयव का लेश मात्रभी सम्बन्ध नहीं मुख बाहु, ऊरु और पाद स्थूल २ इनने अवयवों की तो कभी संगति नहीं है क्योंकि सूक्ष्म भी अवयव का भेद परमेश्वर में नहीं हो सकता फिर स्थूल अवयव का भेद परमेश्वर में कैसे होगा कभी न होगा और इस मन्त्र में तो मुखादिक शब्दों का ग्रहण किया है सो इस अभिप्राय से किया है कि शरीर में मुख सब अङ्गों से उत्तम अङ्ग है वैसे उत्तम से भी उत्तम गुण जिस मनुष्य में होय वह ब्राह्मण होवै मुख के समीप अङ्ग जैसा कि बाहु वैसा ही ब्राह्मण के समीप क्षत्रिय है और हाथ के बल आदिक गुण हैं जिस्से कि दुष्टों का दमन होता है और श्रेष्ठों का पालन अपने शरीर का भी रक्षण शत्रुओं और शस्त्रों के बल हाथ से हो सक्ता है वैसा ही प्रजा का पालन होगा और हाथ के विना कभी रक्षण जगत् का वा अपना युद्ध में वा दुष्टों से नहीं हो सक्ता सो बलादिक गुण जिस मनुष्य में होय वह क्षत्रिय होवै तथा ऊरु नाम जङ्घा में जब बल होता है तब जहां तहां देशान्तरों में पदार्थों को उठा के लेजाना और देशान्तरों से लेआना हानि और लाभ में स्थिर

बुद्धि होना जैसे कि जंघा के ऊपर स्थिर हो के बैठना होता है इस प्रकार के वेगादिक गुण जिस मनुष्य में होवैं वह वैश्य होय तथा पाद जैसे कि सब अङ्गों से नीचे का अङ्ग है जब मनुष्य चलता है तब कङ्कड़, पाषाण, कीच और कांटों पर पैर पड़ते हैं सब शरीर ऊपर रहता है पैर ही विष्ठादिकों में पड़ते हैं वैसे मूर्खत्वादिक नीच गुण जिस मनुष्य में होवैं सो मनुष्य शूद्र होय इस मन्त्र में ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है सो सज्जनों को मानना और करना भी चाहिये सो इस प्रकार से परीक्षा कर के वर्ण व्यवस्था अवश्य करना चाहिये वर्ण व्यवस्था विना जन्म मात्र ही से वर्णों के होने में बहुत दोष होते हैं इस्से गुणों ही से वर्णों का होना उचित है और जो वर्णों को न मानैं तो विद्यादिक गुण ग्रहण में मनुष्य का उत्साह भङ्ग होजायगा क्योंकि उत्तम गुण वाले को उत्तम अधिकार की प्राप्ति न होगी और गुणहीन को नीच अधिकार की प्राप्ति न होगी तो कैसे मनुष्यों को उत्साह गुण ग्रहण में होगा। अर्थात् कभी न होगा इस्से वर्ण व्यवस्था का मानना उचित है और जो गुणों के विना वर्णों को जन्म मात्र ही से मानैं तो सब वर्ण और सब गुण नष्ट हो जांयगे क्यों कि जन्म मात्र ही से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होंगे तो कोई भी गुण ग्रहण की इच्छा न करेगा इस्से सब विद्यादिक गुण नष्ट हो जांयगे जैसे कि ब्राह्मण कुल सब कुलों से उत्तम है उस कुलमें उत्तम पुरुषों ही का निवास होना उचित है क्यों कि वे उत्तम कर्मही करैंगे नीच कर्म कभी न करैंगे इस्से उत्तम

कुल की उत्तमता नष्ट कभी न होगी और जो ब्राह्मण कुल में मूर्ख और नीच पुरुषों के निवास होने से उत्तम कुल की उत्तमता नष्ट हो जायगी क्यों कि वे अभिमान तो ब्राह्मण ही का करेंगे और ब्राह्मण के गुणों को ग्रहण कभी न करेंगे सदा नीच ही कर्म करेंगे इस्से ब्राह्मण कुल की बड़ी निन्दा उस निन्दासे अप्रतिष्ठा होगी उस्से ब्राह्मण कुल दूषित हो जायगा इसने उत्तम गुण वाले को उत्तम ही कुल में रखना उचित है तथा भीरु नाम भयादिक गुण वाले पुरुष को क्षत्रिय कुल में कभी न रखना चाहिये क्यों कि जिस को भय होगा सो दुष्टों को कैसे दण्ड और प्रजा का पालन कैसे करेगा युद्ध भूमि से सदा वह भाग जायगा उस का राज्य शत्रु लोग ले लेंगे चोर और डाकू लोग सदा उस राजा और प्रजा को पीड़ा देंगे इस्से उस राजा का राज्य और ऐश्वर्य्य नष्ट हो जायगा इस्से विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम और पूर्वोक्त निर्भयादिक गुण युक्त ही को क्षत्रिय कुल में रखना चाहिये अन्य को नहीं तथा व्यापारादिक पशुपालनादिक में जो चतुर और पूर्वोक्त विद्यादिक गुण से युक्त होवे उसी को वैश्य होना उचित है जो मूर्खत्वादिक गुण युक्त है उसी को शूद्र रखना चाहिये ऐसी जब व्यवस्था होगी तबब्राह्मणादिक वर्णों में ब्राह्मणादिकों को भय होगा कि हम लोग उत्तम गुण ग्रहण न करेंगे और उत्तम कर्म न करेंगे तो नीच अधिकार नाम शूद्रत्व को प्राप्त हो जायगे अर्थात् शूद्र हो जायगे और शूद्रादिकों की विद्यादिक गुण ग्रहण में उत्साह होगा क्योंकि हम लोग जो उत्तम

गुण वाले होंगे तो उत्तम अधिकार को प्राप्त होंगे अर्थात् द्विज होजायेंगे इससे उत्तमोंको तो भय होगा और नीचों को उत्साह ही होगा इस्से ऐसी ही व्यवस्था सज्जनों को करना उचित है वर्ण शब्द के अर्थ से भी ऐसी व्यवस्था आती है॥ व्रियन्तंये तेवर्णाः। कि वर्ण नाम गुणों से जिसका स्वीकार किया जाय उसका नाम वर्ण है ऐसा दृष्टान्त भी सुन्ने में आता है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण भया वत्स क्षत्रिय से ब्राह्मण भया और श्रवण, श्रवण का पिता, श्रवण की माता, वैश्य और शूद्र वर्ण से महर्षि भये मातङ्गऋषि का चांडाल कुल में जन्म था फिर ब्राह्मण हो गया यह महाभारत में लिखा है और जाबाल वेश्याके पुत्र से ब्राह्मण होगया यह छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है इत्यादिक और भी जान लेना चाहिये जैसी वर्णों की व्यवस्था गुणों से है वैसी विवाह में व्यवस्था करनी चाहिये ब्राह्मणका ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शूद्रा से विवाह होना चाहिये क्यों कि विद्यादिक उत्तम गुण वाले पुरुष से विद्यादिक उत्तम गुणवाली स्त्री का विवाह होने से परस्पर दोनों को अत्यन्त सुख होगा और जो उत्तम पुरुष से मूर्ख स्त्री वा पण्डित स्त्री का मूर्ख पुरुष से विवाह होगा तो अत्यन्त क्लेश होगा कभी सुख न होगा तथा क्षत्रियोंके गुणवाले से क्षत्रिय गुण वाली स्त्रीका वैश्य गुणवाले पुरुष से वैश्य गुणवाली स्त्री का विवाह होना चाहिये और जो मूर्ख पुरुष सोई शूद्र है उस से मूर्ख स्त्री का विवाह होना उचित है क्योंकि तुल्य स्वभाव के होने से सुख होता है

अन्यथा दुःख ही होता है रूपकी भी परीक्षा होनी चाहिये परस्पर दोनों की अर्थात् बर और कन्या की प्रसन्नता से विवाह का होना उचित है कन्या बर की परीक्षा करै और बर कन्या की दोनों को परस्पर प्रसन्नता जब होय फिर माता, पिता व बन्धु विवाह कर देवैं अथवा आपही दोनों परस्पर विवाह कर लेवैं पशुवत् विवाह का व्यवहार करना उचित नहीं जैसे कि गाय वा छेरी को पकड़ के दूसरे के हाथ में दे देते हैं वे लेके चले जातेहैं जैसी इच्छा होय वैसा करते हैं इस प्रकार का व्यवहार मनुष्यों को कभी न करना चाहिये पूर्वोक्त काल के नियम ही से विवाह करना चाहिये बाल्यावस्था में नहीं ॥ गुरुणानुमतः-स्नात्वासमावृत्तोयथाविधि। उद्वहेतद्विजोभार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ यह मनु का श्लोक है इस का यह अभिप्राय है कि ब्रह्मचर्याश्रमसे पूर्ण विद्या पढ़ के गुरुकी आज्ञा लेके जैसी बिधि वेद में लिखी है वैसे सुगन्धादिक द्रव्य से मन्त्र पूर्वक स्नान करके शुभ श्रेष्ठ लक्षण युक्त अपने वर्णकी कन्या को वह द्विज ग्रहण करै। महान्त्यपिसमृद्धानिगोऽजाविधनधान्यतः। स्त्री सम्बन्धे दशैतानि कुलानिपरिवर्जयेत् ॥ बड़े भी कुल होंय गाय, छेरी, अवि नाम भेड़ धन और धान्य से सम्पन्न होवैं तो भी दश कुलों की कन्याओं को न ग्रहण करैं वे कौन से दश कुल हैं॥ हीनक्रियं निष्पुरुषंनिश्छन्दोरोमशार्शसम् क्षय्यामयाव्ययस्मारि श्वित्रिकुष्ठिकुलानिच ॥ ये दश कुल हैं हीनक्रिय नाम जिस कुल में यज्ञादिक क्रिया नहीं हैं और आलस्य भी बहुत सा जिस कुल में होय १ निष्पुरुष नाम

जिस कुल में पुरुष न होवें स्त्री २ होवें २ निष्छन्द नाम जिस कुल में वेदादिक विद्या न होय ३ रोम नाम जिस कुल में भालू की नाईं देह के ऊपर लोम होवें ४ शार्शस नाम जिस कुल में बवासिर रोग हो ५ क्षयि नाम जिस कुल में धातु क्षीणता दमा रोग होय ६ आमयाविनाम जिस कुल म आंख का विकार होय ७ अपस्मारि नाम जिस कुल में मिर्गी रोग होय ८ श्वित्रि नाम जिस कुल में श्वेत कुष्ठ होय ९ और कुष्ठि नाम जिस कुल में गलित कुष्ठ होय १० इन दश कुलों की कन्याओं को विवाह के लिये ग्रहण न करें क्यों कि जो रोग पिता माताके शरीरमें होता है सोई सन्तानों में भी कुछ २ रोग आवैगा इस्से उन का ग्रहण करना उचित नहीं। नोद्वहेत्कपिलांकन्यां नाधिकाङ्गीन्नरोगिणीम् । नालोमिकान्नातिलोमान्नवाचाटान्नपिङ्गलाम् । नर्क्ष वृक्ष नदीनाम्नीन्नान्त्यपर्वतनामिकाम् । नपक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीन्नचभीषणनामिकाम् कपिला नाम बिलाई की नाईं जिस कन्या के नेत्र होवें उस के साथ विवाह न करै क्यों कि सन्तानों के भी वैसे नेत्र होंगे नाधिकाङ्गी नाम जिस कन्या के अङ्ग वर से अधिक होवें अर्थात् कन्याका शरीर लम्बा चौड़ा वर कर शरीर छोटा और दुबला होय उनका परस्पर विवाह न होना चाहिये अर्थात् दोनों के शरीर स्थूल अथवा दोनों के शरीर कृषित होवें तब विवाह होना चाहिये परन्तु स्त्री के शरीर से पुरुष का शरीर लम्बा होना चाहिये हाथ के कंधे तक स्त्री का सिर आवे उस्से अधिक स्त्रीका शरीर न होना चाहिये न्यून होय तो होय

अन्यथा गर्भ स्थिर न होगा और वंशच्छेद भी हो जाय तो आश्चर्य नहीं इस्से स्त्री का शरीर पुरुष के शरीर से छोटा ही होना चाहिये रोगिणी नाम स्त्री के शरीर में कोई रोग न होना चाहिये और स्त्री भी पुरुष की परीक्षा करै कि उसके शरीर में स्थिर रोग कोई न होवै कोई महा रोग न होय इस प्रकार की कन्या से विवाह न करै कि जिसके शरीर में सूक्ष्म भी लोम न होय और जिसके शरीर के ऊपर बड़े २ लोम होवैं उस्से भी विवाह न करै वा वाटां नाम बहुत बोलने वाली जो स्त्री है उस्के साथ विवाह न करै अर्थात् परिमित भाषण करै अधिक बकवाद न करै जिसका पीत वर्ण हर्दी की नाई होय उस स्त्री के साथ विवाह न करै और जिसका नक्षत्र के ऊपर नाम होय जैसा कि अश्विनी, भरणी, इत्यादिक तथा वृक्ष के ऊपर जैसा कि आम्रा अश्वत्था, इत्यादिक और नदी के ऊपर जैसाकि नर्मदा, गङ्गा इत्यादिक अन्तय, नाम चांडाली, चर्मकारिणी, इत्यादिक पर्वत के ऊपर जिसका नाम होवै जैसकि हिमालया, विन्ध्या-चला, इत्यादिक जिसका पक्षी के ऊपर होय जैसा कि हंसी काकी, इत्यादिक जिसका सर्प के ऊपर होय जैसे कि सर्पिणी इत्यादिक जिसका दासी इत्यादिक नाम होय जिसका भय-ङ्करी, चण्डी, और भैरवी, काली इत्यादिक नाम होवै इस प्रकार के नाम वाली स्त्री से विवाह न करना चाहिये नक्ष-त्रादिक जितने नाम हैं वे सब अयुक्त हैं मनुष्यों के न रखना चाहिये कैसी स्त्री का विवाह होना चाहिये कि ॥ अव्यङ्गाङ्गीं-

सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्। तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गी मुद्वहेत्स्त्रियम्॥ अव्यङ्गाङ्गीं नाम जिसके टेढ़े अङ्ग न होवैं अर्थात् सब अङ्ग सूधे होवैं सौम्य जिसका नाम सुन्दर होवैं जैसा कि यशोदा, कामदा, कर्मदा, कलावती, सुखवती, सौभाग्यवती, इत्यादिक हंसवारणगामिनीम् जैसे कि हंस और हाथी चलता है वैसी चाल की होवै ऐसी चलने वाली स्त्री न होय कि ऊंट और काक की नांई चलै तनु नाम सूक्ष्म लोम केश और सूक्ष्म दांत वाली होय जिसके अङ्ग कोमल होवैं ऐसी स्त्री के साथ पुरुष विवाह करैं ब्राह्मादिक ८ आठ विवाह मनुस्मृति में लिखे हैं वे कौन हैं कि। ब्राह्मो-दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः। गान्धर्वोराक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोधमः। ये सब श्लोक मनुस्मृति के हैं ब्राह्म विवाह उसको कहते हैं कि कन्या और वर का सत्कार करना यथावत् होमादिक करके और विद्या शीलादिकों की परीक्षा करके कन्यादान देना उसका नाम ब्राह्म विवाह है मास वा दोमास पर्यन्त होम होता रहै और जामाताही ऋत्विक् होवें यज्ञ के अन्त दक्षिणा स्थान में कन्या देना उसका नाम दैव विवाह है एक गाय और एक बैल वा दो गाय और दो बैल वर से लेके कन्या को देना उसका नाम आर्ष विवाह है प्राजापत्य नाम वर और कन्या से प्रतिज्ञा का होना अर्थात् कन्या वर से प्रतिज्ञा करै कि मैं आप से व्यभिचार, अधर्म और अप्रियाचरण कभी न करूंगी तथा वर कन्या से प्रतिज्ञा करै कि मैं तुम से व्यभिचार अधर्म

और अप्रियाचरण कभी न करूंगा पीछे विधि पूर्वक विवाह होना उसका नाम प्राजापत्य विवाह है आसुर नाम अपने कुटम्बियों को थोड़ा सा धन देना और वर के कुटम्बियों को भी थोड़ा सा धन देना सत्कार के लिये कन्या और वर को भी थोड़ा २ धन देना होमादिक विधि से विवाह करना उसका नाम आसुर विवाह है अर्थात् दैत्यों का विवाह है कन्या और वर के परस्पर प्रसन्न होने से विवाह का होना उसको गन्धर्व विवाह कहते हैं इसमें माता पिता और बंध्वादिकों का कुछ प्रयोजन नहीं कन्या और वर ये दोनों आप ही से स्वतन्त्र होके सब विधि कर लेवें इसीका नाम गान्धर्व विवाह है कोई कन्या अत्यन्त रूपवती और सब गुणों से जिसकी प्रशंसा अर्थात् हजारहों कन्याओं के बीच में श्रेष्ठ होवै और कहने सुनने से उसका पिता न देता होय कन्या को भी बन्ध करके रक्खे तब वहां जाके बलसे कन्या का ले लेना है उसको राक्षस विवाह कहते हैं फिर होमादिक विधि करके विवाह कर लेवैं अर्थात् जैसे कि राक्षस लोग बल से परपदार्थों को छीन लेते हैं वैसा यह विवाह है अष्टम विवाह यह है कि कहीं एकान्त में कन्या सूती अथवा मत्त अथव भांग वा मद्यादिक पीके प्रमत्त हो अथवा कोई रोग से पागल भई होय उस्से समागम करै विवाह के पहिले ही समागम का होना वह पैशाच विवाह कहाता है यह सब विवाहों से नीच विवाह है इन आठ

विवाहों में ब्राह्म, दैव और प्राजापत्य ये तीन सर्वोत्तम हैं इन तीनों में भी ब्राह्म अति उत्तम है और गान्धर्व भी श्रेष्ठ है उस्से नीच आसुर, उस्से नीच राक्षस, और सब से नीच पैशाच विवाह है उसको कभी न करना चाहिये॥

अनिन्दितैः स्त्रीविवाहै रनिन्द्या भवतिप्रजा। निन्दितैर्निन्दितानृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत्॥ मनुष्यों को निन्दित विवाह कभी न करना चाहिये जैसी परीक्षा और जो काल लिखा है उस्से विरुद्ध विवाहों का करना वे निन्दित नाम भ्रष्ट विवाह हैं और भ्रष्ट विवाहों के करने से उनके सन्तान भी भ्रष्ट होते हैं जैसे कि बाल्यावस्था में विवाह का करना उससे जो सन्तान होता है वह सन्तान रोगादिक पूर्वोक्त दूषित ही होगा श्रेष्ठ कभी न होगा जो परीक्षा के विना विवाह करना उस्से क्लेश होंगे और सन्तान भी बहुत क्लेशित होजायेंगे उनके धनादिकों का नाश भी हो जायगा इस्से निन्दित विवाह मनुष्यों को कभी न करना चाहिये और जो ब्रह्मादिक उत्तम विवाह हैं उनका काल तथा परीक्षा लिखी है उस रीति जो विवाह होते हैं वे अनिन्दित तथा श्रेष्ठ विवाह हैं उन विवाहों के करने से स्त्री पुरुष और कुटुम्बियों को सदा सुख ही होगा और उनकी प्रजा भी अनिन्दित अर्थात् श्रेष्ठ ही होगी सदा माता, पिता और कुटुम्बियों को वे पुत्रादिक सन्तान सुख ही देवेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं महाभारत में जितने विवाह लिखे हैं वे युवावस्था ही में लिखे हैं परस्पर परीक्षा

और परस्पर प्रसन्नता ही से विवाह होते थे जैसे कि द्रौपदी कुन्ती, गान्धारी, दमयन्ती, लोपामुद्रा; अरुधन्ती, मैत्रेयी, कात्यायनी और शकुन्तलादिकों के विवाह इसी प्रकार से हुये थे तथा मनुस्मृति में लिखा है । बाल्येपितुर्वशेतिष्ठे त्पाणि-ग्राहस्ययौवने । पुत्राणांभर्त्तरिप्रेते नभजेत्स्त्रीस्वतन्त्रताम् ॥ बाल्यावस्था न्यून से न्यून षोड़श वर्ष पर्यन्त होती है तब तक पिता के वश में कन्या रहे और षोड़श वर्ष से लेके २४ वर्ष पर्यन्त जिस वर्ष में विवाह होय तब अपने पति के वश में रहे जब पति न रहे तब पुत्रों के वशमें स्त्री रहे स्त्री स्वतन्त्र न होवै क्यों कि स्त्री का स्वभाव चञ्चल होता है इस्से आप कुमार्ग में चलेगी और धनादिकों का नाश भी करेगी इस्से स्त्री को स्वतन्त्र न रखना चाहिये और जो लोग यह बात कहते हैं कि पिता के घर में कन्या रजस्वला जो होय तो पितादिकों का धर्म नष्ट हो जायगा और पितादिक सब नरक में जांयगे यह बात सत्य है वा नहीं यह बात मिथ्या ही है क्यों कि कन्याके रजस्वला होने से पितादिक अधर्मी हो जांयगे और नरक में जावेंगे यह बड़ा आश्चर्य्य है पितादिकोंका क्या अपराध है कि रजस्वला का होना तो स्त्री लोगों का स्वाभाविक है तो सदा होहीगा इस में पितादिकों का क्या सामर्थ्य है कि बन्द कर देवैं सो यह बात प्रमाण शून्य है बुद्धिमान् इस बात को कभी न मानैं इसमें मनु भगवान् का प्रमाण भी है ॥ त्रीणिव-र्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमतीसती । ऊर्द्ध्वन्तुकालादेतस्मा द्विन्देत सदृशंपतिम् ॥ पिता के घरमें कन्या जब रजस्वला होय

तबसे लेके तीन वर्ष तक विवाह करने के लिये पति की परीक्षा करै तीन वर्ष के पीछे जैसी वह कन्या है वैसे ही अपने तुल्य सवर्ण पति को ग्रहण करै कन्या के शरीर में धातु क्षीणादिक रोग न होवैं तो सोलहवें वर्ष रजस्वला होगी इस से पहिले नहीं और जो उक्त रोग होगा तो १५ पन्द्रहवें वा १४ चौदहवें अथवा १३ तेरहवें वर्ष कोई कन्या रोगी रजस्वला हो जाय तो भी तीन वर्ष पीछे बिवाह करेंगे तो १६ सोलहवें १७ सतरहवें वा १८ अठारहवें वर्ष बिवाह करना उचित है और जब सोलहवें वर्ष रजस्वला होय तो १६ वा २० बीसवें वर्ष बिवाह होना चाहिये क्यों कि शरीर से जो रज निकलता है सो स्त्री के शरीर की शुद्धि होती है इस कारण रजस्वला स्त्री के साथ ४ दिन तक सङ्ग करने का निषेध है कि स्त्री के शरीर से एक प्रकार की उष्णता निकलती है उस के निकलने से नाड़ी और उस का शरीर शुद्ध हो जाता है इस्से रजस्वला होने के पीछे ही बिवाहका करना उचित है जो जन्मपत्र देखके बिवाह करते हैं सो बात सत्य है वा मिथ्या यह बात मिथ्या ही है क्यों कि जन्मपत्र को तो मिलाते हैं परन्तु उन के स्वभाव, गुण, आयु और बल को न मिलाने से सदा उन को क्लेश ही होता है इस लिये वह बात मिथ्या ही है जन्मपत्र मिलाने को बुद्धिमान लोग सत्य कभी न जानैं इस में प्रमाण भी है॥ उत्कृष्टायाभिरूपाय वरायसदृशायच। अप्राप्तामपितांतस्मै कन्यान्दद्याद्यथाविधि॥ यह मनुस्मृति का श्लोक है इसका यह अभिप्राय है कि उत्कृष्ट नाम उत्तम विद्यादिक गुणवान अभिरूप अर्थात्

जैसी कन्या रूपवती होय वैसा वर भी होवै और श्रेष्ठ स्वभाव दोनों का तुल्य होय अप्राप्त नाम निकट सम्बन्ध में भी होय तो भी उसी को कन्या देवै अर्थात् दोनों तुल्य गुण और रूप वाले होंय तब विवाह का करना उचित है अन्यथा नहीं इस में यह मनुस्मृति का प्रमाण है ॥ काममामरणात्तिष्ठे द्गृहेकन्यर्त्तुमत्यपि । नचैवैनाम्प्रयच्छेत्तु गुणहीनायकर्हिचित् ॥ इस का यह अभिप्राय है कि ऋतुमती कन्या अपने पिता के घर में मरण तक भी बैठी रहै यह बात तो श्रेष्ठ है परन्तु गुणहीन अर्थात् विद्याहीन पुरुष को कन्या कभी न देवै अथवा कन्या आप भी दुष्ट पुरुषसे विवाह न करै तथा पुरुष भी मूर्ख वा दुष्ट कन्या से विवाह न करै यही गृहस्थों को यथोक्त प्रकार से जैसा कि कहा वैसा विवाह करना सब सुखों का मूल है अन्यथा दुःख ही है कभी सुख न होगा जो शीघ्र बोध में ये दो श्लोक लिखे हैं कि ॥ अष्टवर्षाभवेद्गौरी नववर्षाचरोहिणी । दशवर्षाभवेत्कन्याततऊर्द्ध्वंरजस्वला १ माताचैवपिताचैव ज्येष्ठभ्रातातथैवच । त्रयस्तेनरकंयान्ति दृष्ट्वा कन्यांरजस्वलाम् ॥ २ ॥ ये दोनों श्लोक मिथ्या ही हैं क्यों कि आठवें वर्ष विवाह करने से जो कृष्णवर्ण वाली स्त्री गौरवर्ण वाली कैसे होगी वा महादेव की स्त्री उस का नाम गौरी नाम है उससे विवाह कैसे हो सकेगा वैसे रोहिणी नक्षत्र लोक है सो आकाशमें रहता है यह जड़ पदार्थ है उस्से विवाह कैसे होगा कभी नहीं हो सक्ता जो रोहिणी बलदेव की स्त्री थी वह तो मर गई मरी हुई का विवाह कभी नहीं हो सक्ता

और दश वर्ष में कन्या होती है यह भी मिथ्या ही है क्यों कि जब तक विवाह नहीं होता तब तक कन्या ही कहाती है और पिता के सामने तो सदा कन्या ही और बन्धु के सामने भगिनी रहती है फिर उस का जो नियम है कि दश वर्ष में कन्या होती है सो बात काशिनाथ की मिथ्या ही है जो कहता है कि दश वर्ष के आगे रजस्वला होती है यह भी मिथ्या ही है सुश्रुत में १६ वर्षके आगे धातुओं की वृद्धि लिखी है सो ठीक है उस समयमें सोलह वर्ष से लेके आगेही रजस्वला होने का संभव है सो सज्जनों को यही बात मानना चाहिये और काशिनाथकी बात कभी न मानना चाहिये जो उसने यह बात लिखी है कि कन्या रजस्वला होने से पितादिक नरक में जांयगे सो मनुस्मृति वा वेदादिक सत्यशास्त्रों और प्रमाणों से विरुद्ध है इस बात में तो उसकी बड़ी भारी मूर्खता है क्यों कि माता पितादिकों का क्या दोष है कन्या रजस्वला होने से वे नरकमें जांय यह कहना उसका बड़ा पामरपन है पूर्वपक्ष पिताने काल में विवाह न किया इस्से उनको दोष होता होगा और १० वर्ष के आगे उस को विवाह का फल न होता होगा इस्से उस काशिनाथ ने लिखा होगा उत्तर यह बात भी उसकी मिथ्या है क्यों कि सोलह वर्षके पहिले कन्या और २५ वर्षके पहिले पुरुष का विवाह करने से अवश्य पितादिकों को पाप का संभव होता है अथवा उनकी स्त्री पुरुषों को तो पाप होने का सम्भव होता है किन्तु पाप का फल दुःख है सो बाल्यावस्थामें विवाह करने से वीर्य्यादिक धातुओं के नाश और विद्यादिक गुण न होने से

अवश्य वे दुःखी होते हैं और होंगे इस में कुछ सन्देह नहीं है इस्से इस काशिनाथका नाम काशिनाश रखना चाहिये क्योंकि काशि नाम प्रकाश का है इसने विद्यादिक गुणों का नाश कर दिया इस्से इसका नाम काशिनाश ही ठीक है जो इसने ग्रन्थ का नाम शीघ्रबोध रक्खा है उसका नाम शीघ्रनाश रखना चाहिये क्यों कि बाल्यावस्था में विवाह करने से शीघ्रही रोग होंगे और बहुत रोग होने से शीघ्र ही मर जांयगे इस्से इस्का नाम शीघ्रनाश ही ठीक है इस प्रकार से श्लोक हम लोग भी रच ले सक्ते हैं ॥ ब्रह्मोवाच । एकयामाभवेद्गौरी द्वियामाचै-वरोहिणी । त्रियामातुभवेत्कन्या ततऊर्द्ध्वंरजस्वला ॥ १ ॥ मातातस्याःपिताचैव ज्येष्ठोभ्रातातथानुजः । एतेवैनरकंयान्ति दृष्ट्वाकन्यांरजस्वलाम् ॥ २ ॥ पूर्व पक्ष ये दो श्लोक कौन शास्त्र के हैं तो मैं पूछता हूं कि काशिनाथ के श्लोक कौन शास्त्र के हैं वे काशिनाथ के ग्रन्थ के हैं तो यह श्लोक मेरे ग्रन्थ के हैं आप के ग्रन्थ का क्या प्रमाण है तो काशि-नाथ के ग्रन्थ का क्या प्रमाण है काशिनाथ के ग्रन्थ को तो बहुत लोग मानते हैं जिसको बहुत मनुष्य मानैं वही श्रेष्ठ होय तो जैन यसूमसी और मुहम्मद के मत को मानने वाले बहुत हैं उन्ही को मानना चाहिये वे हम लोगों के मत से विरुद्ध हैं इससे हम लोग नहीं मानते तो आप लोगों का कौन मत है जो वेदोक्त और धर्मशास्त्रोक्त है सोई तो हम लोगों के मत से काशिनाथ का मत विरुद्ध हुआ क्यों कि आप लोगों का मत वेद और मनुस्मृत्युक्त ही हुआ उस धर्म शास्त्र में मनुस्मृति

भी है इससे विरुद्ध होने से आप लोगों को काशिनाथ का मत मानना उचित नहीं और आपने जो श्लोक बनाये उसके आगे ब्रह्मोवाच क्यों लिखा यह दृष्टान्त के लिये लिखा इस से क्या दृष्टान्त हुआ कि इसी प्रकार से ब्रह्मोवाच, विष्णुरुवाच, नारदउवाच, नारायण उवाच, पाराशरउवाच, वसिष्ठ उवाच, याज्ञवल्क्यउवाच, अत्रिरुवाच, अङ्गिराउवाच, युधिष्ठिरउवाच व्यासउवाच शुकउवाच, परीक्षितउवाच, कृष्णउवाच, अर्जुनउवाच, इत्यादिक नाम लिखके अष्टादश पुराण अष्टादश उपपुराण; १७सतरह पाराशरादिक स्मृतियां, निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु नारदपंचरात्र, काशिखण्ड, काशिरहस्य और सत्यनारायण कथा, इत्यादिक ग्रन्थ सम्प्रदायी लोग और पण्डित लोगों ने रच लिये हैं तथा महादेवउवाच, पार्वत्युवाच, भैरवउवाच भैरव्युवाच, दत्तात्रेयउवाच, इत्यादिक लिखके बहुत तन्त्र ग्रन्थ लोगों ने रच लिये हैं यह तो दृष्टान्त भया जैसे कि मैंने अपने श्लोकों के पहिले अपनी इच्छा से ब्रह्मोवाच लिखा वैसे ही इन्होंने ब्रह्मोवाच इत्यादिक रख के ग्रन्थ रच लिये हैं इसलिये कि श्रेष्ठों के नाम लिखने से ग्रन्थों का प्रमाण होजाय प्रमाण के होने से सम्प्रदायों और आजीविका की वृद्धि होवै उस्से बिना परिश्रम से धन आवै और बहुत सुख होवैं इस लिये धूर्त्तता रची है जैसा कि ब्रह्मोवाच मेरा लिखना वृथा है वैसा उन का भी ब्रह्मोवाच इत्यादिक लिखना वृथा ही है और जैसे मेरे श्लोक दोनों मिथ्या हैं वैसे उनके पुराणादिक ग्रन्थ और काशिनाथका

ग्रन्थ आर्यावर्त देशवासी लोगों के सत्यानाश करने वाले हैं इनको सज्जन लोग मिथ्याही जानैं इससे क्या आया कि मरण तक भी कन्या विवाह के विना घर में बैठी रहै तो भी पितादिकों को कुछ दोष नहीं होता परन्तु दुष्ट पुरुष के साथ श्रेष्ठ कन्या अथवा दुष्ट कन्या के साथ श्रेष्ठ पुरुष का विवाह कभी न करना चाहिये किन्तु तुल्य श्रेष्ठगुण वालों का परस्पर विवाह होना चाहिये जो दुष्ट पुरुष के साथ श्रेष्ठ कन्या वा श्रेष्ठ के साथ दुष्ट कन्या का विवाह होगा तो परस्पर दोनों को दुखही होगा इससे दोनोंका परस्पर विचार करके वर और कन्या का विवाह करैं क्योंकि श्रेष्ठ विवाह से उन्हीं को सुख और दुष्ट विवाह से उन्हीं को दुःख होगा इस में माता पितादिकों का कुछ भी अधिकार नहीं उन दोनों के विचार और प्रसन्नता ही से विवाह होना चाहिये विवाह में बहुत धनका नाश करना अनुचित ही है क्योंकि वह धन व्यर्थ ही जाता है इससे बहुत राज्य नष्ट हो गये और वैश्य लोगों का भी विवाह में धन के व्ययसे दिवाला निकल जाता है सब लोगों का मिथ्या धन का व्यय करना अनुचित है इससे धन का नाश विवाह में कभी न करना चाहिये एक ही स्त्री से विवाह करना उचित है बहुत स्त्री के साथ विवाह करना पुरुषों को उचित नहीं स्त्री को भी बहुत विवाह करना उचित नहीं क्योंकि विवाह सन्तान के लिये है सो एक स्त्री एक पुरुष को बहुत है देखना चाहिये कि एक व्यभिचारणी स्त्री अथवा वेश्या ने बहुत पुरुषों को वीर्य के नाश से निर्बल कर

देती हैं इससे एक पुरुष के लिये एक स्त्री क्या थोड़ी है अर्थात् बहुत है एक स्त्री के साथ भी सर्वथा वीर्य का नाश करना उचित नहीं क्योंकि वीर्यके नाशसे पूर्वोक्त सब दोष हो जांयगे इससे विवाहिता उसके साथ भी वीर्य का नाश बहुत न करना चाहिये केवल सन्तान के लिये वीर्य का दान करना चाहिये अन्यथा नहीं और स्त्री भी केवल सन्तान ही की इच्छा करे अधिक नहीं दोनों परस्पर सदा प्रसन्न रहैं पुरुष स्त्री को सदा प्रसन्न रक्खे और स्त्री पुरुषको विरोध वा क्लेश परस्पर कभी न करैं ॥ संतुष्टोभार्यया भर्त्ता भर्त्राभार्यातथैवच। यस्मिन्नेवकुलेनित्यं कल्याणं तत्रवैध्रुवम् ॥ यह मनुस्मृति का श्लोक है इसका यह अभिप्राय है कि स्त्री प्रियाचरण से पुरुष को सदा प्रसन्न रक्खे और पुरुष भी स्त्री को जिस कुल में इस प्रकार की व्यवस्था है उस कुल में दुःख कभी नहीं होता किंतु सदा सुख ही रहता है और जो परस्पर अप्रसन्न रहेंगे तो यह दोष आवेगा ॥ यदिहिस्त्रीनरोचेत पुमांसन्नप्रमोदयेत्। अप्रमोदात्पुनःपुंसः प्रजनंनप्रवर्त्तते ॥ १ ॥ स्त्रियान्तुरोचमानायां सर्वन्तद्रोचतेकुलम्। तस्यान्त्वरोचमानायां सर्वमेवनरोचते ॥ २ ॥ ये दोनों मनुस्मृति के श्लोक हैं इनका यह अभिप्राय है कि जो स्त्री प्रीति और सेवा से पुरुष को प्रसन्न न करैगी तो पुरुषको अप्रसन्नतासे हर्ष न होगा जब हर्ष न होगा तब प्रजनं नाम वीर्यकी अत्यन्त उत्पत्ति और गर्भस्थिति भी न होगी तो स्त्रीको पुरुषके अप्रीतिसे कुछ भी सुख न होगा और जो पुरुष स्त्रीको प्रसन्न न रक्खेगा तो उस पुरुषको कुछ भी गृहाश्रम

करनेका सुख न होगा स्त्रीको जो प्रसन्न रक्खेगा उसको सब आनन्द होगा तथाच॥ पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा पूज्याभूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥ १ ॥ यत्रनार्यस्तु-पूज्यन्तेरमंतेतत्रदेवताः। यत्रैतास्तु नपूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ २॥ शोचन्तिजामयोयत्र विनश्यत्याशुतत्कुलम्। नशोचन्तितुयत्रैता वर्द्धतेतद्धिसर्वदा॥ ३॥ जामयो-यानिगेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः। तानिकृत्याहतानीवविन-श्यन्तिसमन्ततः॥ ४ ॥ तस्मादेताःसदापूज्या भूषणाच्छाद-नाशनैः। भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५॥ ये सब मनुस्मृति के श्लोक हैं इनका यहअभिप्राय है किपिता, भ्राता पति और देवर येसब लोग स्त्रियोंकी पूजा करैं देखना चाहिये कि पूजाका अर्थ घण्टा, झांझ, झालरी, मृदङ्ग, धूप, दीप और नैवेद्यादिक षोडशोपचारों को पूजा शब्द से जो लेते हैं सो मिथ्या ही लेते हैं क्योंकि स्त्रियोंकी ऐसी पूजा करनी उचित नहीं और न कोई ऐसी पूजा करता है इससे पूजा शब्द का अर्थ सत्कार ही है सत्कार जो होता है सो चेतन ही का होता है जो सत्कार को जाने इससे स्त्री लोगों का सदा सत्कार करना चाहिये जिससे कि वे सदा प्रसन्न रहैं और उनको यथाशक्ति आभूषणों से प्रसन्न रक्खैं जिन गृहस्थों का बड़ा भाग्य होता है और बहुत कल्याण की जिनको इच्छा होवै वे इस प्रकार से स्त्रियों को प्रसन्न ही रक्खैं॥ १॥ जिस कुल में नारी लोग रमण नाम आनन्द से क्रीड़ा करती और प्रसन्न रहती हैं तिस कुलमें देवता नाम विद्या गुण जिनोंसे कि वह

कुल प्रकाशित होजाता है वे गुण सदा उस कुलमें बढ़ते रहते हैं जिस कुलमें स्त्रियोंका सत्कार और उनको प्रसन्नता नहीं होती उस गृहस्थकी सब क्रिया निष्फल होती है और दुर्दशा भी होतीहै इस से स्त्रियोंको प्रसन्नही रखना चाहिये ॥२॥ और जिस कुल में जामय नाम स्त्री लोग शोक से दुःखित रहती हैं उस कुल का नाश शीघ्रही हो जाता है जिस कुल में स्त्री लोग शोक नहीं करतीं अर्थात् प्रसन्न रहती हैं उस कुल की वृद्धि और आनन्द सदा होता है और आज कल आर्यावर्त्त में कोई एक राजा वा धनाढ्य विवाहिता स्त्री को तो कैद की नांई बन्द करके रखते हैं और आप वेश्या और पर स्त्री के पास गमन करते हैं उसमें अपने धन और शरीर का नाश करते हैं और उनकी विवाहित स्त्रियां रोती और बड़ी दुखित रहती हैं परन्तु उन मूर्ख पुरुषों को कुछ भी लज्जा नहीं आती कि यह स्त्री तो मेरे साथ विवाहित है इसको छोड़ के मैं अन्य स्त्री गमन करता हूं यह मैं न करूं ऐसा विचार उन पुरुषोंके मन में कभी नही आता अन्य स्त्री और वेश्या गमनजो करते हैं सो तो बुरा ही काम करते हैं परन्तु बालकों से भी बुरा काम करते हैं यह बड़ा आश्चर्य है कि स्त्री का काम पुरुषों से करते हैं इनकी तो अत्यन्त भ्रष्ट बुद्धि सज्जनों को जाननी चाहिये ३ जिन पुरुषों को स्त्री दुखित होके श्राप देती हैं उन कुलों का नाश ही हो जाता है जैसे कि कोई विषदान करके कुल का नाश कर देवै वैसे ही उन कुलों का नाश हो जाता है इस्से सज्जनों को स्त्रियों का सत्कार सदा करना

चाहिये जिस्सेकिस्त्री लोग प्रसन्नहोके गृहका कार्य धर्माचरण और मङ्गलाचरण सदा करैं ४ तिस्से स्त्रियोंका सत्कार सदा करना चाहिये आभूषण, वस्त्र,भोजन और मधुर वाणी से स्त्रियों को प्रसन्न रक्खैं जिनको कि ऐश्वर्य की इच्छा होय वे यज्ञादिक उत्सवों में स्त्रियों का बहुत सत्कार करैं अर्थात् स्त्रियों को प्रसन्न ही रक्खैं तथा स्त्री लोग भी सब प्रकार से पुरुषों को प्रसन्न रक्खैं ॥ ५ पाणिग्राहस्यसाध्वीस्त्री जीवतोवामृतस्यवा । पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥१॥ जिसके साथ विवाह होय उसको स्त्री सदा प्रसन्न रक्खै जिस्से वह अप्रसन्न होय ऐसी बात कभी न करै सोई स्त्री श्रेष्ठ कहाती है यहां तक की पति मर भी गया होय तो भी अप्रियाचरण न करै उस स्त्री को सदा श्रेष्ठ पति इस जन्म वा जन्मान्तर में भी प्राप्त होता है ॥ १ ॥ अनृतावृतुकालेच मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः । सुखस्यनित्यंदातेह परलोकेचयोषितः । २ । वेद मन्त्रों से जिस पुरुष से विवाह का संस्कार भया वही ऋतु काल वा अऋतु काल और इस लोक वा परलोक में नित्य सुख देने वाला है और कोई नहीं इस्से विवाहित पुरुष की स्त्री सदा सेवा करै जिस्से कि वह प्रसन्न रहै और घर का जितना कार्य है वह स्त्री के अधिकार में रहै। सदाप्रहृष्टयाभाव्यं गृहकार्येषुदक्षया । सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ३ ॥ सदास्त्री प्रसन्न होके गृह कार्य चतुरता से करै पाक को अच्छी प्रकार से संस्कार करै जिस्से कि औषधवत् अन्न होय और गृह में जो पात्र लवणादिक पदार्थ

और अन्न सदा शुद्ध रक्खै जितने घर हैं उनको सब दिन शुद्ध रक्खै जाला धूली वा मलिता घरमें कुछ भी न रहै घरमें लेपन प्रक्षालन और मार्जन करै जिस्से कि घर सब दिन शुद्ध बना रहै और घर के दास दासी नोकर इत्यादिकों पर सब दिन शिक्षा की दृष्टि रक्खै जो पाक करने वाला पुरुष वा स्त्री होवै उसके पास पाक करने समय बैठ के शिक्षा करै जैसी पाक की रीति वैद्यकशास्त्र में लिखी है उस रीति से पाक करै और करावै नये घर को बनाना वा सुधारना होय उसको स्त्री ही करावै शिल्प शास्त्र की रीति से अर्थात् जितना घर का जो कार्य है सो स्त्री ही के आधीन रहै उसमें जो नित्य नित्य वा मास २ में खर्च होय वह पति को समझा देवै और जितना बाहर का कार्य होय सो सब पुरुष के आधीन रहै परस्पर सदा प्रसन्न से घर के कार्यों को करैं घर इस प्रकार का बनावै कि जिसमें सब ऋतु में सुख होय और जिस स्थान में वायु शुद्ध होय चारों ओर पुष्पोंकी सुगन्ध वाटिका लगावै जिस्से कि सदा चित्त प्रसन्न रहै और व्यर्थ धन का नाश कभी न करैं धर्महीसे धन का संग्रह करैं अधर्मसे कभी नहीं अच्छे से अच्छा भोजन करैं जो विद्या पढ़ी होवै उसको सदा पढ़ावैं और विचारते रहैं आज काल के लोग कहते हैं कि स्त्री लोगों को पढ़ना न चाहिये ऐसा विद्या हीन पुरुष कहते हैं वे पाखण्डी और धूर्त हैं क्यों कि स्त्री लोग जो पढ़ैंगी तो उनके सामने हमारी धूर्त्तता न चलेगी फिर उनसे धन भी न मिलेगा और वे जब विद्यासे धर्मात्मा होंगी तब हमलोगों

से व्यभिचार भी न करेंगी बिना व्यभिचार से वे स्त्री धनभी न देंगी फिर हम लोगोंका व्यवहार न चलेगा ऐसे आर्य्यावर्त्त देश में गोकुलस्थ गुसांई आदिक सम्प्रदाय हैं कि जिनकी व्यभिचार और स्त्री ही लोगों से बढ़ती होती है वे इस प्रकार का उपदेश करते हैं कि स्त्री लोगों को कभी न पढ़ना चाहिये परन्तु देखना चाहिये मनु भगवान ने यथावत् आज्ञा दी है॥ वैवाहिकोविधिःस्त्रीणां संस्कारोवैदिकस्मृतः। पतिसेवागुरौवासोगृहार्थोग्नि परिक्रिया॥ ४॥ विवाह को जितनी विधि हैं सो वेदोक्त ही हैं स्त्रियों का विवाह वेद की रीति से होना चाहिये और पति की सेवा अत्यन्त करनी चाहिये यही स्त्री का मुख्य कर्म है और विवाह के पहिले गुरौ वास नाम स्त्री लोग पढ़ने के लिये ब्रह्मचर्य्याश्रम करें और गृहकार्य जानने के लिये अवश्य विद्या पढ़ें अग्नि परिक्रिया नाम अग्नि होत्रादिक यज्ञ करने के लिये अवश्य वेदों को पढ़ें अन्यथा कुछ भी न जानेंगी नित्य स्त्री पुरुष मिल के अग्निहोत्र प्रातः और सायं काल करें अन्य यज्ञों को भी सामर्थ्य के अनुकूल करें और जो विद्या न पढ़ी वा आप न जानती होगी तो अग्नि होत्रादिक यज्ञ और घर के सब कार्य्य को कैसे करेगी विद्या अन्य के पास होय तो उस विद्याको जिस प्रकारसे मिलै उस प्रकारसे लेवै क्योंकि मरण तक भी गुण ग्रहण करने की इच्छा मनुष्यों को करनी चाहिये उसी से मनुष्यों को सुख होता है। ४। स्त्रियोरत्नान्यथो विद्या सत्यंशौचंसुभाषितम्। विविधानिच्चशिल्पानि समादेयानिसर्वतः॥ ५॥ ये पांच मनुस्मृति के

श्लोक हैं स्त्रीः हीरादिक रत्न सत्य विद्या, सत्यभाषण, पवित्रता, मधुरवाणी नाम भाषण करने की रीति और विविध अर्थात् अनेक प्रकार के शिल्प ये सब जिसमें होवें उससे ही लेना चाहिये भाषण की रीति यह है कि। सत्यंब्रूयात्प्रियंब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् । प्रियंचनानृतंब्रूयादेषधर्मः सनातनः ॥ १ ॥ भद्रम्भद्रमितिब्रूयाद्भद्रमित्येववावदेत् । शुष्कवैरं विवादञ्च नकुर्य्यात्केनचित्सह ॥ २ ॥ ये दो श्लोक मनुस्मृति के हैं इसका यह अर्थ है कि सत्य ही कहै मिथ्या कभी न कहै सदा सब जनों को जो प्रिय लगे वैसा ही कहै पूर्वपक्ष प्रिय तो वेश्यागामी परस्त्रीगामी और चोरी करने वाले आदि पुरुषों से उन्हीं बातों को कहै तब उनको अनुकूल प्रिय होता है अन्यथा प्रिय नहीं होता इससे ऐसा ही कहना चाहिये वा नहीं उत्तर पक्ष इसको प्रिय बचन न कहना चाहिये क्यों कि वेश्यादिक गमन की इच्छा जब वे करते हैं तभी उनके हृदय में शङ्का भय और लज्जा हो जाती है वह काम तो उनके हृदयको प्रिय ही नहीं है और उनका आचरण करना भी अधर्म है किन्तु उनको जो निषेध करना है वही ठीक २ प्रिय है जैसे कोई बालक अग्नि पकड़ने को चलै उसको उसकी माता कहै कि तू अग्नि पकड़ यह बचन बालकको प्रिय न होगा किन्तु आगी में हांथ नावेगा तब हांथ जल जायगा उस्से बालक को अप्रिय होगा अर्थात् दुःख ही होगा किन्तु बालक को जो निषेध करना है कि तू आग को मत पकड़ वही बचन उस को प्रिय है प्रिय उसका नाम कि कभी जिस बचन से किसी का अहित न

होय उसको प्रिय वचन कहते हैं और सत्य होय वह अप्रिय होय तो उसको न कहै जैसे किसी ने किसी से पूछा कि विवाह किस लिये करना होता है और तेरा जन्म किस प्रकार भया तब उस को इतना ही कहना उचित है कि विवाह का करना सन्तान के लिये है और मेरा जन्म मेरी माता और पिता से हुआ है जो गुप्त क्रिया है स्त्री से और माता पिता की उस को कहना उचित नहीं यद्यपि यह बात सत्य ही है तो भी सब लोगों को अप्रिय के होने से उस बात का कहना उचित नहीं तथा दश पांच पुरुष कहीं बैठे होवैं और उस समयमें काना. अन्धा, मूर्ख वा दरिद्र पुरुष आवैं उन से वे पुरुष कहैं कि काना आओ अन्धा आओ मूर्ख आ वा दरिद्र आओ ऐसा कहना उचित नहीं यद्यपि यह बात सत्य है तो भी अप्रिय के होने से न कहना चाहिये किन्तु देवदत्त आ यज्ञदत्त आओ ऐसा उन से कहना उचित है फिर आप के आंख में कुछ रोग भया था वा जन्म से ऐसी ही है तब वह प्रसन्नतासे सब बात कह देगा जैसी की भई थी इससे इस प्रकार का सत्य होय और वह अप्रिय भी होय तो कभी न कहै॥ प्रियंचनानृतंब्रूयात् और जो बात अन्य को प्रिय होय परन्तु वह अनृत अर्थात मिथ्या होय तो उस को कभी न कहै जैसे कि आज काल इस राजा और धनाढ्य लोगों के पास खुशामदी लोग बहुत से धूर्त रहते हैं वे सदा उन को प्रसन्न करने के लिये मिथ्या ही कहते रहते हैं आप के तुल्य कोई राजा वा अमीर न हुआ न है और न होगा

और जो राजा मध्य दिवस के समय में कहै कि इस समय में आधीरात है तब वे शुश्रूषु लोग कहते हैं कि हां महाराजाधिराज हां देखिये चांद और चांदनी भी अच्छी खिल रही है फिर वे कहते हैं कि महाराज के तुल्य कोई बुद्धिमान् न भया न है न होगा तब तो वह मूर्ख राजा और धनाढ्य प्रसन्नता से फूल के ढोल हो जाते हैं फिर वे ऐसी बात कहते हैं कि महाराज आप के प्रताप के सामने किसी का प्रताप नहीं चलता है आप का प्रताप कैसा है जैसा कि सूर्य और चांद ऐसा कह २ के बहुत धन हरण कर लेते हैं वे राजा और धनाढ्य लोग उन्हीं से प्रसन्न रहते हैं क्यों कि आप जैसा मूर्ख व पण्डित होता है उस को वैसे ही पुरुष से प्रसन्नता होती है कभी उन को सत्पुरुषों का सङ्ग नहीं होता और कभी सत्पुरुषों का संग हो जाय तो भी वे खुशामदी धूर्त्त राजा और धनाढ्य लोगों को मूर्खता के होने से उन को प्रसन्नता सत्य बात के सुनने से कभी नहीं होती क्यों कि जैसा जो पुरुष होता है उस को वैसा ही संग मिलता है ऐसे व्यवहार के होने से आर्य्यावर्त्त देश के राज्य और धन बहुत नष्ट होगये और जो कुछ है उस की भी रक्षा इस प्रकार से होनी दुर्लभ है जब तक कि सत्य व्यवहार सत्यशास्त्र और सत्सङ्गों को न करेंगे तब तक उन का नाश ही होता जायगा कभी बढ़ती न होगी खुशामदी लोगोंके विषयमें यह दृष्टान्त है कि कोई राजा था उसके पास पण्डित वैरागी और नौकर वे खुशामदी लोग बहुत से रहते थे किसी दिवस राजा के रसोई में बैंगन का

शाक मसाले डालने से बहुत अच्छा बना फिर राजा भोजन करने को जब बैठा तब स्वाद के होने से उस शाक को अधिक खाया राजा भोजन करके सभामें आया जहाँ कि वे खुशामदी लोग बैठे थे उन से राजा ने कहा कि बैंगन का शाक बहुत अच्छा होता है तब वे खुशामदी लोग सुनके बोले कि वाहवा महाराज की नाँई कोई बुद्धिमान् नहीं है महाराज आप देखिये कि जब बैंगन उत्तम है तब तो परमेश्वर ने उस के ऊपर मुकुट रख दिया तथा मुकुट के चारों ओर कलगी रख दी है और बैंगन का वर्ण श्रीकृष्ण के शरीर का जैसा घनश्याम है वैसा ही बनाया है और उसका गूदा मक्खन की नाँई परमेश्वर ने बनाया है इस्से बैंगन का शाक उत्तम क्यों न बनै फिर जब उस शाक ने बादी की तब रात भर नींद भी न आई और ८ दश बार शौच भी गया उस्से राजा बड़ा क्लेशित भया फिर जब प्रातःकाल भया तब भीतरसे राजा बाहर आया वे खुशा-मदी लोग भी आये जब राजा का मुख बिगड़ा देखा तब उन खुशामदी लोगों ने भी उन से अधिक मुख बिगाड़ लिया फिर वे सब खुशामदी लोग राजाके पास जाके बैठे राजा बोले कि बैंगन का शाक तो अच्छा होता है परन्तु बादी करता है तब वे बोले कि वाहवा महाराज के तुल्य कोई बुद्धिमान् नहीं है एक ही दिन में बैंगन की परीक्षा कर ली देखिये महाराज कि जब बैंगन भ्रष्ट है तब तो उसके ऊपर परमेश्वर ने खूंटी गाड़ दी है उस खूंटी के चारों ओर कांटे लगा दिये हैं उस दुष्ट का

वर्ण भी कोइले के तुल्य रक्खा है तथा परमेश्वर ने उस का गूदा भी श्वेतकुष्ठ के नांई बना दिया है तब उन खुशामदीयों से राजा ने पूछा कि शाम को तुम लोगों ने मुकुट, कलंगी, घनश्याम और मक्खन के तुल्य बैंगन के अवयव वर्णन किये उसी बैंगन के अवयवों को खूंटी, कांटे कोयला और कुष्ठ के नांई बनाये हम कौन बात को सत्य मानैं कि जो कल शाम को कही थी उस को मानैं वा आज के कहे को मानैं वाहवा महाराज किस प्रकार के विवेकी हैं कि विरोधको शीघ्रही जान लिया सुनिये महाराज जिस बात से आप प्रसन्न होंगे उसी बात को हम लोग कहेंगे क्यों कि हम लोग तो आप के नौकर हैं सो आप झूंठी वा सच्ची बात कहेंगे उसी बात को हम लोग पुष्ट करेंगे और हम लोग वह साले बैंगन के नौकर नहीं हैं कि बैंगन की स्तुति करैं हम को बैंगन से क्या लेना है हम को तो आपकी प्रसन्नता से प्रसन्नता है आप असत्य कहो तो भी हम को सत्य है वे इस प्रकार की सम्मति रखते हैं कि राजा सब दिन नशा करै और मूर्ख ही बना रहै फिर जब वे और कोई राजा वा धनाढ्य के पास जाते हैं तब उसी की खुशामद करते हैं जिस के पास पहिले रहते थे उसकी निन्दा करते हैं इस प्रकार से खुशामदी मनुष्यों ने राजाओं की और धनाढ्यों की मति भ्रष्ट कर दी है जो बुद्धिमान राजा और धनाढ्य लोग हैं इस प्रकारके मनुष्योंको पास भी नहीं बैठने देते न आप उन के पास बैठते तथा न उन की बात सुनते हैं

और जो कोई मिथ्या बात उन के पास कहता है उसी समय उसको उठा देते हैं और सदा बुद्धिमान, सत्यवादी, विद्यावान् पुरुषों का सङ्ग करते हैं जो कि मुख के ऊपर सत्य २ कहैं मिथ्या कभी न कहैं उन राजाओं और धनाढ्योंकी सदा बढ़ती ऐश्वर्य और सुख होता है इस्से सज्जनों को श्रेष्ठ ही पुरुषों का संग करना चाहिये दुष्टों का कभी नहीं सत्य बात के आचरण में निन्दा वा दुःख होय तो भी न भय करना चाहिये भय तो एक परमेश्वर और अधर्म ही से करना चाहिये और किसी से नहीं क्यों कि परमेश्वर सब काल में सब बातों को जानता है कोई बात परमेश्वर से गुप्त नहीं रहती इस्से सज्जनों को परमेश्वर ही से भय करना चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध हम लोग कुछ भी कर्म न करैं तथा अधर्म के आचरण से भय करना चाहिये क्यों कि अधर्म से दुःख ही होता है सुख कभी नहीं और एक पुरुषको सब लोग स्तुति करैं अथवा निन्दा करैं ऐसा कोई भी नहीं है निन्दा इस का नाम है कि ॥ गुणेषुदोषारोपणमसूया तथादोषेषु गुणारोपणमप्यसूयार्थापत्त्या वेद्या ॥ जो कि गुणों में दोषों का स्थापन करना उसका नाम निन्दा है वैसे ही अर्थापत्ति से यह आया कि दोषों में गुणोंका आरोपण भी निन्दा होती है इस्से क्या आया कि ॥ गुणेषु गुणारोपणंस्तुतिः दोषेषुदोषारोपणंचतद्विरोधत्वात् । गुणों में गुणों का जो स्थापन करना और दोषों में दोषों का उस का नाम स्तुति है जो जैसा पदार्थ है उस को वैसाही जानैं अर्थात्

यथावत् सत्यभाषण करना स्तुति है और अन्यथा अर्थात् मिथ्या भाषण करना निन्दा है इसलिये सज्जन लोगों को सदा स्तुति ही करनी चाहिये निन्दा कभी नहीं मूर्ख लोग सत्य बात कहने और सत्याचरण के करने में निन्दा करैं तो भी बुद्धिमान् लोगोंको दुःख वा भय न मानना चाहिये किन्तु प्रसन्नता ही रखनी चाहिये क्योंकि उनकी बुद्धि भ्रष्ट है इस लिये भ्रष्ट बातभी सदा कहतेहैं जैसे वे भ्रष्टलोग भ्रष्टता को नहीं छोड़ते हैं तो श्रेष्ठ लोग श्रेष्ठता को क्यों छोड़ैं किन्तु भ्रष्टता भ्रष्ट लोगों को भी अवश्य छोड़नी चाहिये यदि सब भ्रष्ट लोग विरोध भी अत्यन्त करें यहां तक कि मरण की भी अवस्था आ जाय तो भी सत्य वचन और सत्याचरण सज्जनों को कभी न छोड़ना चाहिये क्योंकि यही मनुष्यों के बीच में मनुष्यत्व है और इसको छोड़ने से मनुष्यत्व तो नष्ट ही हो जाता है किन्तु पशुत्व भी आ जाता है आजीविका भी सत्य से करनी चाहिये असत्य से कभी नहीं इसमें यह मनु भगवान का प्रमाण है। न लोकवृत्तंवर्तेतवृत्तिहेतोःकथंचन। इसका यह अभिप्राय है कि संसार में बहुत धूर्त लोग असत्य और पाखण्ड से आजीविका करते हैं वैसे आचरण कभी न करें वृत्ति अर्थात् आजीविका के हेतु भी असत्य भाषणादिक न करैं किन्तु सत्यही भाषण से आजीविका करै यही धर्म सनातन है कि अनृत अर्थात् मिथ्या वही दूसरे को प्रिय होय तो कभी न करै किन्तु सदा सत्य भाषण ही करै दूसरा मनु भगवान् का श्लोक है कि भद्रं भद्रमित्यादि। भद्र है कल्याण

का नाम सोतीन बार श्लोक में पाठ किया है इसी हेतु कि कल्याण कारक बचन सदा कहै जिसको सुन के मनुष्य धर्म-निष्ठ होय और अधर्म त्याग करैं शुष्कवैर अर्थात् मिथ्या वैर और विवाद किसी से न करना चाहिये जैसे कि आजकालके पण्डित और विद्यार्थी लोग हठ दुराग्रह और क्रोध से बाद विबाद कर्ते २ लड़ पड़ते हैं उनके हाथ सिवाय दुःख के कुछ भी नहीं लगता है इससे जो कुछ अपने को अज्ञान होय उस विषय को प्रीति पूर्वक विबाद छोड़ कर पूछले आप जो सत्य सत्य जानता होय सो औरों से कहदे ॥ परित्यजेदर्थकामौयौ स्यातांधर्मवर्जितौ। यह मनुस्मृति का वचनहै इसका यह अभि-प्राय है कि स्वाध्याय अर्थात् विद्या पठन पाठन और धन उपार्जन यदि धर्म से विरुद्ध होवे तो उनको छोड़ दे परन्तु विद्या प्रचार और धर्म को कभी न छोड़ै संतोषंपरमास्थाय सुखार्थी संयतोभवेत् संतोषमूलंहिसुखंदुःखमूलंविपर्ययः। इत्यादिक सब मनुस्मृति के श्लोक लिखेंगे सो जान लेना। संतोष इसका नाम है कि सम्यक् प्रसन्न रहैं सदा अत्यन्त पुरुषार्थ रक्खैं आलस्य और पुरुषार्थ का छोड़ना संतोष नहीं किन्तु सब दिन पुरुषार्थ में तत्पर रहैं सब दिन सुखार्थी और जितेन्द्रिय होवै कभी हर्ष और शोक न करैं किन्तु जितना सुख है सो संतोष से ही है और जितना दुःख होता है सो लोभ ही से होता है ॥ इन्द्रियार्थेषुसर्वेषुनप्रसज्येतकामतः अतिप्रसक्तिंचैतेषां मनसासंनिवर्तयेत् ॥ २ ॥ श्रोत्रादि इन्द्रियों के शब्दादिक जो विषय हैं उन में कामातुर हो के प्रवृत्त कभी

न होवै किन्तु धर्म के हेतु प्रवृत्त होवै और मन से उन में अत्यन्त प्रीति छोड़ता जाय धर्म और परमेश्वरमें प्रीति बढ़ाता जाय ॥ २ ॥ बुद्धिवृद्धिकराण्याशुधन्यानिचहितानिच नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेतनिगमांश्चैववैदिकाम् ॥ ३ ॥ जो शास्त्र शीघ्र ही बुद्धि धन और हित को बढ़ाने वाले हैं उन शास्त्रों को नित्य विचारै जैसे कि छः दर्शन चारों उपवेद और वेदों को नित्य विचारै उनके विचार से अनेक पदार्थ विद्या को प्रकाश करै किञ्च यथायथाहिपुरुषः शास्त्रंसमभिगच्छति तथातथाविजानातिविज्ञानंचास्यरोचते ॥ ४ ॥ जैसे २ पुरुष शास्त्र का विचार कर्ता है तैसे२ उसका विज्ञान बढ़ता जाता है फिर विज्ञान ही मे उसको प्रीति होती है और में नहीं ॥ ४ ॥ ऋषियज्ञंदेवयज्ञंभूतयज्ञंचसर्वदा नृयज्ञंपितृयज्ञं चयथाशक्तिनहापयेत् ॥५॥ ऋषियज्ञ अर्थात् पठन पाठन और संध्योपासन १ देवयज्ञ अर्थात् अग्निहोत्रादिक २ भूतयज्ञ अर्थात् बलि वैश्वदेव३ नृयज्ञ अर्थात् अतिथि सेवा ४ और पितृयज्ञ नाम श्राद्ध और तर्पण अपने सामर्थ्य के अनुकूल यथा शक्ति करै उन्हे कभी न छोड़ै इतने सब कर्म अविद्वान् पुरुषों के वास्ते हैं और जो ज्ञानी हैं वे तो यथावत् पदार्थ विद्या और परमेश्वर को जानते हैं। योगाभ्यास करै सब शास्त्रों को बिचारै ब्रह्म विद्या को प्राप्ति और उपदेश भी करै इसमे मनु भगवान् का प्रमाण है एतानेकेमहायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदोजनाः अनीहमानाः सततमिन्द्रियेश्वेवजुह्वति ॥ ६ ॥ जितने ज्ञानी हैं वे पांच महायज्ञों को ज्ञान क्रिया ही से करते हैं बाह्य चेष्टा से नहीं क्योंकि वे यज्ञशास्त्र

के तत्वों को जानते हैं उनकी अनीहमान अर्थात् बाहरकी चेष्टा न देख पड़े ज्ञान और योगाभ्यास से विषयों को इन्द्रियों में होम कर देते हैं तथा इन्द्रियों को मनमें मनको आत्मा में और आत्मा को परमेश्वर से योग्य करते हैं उनको बाहर की चेष्टा करना आवश्यक नहीं ॥ ६ ॥ वाच्येकेजुह्वतिप्राणंप्राणेवाचंच सर्वदा वाचिप्राणेच पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम् ॥ ७ ॥ कितने योगी और ज्ञानी लोग वाणी में प्राण का होम करते हैं कितने प्राण में वाणी का होम करते हैं सदा वाणी और प्राण में यज्ञ भी सिद्ध अक्षय अर्थात् जिसका नाश नहीं होता उसको देखते हैं अर्थात् वाणी तो प्राण ही से उत्पन्न होती है और प्राण आत्मा से आत्मा अविनाशी है उसको परमात्मा से युक्त कर देते हैं इससे उनकी मुक्ति ही हो जाती है फिर कभी उनको दुःख का संग नहीं होता है इससे उनको बाह्य क्रिया का करना आवश्यक नहीं ॥ ७ ॥ ज्ञानेनैवापरेविप्रा यजन्त्येतैर्मखैः सदा ज्ञानमूलांक्रियामेषां पश्यन्तोज्ञानचक्षुषा ॥ ८ ॥ जो ज्ञान चक्षु से सब पदार्थों को यथावत् जानते हैं वे ज्ञान ही से ब्रह्म यज्ञादिक पांच महायज्ञों को करते हैं क्यों कि ज्ञानयज्ञों से उनका सब प्रयोजन सिद्ध है सब क्रिया उनकी ज्ञान मूलक ही है क्योंकि उनके हृदय मन और आत्मा सब शुद्ध हो गये हैं उनको बाह्य अडंबर करना आवश्यक नहीं बाह्य क्रिया तो उन लोगों के लिये है जिन का हृदय और आत्मा शुद्ध नहीं वे अग्नि होत्रादिक यज्ञों की बाह्य क्रिया से अवश्य करें क्योंकि उनके करने बिना हृदय शुद्ध नहीं होगा

उन ज्ञानियों की सेवा और सङ्ग से ज्ञानोपदेश लेवैं जिस्से कि कर्मियों की भी बुद्धि बढ़ै ॥ ८ ॥ आसनाशनशय्याभिरद्भि मूर्लफलेनवा नकस्यचिद्वसेद्गेहेशक्तितोनर्चितोतिथिः ॥ ६ ॥ गृहस्थ के घर किसी समय कोई अतिथि आवै तो असत्कृत अर्थात् सत्कार बिना न रहै जैसा अपना सामर्थ्य हो वैसा सत्कार करना चाहिये आसन भोजन शय्या जल कंद और फल से अवश्य सत्कार करै ॥ ६ ॥ परन्तु ऐसे मनुष्य का सत्कार कभी न करै : पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकाशठान् हैतुकानवकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापिनार्चयेत् । १० । पाखंडि अर्थात् वेद विरुद्ध मार्ग में चलने वाले चक्रांकितादिक वैरागी और गोकुलिये गोसांई आदिकों का वचन से भी सत्कार गृहस्थ लोग कभी न करैं वैसे चोरी वेश्या गमनादिक विरुद्ध कर्म करने वाले पुरुषों का भी सत्कार न करैं वैडाल व्रतिक नाम परकाय के नाश करने वाले अपने कार्य में तत्पर हैं जैसे कि बिलार मूसे का तो प्राण हरले और अपना पेट भरले ऐसे पुरुषों का वचन से भी गृहस्थ लोग सत्कार न करें । शठ नाम मूर्खों का भी सत्कार न करैं शठ वे होते हैं कि उन्हें बुद्धि न होय और अन्य का प्रमाण भी न करैं हैतुका नाम वेद शास्त्र विरुद्ध कुतर्क के करने वाले उनका भी वचनसे सत्कार न करैं बकवृत्ति अर्थात् जैसे वैरागियों में खाखी लोग भस्म लगा लेते जटा बढ़ा लेते और काठ की कौपीन धारण कर लेते हैं फिर ग्रामवा नगर के समीप जाके ठहरते और शंखादिक बजा देते हैं अर्थात् सूचना कर देते हैं कि गृहस्थ लोग आवैं और

हमको धन आदिक पदार्थ देवैं जब गृहस्थ लोग आते हैं तब दूर से देख के ध्यान लगाते हैं प्रसाद मेंविष भी दे देते हैं और उनका धन सब हरण कर लेते हैं उनका गृहस्थ लोग बचन मे भी सत्कार न करैं ऐसे जितने मंडली बांध के फिरते हैं बैरागी और साधू इत्यादिक उनको साधू न जानना चाहिये किंतु बड़ा ठग जानना चाहिये और कितने गृहस्थ लोग सदा-वर्त्त और क्षेत्र कर्ते हैं वे अनुचित कर्ते हैं क्योंकि बड़े धूर्त्त गांजा और भांग पीनेवालेतथा चोर और डांकू वैसे ही लुच्चे सदावर्त्तों से अन्न लेते और क्षेत्रों मे भोजन कर लेते हैं फिर कुकर्म ही कर्ते रहते और हरामी होजातेहैं बहुतसे लोग अपना काम काज छोड़ सदावर्तों और क्षेत्रों के ऊपर घर के सब काम औरनोकरी चाकरी छोड़के साधू वा भिखारी बन जाते हैं फिर सेंत का अन्न खाते और सोते पड़े रहते हैं अथवा कुकर्म कर्ते रहते हैं इससे संसार की बड़ी हानि होती है सो जो कोई सदावर्त्त क्षेत्र कर्ता है उस्से सज्जन वा सत्पुरुष कोई नहीं जाता इस्से उन गृहस्थों का पुण्य कुछ नहीं होता किंतु पाप ही होताहै इससेगृहस्थ लोग अन्नादिक दान करना चाहैं तो पाठशाला रच लेवैं उसी मे सब दान करैं अथवा जो श्रेष्ठ धर्मात्मा गृहस्थ और विरक्त होवें उनको अन्नादिक देवैं और यज्ञ करैं तब उनको बड़ा पुण्य होय पाप कभी न होवै तथा मनु भगवान् का वचनहै । वेदविद्याव्रतस्नानात् श्रोत्रिया नगृहमेधिनः । पूजयेद्धव्यकव्येनविपरीतांश्चवर्जयेत् ॥ ११ ॥ जिनोंने ब्रह्म चर्य्याश्रम करके वेद विद्या अर्थात् सब विद्या

को पढ़ा है और धर्माचरण से शुद्ध होवैं ऐसे श्रोत्रिय अर्थात् विद्वान् और गृहस्थ लोगोंका हव्य नाम दैवकार्य औ कव्य-नाम पितृकार्य में गृहस्थ लोग सत्कार करैं उनसे विपरीत लोगों का सत्कार कभी न करैं ॥ ११ ॥ शक्तितोपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना सविभागश्चभूतेभ्यःकर्तव्यानुपरोधतः ॥१२॥ जो सन्यासी श्रमस्थ विद्यावान् और धर्मात्मा होवैं उन की भी गृहस्थ लोग सेवा करैं और भी जितने अनाथ होवैं अर्थात् अन्धे लंगड़े लूले और जिनका कोई पालन करने वाला न होवै उनका भी गृहस्थ लोग पालनकरैं ॥ १३ ॥ नोपगच्छेत्प्रमत्तोपि स्त्रियामार्त्तवदर्शने। समानशयनेचैवनशयीततयासह ॥१३॥ जब स्त्री रजस्वला होय उस दिन से लेके चार दिन तक काम पीड़ा से प्रमत्त भी होय तो भी स्त्री का संग न करै और एक शय्या में स्त्री के साथ कभी न सोवै ॥ १३ ॥ रजसाभिलुप्तां-नारींनरस्यह्युपगच्छतः प्रज्ञातेजोबलं चक्षुरायुश्चैवप्रहीयते ॥ १४ ॥ जो पुरुष रजस्वला स्त्री से समागमकर्ता है उसकी बुद्धि तेज बल नेत्र और आयु ये पांच नष्ट हो जाते हैं क्योंकि स्त्री के शरीर से एकप्रकार का अग्नि निकलता है उससे पुरुष का शरीर रोगयुक्त होता है रोगयुक्त होने से बुध्यादिक नष्ट हो जाते हैं ॥ १४॥ तांविवर्जयतस्तस्यरजसासमभिलुप्ताम् प्रज्ञा-तेजोबलंचक्षुरायुश्चैवप्रवर्द्धते ॥ १५ ॥ जो पुरुष रजस्वला स्त्री का संग नहीं कर्ता उस पुरुष के बुद्धि तेज बल नेत्र और आयु ये सब बढ़ते हैं ॥ १५ ॥ ब्राह्मे मुहूर्तेबुध्येतधर्मार्थौचानुचिन्त-येत् कामक्लेशांश्चतन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेवच ॥ १६ ॥ एक पहर

रात जब रहे तब सब मनुष्य उठैं उठ के प्रथम धर्म का बि-
चार करैं कि यह २ धर्मका बात हम को करनी होगी तथा यह
२ अर्थ नाम व्यवहारकी बात अवश्य करना होगा उस धर्म और
अर्थ के आचरण में विचार करैं कि परीश्रम थोड़ा होय और
वह कार्य सिद्ध हो जाय और जो शरीर में रोगादिकक्लेश हों
उन का औषध पथ्य और निदान का इस्से यह रोग भया है
इन सब को बिचारै बिचार के उन के निवारण का बिचार
करै फिर वेदतत्त्वार्थ नाम परमेश्वर की प्रार्थना करै और उठ
के मल मूत्रादिक त्याग करै हस्त पाद का प्रक्षालन करैं फिर
जो वृक्ष दूध वाले होवैं उन से दन्त धावन करैं अथवा खैर के
चूर्ण वा सूंघनी से युक्त करके दन्त धावन से दांतों को मलै
और स्नान करै सूर्योदय से पहिले १ वा दो कोस भ्रमण
करै एकान्तमें जाके संध्योपासन जैसा कि लिखा है वैसा करै
सूर्योदय के पीछे घर में आके अग्निहोत्र जैसा जिस वर्ण का
व्यवहार पूर्वक लिखा है वैसा करै जब तक पहर दिन न चढ़ै
तब तक दूसरे प्रहर के प्रारम्भ में तर्पण बलि वैश्वदेव और
अतिथि सेवा कर के भोजन करै तब जो जिस का व्यवहार है
उस व्यवहार को यथावत् करैं ग्रीष्मऋतु को छोड़के दिवसमें
न सोवै क्यों कि दिन को सोने से रोग होते हैं और ग्रीष्म में
अर्थात् वैशाख और ज्येष्ठमें थोड़ा सोनेसे रोग नहीं होता क्यों
कि निद्रा से शरीर में उष्णता होती है सो ग्रीष्म में उष्णताही
अधिक होती है जल भी अधिक पीने में आता है फिर जब
मनुष्य सोता है तब सब द्वार अर्थात् लोम द्वार से भीतर से

जल बाहर निकलता है उस्से सब मार्ग शुद्ध हो जाते हैं इस्से ग्रीष्म ऋतु में सोने से रोग नहीं होता है अन्य ऋतुमें सोने से होताहै और जोकुछ आवश्यक कार्य होय तो ग्रीष्मऋतुमें भी न सोवै तो बहुत अच्छा है फिर जब चार वा पाँच घड़ी दिन रहै तब सब कार्योंको छोड़के भोजनके लिये जावै पहिले शौचस्नानादिक क्रिया करै तदनन्तर बलिवैश्वदेव फिर अतिथि सेवा करके भोजन करै भोजन करके फिर भी संध्योपासनके वास्ते एकान्त में चला जाय संध्योपासन करके फिर अपने अग्निहोत्र स्थानमें आके अग्निहोत्र करै जब २ अग्निहोत्र करै तब २ स्त्री के साथ ही करै फिर जो जिस का व्यवहार होय वह उसको करै अथवा भ्रमण करै निदान एक प्रहर रात तक व्यवहार करै फिर सोवै दो प्रहर अथवा डेढ़ पहर तक फिर उठ के वैसे ही नित्य क्रिया करै सो मध्य रात्रि के मध्य दो प्रहर में जब२ वीर्य दान करै उसके पीछे कुछ ठहर के दोनों स्नान करैं पीछे अपने २ शय्या में पृथक २ जाके सोवें जो स्नान न करेंगे तो उनके शरीर में रोग ही हो जांयगे क्यों कि उस्से बड़ी उष्णता होती है इस लिये स्नान करने से वह विकार न होगा और वीर्य तेज भी बढ़ेगा इस्से उस समय स्नान अवश्य करना चाहिये इस में मनुभगवान् के वचन का प्रमाण है । भोजनंहिगृहस्थानांसायंप्रातर्विधीयते स्नानंमैथुनिनस्मृतम् ॥ इस का अर्थ यह है कि दो वेर गृहस्थ लोगों को भोजन करना चाहिये सायं और प्रातःकाल जो मैथुन करै तो उस के पीछे स्नान अवश्य करै। तथाचश्रुतिःअहरहःसंध्यामुपासी-

तस्मादहरहरग्निहोत्रंजुहुयात् । इन का यह अभिप्राय है कि सायं और प्रातःकाल में दो वेर संध्योपासन और अग्निहोत्र करै दोई संध्या हैं प्रातः और सायंकाल मध्यान संध्या कहीं नहीं क्यों कि संध्या नाम है सन्धि का सन्धि दो काल होती है प्रातःकाल प्रकाश और अन्धकार की सन्धि होती है तथा सायंकाल प्रकाश और अन्धकार की सन्धि होती है मध्यानमें केवल प्रकाश ही है इस्से मध्यान्ह में संध्या नहीं हो सक्ती । संध्यायन्तिपरंतत्त्वंनामपरमेश्वरंयस्यांसासंध्या । इस समय परमेश्वर का ध्यान करते हैं इस्से इसका नाम संध्या है अथवा संधयेहितासंध्या मन और जीवात्मा का परमेश्वर से जिस कर्मसे सन्धान होय उसका नाम सन्धि है सन्धिके लिये जो अनुकुल कर्म होता है उस का नाम संध्या है सो दोई हैं । तस्मादहोरात्रस्यसंयोगेब्राह्मणः संध्यामुपासीत ॥ यह सामवेद के ब्राह्मण की श्रुति है । उद्यन्तमस्तंयान्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणोविद्वान्सकलंभद्रमश्नुते । यह यजुर्वेद के ब्राह्मण की श्रुति है इसका यह अभिप्राय है कि जिस्से अहोरात्र अर्थात् रात्रि और दिवस के संयोग में संध्या करैं जब जीवात्मा बाहर व्यवहार करने को चाहता है तब बहिर्मुख होता है मन और इन्द्रियोंको भी बहिर्मुख कर्ता है और जीव भी नेत्र ललाट और श्रोत्र ऊपर के अंगो में विहार करता है जैसे कि सुर्य उदय होकर ऊपर २ बिहार करता है वैसे जीव भी जब सोना चाहता है तब हृदय पर्यन्त नीचे के अंगों में चला जाता है रात्रि की नांई अन्धकार होजाता है बिना अपने

स्वरूप के किसी पदार्थ को नहीं देखता जैसेकि सूर्य जब अस्त हो जाता है तब अन्धकार होने से कुछ नहीं देख पड़ताहै ऐसे ही जीव के ऊपर आने और नीचे जाने का व्यवहार उसका सन्धान दोनों संध्याकालमें करैं इसके सन्धान करनेसे परमेश्वर पर्यन्त का कालान्तर में मनुष्यों को बोध हो जाता है और जीवका कभी नाश नहीं होता इस्से इसका नाम आदित्य है इस श्रुतिका अर्थ होगया अर्थात्। उद्यन्तमस्तंयान्तमादित्य-मभिध्यायन् ब्राह्मणः सकलंभद्रमश्नुते। इस हेतु उदय और सायंकाल की दो संध्या निकलती हैं सो जान लेना तथा मनु-स्मृतिके श्लोकभी हैं। नतिष्ठतितुयःपूर्वान् नोपास्ते यश्चपश्चि-माम्। ससाधुभिर्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥ १ ॥ प्रातः संध्यांजपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात्। पश्चिमांतुसमासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥२॥जो प्रातः और सायम् कालकी संध्या नहीं करता उसको श्रेष्ठ द्विज लोग सब द्विज कर्माधिकारों से निकाल देवैं अर्थात् यज्ञोपवीत को तोड़ के शूद्र कुलमें कर देवैं वह केवल सेवा ही करै जो कि शूद्र का कर्म है ॥ १ ॥ इससे दो सन्ध्या निकलती हैं दूसरे श्लोक में सन्ध्याके काल का नियम और दोनों सन्ध्या हैं दो घड़ी रात से लेके सूर्योदय पर्यन्त प्रातः संध्या के काल का नियम है तथा एक वा आध घड़ी दिन से लेके जब तक तारा न निकलैं तब तक सायं सन्ध्या के काल का नियम है और गायत्री का अर्थ और जैसा ध्यान उसका कहा है वैसा ही दोनों काल में करैं और जो कहता है कि मध्यान संध्या क्यों न होय तो उन से पूंछना चाहिये कि

मध्य रात्रि में संध्या क्यों न होय और दो पहर के दो मुहूर्त्त और दो क्षण में संध्या क्यों न हो जाय ऐसा कहने से तो हज़ारों संध्या हो जांयगी और उसके मन में अनवस्था भी आजायगी इससे उसका कहना मिथ्या हीहै ॥ २ ॥ अधार्मिको-नरोयोहि यस्यचाप्यनृतधनम् । हिंसारतश्चयोनित्यं नेहासौ-सुखमेधते ॥ ३ ॥ जो नर अधार्मिक अर्थात् अधर्म का करने वाला है और जिसका धनभी अनृत अर्थात् असत्य से आया होय और नित्य हिंसारत अर्थात् पर पीड़ा ही में नित्य रहता होय वह पुरुष इस संसार में सुख को कभी नहीं प्राप्त होता ॥ ३ ॥ नसीदन्नापिधर्मेण मनोऽधर्मेनिवेशयेत् । अधार्मिकाणां-पापानामाशुपश्यन्तिपर्य्ययम् ॥ ४ ॥ यदि मनुष्य बहुत क्लेशित भी होय और धर्म के आचरण से भी बहुत दुःख पावे तो भी अधर्म में मन को प्रविष्ट न करै क्योंकि अधर्म करने वाले मनुष्यों का शीघ्र ही विपर्यय अर्थात् नाश हो जाता है ऐसा देखने में भी आता है इससे मनुष्य अधर्म करने की इच्छा कभी न करै ॥ ४ ॥ नाधर्मश्चरितोलोके सद्यःफलतिगौरिव । शनैरावर्त्तमानस्तु कर्तुर्मूलानिकृन्तति ॥ ५ ॥ जोपुरुष अधर्म करता है उसकोउसका फल अवश्य होता हैजो शीघ्र न होगा तो देर में होगा जैसे कि गाय जिस समय उसको सेवा करते हैं उस समय दूध नहीं देती किन्तु कालान्तर में देती है वैसे ही अधर्म का भी फल कालान्तर में होता है धीरे २ जब अधर्म पूर्ण हो जायगा तब उसके करने वालों का मूल अर्थात् सुख के कारणों को छेदन कर देगा इस्से वे दुःख सागर में गिरेंगे ।

५। अधर्मेणैधतेतावत्ततोभद्राणिपश्यति। ततःसपत्नान्जयति समूलस्तुविनश्यति ॥ ६ ॥ जब मनुष्य धर्म को छोड़के अधर्म में प्रवृत्त होता है तब छल कपट और अन्याय से पर पदार्थों को हरण कर लेता है हरण करके कुछ सुख भी करता है फिर शत्रु को भी अधर्म छल और कपटसे जीत लेता है परन्तु उसके पीछे मूल सहित वृक्ष उखड़ कर गिर जाता है वैसा मूल सहित उस अधर्म करने वाले पुरुष का नाश हो जाता है। ६। इससे किसी मनुष्यको अधर्म करना न चाहिये किञ्च। सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचेचैवारमेत्सदा। शिष्यांश्चशिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥७। सत्य धर्म और आर्य जो श्रेष्ठ मनुष्य हैं उनमें और उनके आचरण में सदा स्थिर हो शौच पवित्रता अर्थात् हृदय की शुद्धि और शरीरादिक पदार्थों की शुद्धि करनेमें सदा रमण करैं तथा अपने शिष्यपुत्र और विद्यार्थियों को यथावत् धर्म से शिक्षा करैं और वाणी बाहु उदर इनका संयम करैं अर्थात् वाणी से वृथा भाषण, बाहु से अन्यथा चेष्टा, और उदर का संयम अर्थात् भोजन का बहुत लोभ न रक्खैं ॥ ७ ॥ नपाणिपादचपलो ननेत्रचपलोऽनृजुः। नस्याद्वा-कचपलश्चैव नपरद्रोहकर्मधीः ॥ ८ ॥ पाणि हाथ पाद अर्थात् पैर उनसे चपलता नाम चंचलता न करैं तथा नेत्र से भी चप-लता न करैं अनृजु अर्थात् अभिमान कभी न करै सदा सरल होय और वाक् चपल न होय अर्थात बहुत न बोलै जितना उचित होय उतना ही भाषण करै और पराये के द्रोह अर्थात ईर्ष्या कभी न करै और कर्म ही परम पदार्थ है उपासना और

ज्ञान कुछ भी नहीं ऐसी बुद्धि कभी न करै किन्तु कर्मसे उपासना और उपासना से ज्ञान श्रेष्ठ है ऐसी बुद्धि सदा रक्खै ॥ ८ ॥ येनास्यपितरोयाताः येनयाताःपितामहाः। तेनयायात्सतान्मार्गं तेनगच्छन्नरिष्यते ॥ ६ ॥ जिस मार्गसे उसके पिता और पितामह गये हों उसी मार्ग से आप भी जावै उस मार्ग पर जाने से मनुष्य नष्ट नहीं होता किन्तु सुखी ही होता है और दुःख कभी नहीं पाता पूर्वपक्ष यदि पिता और पितामह कुकर्मी होंय तो भी उन की रीति से चलना चाहिये वा नहीं उत्तर नहीं क्यों कि इसी लिये मनु भगवानने सतामिति विशेषण दिया है कि यदि पिता और पितामह सत्पुरुष अर्थात धर्मात्मा होवैं तो उन की रीति से चलना और यदि अधर्मी होवैं तो उन की रीति से कभी न चलना चाहिये ॥६॥ ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः। बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥१०॥ मातापितृभ्यांयामीभिर्भ्रात्रापुत्रेणभार्यया। दुहित्रादासवर्गेण विवादंनसमाचरेत् ॥११॥ ऋत्विक् पुरोहित, आचार्य मातुल अर्थात मामा, अतिथि, तथा संश्रित अर्थात मित्र, बालक वृद्ध, आतुर,नाम दुःखी; वैद्य, ज्ञाति, सम्बन्धी अर्थात श्वसुरादिक, बान्धव अर्थात कुटुम्बी, माता, पिता, तथा दमाद,भ्राता, पुत्र, तथा भार्या अर्थात स्त्री, दुहिता अर्थात कन्या, दासवर्ग अर्थात सेवक लोग इनसे विवाद कभी न करै और औरों से भी विवाद न करै विवादका करना दुःखमूलही है इससे सज्जनों का किसी से विरुद्ध वाद करना न चाहिये ॥११॥ प्रतिग्रहसमर्थोपिप्रसङ्गन्तत्रवर्जयेत्। प्रतिग्रहेणह्यस्याशुब्राह्मं तेजःप्रशाम्यति

॥१२॥ प्रतिग्रह लेनेमें समर्थ अर्थात् गुणवान भी होय और उस को लोग देते भी होय तो भी किसी से दान न लेवै किंतु अध्यायन नाम पढ़ाना याजन नाम यज्ञका कराना अथवा अपने परीश्रम से आजीविका को करै और जो पुरुष प्रतिग्रह लेता है उस का ब्राह्म तेज अर्थात विद्या नष्ट हो जाती है क्यों कि वह खुशामदी होजायगा इस्से दानका लेना उचित नहीं ॥१२॥ अतपास्त्वनधीयानःप्रतिग्रहरुचिर्द्विजः। अम्भस्यश्मप्लवेनेव सहतेनैवमज्जति ॥ १३ ॥ जो पुरुष तपस्वि और विद्वान् नहीं और प्रतिग्रहमें रुचि रखता है वह उसी दान के साथ पाप समुद्र में डूब मरेगा जैसे कोई पाषाणकी नौकासे समुद्र वा नदीको तरे वह तरेगा तो नहीं परन्तु डूबके मर जायगा वैसे ही प्रतिग्रह लेने वाले मूर्खकी गति होगी ॥ १३ ॥ त्रिष्वप्येतेषुदत्तंहि विधिनाप्यर्जितंधनम्। दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेवच ॥ १४ ॥ एक तो अविद्वान् दूसरा वैडालव्रतिक तीसरा वकव्रतिक इन तीनों को तो जल का भी दान न देवै और जितने विधि अर्थात् धर्म से धन का संचय किया होय उस धन को तीनों को कभी न देवै जो कोई दाना देगा उसको बड़ा दुःख होगा और परलोक में उन तीन पुरुषों को इस लोक में भी बड़ा दुःख होगा ॥१४॥ यथाप्लवेनोपलेननिमज्जत्युदकेतरन्। तथानिमज्जतोधस्तादज्ञौदातृप्रतीच्छकौ ॥ १५ ॥ जैसेकोई पाषाण की नौका पर चढ़ कै उदकमें तरा चाहै वह तर तो नहीं सकेगा परन्तु डूब के मर जायगा तैसे ही परीक्षा के बिना दुष्टों को

जो दान देता है और जो दुष्ट लेने वाले हैं वे सब अज्ञान के होने से अधोगति को जायंगे अर्थात् दुःख और नरक को प्राप्त होंगे उनको कभी कुछ सुख न होगा इस्से परीक्षा करके श्रेष्ठ और धर्मात्माओं ही को दान देना चाहिये अन्य को नहीं वैडालवृतिक और वकवृतिक मनुष्यों का यह लक्षण है॥ १५ ॥

धर्मध्वजीसदालुब्धश्छाद्मिकोलोकदम्भकः । वैडालवृतिको ज्ञेयाहिंस्रःसर्वाभिसन्धकः॥ १६ ॥ अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः। शठोमिथ्याविनीतश्चवकवृतचरोद्विजः॥ १७ ॥

जो मनुष्य धर्मध्वजी अर्थात् धर्म तो कुछ न करै अथवा कुछ करै भी तो फिर अपने मुखसे कहै कि मैं बड़ा पण्डित वैराग्यवान् योगी तपस्वी और बड़ा धर्मात्मा हूँ इसको धर्मध्वजी कहते हैं जो बड़ा लोभी होय अर्थात् जोकुछ पावै सो भूमि में अथवा जहां तहां रख छोड़ै खाने में भी लोभ करै और बड़ा कपटी छली होय लोगों को दम्भ का उपदेश करै अर्थात् जैसे कि संप्रदायी लोग उपदेश करते हैं कि तुलसी की माला धारण करने से वैकुंठ को जाता है और सब पापों से छूट जाता है तथा रुद्राक्ष माला धारण करने से कैलास को जाता है और सब पापों से दूर हो जाता है और गङ्गादिक तीर्थ राम शिवादिक नाम स्मरण और काश्यादिकोंमें मरणसे मुक्ति हो जाती है इस प्रकार के उपदेश करके दंभ और अभिमानमें लोगों को गिरा देते हैं और आप भी गिरे रहते हैं इससे दुःख और बन्धन तो हो होगा और मुक्ति कभी न होगी किंतु धर्माचरण

विद्या और ज्ञान इनके बिना मुक्ति कभी नहीं हो सकती हिंस्त्रः नाम रात दिन जिसका चित्त प्राणियों को पीड़ा देने में नित्य प्रवृत्त रहै उसको हिंस्त्र कहते हैं सर्वाभिसन्धक अर्थात् अपने प्रयोजन के लिये दुष्ट तथा श्रेष्ठों से मेल रक्खै सो मेल धर्म से नहीं किन्तु अधर्म ही से धनादिक हरण करने के लिये प्रीति करै उनको सर्वाभिसन्धक कहते हैं यह वैड़ालव्रतिक का लक्षण है॥ क्रोध के मारे वा कपट छलसे अधोदृष्टि नाम नीचे देखता रहै कोई जाने कि वह बड़ा शान्त और वैराग्यवान् है नैष्कृतिक नाम यदि कोई एक कठिन वचन उसे कहै और उसके बदले में दस कठिन वचन भी उसको कहै तो भी उसको शान्ति न होय उसको नैष्कृतिक कहते हैं स्वार्थ साधन तत्पर अर्थात् अपने स्वार्थ साधन में ही तत्पर अर्थात् किसी को पीड़ा तथा हानि हो जाय और वह अपने स्वार्थ के आगे कुछ न गिने शठ अर्थात् मूर्ख जो हठ दुराग्रह से निर्बुद्धि होय और अन्य का उपदेश न मानें उसको शठ कहते हैं मिथ्या विनीत नाम विनय तथा नम्रता करै सो कुटिलता से करै शुद्ध हृदय से नहीं ऐसे लक्षण वाले को बकव्रतिक कहते हैं अर्थात् जैसे बक नाम बकुला जल के समीप ध्यानावस्थित होके खड़ा रहता है और मत्स्य को देखता भी रहता है जब मत्स्य उसके पेच में आता है तब उस को उठा के खा लेता है तथा जितने धूर्त पाखण्डी होते हैं व दूसरे का प्राण भी हरण कर लेते हैं तिसपर उनको कभी दया नहीं आती ऐसे ही जितने शैव शाक्त गाणपत्य वैष्ण-

चादिक संप्रदाय वाले हैं इनमें कोई लाखों में एक अच्छा होता है और सब वैसे ही होते हैं इस्से गृहस्थ लोग इन की सेवा कभी न करें १७॥ सर्वेषामेवदानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ १८॥ वारि नाम जल अन्न गाय मही अर्थात् पृथिवी वास नाम वस्त्र तिल कांच-न नाम सुवर्ण सर्पि नाम घी ८ इन सब दानों से ब्रह्म अर्थात् वेद विद्या का दान सब से श्रेष्ठ दान है ऐसा अन्य कोई दान नहीं है इस्से सब गृहस्थों को अर्थ सहित वेद पढ़ने और पढ़ा ने में शरीर मन और धन से अत्यन्त पुरुषार्थ करना उचित है ॥१८॥ धर्मंशनैस्सञ्चिनुयाद्वल्मीकपिवपुत्तिकाः। परलोक सहा-यार्थं सर्वभूतान्यपीड़यन् ॥१६॥ सब भूतों को पीड़ा के बिना धीरे धीरे धर्म का संचय मनुष्यों को करना उचित है जैसे कि चींटी धीरे२ मिट्टी को बाहर निकाल के संचय कर देती है तथा धान्य कणों का भी धीरे२ बहुत सचय कर देती हैं वैसे ही मनुष्यों को धर्म का संचय करना उचित है क्योंकि धर्म ही के सहाय से मनुष्यों को सुख होता है और किसी के सहा य से नहीं ॥१६॥ नामुत्रहि सहायार्थं पितामाता चतिष्ठतः। नपुत्रदारं नज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥२०॥ परलोक में सहाय के करने को पिता माता पुत्र तथा स्त्री ज्ञाति नाम कुटुम्बी लोग कोई समर्थ नहीं है केवल एक धर्म ही सहायकारी है और कोई नहीं ॥२०॥ एकःप्रजायतेजन्तुरेकएवप्रलीयते। एको ऽनुभुंक्ते सुकृतमेकएवचदुष्कृतम् ॥२१॥ देखना चाहिये कि जब जन्म होता है तब एक ही का होता है और मरण होता है

तो भी एक ही का होता है तथा सुख का भोग करता है तो एक ही करता है अथवा दुःख का भोग करता है तो एक ही करता है इस में संग किसी का नहीं इस्से सब मनुष्यों को यह उचित है कि अपना पालन वा माता पितादिकों का पालन धर्म ही से जितना धनादिक मिले उतने ही से व्यवहार और पालन करैं अधर्म से कभी नहीं क्योंकि ॥ एकःपापानिकुरुते फलंभुङ्क्ते महाजनः। भोक्तारोविप्रमुच्यन्ते कर्तादोषेणलिप्यते यह महाभारत का श्लोक है इस का यह अभिप्राय है कि जो अधर्म करैगा उसका फल वही भोगेगा और माता पितादिक सुख के भोग करने वाले तो हो जांयगे परन्तु दुःख जो पापका फल उसमें से भाग कोई न लेगा किन्तु जिसने किया वही पाप का फल भोगेगा और कोई नहीं ॥२१॥ मृतंशरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमंक्षितौ। विमुखाबान्धवायान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ २२ ॥ देखना चाहिये कि जब कोई मर जाता है तब काष्ठ वा लोष्ठ जैसा कि मिट्टी के ढेले को पृथिवी में फेंक के चले जाते हैं वैसे मरे हुये शरीर को अग्नि वा पृथिवी में डाल के विमुख नाम पीठ करके कुटुम्बी लोग चले आते हैं कुछ सहायता नहीं करते ॥२२॥ तस्मद्धर्मं सहायार्थं नित्यंसंचिनुयाच्छनैः। धर्मेणहिसहायेन तमस्तरतिदुस्तरम् ॥२३॥ तिस्से नित्य ही सहाय के लिये धीरे २ धर्म ही का संचय करैं क्यों कि धर्म ही के सहाय से दुस्तर जो तम अर्थात् जन्म मरणादिक दुःख सागर का जो संयोग उसका नाश और मुक्ति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति और सर्व दुःख की निवृत्ति धर्म

ही से होता है अन्यथा नहीं ॥२३॥ धर्मप्रधानंपुरुषंतपसाहत किल्बिषम्। परलोकन्नयत्याशुभास्वन्तंखस्वशरीरिणम् ॥२४ जिस पुरुष को धर्म ही प्रधानहै अधर्म में लेश मात्र भी जिस की प्रवृत्ति नहीं तथा तप जो धर्म का अनुष्ठान है और पापका त्याग इस से जिस का पाप नष्ट हो गया है उसको वही धर्म परलोक अर्थात् स्वर्ग लोक अथवा परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त कर देता है वह किस प्रकार का शरीर वाला होता है भास्वन्त अर्थात् तेजोमय वा ज्ञान युक्त, और आकाशवत् अदृष्ट अच्छेद्यकाटने वा दाह करने में न आवै ऐसा उसका लिङ्ग शरीर होता है जैसा कि योगियों का ॥ २४ ॥ दृढकारीमृदुर्दान्तः क्रूराचारै-रसंवसन्। अहिंस्रोदमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ २५ ॥ म० दृढकारी अर्थात् जो कुछ धर्म कार्य अथवा धर्म युक्त व्यवहार को करै सो दृढ हो निश्चय से करै और मृदु अर्थात् अभिमानादिक दोष से रहित होय दान्त अर्थात् जितेन्द्रिय होय और क्रूराचार अर्थात् जितने दुष्ट हैं उनका साथ कभी न करै किंतु श्रेष्ठपुरुषों ही का संग करै दम अर्थात् जिसका मन वशीभूतहोय दान अर्थात् वेद विद्या का नित्य दान करना और अहिंस्र अर्थात् किसी से वैर बुद्धि नहीं ऐसा ही लक्षण वाला पुरुष स्वर्ग को प्राप्त होता है अन्य नहीं ॥ २५ ॥ वाच्यर्थानियताःसर्वे वाङ्मूलावाग्विनिसृताः। तांस्तुयःस्तेनयेद्वाचं ससर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २६ ॥ जिस पुरुष की प्रतिज्ञा मिथ्या होती है अथवा जो मिथ्या भाषण कर्त्ता है उसने सब चोरी

कर लो क्योंकि वाणी ही में सब अर्थ निश्चित रहते हैं केवल वचन ही व्यवहारोंका मूल है उसवाणी से जो मिथ्या बोलता है वह सब चोरी आदिक पापों को अवश्य कर्त्ता है इससे मिथ्याभाषण करना उचितनहीं ॥ २६ ॥ आचाराल्लभतेह्यायुराचारादीप्सिताःप्रजाः । आचाराद्धनमक्षय्यमाचारोहन्त्य लक्षणम् ॥ २७ ॥ जो सत्पुरुषों के श्रेष्ठ आचार के करने से आयु, श्रेष्ठ, प्रजा और अक्षय्यधन प्राप्त होते हैं और पुरुष में जितने दुष्ट लक्षण हैं वे सब सत्पुरुषों के आचरण और संग करने से नष्ट हो जाते हैं और श्रेष्ठ लक्षण भी उसमें आजाते हैं इससे श्रेष्ठही आचार को करना चाहिये ॥ २७ ॥ दुराचारोहिपुरुषो लोकेभवति निन्दितः । दुःखभागी चसततं व्याधितोऽल्पायुरेवच ॥ २८ ॥ दुष्ट आचार करने वाला पुरुष लोक में निन्दित होता है निरन्तर दुःखी ही रहता है अनेक काम क्रोधाधिक हृदय के रोग और ज्वरादिक शरीर के रोगों से शीघ्र मर भी जाता है इस्से दुष्टों का आचार कभी न करना चाहिये ॥ २८ ॥ यद्यत्परवशंकर्मतत्तद्यत्नेनवर्जयेत् । यद्यदात्मवशंतुस्यात्तत्तत्सेवेतयत्नतः ॥ २९ ॥ जो जो पराधीन कर्म होय उनको यत्न से छोड़ देवै और जोस्वाधीन होय उनको यत्न से कर्त्ता जाय ॥ २९ ॥ सर्वंपरवशंदुःखंसर्वमात्मवशंसुखम् । एतद्विद्यात्समासेन लक्षणंसुखदुःखयोः ॥ ३० ॥ जो जो पराधीन कर्म हैं वे सब दुःख रूप ही हैं और जो जो स्वाधीन कर्म हैं सो २ सब सुख रूप हैं सुख और दुःख का समास अर्थात् संक्षेप से यहीलक्षण है सो जान लेवै ॥ ३० ॥ यमान्से

वेतसततंननियमान्केवलान्बुधः।यमान्पतत्यकुर्वाणोनियमान्केवलान्भजन्॥ ३१॥ यमों का निरन्तर सेवन करना चाहिये वे यम पूर्व कह दिये हैं वहीं जान लेना और यमों को छोड़ के पाँच जो नियम हैं उनका सेवन करैं वे नियम ये हैं। शौच-सन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानियमाः। यह योगशास्त्र का सूत्र है शौच नाम पवित्रता रात दिन नहाने धोने में लगा रहै सन्तोष अर्थात् केवल आलस्य से दरिद्र बना रहै तप नाम निरन्तर कृच्छ्र चांद्रायणादिकों में प्रवृत्त रहै स्वाध्याय अर्थात् केवल पढ़ने और पढ़ाने ही में प्रवृत्त रहै धर्मानुष्ठान अथवा विचार कभी न करैं और ईश्वर प्रणिधान अर्थात् स्वार्थ के लिये ईश्वर की प्रसन्नता चाहै ये अर्थ व्यवहारी की रीति से पांच नियमों के किये गये और योगशास्त्र की रीति से नियमों के इस प्रकार के अर्थ हैं मृत्तिका और जलादिकों से बाह्य शरीर की शुद्धि और शान्त्यादिकों के ग्रहण और ईर्ष्यादिकों के त्याग से चित्त की शुद्धता इसका नाम शौच है धर्मयुक्त पुरुषार्थ करने से जितने पदार्थ प्राप्त होंय उतने ही में संतुष्ट रहै और पुरुषार्थ का त्याग कभी न करै इसका नाम संतोष है क्षुधा, तृषा, शीत और उष्ण इत्यादिक द्वंद्वों को सहै और कृच्छ्र, चांद्रायणादिक व्रत भी करै इसका नाम तप है मोक्ष शास्त्र अर्थात् उपनिषदों का अध्ययन करै ऊंकार के अर्थ का विचार और जप करै उसका नाम स्वाध्याय है पाप कर्म कभी न करै यथावत् पुण्यकर्मों को करके सिवाय परमेश्वर की प्राप्ति के फल की इच्छा न करै इसका नाम ईश्वर

प्रणिधान है इनको तो करता रहै परन्तु यमों को न करै उस को उत्तम सुख नहीं होता किन्तु यमों का करना उसके साथ गौण नियमों का भी करना हीं उचित है और केवल नियमों का करना उचित नहीं ऐसे यथावत् विवाह करके गृहस्थ लोग वर्तमान करैं यह जितनी विद्यावाली स्त्री और पुरुष द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य पूर्वोक्त नियम से करैं विवाह का विधान संक्षेप से लिख दिया और सब मनुष्यों के बीच में स्त्री जो पुरुष मूर्ख होय उनका यज्ञोपवीत भी हुआ होय तो उसको तोड़ के शूद्र कुलमें करदें उनका परस्पर यथायोग्य विवाह भी होना चाहिये वे सब द्विजोंकी सेवा करैं और द्विज लोग उनको अन्न वस्त्रादिक उनके निर्वाह के लिये देवैं और यह बात भी अवश्य होना चाहिये कि देश देशान्तर से विवाह का होना उचित है क्यों कि पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम देशों में रहने वाले मनुष्यों में परस्पर विवाह के करने से प्रीति होगी और देश देशान्तरों के व्यवहार भी जाने जांयगे बला- दिक गुणभी तुल्य होंगे और भोजन व्यवहार भी एक ही होगा इस्से मनुष्यों को बड़ा सुख होगा जैसे कि पूर्व दक्षिण देश की कन्या और पश्चिम उत्तर देश के पुरुषों से विवाह जब होगा और पश्चिम उत्तर देश के मनुष्यों की कन्या और पूर्व तथा दक्षिण देशमें रहने वाले पुरुषों से विवाह होगा तब बल बुद्धि पराक्रमादिक तुल्य गुण हो जायेंगे पत्र द्वारा और आने जाने से परस्पर प्रीति बढ़ेगी और परस्पर गुण ग्रहण होगा और सब देशों के व्यवहार सब देशों के मनुष्यों को विदित होंगे

परस्पर विरोध जो हैं सो नष्ट हो जायगा इस्से मनुष्यों को बड़ा आनन्द होगा पूर्व पक्ष जैसे स्त्री मर जाती है तब पुरुष का दूसरी बार विवाह होता है वैसे स्त्री का पति मरने से विधवाओं का बिवाह होना चाहिये वा नहीं उत्तर विवाह तो न होना चाहिये क्यों कि बहुत बार विवाह की रीति जो संसार में होगी तो जब तक पुरुष के शरीर में बल होगा तब तक वह स्त्री उसके पास रहेगी जब वह निर्बल होगा तब उसको छोड़ के दूसरे पुरुष के पास जायगी जब दूसरा भी बल रहित होगा तब वह तीसरे के पास जायगी जब वह तीसरा भी बल रहित होगा तब चौथेके पास जायगी ऐसी स्त्री जब तक वृद्धा न होगी तब तक बहुत पुरुषों का नाश करदेगी जैसे कि एक वेश्या बहुत पुरुषों को नष्ट कर देती है वैसे सब स्त्री होजाँयगी और विषदानादिक भी होने लगेंगे इस्से द्विज कुल में दो बार विवाह का होना उचित नहीं स्त्रियों और पुरुषों का भी बहुत विवाह होना उचित नहीं क्यों कि पुरुषों को भी वीर्य की रक्षा करनी उचित है जिस्से शरीर में बल पराक्रमादिक भी मरण तक बने रहैं और एक पुरुष बहुत स्त्री के साथ विवाह करता है यह तो अत्यन्त दुष्ट व्यवहार है इसको कभी न करना चाहिये तथा कन्या और वर का पिता जो धन लेके विवाह करते हैं यह भी अत्यन्त दुष्ट व्यवहार है जैसे कि आज काल कान्यकुब्जों में है बहुत गृहस्थ इस्से दरिद्र हो जाते हैं धन के नाश होने से दरिद्र लोग विवाह करने में बड़ा दुःख पाते हैं बहुत कन्या वृद्ध हो जाती हैं और विवाह के विना वृद्ध

होके मर भी जाती हैं इससे इस दुष्ट व्यवहार को छोड़ना उचित है और बंगाले में कुलीन लोगों में बहुत स्त्रियों के साथ एक पुरुष बिवाह कर लेता है एक जो वह मर जाय तो एकके मरने से वे सब स्त्री विधवा हो जाती हैं यह भी अत्यन्त दुष्ट व्यवहार है इसको सज्जनों को छोड़ना चाहिये और जो विधवा हो जाती हैं उनका कुछ आधार नहीं होने से भी बहुत अनर्थ होते हैं वे कन्या बाल्यावस्था वा युवावस्थ में बिधवा हो जाती हैं बहुत दुःखी होती और वे कुकर्म भी करती हैं बहुत गर्भहत्या और बालहत्या भी होती है इससे बिधवाओं का पति के बिना रहना भी उचित नहीं क्योंकि इस्से बहुत अनर्थ होते हैं इस्से इस व्यवहार का रहना भी उचित नहीं फिर क्या करना चाहिये कि प्रथम तो पूर्णजब युवावस्था होय तब विवाह होना चाहिये जिस्से कि विधवा भी बहुत न होंगी फिर जब कोई बिधवा होय तब छः पीढ़ी अथवा अपने गोत्र और अपनीजातिमें देवर अथवा ज्येष्ठ जो संबंध से होय उससे बिधवा का पाणिग्रहण होना चाहिये परन्तु स्त्री की इच्छा से जब जिस स्त्रीका पति मरजाय और मरने का शोक भी निवृत्त हो जाय अर्थात् त्रयोदश दिवस के अनन्तर जब कुटुम्ब के श्रेष्ठ मनुष्य बिधवा स्त्री के पास जाके उससे पूछें कि तेरी क्या इच्छा है जो वह बिधवा कहै कि मेरी इच्छा न सन्तान और न नियोग की है तब तो वह स्त्री चांद्रायणादिक व्रत तथा परमेश्वर का ध्यान और धर्म का अनुष्ठान करै ऐसे ही मरण तक धर्म का आचारण करै दूसरे पुरुष का मन से

भी चिन्तन न करै और जो बिधवा कहै कि मेरा पुत्र के विना निर्वाह न होगा तब सब पुरुषों के साम्हने देवर वा ज्येष्ठ का पाणिग्रहण करले उस्से एकवा दो पुत्र उत्पादन कर ले अधिक नहीं इसमें ऋग्वेद के मन्त्र का प्रमाण है॥ कुहस्विद्दोषाकुहव-स्तो अश्विनाकुहाभिपित्वङ्करतः कुहोषतुः कोवांशयुत्राविधवेवद्देवरंमर्त्यं नयोषाकृणुतेसधस्थऽआ। इसका यहअभिप्राय है कि स्त्री और पुरुष ये दोनों के प्रति प्रश्न की नाँई कहा है आप दोनों दोषा अर्थात् रात्रि कुह नाम कौन स्थान में बास करते भये और किस स्थान में अश्वि नाम दिवस में बास किया था किस स्थान में इन दोनों ने अभिपित्वं अर्थात् प्राप्ति इन पदार्थों की की थी इन दोनोंका निवासस्थान किस देश में था और शयुत्रा नाम शयनस्थान इनदोनों का किस स्थान में है यह दृष्टान्त भया और इससे यह अभिप्रायभी आया कि स्त्री और पुरुष का बियोग कभी न होना चाहिये सब दिन स्थान और सब देशों में संग ही संग रहैं अब यह दृष्टान्त है कि जैसे बिधवा देवर के साथ रात्रि दिवस और प्राप्ति का करना एक देश में बास एक स्थान में शयन और संग २ रहना है और देवर को सधस्थ अर्थात् स्थान में आकृणुते अर्थात् स्वीकार करके रमण और सन्तानोत्पत्ति करती है वैसे उन दोनों से भी वेदमन्त्र से पूंछा गया और देवर शब्द का निरुक्त में भी अर्थ लिखा है कि॥ देवरःकस्मात्द्वितीयोवरउच्यते। देवर अर्थात् बिधवा को जो दूसरा बर पाणिग्रहण करके होता है उस पुरुष को देवर कहते हैं इसनिरुक्त से वर का बड़ा भाई

अथवा छोटा भाई वा और कोई भी विधवा का जो दूसरा बर होय उसी का नाम देवर आया इस मन्त्र से विधवा का नियोग अवश्य करना चाहिये यह अर्थ आया और मनुस्मृति में भी लिखाहै॥ देवराद्वासपिण्डाद्वास्त्रियासम्यङ्नियुक्तया। प्रजेप्सिताधिगन्तव्यासन्तानस्यपरिक्षये॥ १॥ देवर अथवा छः पीढ़ी देवर वा ज्येष्ठ के स्थान में कोई पुरुष होय उससे विधवा स्त्री का नियोग करना चाहिये और जिसका उस स्त्री के साथ नियोग भया वह उस स्त्री के साथ गमन करै परन्तु जिस स्त्री को सन्तान की इच्छा होय और सन्तान के भाव में भी नियोग का होना उचित है॥१॥ विधवायांनियुक्तस्तुघृताक्तो वाग्यतोनिशि। एकमुत्पादयेत्पुत्रंनद्वितीयंकथंचन॥२॥ द्वितीयमेकेप्रजनंमन्यन्तेस्त्रीषुतद्विदः। अनिर्वृत्तंनियोगार्थंपश्यन्तो धर्मतस्तयोः॥ ३॥ जो विधवा के साथ नियुक्त होय सो रात्रिके दोनों मध्य प्रहरों में घृत को शरीर में लेपन करके ऋतुमती विधवा को वीर्य प्रदान करै मौन करके अर्थात् बहुत मोहित होके क्रीड़ाशक्त न होय किंतु सन्तानोत्पत्ति मात्र प्रयोजन रक्खै॥ २॥ कई एक आचार्य ऋषि लोग ऐसा कहते हैं कि दूसरा भी पुत्र विधवा का होना चाहिये क्योंकि एकपुत्र जो होजाता है उससे नियोग का प्रयोजन सब सिद्ध नहीं होता ऐसेही धर्मसे विचार करके कहते हैं कि दो पुत्र का होना उचित है॥ ३॥ विधवायांनियोगार्थेनिर्वृत्तेतुयथाविधि। गुरुवच्चस्नुषावच्चवर्तेयातांपरस्परम्॥ ४॥ विधवामें नियोग का जो प्रयोजन कि दो पुत्र का होना

सो बिधि पूर्वक जब होगया उसके पीछे वह विधवा नियुक्त पुरुष को गुरुवत् मानै और वह पुरुष उसबिधवा को पुत्र की स्त्री की नांई मानै अर्थात् फिरसमागन कभी न करै और जैसे कि पहिले सब कुटुम्बियोंके साम्हने पाणिग्रहण किया था और नियम भी किया था कि जब तक दो पुत्र न होवैं तब तक नियोग रहै फिर वैसे फिर भी सब कुटुम्बियों के साम्हने दोनों कह देवैं कि हम लोगों का नियम पूर्ण होगया अब हम लोग वैसा काम न करेंगे ।४॥नियुक्तौयौविधिंहित्वा वर्त्तेयातांतुकामतः। तावुभौपतितौस्यातांस्नुषागगुरुतल्पगौ ॥५॥ फिर जो वे दोनों विधि अर्थात् उस मर्यादा को छोड़ के कामातुर होके समागम करैं तो पतित हो जांय क्योंकि ज्येष्ठ औरकनिष्ठ इन दोनों को जैसे पुत्र वा गुरु की स्त्री से गमन करने का पाप होता है वैसा ही पाप होता है अर्थात् फिर कभी परस्पर कामक्रीड़ा न करैं ॥ ५ ॥ नान्यस्मिन्विधवानारीनियोक्तव्या द्विजातिभिः। अन्यस्मिन्हिनियुंजानाधर्मं हन्युःसनातनम् ॥६॥ उक्त प्रकार से भिन्न पुरुष के साथ बिधवा का नियोग कभी न करैं अपने कुटुम्बही में करैं जिससे स्त्री जहाँ की तहाँ बनी रहै और सन्तान से भी कुल की वृद्धि बनी रहै क्षय कभी न होय जो और किसी पुरुषके साथ नियोग करेंगे तो स्त्री हाथ से जायगी और सन्तान की हानि होने से कुल को भी हानि होगी फिर जो कुल की वृद्धि करना सो सनातन धर्म नष्ट हो जायगा इससे अपने ही कुटुंबमें नियोग करना उचित

है इस बात की सज्जन लोग शीघ्र ही प्रवृत्ति करैं क्योंकि इसके बिना विधवा लोगोंको अत्यन्त दुःख होता है और बड़ा पाप होता है संसार में इस बात के करने से यह दुःख और पाप कभी न होंगे ॥ ५ ॥ ज्येष्ठोयवीयसोभार्य्यांयवीयान्वाग्रजस्त्रियम्। पतितौभवतोगत्वानियुक्तावप्यनापदि ॥ ६ ॥ ज्येष्ठ कनिष्ठ की तथा कनिष्ठ ज्येष्ठ की स्त्री से नियुक्त भी होवें तो भी आपत्काल के विना अर्थात् दो पुत्र होने के पीछे जो गमन करैं तो पतित हो जांय इससे आपत्काल ही में नियोग का विधान है ॥ ६ ॥ यस्याम्रियेतकन्यायावाचासत्येकृतेपतिः। तामनेनविधानेननिजोविन्देतदेवरः ॥ ७ ॥ जिसकन्याका पाणिग्रहण मात्र तो हो जाय औरपति का समागम न होय तो उस स्त्री का देवर के साथ विवाह होना उचित है ॥ ७ ॥ परन्तु इस प्रकार से दोनों विधान करैं ॥ यथाविध्यधिगम्यैनांशुक्लवस्त्रांशुचिव्रताम्। मिथोभजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥ ८ ॥ यथाविधिविधवा से देवर विवाह करके परस्पर ऋतु २ में एक २ बार समागम करैं परंतु वह स्त्री शुक्लवस्त्र धारण करैं परन्तु जिसका श्रेष्ठ आचार होय उसीका तो और दुष्टाचार वाले का नहीं ८ साचेदक्षतयोनिःस्याद्गतप्रत्यागतापिवा· पौनर्भवनभर्त्रासापुनः संस्कार मर्हति ॥ ९ ॥ जो स्त्री अक्षतयोनि अर्थात् विवाह तथा जाने आने मात्र व्यवहार तो हुआ हो परन्तु पुरुष से समागम न भया होय तो पौनर्भव पुरुष अर्थात् विधवा के नियोगसे जो उत्पन्न भया होय उसके

साथ उस बिधवा काविवाहही होना उचितहै ॥९॥ यह विधवा नियोग का प्रकरण पूरा होगया जो बिधवा नहीं है और किसी प्रकार का आपत्काल है उनके लिये ऐसा विधान है कि जिसका पति परदेश चला जाय और समय के ऊपर न आवै उस स्त्री के लिये इस प्रकार का विधान शास्त्र में है और पुरुषके लिये भीहै । प्रोषितोधर्मकार्यार्थंप्रतीक्ष्योऽष्टौनरःसमाः। विद्यार्थंषड्यशार्थंवाकामार्थंत्रींस्तुवत्सरान् ॥ १० ॥ जो पुरुष स्त्री को छोड़ के परदेश को जाय और जोधर्म ही के लिये गया हो तो आठ वर्ष पर्यन्त स्त्री पति की मार्ग प्रतीक्षा करै, और जो उस समय वह न आवै तो स्त्री पूर्वोक्त प्रकार से नियोग करके पुत्रोत्पत्ति करै, और जोपति बीचमें आजाय तो नियोग छूट जाय जिससे विवाह किया गया था उसके पास स्त्री रहै और किसी उत्तम विद्या पढ़ने वा कीर्ति के लिये गया होय तो छः वर्ष तक परीक्षा करै तथा कामवाधन के लिये गया होय कि मैं धन लाके खूब विषय भोग करूंगा उसको तीन वर्ष तक स्त्री प्रतीक्षा करै कि फिर उक्त प्रकार से नियोग करके पुत्रोत्पत्ति कर लेवै ॥ १० ॥ संवत्सरं प्रतीक्षेतद्विषन्तीयोषितंपतिः । ऊर्द्ध्वंसंवत्सरात्त्वेनांदायंहृत्वानसंवसेत् ॥११॥ जो दुष्टता करके स्त्री प्रतिकूल हो जाय अर्थात् अपने पिता वा भाई के पास रुष्ट होके चली जाय तो पति एक वर्ष, पर्यन्त राह देखै फिर दाय अर्थात् जो कुछ स्त्री को गहनादिक दिया था उसको लेके उसका सङ्ग न करै अर्थात् दूसरा विवाह कर

लेवे ॥ ११ ॥मद्यपासाधुवृत्ताच प्रतिकूलाच याभवेत् । व्याधि-ताचाधिवेत्तव्याहिंस्रार्थघ्नीचसर्वदा ॥ १२ ॥ जो स्त्री मद्यपीती होय तथा विपरीत ही चलै कि आज्ञा को न मानै व्याधि नाम रोगयुक्त होजाय वाविषादिक देके कोई मनुष्य को मार डालै और घर के पदार्थों को सदा नाशकर्त्री होय तो उस स्त्री को छोड़ के दूसरा विवाह कर लेवै ॥ १२ ॥ वन्ध्याष्टमेधिवेद्याऽब्देदशमेतुमृतप्रजा । एकादशेस्त्रीजननीसद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ १३ ॥ विवाह के पीछे ८ आठ वर्ष तक गर्भ न रहै; और वैद्यकशास्त्र की रीति से परीक्षा भी कर ले फिर अष्टमेवर्ष दूसरा विवाह कर ले और वन्ध्या का यथावत् पालन करै परंतु समागम न करै और जिसके संतान होके मर जाँय और एक भी न जीयें तो १० में वर्ष दूसरा विवाह कर लेवै और उसको अन्न वस्त्रादिक देवै और जिस स्त्री से कन्या ही बहुत होवैं पुत्र एक भी न होय तो ११ ग्यारहवें वर्ष दूसरा विवाह कर ले और उस स्त्री का पालन करै जो दुष्ट स्त्री होय और अप्रिय बचन बोलै तो उसको शीघ्र ही छोड़ के दूसरा विवाह कर लेवै १३ वैसा पुरुष भी दुष्ट हो जाय, तो स्त्री भी उसको छोड़ के धर्मसे नियोग करके पुत्रोत्पत्ति कर ले और एक यह भी व्यवहार है इसको जानना चाहिये कि अपने शरीर से पुत्रन होय अर्थात् रोग से वीर्य हीन होगया होय अथवा पीछे किसी रोग से नपुंसक होगया होय तो अपने स्वजाति के पुरुष से वीर्य लेके पुत्रोत्पत्ति करा लेवै

परन्तु धर्म से व्यभिचार से नहीं इसी प्रकार से १२ पुत्र मनु-स्मृति में लिखे हैं जिसको देखने की इच्छा होय सो देख लेवै नियोग में औरक्षेत्राजादिक पुत्रोंके होनेमें महाभारतमें दृष्टान्त भी है जैसे किचित्रांगद और विचित्र वीर्य दोनों जब मरगये तब बढ़े भाई जोव्यास जी उनके वीर्य संतानपुत्र उत्पन्न करा लिये एक धृतराष्ट्र, दूसरापाण्डु, तीसराविदुरये तीन पुत्र सब संसार में प्रसिद्ध हैं और युधिष्ठिर, भीम, अर्ज्जुन, कुल और सहदेव ये पांच औरों के नियोग से उत्पन्न भये हैं यह बात संसार में प्रसिद्ध है इस्से नियोग का करना और क्षेत्रजादि पुत्रों का होना शास्त्र की रीति और युक्ति से ठीक रहै इसमें सब श्लोक मनुस्मृति के लिखे हैं पूर्वपक्ष और स्मृति के श्लोक क्योंनहीं लिखे उत्तर पक्ष अन्य स्मृतियों का वेदों से विरोध और वेद में प्रमाण भी किसी का नहीं है ऋषि मुनियोंकी किई भी कोई स्मृति नहीं सिवाय मनुस्मृतिके ॥ यद्वैकिञ्चनमनुरवदत्तद्भेषजंभेषजतायाः । यह छांदोग्य उपनिषद की श्रुति है इसका यह अभिप्राय है कि जो कुछ मनुजी ने उपदेश किया है सो यथावत् वेदोक्त है और सत्य ही है जैसे कि रोगके नाश करनेका औषध वैसा ही है यह एक मनुस्मृति ही का वेदमें प्रमाण मिलता है और किसी स्मृति का नहीं और सब लोगों को भी यह बात सम्मत है ॥ किवेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधमन्यंहिमनोस्मृतम् । मन्वर्थविपरीतायायासास्मृतिर्नप्रशस्यते ॥ इस श्लोक के सब पंडित लोग कहते हैं कि मनु स्मृतिके अनुकूल जो स्मृति उसको मानना चाहिये और उस्से

विरुद्ध किसी स्मृति का नहीं सो एक बात में तो पंडितों की और मेरी सम्मत होगई परंतु एक बात में बिरोध होता है कि मनु के अनुकूल स्मृतियों को वे मानते हैं और मैं नहीं मानता क्यों कि मनुस्मृति के अनुकूल तो तब कोई स्मृति होगी जब मनुस्मृति के अर्थ ही को कहै फिर मनु जी ने तो वह अर्थ कह दिया है उसका कहना दूसरीवार व्यर्थ है क्यों कि पीसे भये पिसान का जो पीसना सो व्यर्थ ही होता है और मनुस्मृति में जो उपदेश करना था सो सब कर दिया है कुछ बाकी नहीं रक्खा इस्से भी अन्य स्मृति का होना व्यर्थ ही है इस बातको पंडित लोग बिचार कर लेवैं तो बहुत अच्छी बात है और महाभारतमें भी जहां२ प्रमाण लिखा तहां २ मनुस्मृति ही का लिखा और किसी स्मृतिका नहीं इस्से जाना जाता है कि मनुष्योंने ऋषियों के नाम प्रमाणके वास्ते लिख २ के जाल अपने प्रयोजन के वास्ते बना लिया है और जो यह बात कहते हैं कि कलौपाराशरीस्मृतिः। सो तो अत्यन्त अयुक्त है क्यों कि द्वापर के अन्तमें व्यास जी ने मनु स्मृति का ही प्रमाण लिखा सो क्यों लिखा शङ्कराचार्य जी ने भी मनु स्मृति का ही प्रमाण लिखा है और जो सत्य बात है उसका सब दिन प्रमाण होता है इसमें कुछ शङ्का नहीं इस्से जो पुरुष कहते हैं कि कलौ में पाराशरी स्मृतिका प्रमाण है सो मिथ्या बात है और पाराशरी स्मृतिके आरंभमें यह बात लिखी है कि ऋषि लोगोंने व्यासजी के पास जाके पूछा आप हमसे वर्णाश्रम यथावत् कहैं तब उन से व्यास जी ने कहा कि मैं यथावत् वर्णाश्रम धर्मों को नहीं

जानता इससे मेरे पिता जो पाराशर उनसे चलके पूछे वे सब धर्मों को यथावत् कहैंगे फिर उनके पास जाके सब लोगों ने प्रश्न किया और पाराशरजी उनसे कहने लगे उसमें ही पाराशरजीने कहा कि कलौपाराशराःस्मृताः इसमें विचारना चाहिये कि व्यास जी वेदादिक सब शास्त्र जानने वाले वर्णाश्रम धर्म को क्या नहीं जानते थे किन्तु अवश्य ही जानते थे और पाराशर अपने मुख से कैसे कहैंगे कि कलौ में पाराशर उक्त धर्मों को मानना यह अयुक्त है और उसी में ऐसे २ अयुक्त श्लोक लिखे हैं कि कोई बुद्धिमान् उनका प्रमाण भी न करै जैसे कि पतितोपिद्विजश्रेष्ठो नचशूद्रो जितेन्द्रियः। निर्दुग्धाचापिगौः-पूज्यानचदुग्धवतीखरी ॥१॥ अश्वालम्भङ्गवालम्भसन्यासंपलपैतृकम्। देवराच्चसुतोत्पत्तिं कलौपंचविवर्जयेत् ॥ नष्टे मृते प्रवृजेते क्लीवेच पतितेपतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणांपतिरन्यो विधियते ॥३॥ इनमें देखना चाहिये कि कुकर्मी जो है सोई पतित होता है वह श्रेष्ठ कैसे होगा कभी न होगा और जितेन्द्रिय अर्थात् श्रेष्ठ कर्म करने वाला पुरुष है सो अश्रेष्ठ कैसे होगा किन्तु कभी न होगा और गाय तो पशु है सो पशु की क्या पूजा करना उचित है कभी नहीं किन्तु उस की तो यही पूजा है कि घास, जल इत्यादिक से उसकी रक्षा करना सो भी दुग्धादिक प्रयोजन के वास्ते अन्यथा नहीं और गधी की भी पूजा वैसी ही होती है जिसको प्रयोजन रहता है वह प्रयोजन के वास्ते करता ही है ॥ १ ॥ और दूसरा श्लोक अश्वालम्भ नाम अश्वमेधगवालम्भ नाम गोमेध और सन्यास ग्रहण और मांस

का पिण्डदान और विधवा से देवर के नियोग से पुत्रोत्पत्ति ये पाँच सब काल में करना चाहिये इन का त्याग कभी नहीं इन से बड़ा संसारका उपकार है और कुछ पाप नहीं इस के कहने से अजामेधादिकों का त्याग नहीं आया अश्वमेध और गोमेधका जो करना उस्से बड़ा संसार का उपकार है सो पहिले कह दिया और सन्यास का त्याग करै तो अर्थात पाखण्ड करेगा जैसे कि वैरागी आदिक उस्से तो संसार की बड़ी हानि होती इस्से संन्यास का होना अवश्य है, और मांस के पिण्ड देने में तो कुछ पाप नहीं क्यों कि यदन्नाःपुरुषालोकेतदन्नाः पितृदेवता ॥ १ ॥ यह महाभारत का बचन है मधुपर्केतथा यज्ञेपित्र्यदैवतकर्मणि। अत्रयपशवोहिंस्याना न्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ २ ॥ जो पदार्थ आप खाय उसी से पञ्चमहायज्ञ करै अर्थात् पितृ देव पूजा भी उस्मांस करै अर्थात् श्राद्ध और होम उसी का करै मधुपर्क-बिवाहादिक और गोमेधादिक यज्ञ और देवपितृकार्य इनमें माँस को जो खाता होय तो उसके वास्ते मांसके पिण्ड करने का बिधान है इस्से मांस के पिण्ड देने में भी कुछ पाप नहीं देवर व ज्येष्ठ से नियोग का बिधि लिख दिया सो वहीं जान लेना कलिमें पाचों का न करना सो यह बात मिथ्या ही है २ अर्थात् परदेश को पति चला गया होय तो स्त्री दूसरा पति कर ले फिर जो पूर्व बिवाहित पति आजाय तो दोनों में बड़ा बखेड़ा होगा क्योंकि एक कहेगा मेरी स्त्री है दूसरा कहेगा मेरी स्त्री है फिर क्या वे आधी २ स्त्री को करलें वा पारी

लगालें सो इस प्रकार का कहना मिथ्या ही है और पांच प्रकार के आपत्काल से छटेहीआ रतु आवेगी तो वह स्त्री क्या करैगी इस्से ये तीनों श्लोक मिथ्या ही है वैसे ही पारा-शरी में मिथ्या अयुक्त बहुत श्लोक कहे हैं और जो कोई सत्य है सो मनुस्मृति ही का है इस्से पाराशरी का प्रमाण करना सज्जनों को उचित नहीं और जैसा पाराशरी वैसी याज्ञवल्क्या-दिक स्मृतियां हैं इस्से मनु स्मृति को छोड़ के और किसी का प्रमाण करना उचित नहीं इस वास्ते जहां २ प्रमाण लिखा वहां २ मनु स्मृति ही का लिखा गया जब जिस दिन स्त्री रज-स्वला होय उसदिनसेलेके १६ सोलह दिन तक ऋतुकाल है उन में से पहिले से चार दिनत्याज्य हैं और ११ ग्यारहवां और १३ तेरहवां दिन छोड़ देना और अमावस्या और पौणमासी भी त्याज्य है अर्थात सोलह से ८ दिन बाकी रहे उनमें से भी छठवां,आठवा,दशवा, और १२ वां दिन वीर्यदान करने में अच्छे हैं क्योंकि इस दिनोंमें स्त्रीके शरीरकी धातु स्वस्वभावसे तुल्य वर्तमान रहती हैं और ५ वां ७ वां और ९ वां ये तीन दिन मध्यम हैं क्यों कि उन दिन स्त्री के धातुओं का अधिक बल होता है सो पहिले ४ चार दिनों में वीर्यदान करेगा तो प्रायः पुत्र ही होगा अथवा कन्या होगी तो श्रेष्ठही होगी और जो तीन दिनों में वीर्य दान करेगा तो प्रायः कन्या होगी और नपुंसक भी हो जाय तो आश्चर्य नहीं इस्से ४चार दिन अथवा ७सात दिन वीर्यदानके उत्तम और मध्यम हैं, अन्य दिन में समागम करेगा तो क्षीण बल संतान होगा इस्से ११ ग्यारहवां वा १३

तेरहवीं अमावस्या और पौर्णमासी इन में वीर्यदान करेगा तो वीर्य नष्ट होजायगा और जो संतान होगा सोभी नष्ट होगा रोग के होने से क्यों कि उन दिनों में स्त्री की धातु विषम हो जाती हैं एक २ मास में स्त्री स्वभाव से रजस्वला होती है, सो उक्त प्रकार के सोलह दिन के पीछे स्त्री का समागम कभी न करै क्यों कि मिथ्या वीर्य नष्ट होगा और गर्भ कभी न रहेगा इस्से मिथ्या वीर्य का नाश कभी न करना चाहिये जिस दिन से गर्भ होवै उस दिन से लेके एक वर्ष तक स्त्री का त्याग करना अवश्य चाहिये क्यों कि गर्भ का नाश और पुरुष का बल भी नष्ट हो जाता है इस्से एक वर्ष तक त्याग अवश्य करना चाहिये जो पुरुष परस्त्री अथवा वेश्यागमनसे वीर्यनाश करते हैं वे बड़े मूर्ख हैं क्योंकि उनका वीर्य मिथ्याहो जायगा और बड़े रोग होंगे जो कभी गर्भ रहेगा तो भी उस का कुछ फल नहीं क्यों कि जिस की स्त्री है उसी का सन्तान होगा और वीर्य देने वाले का नहीं और वेश्या से जो पुत्र होगा सो भडुवा ही होगा और जो कन्या होगी तो वह वेश्या ही होगी इस्से वीर्य देने वाले को कुछ लाभ नहीं सिवाय हानि के और रोग भी उनको बड़े २ होते हैं जिस्से की बड़ा दुःख पाते हैं क्यों कि जब पर स्त्री गमन की इच्छा करता है अथवा जिस वक्त समागम करता है, तब उसके हृदय में भय, शङ्का और लज्जा पूर्ण होती है कि इस कर्म को कोई न जानैं जो कोई जानेगा तो मेरी दुर्दशा हो जायगी एक तो यह अग्नि, दूसरा मैथुनका अग्नि और तीसरा चिन्ताग्नि कि रात दिन उसी चिन्ता

से जलता जायगा ये तीनों अग्नि से उसकी धातु सब दग्ध हो जातीहैं इस्से महारोगी होके मर जाताहै और बड़ा पाप भीहै इससे मनुष्य वा स्त्री अल्पायु हो जाते हैं और वेष्या गमन कर्ता है कुत्ता की नाई वह पुरुष है क्योंकि जैसे कुत्ता सब का जूंठ छोड़ किये अन्न को खा लेता है उसको घृणा नही होती वैसे ही घृणा के न होने से सज्जन लोग उस पुरुष को कुत्ते के नाई जानें और जो व्यभिचारिणी स्त्री और वेष्या उनको भी कुत्ती की नाई जानैं क्योंकि इनको भी घृणा नही होती है और देखना चाहिये कि माली और खेती करने वाले लोग अपने बाग में और अपने ही खेत में वृक्ष वा अन्न बोते हैं अन्य के बाग वा क्षेत्र में नहीं ये मूर्ख भी हैं तोभी पराएबाग- वा खेत में कभी कुछ नहीं बोते और जो लौंडे बाजी करते हैं वे तो सूअरवा कौवे की नाईं हैं क्योंकि जैसे सूवरवा कौवे बिष्टा से बड़ी प्रीति रखते हैं और अरुचि कभी नहीं करते वैसे वे भी पुरुष बिष्टा जिस मार्ग से निकलती है उस मार्ग में बड़ी प्रीति रखते हैं, इससे इस प्रकार के जो मनुष्य हैं वे मूर्ख से बढ़ कर हैं वीर्य जोसब बीजोंसे उत्तम बीज है उसको व्यर्थ नष्ट करते हैं और केवल पाप ही कमाते हैं जो युक्ति से वीर्य के रखने में सुख होताहै उतना सुख लाख बक्त. स्त्री के समागम से भी नहीं होता और जब४८वा ४४ वा ४० ३६ वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम से वीर्य की रक्षा करै फिर जब पूर्ण बल शरीरमें हो जाय औरस्त्री भी ब्रह्मचर्य्याश्रम करके पूर्ण युवती हो जाय तब जो उन दोनों को एक बार विषम भोग में सुख

होता है सो बाल्यावस्था में विवाह करने से लाख वक्त समागम में भी सुख नहीं होता औरसंतान भी रोग युक्त नष्ट भ्रष्ट होते हैं जो ब्रह्मचर्य्याश्रम करने वाले के सन्तान होंगे तो बड़े समर्थ्यवान् धनवान शूरवीर विद्यावान् और शुशील ही होंगे इससे वारंवार लिखने का यही प्रयोजन है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम तथा विद्या के बिना मनुष्य शरीर धारना ही नष्ट है सदा धर्म युक्त पुरुषार्थ से विद्या, धन तथा शरीर और नाना प्रकार के शिल्प इनों की वृद्धि ही करनी उचित है और स्त्री लोगों के छ दूषण हैं उनको स्त्री लोग छोड़ दें और सब पुरुष छोड़ा देवें पानन्दुर्जनसंसर्गः पत्याचविरहोऽटनम्। स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानिषट्॥ यही मनु का श्लोक है इसका यह अभिप्राय है कि पानं अर्थात् मद्य और भंगादिक का नशा करना दुर्जन संसर्ग अर्थात् दुष्ट पुरुषों का संग होना पत्याविरह अर्थात् पति और स्त्री का वियोग नाम स्त्री अन्य देश में और पुरुष अन्य देशमें रहै अटन अर्थात् पतिको छोड़ के जहाँ तहाँस्त्री भ्रमण करे जैसे कि नानाप्रकारके मंदिरमें तथा तीर्थों में स्नान के वास्ते और बहुत पाखण्डियों के दर्शन के वास्ते स्त्री का भ्रमण करना स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च अर्थात अत्यन्त निद्रा अन्य के घर में स्त्री का सोना और अन्यके घर में वास करै पति के बिना और अन्य पुरुषों के संग का होना ये छः अत्यन्त दूषण स्त्रियों के भ्रष्ट होने के वास्तेहैं कि इन छः कर्मों ही से स्त्री अवश्य भ्रष्ट होजायगी इसमेंकुछ सन्देह नहीं और पुरुषों के वास्ते भी ऐसे बहुत दूषण हैं॥ मात्रास्वस्रा दुहित्रा

वानविविक्तासनो भवेत् बलवानिन्द्रियाग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १ ॥ माता और स्वसा अर्थात भगिनी दुहित नाम कन्या इसके साथ भी एकान्त में निवास कभी न करै और अत्यन्त संभाषण भी न करै और नेत्र से उनका स्वरूप और चेष्टा न देखै जो कुछ उनसे कहना सुनाना होय सो नीचे दृष्टि करके कहै वा सुनै इससे क्या आया कि जितनी व्यभिचारिणी स्त्री वा वैश्या और जितने वेश्या गामी वा परस्त्री गामी पुरुष हैं उनमें प्रीति वा संभाषण अथवा उनका संग कभी न करै इस प्रकारके दूषणोंसे ही पुरुष भ्रष्टहो जाता है क्योंकि यह जो इन्द्रिय ग्राम अर्थात् मन और इन्द्रियां ये बड़े प्रबल हैं जो कोई विद्वान अथवा जितेन्द्रिय वा योगी वे भी इस प्रकार के संगों से भ्रष्ट हो जाते हैं तो साधारण जो गृहस्थ वा मूर्ख वह तो अवश्य भ्रष्ट ही हो जायगा इस वास्ते स्त्री वा पुरुष सदा इन दुष्ट सङ्गों से बचे रहैं और जो स्त्रियों को अत्यन्त बन्धन में रखते हैं यह भी बड़ा भ्रष्ट काम है क्योंकि स्त्रियों को बड़ा दुःख होता है श्रेष्ठ पुरुषों का तो दर्शन भी नही होता और नीच पुरुषों से भ्रष्ट हो जाती हैं देखना चाहिये परमेश्वर ने तो सब जीवों को स्वतन्त्र रचे हैं और उनको मनुष्य लोग बिना अपराध से परतन्त्र अर्थात बन्धन में रखते हैं। वे बड़ा पाप करते हैं सो इस बात को सज्जन लोग कभी न करैं यह बात मुसलमानों के राज्य से पवृत्त भई है आगे न थी

कौन्ती, गान्धारी, और द्रौपद्यादिक, स्त्रियां राज सभामें जहां कि राजा लोगों की सभा होती थी और वार्ता संभाषण करती थीं अपने पति को पंखा और जलादिकों से सेवा भी करती थीं और गार्गी मैत्रेयी इत्यादिक ऋषि लोगों की स्त्रियां भी सभा में शास्त्रार्थ करती थीं यह बात महाभारत और बृहदारण्यक उपनिषदमें लिखी है इसको अवश्य करना चाहिये, मुसल्मान लोगों का जब राज्य भया था तब जिस किसी की कन्या व स्त्री को पकड़ लेते, और भ्रष्ट कर देते थे उसी दिन से श्रेष्ठ आर्य्यावर्त देशवासी लोग स्त्रियोंको घरमें रखने लगे और स्त्री लोग भी मुख के ऊपर वस्त्र रखने लगीं सो इस बात को छोड़ ही देना चाहिये क्यों कि इस व्यवहार में सिवाय दुःख के सुख कुछ नहीं जैसे दाक्षिणात्य लोगों की स्त्रियां वस्त्र धारण करती हैं वैसा ही पहिले था क्यों कि कभी वस्त्र अशुद्ध नही रहता सब दिन जैसे पुरुषों के वस्त्र शुद्ध रहते हैं वैसे स्त्री लोगों के भी शुद्ध रहते हैं इससे इस प्रकार का वस्त्र धारण करना उचित है, स्त्री लोगों को पति की सेवा और तीर्थके स्थानमें सास, श्वसुर इन तीनोंकी सेवा जो है सोई उत्तम कर्म है और अपने घरका कार्य और धनादिकों की रक्षा करना और सब कुटुम्बमें परस्पर प्रीतिका होना सब दिन विद्या और नाना प्रकार के शिल्पों की उन्नति स्त्री लोग करैं और पुरुष लोग भी घर में कलह न करै परस्पर प्रसन्न होके रहना यही गृहस्थ लोगों का भाग्य और सुखकी

उन्नति है यह गृहस्थ लोगों की शिक्षा संक्षेप से लिख दिया और जो विस्तार से देखना चाहै तो वेदादिक सत्य शास्त्र और मनुस्मृति में देख लेवै इसके आगे वानप्रस्थ और सन्यासियों के विषय में लिखा जायगा॥

इति श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थ प्रकाशे सुभाषा विरचिते चतुर्थः समुल्लासः संपूर्णः॥ ४॥

अथवानप्रस्थसन्यास विधिंवक्ष्यामः। ब्रह्मचर्याश्रमंसमाप्य गृही भवेत् गृहीभूत्वावनीभवेत् वनीभूत्वाप्रव्रजेत् यह वृहदारण्यक उपनिषद् की श्रुति है इसका यह अभिप्राय है कि ब्रह्मचर्याश्रम अर्थात् यथावत् विद्याओं को पढ़के फिर गृहाश्रमी होय फिर वानप्रस्थ होय और वानप्रस्थ हो के सन्यासी होय ऐसा क्रम है कि इसमें जितने श्लोक लिखेंगे वे सब मनुस्मृति ही के जान ले उसके आगेम० ऐसा चिन्ह लिख देंगे। एवं गृहाश्रमेस्थित्वाविधिवत्स्नातकोद्विजः। वनेवसेत्तुनियतोयथावद्विजितेन्द्रियः॥ १॥ इस प्रकार से विधिवत् गृहाश्रम में रह के स्नातक द्विज अर्थात् विद्या वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य; ये तीनों वानप्रस्थ होवैं सो बन में जाके बास करैं यथावत् निश्चय करके और जितेन्द्रिय होके सो किस समय वानप्रस्थ होय कि॥ १॥ गृहस्थस्तुयदापश्येतवलीपलितमा-

त्मनः। अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यंसमाश्रयेत् २ भ० जब गृहस्थावली अर्थात् शरीर का चर्म ढीला हो जाय पलित नाम केश श्वेत हो जांय और उसका पुत्र ब्रह्मचर्य से सब विद्याओं को पढ़के विवाह कर लेवे फिर जब पुत्र का भी पुत्र होय तब वह गृहस्थ वन को चला जाय ॥ २ ॥ संत्यज्यग्राम्य माहारंसर्वंचैवपरिच्छदम्। पुत्रेषुभार्यांनिक्षिप्यवनंगच्छेत्सहैववा ॥ ३ ॥ भ० ग्रामों के जितने पदार्थ हैं उन सबों को छोड़ दे और श्रेष्ठ २ वस्त्रादिक भी छोड़ दे अर्थात् निर्वाह मात्र ले जाय उसको भी छोड़ दे वन में जाके अपनी स्त्री को पुत्र के पास रखदे अथवा स्त्री जो कहे कि सेवा के वास्ते मैं चलूंगी तो संगमें लेके वन को दोनों जाय जो स्त्री कहे कि मैं पुत्रों के पास रहूंगी तो उसको छोड़ के एकाकी जाय ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रंसमादाय गृह्यंचाग्निपरिच्छदम्। ग्रामादरण्यंनिःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥ भ० अग्निहोत्रकी सब सामग्री अर्थात कुण्ड और पात्रादिकों को लेके ग्राम से निकल के जितेन्द्रिय होके वन में वास करै ॥ ४ ॥ मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेनवा। एतानेवमहायज्ञान् निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥५॥ भ० मुन्यन्न नाम मुनियों के विविध जो अन्नसांवाका चावल जो कि वन में विना बोये होते हैं वे मेध्य होते हैं अर्थात बुद्धि वृद्धि करने वाले हैं उनसे शाक जो कि पत्र और पुष्प मूल नाम कन्द जो कि भूमि मेंसे निकलते हैं और फल इनसे पूर्वोक्त पंच महायज्ञों को विधि पूर्वक नित्य करै ॥ ५ ॥ वसीतचर्मचीरंवासायंस्नायात्प्रगेतथा। जटाश्चविभृयान्नित्यं

श्मश्रुलोमनखानिच ॥ ६ ॥ भ० मृगचर्म अथवा चीर जो कि वृक्षों के छाल से होता है उस को धारण करै शरीर की रक्षा के वास्ते सायंकाल और प्रातःकाल दो वेर स्नान करै जटा दाढ़ी मोंछ लोम और नखहुन को नित्य धारण करै अर्थात् गृहाश्रम में इनका धारण करना चाहिये सोई लिखा है ॥ ६

केशान्तः षोड़शेवर्षे ब्राह्मणस्याभिधीयते। आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धा-राचतुर्विंशते विंशः ॥ ७ ॥ भ० सोलहवर्ष में ब्राह्मण २२ वर्ष में क्षत्रिय २४ वर्ष में वैश्य और शूद्र भी दाढ़ी मोंछ और नख कभी न रक्खैं इससे यहां वानप्रस्थ के वास्ते धारण लिखा ॥ ७ ॥

यद्भक्ष्यंस्यात्ततोदद्याद्बलिंभिक्षांचशक्तितः। अम्मूलफलभिक्षा-भिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥ ८ ॥ भ० जो आप भक्षण करै उसीसे पंच महा यज्ञ सामर्थ्य के अनुकूल करै जल मूल नाम कन्द फल और भिक्षा इनसे अपने आश्रम में कोई अतिथि आवै उसका भी सत्कार करै ॥ ८॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तःस्याद्दान्तो मैत्रःसमाहितः। दातानित्यमनादातासर्व भूतानुकम्पकः ॥ ९ ॥ भ० स्वाध्याय अर्थात शास्त्र के विचार अथवा योगाभ्यास में नित्य युक्त होय और दान्त नाम उदारता से सब इन्द्रियां को जीते सब से मित्रता रक्खै समाहित नाम शरीर और चित्त का समाधान रक्खै अग्र धेयकर्म का भी समाधान रक्खै नित्य औरों को देवैं आप किसी से न लेवै और सब जीवों के ऊपर कृपा रक्खै पक्षेष्ट्यादिक भी यथावत् करै ॥ ९ ॥

नफालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपिकेनचित्। नग्रामजातान्यार्तोपि-मूलानिचफलानिच ॥ १० ॥ भ० फालकृष्ट अर्थात् हलके

जानने से क्षेत्र में जो कुछ होता है उसको कभी ग्रहण न करै और खेत व खरियान में छूटा भया जो अन्न उसको भी ग्रहण न करै और जो ग्राम के मूल वा फल उन को ग्रहण कभी न करै ॥ १० ॥ अग्निपक्काशनोवास्यात्कालपक्वभुगेववा। अश्मकुट्टो भवेद्वापिदन्तोलूखलिकोपिवा ॥ ११ ॥ भ० अग्निपक्काशन अर्थात् अग्नि से पकाके खावै कालपक्वभुग् अर्थात जो आप से वृक्षों में फल पक जांय उनको खावै अश्मकुट्ट अर्थात् पाषाण से कूट २ के फलादिकों को खाय दन्तोलूख-लिक नाम दांत तो मूसल की नांई और मुख उलूखल की नांई वैसे ही हाथ से फलादिक लेके मुख और दांतों से खा लेवै ॥ ११ ॥ सद्यःप्रक्षालकोवास्यात्मासंसंचयिकोपिवा। षण्मासनिचयोवास्यात्समानिचयएववा ॥ १२ ॥ भ० एकतो यह दीक्षा है कि जितने से अपना निर्वाह होय उतना ही लेआवै दूसरे दिन के वास्ते न रक्खै दूसरी यह दिक्षा है कि मास भर के वास्ते फलादिकों का संचय कर लेवै अथवा छः मास पर्यन्त का संचय कर लेवै यह तीसरी दीक्षा है चौथी दीक्षा यह है कि साल भर का संचय करले इत्यादिक बहुत वानप्रस्थ के वास्ते व्रत लिखे हैं ॥ १२ ॥ ग्रीष्मपञ्चत-पास्तुवर्षास्वभ्रावकाशिकः। आर्द्रवासास्तु हेमन्तेक्रमसोवर्द्ध-यंस्तपः ॥ १३ ॥ भ० ग्रीष्म नाम वैशाख ज्येष्ठ में जब सूर्य दश घंटा के ऊपर आवै तब चारों दिशाओं में अग्नि करदे और बीच में बैठे जब तक तीन न बजे तब तक और वर्षा काल में मैदान में बैठे और अपने ऊपर छाया कुछ न रहे

शीतकाल में गीले वस्त्र धारण करै इत्यादिक प्रकारों से अत्यन्त उग्र तप करै क्योंकि बिना तप अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता और इन्द्रियों का जय भी नहीं होता इस्से अवश्य तप करना चाहिये ॥ १३ ॥ अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथा-विधि । अनग्निरनिकेतःस्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ २४ ॥ म० जप तपसे मन और इन्द्रियां सब बशीभूत हो जांय तब अग्नि आहवनीहगार्हपत्यदाक्षिणात्यसभ्य और आवसथ्य यह पांच प्रकार का अग्नि होता है और वैतान अर्थात् इष्टियों की सामग्री और अग्निहोत्र की सामग्री उनकी वाह्य क्रिया को छोड़ दे क्यों कि जितनी वाह्य क्रिया हैं वे मन की शुद्धी के लिये हैं सो जब मन शुद्ध हो जाय तब उनके करने का कुछ प्रयोजन नहीं किन्तु केवल भीतर की जो क्रिया अर्थात् योगाभ्यास और बिचार इन्ही को करै ॥ १४ ॥ अप्रयत्नःसुखा र्थेषुब्रह्मचारीधराशयः । शरणेष्वममश्चैववृक्षमूलनिकेतनः १५ ॥ म० शरीर वा इन्द्रियों के सुख की कुछ इच्छा न करै किन्तु उनका त्यागही करै और ब्रह्मचारी रहै अर्थात् अपनी स्त्री संग मे भी होय तो भी उस्से संग कभी न करै किन्तु स्त्री तो बनमें सेवा के वास्ते ही है और भूमि में शयन करै शरण अर्थात् जहां २ रहै अथवा बैठे उसमें ममता कि यह मेरा ही है ऐसा अभिमान कभी न करै किन्तु वहां से कोई उठा दे तो उठ के चला जाय दूसरी जगह जाके बैठे क्रोधादिक कुछ भी न करै, किन्तु प्रसन्न ही रहै ॥१५॥ नापसंस्वेववित्रेषुयात्रिकंभैक्षमाहरेत्

गृहमेधिषुचान्येषुद्विजेषुबनवासिषु॥१६॥ बनमें अन्य जितने वानप्रस्थ लोग होवें उनसे अपने निर्वाह मात्र भिक्षा करले अधिक नहीं अथवा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों गृहाश्रमी बनमें रहते होवें उनसे अपने निर्वाह मात्र भिक्षा कर ले ॥ १६ ॥ ग्रामादाहृत्यवाश्नीत्यादष्टौग्रामान्वनेवसन्। प्रतिगृह्यपुटेनैवपाणिनाशकलेनवा ॥ १७ ॥ म० जब दृढ़ जितेन्द्रिय हो जाय तोभी बन मे रहे परन्तुकभीर ग्राममे चला आवै भिक्षा करनेके वास्ते अपने दो हाथ या एक हाथ में जो गृहस्थों को घर में अन्न भया होय उसको प्रीति से जितना कोई देवै उतना ले लेवै परन्तु आठ ग्रासमात्र ले फिर उसको लेके बन में चला जाय जहां कि जल होय वहां बैठ के आठ ग्रास खाले अधिक नहीं ॥ १७ ॥ एताश्चान्याश्चसेवेतदीक्षाविप्रोवनेवसन्। विविधश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धयेश्रुती ॥ १८ ॥ म० ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैवगृहस्थैरेवसेविताः विद्यातपोविवृद्ध्यर्थंशरीरस्यचशुद्धये ॥ १९ ॥ म० इनदीक्षाओं को और अन्यदीक्षाओं को भी बन में रहना भया वह वानप्रस्थ सेवन करै नाना प्रकार की जो उपनिषदों की श्रुति उनको आत्मज्ञान अर्थात ब्रह्मविद्या के वास्ते नित्य विचारै ॥ १८ ॥ ऋषियों ने अर्थात यथावत् वेद के मंत्रो के अर्थ जानने वाले और ब्राह्मणों ने अर्थात ब्रह्मविद्या के जानने वालों ने और गृहस्थों ने अर्थात पूर्ण विद्या वाले धर्मात्माओं ने जिन श्रुतियोंका सेवन किया होय उनको नित्य योगाभ्यास और ज्ञान दृष्टिसे विचार करें क्योंकि विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और तप अर्थात् योग सिद्धि इनकी वृद्धि के और शरीर की

शुद्धि के वास्ते अर्थात् दशेन्द्रियां पांच प्राण मन बुद्धि, चित्त और अहंकार इन ।१६। सतत्त्वोंके मिलनेसे लिंग शरीर कहाता है इसके शुद्धिके वास्ते ॥ १६ ॥ आसांमहर्षिचर्य्याणांत्यक्त्वान्यतमयातनुम् । वीतशोकभयो विप्रोब्रह्मलोकेमहीयते ॥ २० ॥ म० इन महर्षियों की क्रियाओं के मध्य किसी क्रिया को कर के शरीर छूट जाय तोभी वहविद्वान शोक भयादिक दुःखों से छूट के ब्रह्मलोक अर्थात परमेश्वर की प्राप्ति अथवा उत्तम स्वर्ग कीप्राप्ति उससे होतीहै ।२१। वनेषुचविहृत्यैवतृतीयं भागमायुषः चतुर्थमायुषोभागंत्यक्त्वासंगान्परिव्रजेत् २१ ॥ म० इस प्रकार से वानप्रस्थाश्रमको यथावत् आयु के तीसरे भागको समाप्ति पर्यन्त बनों में विहार करके जब आयु का चतुर्थ भाग अर्थात ७० सत्तरवर्ष के ऊपर आयु के चतुर्थ भाग में सब संगों को अर्थात् स्त्री यज्ञोपवीत शिखादिक को छोड़के परिव्राट् अर्थात सब देशान्तर में भ्रमण करै किसी पदार्थ में मोह वापक्षपात कभी न करै वह स्त्री अपने पुत्रोंके पास चली जाय अथवा बन में तपश्चर्या करै ॥ २१ ॥ इसमें कोई शंका करै कि यज्ञोपवीता- दिक चिन्हों के छोड़ने से क्या होताहै अर्थात् इनको न छोड़ना चाहिये उत्तर अच्छा यज्ञोपवीतादिक चिन्हों के रखने से क्या होता है पूर्व पक्षयज्ञोपवीतादिकों से द्विज देख पड़ता है और विद्या के चिन्ह से विद्या की परीक्षा भी होतीहै उत्तर कि जब संसार के व्यवहार और अग्नि होत्रादिक बाह्यक्रियां जिनमें उपवीति निवीति और प्राचीनावीति यज्ञोपवीत से क्रिया कर- नी होती हैं उन अग्नि होत्र बाह्यक्रियाओं को तो छोड़ दिया

और कहीं प्रतिष्ठा विद्यासे करानी उसको नहीं फिर यज्ञोपवीतादिक का रखना उसको व्यर्थ ही है इसमें यह प्रमाण है ।
प्राजापत्यांनिरुप्येष्टिंतस्यांसर्ववेदसंहुत्वाब्राह्मणःप्रव्रजेत् ॥ यह यजुर्वेदके ब्राह्मणकी श्रुति है इसका यह अभिप्राय है कि प्राजापत्यइष्टिको करके उसमें सर्व वेद सबेदस विहलाभे जो यज्ञोपवीतादिक बाह्यचिन्हप्राप्त हुये थे उन सभों का हुत्वानाम-त्यक्त्वा अर्थात् छोड़के ब्राह्मण विद्या ज्ञानवानतया वैराग्य इत्यादिक गुणवाला परिव्रजेत् रहिता सर्वतः व्रजेत् सब संसार के बन्धनों से मुक्त हो के सन्यासी हो जाय लोकैषणायाश्च-वित्तैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्चोत्थायाप्यभिक्षाचर्यंचरति ।
यह बृहदारण्यक उपनिषद् की श्रुति है इसका यह अभिप्राय है कि लोकैषणा अर्थात् लोककी जन निन्दा करै वा स्तुति करै और अप्रतिष्ठाकरै ताभी जिसके चित्तमें कुछ हर्ष और शोक होय औरजितने लोकके विषय भोगहैं, स्त्राधन हस्त्यश्वचन्दनादिक इनसे उठके अर्थात् इनको तुच्छ जान के जैसे वे हर्ष शोक के देने वाले हैं वैसे यथावत समझ के सत्य धर्म्म और मुक्ति अर्थात सब दुःखों की निवृत्ति और परमेश्वर की प्राप्ति इनमें स्थिर होके आनन्दमें रहै और किसीका पक्षपात अथवा किसी से भय कभी न करै वित्तैषणा अर्थात् धन का इच्छा और धन की प्राप्ति में प्रयत्न और लोभ कि मुझको धन अधिक होय और जितने धनाढ्य हैं उनसे धन प्राप्ति के वास्ते बहुत प्रीति करै द्रव्य को बड़ा पदार्थ जान के संचय करना और दरिद्रों से धनके नहीं होनेसे प्रीति का न करना और धनाढ्यों

की स्तुति न करना इन सब बातों का जो छोडना उसका नाम वित्तैषणाका त्याग है पुत्रैषणा अर्थात् अपने पुत्रों में मोह का करना वा जो सेवक लोग हैं उन से मोह अर्थात् प्रीति करना और उनके सुख में हर्ष का होना और उनके दुःख में शोक का होना उसका पुत्रैषणा नाम है एषणा नाम इच्छा का तीन पदार्थों में होना इन तीनों एषणाओं से जो बद्ध नही है वही सन्यासी होता है और पक्षपात रहित भी सन्यासी यथावत् होता है क्योंकि जितने ब्रह्मचारी गृहस्थ और वानप्रस्थ हैं उनको बहुत व्यवहारों के होने से बुद्धिमान होय तोभी भय; शंका और लज्जा कुछ किसी व्यवहार में रहती ही है और जो सन्यासी होता है उसको किसी संसार सम्बन्धी व्यवहार का करना आवश्यक नहीं व किसी मनुष्य से शंका, लज्जा भय, और पक्षपात कभी नहीं होना । आश्रमादाश्रमंगत्वाहुतहोमोजितेन्द्रियः । भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्यवर्द्धते ॥ २२ ॥ भ० आश्रम से आश्रम को जाके अर्थात् क्रम से ब्रह्मचर्याश्रमादिक तीनों को करके यथावत् अग्निहोत्रादिक यज्ञों को करके जितेन्द्रिय जब होजाय भिक्षा देके और बली अर्थात् बली वैश्वदेव करके परिश्रान्त अत्यन्त श्रम युक्त जब होय तब सन्यास ले तो उसका सन्यास यथावत् बढ़ता जाय खंडित न होय ॥ २२ ॥ ऋणानित्रीण्यपाकृत्यमनोमोक्षेनिवेशयेत् अनपाकृत्यमोक्षन्तुसेवमानोव्रजत्यधः ॥ २३ ॥ भ० तीन ऋण अर्थात् ऋषि पितृ और देव ऋण इनको करके मोक्ष के वास्ते सन्यास में नित्त प्रविष्ट होवे और इन तीनों को न करके जो

सन्यासकी इच्छा कर्ता है सो नीचे गिर पड़ता है उसको मोक्ष नही प्राप्त होता ॥ २३ ॥ वे कौन तीन ऋण हैं अधीत्यविधिवद्वेदान पुत्रानुत्पाद्यधर्मतः । इष्ट्वाचशक्तितोयज्ञैर्मनोमोक्षेनिवेशयेत् ॥२४॥ म० विधिवत् अर्थात उक्त प्रकार से ब्रह्मचर्याश्रम को करके सब वेदों को पढ़ै अर्थ सहित और अङ्गउपवेद और छः शास्त्र सहित पढ़ै फिर पढ़ के यथावत् पढ़ावें, क्यों कि विद्या का लोप इस प्रकार से कभी न होगा यह प्रथम ऋषि ऋण है इसमें जप और संध्योपासन भी जान लेना सब मनुष्यों के ऊपर यह परमेश्वर की आज्ञा है कि ब्रह्मचर्याश्रम से विद्याओं को पढ़ना और पढ़ाना इसके विना सब आश्रम नष्ट हैं जैसे कि मूल के बिना वृक्ष नष्ट हो जाता है उक्त प्रकार से पुत्रों को शिक्षा धर्म की विद्या पढ़ने और पढ़ाने की करै अपनी कन्या अथवा अपना पुत्र विद्या के बिना कभी न रहै सब श्रेष्ठ गुण वाले होवैं ऐसा कर्म माता पिता को करना उचित है और जो अपने सन्तानों को श्रेष्ठ गुण वाले न करेंगे तो उन माता पिताओं ने बालक को जैसा मार डाला फिर मारना तो अच्छा परन्तु मूर्ख रखना अच्छा नहीं इसी में उक्त प्रकार से तर्पण और श्राद्ध भी जान लेना यह दूसरा पितृ ऋण है फिर गृहाश्रम में यथावत् अग्निहोत्रादिकों का अनुष्ठान करै जिस्से कि सब संसार का उपकार होय इस्से उस का भी बड़ा उपकार है अर्थात् पुण्य से सुख पाता है सो इन तीन ऋणों को उतार के मोक्ष अर्थात्

संन्यास करने में चित्त देवैं अन्यथा नहीं ॥ २४ ॥ अनधीत्य द्विजोवेदाननुत्पाद्यतथासुतान्। अनिष्ट्वाचैवयज्ञैश्चमोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥२५॥ भ० द्विज अर्थात ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वेदों को न पढ़के यथावत धर्मों से पुत्रों का उत्पादन भी न करैं अग्निहोत्रादिक यज्ञ भी न करैं फिर जो मोक्ष अर्थात संन्यास की इच्छा करै संन्यास तो उस का न होगा किन्तु संसार में ही गिर पड़ेगा ॥२५॥ एक बात तो संन्यास के क्रम की होगई दूसरी बात यह है कि प्राजापत्यांनिरूप्येष्टिंसर्ववेदसदक्षिणाम्। आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेगृहात् ॥२६॥ भ० प्राजापत्यइष्टिका सब यथावत् निरूपण करके उसमें सर्ववेदस अर्थात यज्ञपात्रादिक जितने चिन्ह प्राप्त भये थे उनको दक्षिणा में देके और पूर्वोक्त पांच अग्नियों को आत्मा में समारोपण कर के ब्राह्मण अर्थात विद्वान वानप्रस्थ को भी न करै अर्थात् गृहाश्रमी से संन्यास ले लेवे ॥२६॥ योदत्वासर्वभूतेभ्यःप्रव्रजत्यभयंगृहात्। तस्यतेजोमयालोकाभवन्तिब्रह्मवादिनः ॥ २७ ॥ भ० जो सब भूतों को अभयदान अर्थात ब्रह्म विद्यादान देके घर से ही संन्यास लेता है तिस को तेजोमयलोक प्राप्त होता है अर्थात परमेश्वर ही प्राप्त होते हैं फिर कभी जन्म मरण में वह पुरुष नहीं आता सदा आनन्द में ही परमेश्वर को प्राप्त होके रहता है ॥ २७ ॥ आगारादभिनिष्क्रान्तःपवित्रोपचितोमुनिः। समुपोढेषु कामेषुनिरपेक्षःपरिव्रजेत् ॥ २८ ॥ भ० आगार अर्थात ब्रह्मचर्याश्रम से भी संन्यास लेले परन्तु अभिनिष्क्रान्त जब अन्तर्मुख मन हो जाय कि विषय

सेवा की इच्छा थोडी भी न होय और पवित्र गुणों से अर्थात शमदमादिकोंसे उपवित नाम जब युक्त होय और मुनि अर्थात मनन शील सत्य २ विचार वाला होय और सब कामों को जानले कोई काम उसके मन को अधर्म में न लगा सके स्थिर चित्त होय निरपेक्ष किसी संसार के पदार्थ की सिवाय परमेश्वर की प्राप्ति के अपेक्षा न होय तब ब्रह्मचर्याश्रम से भी सन्यास लेवै तो भी कुछ दोष नहीं ॥ २१ ॥ इसमें श्रुतियों का भी प्रमाण है यदहरेवविरजेत्तदहरेवप्रव्रजेद्वनाद्वागृहाद्वा १ ब्रह्मचर्यादेवप्रव्रजेत् ॥ २ ॥ यह यजुर्वेद के ब्राह्मण की श्रुति है इसका यह अभिप्राय है कि जिस दिन पूर्ण वैराग्य होय उसी दिन सन्यासी होजाय वानप्रस्थाश्रम अथवा गृहाश्रम से और जबपूर्ण विद्या और पूर्ण वैराग्य और पूर्ण ज्ञान, और विषय भोगकी इच्छा कुछ भी न होय तो ब्रह्मचर्याश्रमसे ही सन्यास लेलेवै तो भी कुछ दोष नहीं पूर्व पक्ष यह बात परमेश्वर की आज्ञा से विरुद्ध है क्यों कि परमेश्वर का अभिप्राय प्रजा की वृद्धि करनेमें जाना जाता है और प्रजाकी हानिमें नहींजो कोई सन्यास लेगा सो विवाह न करेगा इस्से संसार की वृद्धि न होगी इस वास्ते सन्यास का लेना उचित नहीं जब तक जिये तब तक गृहाश्रममें रहके संसारके व्यवहार और शिल्प विद्याओं की उन्नति करै इस्से सन्यास का करना उचित नहीं किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या पढ़ के गृहाश्रम ही में रहना उचित है उत्तर पक्ष ऐसा कहना उचित नही क्यों कि ब्रह्मचर्याश्रम न होगा तो विद्या की उन्नति न होगी और गृहाश्रम न करने से

आगे मनुष्य की उत्पत्ति संसार का व्यवहार ये सब नष्ट हो जांयगे और वानप्रस्थ के न होने से मन भी शुद्ध न होगा और सन्यास के न होने से सत्य विद्या और सत्योपदेशकी उन्नति न होगी पाखंड और अधर्म का खण्डन भी न होगा इस्से संसार की उन्नति का नाश होगा क्यों कि ज्ञान की वृद्धि होने से सब सुखों की वृद्धि होती है अन्यथा नहीं इस में देखना चाहिए कि ब्रह्मचारी को पढ़ने से रात दिन अवकाश ही नहीं रहता और गृहस्थ को भी बहुत व्यवहारके होने से चित्त फसा ही रहताहै और वानप्रस्थका तपही में चित्त रहताहै और कुछ विचार भी कर्ता है जो सन्यासी होगा वह विचार के विना अन्य व्यवहार हीन रहेगा इस्से पृथ्वी से ले के परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का यथार्थ विचार करके औरों को भी उपदेश करेगा सब देशों में भ्रमण करेगा इस्से सब देशों के मनुष्यों को उसके संग और सत्य उपदेशके सुनने से बड़ा लाभ होगा जो गृहस्थ होगा उस का जहां २ घर है वहां २ प्रायः रहेगा अन्यत्र भ्रमण न कर सकेगा इस्से सन्यासका होना भी उचित है परमेश्वर न्यायकारी है और विद्या की उन्नति भी चाहता है जिसको विषय भोग की इच्छा न होगी उसको परमेश्वर कैसे आज्ञा देगें कि तूं विवाह कर जैसे कि कोई पुरुष को रोग कुछ नहीं उस्से वैद्य कहै कि तूं कुछ औषध खा वह औषध क्यों खायगा और जिसको भोजन करने की इच्छा न होय उस को कोई बल से कहे कि तूं अवश्य भोजन कर तो वह बिना क्षुधा के भोजन कैसे करेगा किन्तु कभी न करेगा ऐसे ही जिस को

विषय भोग और संसार के व्यवहारों की इच्छा नहीं वह विवाह और संसार के व्यवहार कैसे करेगा कभी न करेगा संसार के जनों से कुछ प्रयोजन न होने से सब के मुख पर सत्य ही कहेगा अपने सामने जैसा राजा वैसा ही प्रजा को समुझेगा इस वास्ते जिस पुरुष को विद्या, ज्ञान, वैराग्य, पूर्ण जितेन्द्रियता होय और विषय भोग की इच्छा न होय उसी को सन्यास लेना उचित है अन्य को नहीं जैसे कि आज कल आर्यावर्त्त देश में बहुत से संप्रदायी लोग हैं वे केवल धूर्त्तता से पराया धन हरण कर लेते हैं और पराई स्त्री को भ्रष्ट कर देते हैं और मूर्खता तथा पक्षपात के होने से मिथ्या उपदेश करके मनुष्यों की बुद्धि नष्ट कर देते हैं और अधर्म में प्रवृत्त करा देते हैं इससे इनका तो बन्द ही होना उचित है क्यों कि इन के होने से संसार का बहुत अनुपकार होता है ॥ कपालंवृक्षमूलानि कुचैलमसहायता । समताचैवसर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्यलक्षणम् ॥ २९ ॥ भ० कपाल अर्थात भिक्षा पात्र वृक्ष के जड़ में निवास और कुत्सितवस्त्र और सबके ऊपर सम बुद्धि न किसी से प्रीति और न किसी से वैर यह मुक्त पुरुष अर्थात सन्यासी का लक्षण है ॥ २९ ॥ नाभिनन्देतमरणंनाभिनन्देतजीवितम् । कालमेवप्रतीक्षेतनिर्देशंभृतकोयथा ॥३०॥भ० जो सन्यासी होय सो मरने और जीने में शोक वा हर्ष न करै किन्तु काल की प्रतीक्षा किया करै जब मरण समय आवै तब शरीर छोड़ दे शरीरसे मोह कुछ न करै जैसाकि छोटा नौकर स्वामी की आज्ञा जब होती है तभी वह काम करने लगता है

जहां कहे वहां चला जाता है और सन्यासी किसी पदार्थ से सिवाय परमेश्वर के मोह वा प्रीति न करै ॥ ३० ॥ दृष्टिपूतं-न्यसेत्पादंवस्त्रपूतंजलंपिबेत् । सत्यपूतांवदेद्वाचंमनःपूतंस माचरेत् ॥ ३१ ॥ म० इसका अर्थ तो पहिले कर दिया है परन्तु सन्यास धर्म के प्रकर्ण में लिखने का यहप्रयोजन है कि बहुत लोग कहते हैं कि सन्यासी किसी को उपदेश न करै इनसे पूछना चाहिये कि सत्यपूतांवदेद्वाक्यं सत्य अर्थात् प्रमाण और बिचार से यथावत् निश्चय करके सत्य उपदेश करै सब बिद्या से जो पूर्ण बिद्वान सन्यासी सो तो उपदेश न करै और जितने पाखण्डी मूर्ख लोग हैं वे उपदेश करें तभी तो संसार का सत्यानाश होताहै जितनेमूर्ख पाखण्डी उनका तो ऐसा प्रबन्ध करना चाहियेकि वे उपदेशही न करने पावैं और जितने बिद्वान सन्यासी लोग हैं वे सदा उपदेश किया करें अन्य कोई नहीं अन्यथा मूर्ख पाखण्डियों के उपदेश से देश का नाश होता है जैसे कि आज काल आर्यावर्त्त देश की अवस्था भईहै ॥ ३१ ॥क्रुध्यन्तंप्रति नक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलंवदेत् सप्तद्वारावकीर्णाञ्चनवाचमनृतांवदेत् ॥ ३२ ॥ म० जो कोई क्रोध करै उससे सन्यासी क्रोध न करै और कोइ निन्दा करै उसको भी कल्याण का उपदेश न करै किञ्चसप्तद्वारमुख नासिका के दो छिद्र दो छिद्र आंख के और कान के इन सात द्वारों में जो वाणी बिखर रही है उससे मिथ्या कभी न कहै अर्थात सन्यासी सदा सत्यही बोलै॥ ३२ ॥ क्लृप्तकेशनखश्म-श्रुःपात्री दण्डी कुसुम्भवान् । विचरेन्नियतोनित्यं सर्वभूता-

न्यपीडयन् ॥ ३३ ॥ भ० केश सिर के सब बाल नख और श्मश्रु अर्थात् दाढ़ी मोंछ इनको कभी न रक्खै अर्थात् छेदन करा देवै पात्री एक ही पात्र रक्खै और एक ही दण्ड रक्खै इससे तीन दण्डों का धारना पाखण्ड ही है जैसा किचक्रांकितों का कुसुंभारंग से रंगे वस्त्र पहिरैं और गेरुवा मृत्तिकाकेरंगे नहीं अथवा श्वेत वस्त्र धारण करैं निश्चय बुद्धि होके सब भूतों से रागद्वेष छोड़ के अपने ब्रह्मानन्द में विचरैं ॥ ३३ ॥ एककालं चरेद्भैक्षं नप्रसज्जेत विस्तरं। भैक्षेप्रसक्तोहियतिर्विषयेष्वपिसज्जति ॥ ३४ ॥ एक बेर भिक्षा करैं अत्यन्त भिक्षामें आसक्त न होय क्योंकि जो भोजन में आसक्त होगा सो विषय में भी आसक्तहोगा ॥ ३४ ॥ विधूमेसन्नमुसलेव्यङ्गारेभुक्तवज्जने। वृत्तेशरावसंपाते भिक्षांनित्यं यतिश्चरेत् ॥ ३५ ॥ भ० जबगाँवमेंधूमन देख पड़ै मूसल वा चक्की का शब्द न सुन पड़ै किसी के घर में अंगारन देख पड़ै सब गृहस्थ लोग भोजन कर चुकैं और भोजन करके पत्ती और सकोरे बाहर को फेंक देवैं उस समय सन्यासी गृहस्थ लोगों के घर में भिक्षाके वास्ते नित्य जांय और जोऐसा कहते हैं कि हम पहिले ही भिक्षा करेंगे यह उनका पाखण्ड ही जानना क्योंकि गृहस्थ लोगों को पीड़ा होती है और जोविरक्त होके वैरागी आदिक अपने हाथ से लेके करते हैं वे बड़े पाखण्डी हैं ॥ ३५ ॥ अलाभेनविषादीस्याल्लाभेचैवनहर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रास्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥ ३६ भ० जब भिक्षा का लाभ न होय तब विषाद न करै और लाभ में हर्ष न करै प्राण रक्षण मात्र प्रयोजन रक्खै भिक्षा में

प्रसक्त न होय और विषयों के संगों से पृथक् रहै ॥ ३६ ॥ अभिपूजितलाभांस्तुजुगुप्सेतैवसर्वशः।अभिपूजितलाभैश्चयतिर्मुक्तोऽपिबध्यते ॥ ३७ ॥ भ० अत्यन्त श्रेष्ठ पदार्थ स्तुत्यादिक उनकी निंदा ही करै क्योंकि स्तुत्यादिक बन्धन ही करने वाले हैं मुक्त भी होय तो भी इससे बद्ध ही होजाता है ॥ ३७ ॥ अल्पान्नाभ्यवहारेणरहःस्थानासनेनच । ह्रियमाणानिविषयैरिन्द्रियाणिनिवर्तयेत् ॥ ३८ ॥ इन्द्रियाणांनिरोधेनरागद्वेषक्षयेणच । अहिंसयाचभूतानाम् मृतत्वायकल्पते ॥ ३९ ॥ भ० इन्द्रियों का निरोध रागद्वेष और अहिंसा इन चारों का जो त्याग करता है सोई मोक्ष का अधिकारी होता है अन्य कोई नहीं ॥ ३९ ॥ दूषितोऽपिचरेद्धर्मं यत्रतत्राश्रमेरतः । समसर्वेषुभूतेषुनलिंगंधर्मकारणम् ॥ ४० ॥ भ० जिस किसी आश्रम में दोष युक्त पुरुष भी होय परन्तु धर्म ही को करै और सबभूतों में सम बुद्धि अर्थात् रागद्वेष रहित होय सोई पुरुष श्रेष्ठ है जितने बाह्य चिन्ह हैं यज्ञोपवीत दंड दोनोंको धारण करैं और धर्म न करै तो धारण मात्र हीसे कुछ नहीं हो सकता और तिलक, छापा, मालायें तो सब पाखण्डों ही के चिन्ह हैं इनको तो कभी न धारना चाहिये ॥ ४० ॥ फलंकतकवृक्षस्ययद्यप्यंबुप्रसादकम् । ननामग्रहणादेवतस्यवारिप्रसीदति ॥ ४१ ॥ भ० यद्यपि कतक नाम निर्मली वृक्ष का फल जलको शुद्ध करने वाला है सो जब उसको पीस के जलमें डालैं तब तोजल शुद्ध हो जाता है और जो पीस के न डालै कतकवृक्षस्यफलायनमः ऐसामाला लेके जप किया करै वा उसका नाम जलके पास लिया करै, उससे

जल कभी न शुद्ध होगा वैसे ही नाम मात्र से कुछ नहीं होता जब तक धर्म नहीं करता ४१ प्राणायाम ब्राह्मणस्य त्रयोपि विधिवत्कृताः। व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः॥ ४२॥ भ० ओम् भूः, ओम् भुवः, ओम् स्वः, ओम् महः, ओम् जनः, ओम् तपः, ओम् सत्यं इस मन्त्र का हृदय में उच्चारण करै पूर्वोक्त रीति से तीन बार भी प्राणों का निग्रह करै तो भी उस सन्यासी का परम तप जानना ॥ ४२॥ दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्। ४३। भ० जैसे सुवर्णादिक धातुओं को अग्नि में तपाने से मैल नष्ट हो जाता है वैसे ही प्राण के निग्रह से इन्द्रियों के मल भस्म हो जाते हैं ॥ ४४॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्। प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्। ४५। भ० प्राणायामों से सब इन्द्रिय और शरीर के दोषों को भस्म करदे और धारण योग शास्त्र की रीति से करै उससे विराग और द्वेष जो हृदय में पाप उसको छोड़ादे प्रत्याहार से इन्द्रियों का विषयों से निरोध करके सब दोषों को जीतले और ध्यान से अल्पज्ञानादिक अनीश्वर के जितने गुण उनको छोड़ादे अर्थात सर्वज्ञादिक गुण सम्पादन करै ॥ ४५॥ उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः। ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ४६॥ भ० स्थूल और सूक्ष्म उनमें जो परमेश्वर व्याप्त है और अपने शरीर में जो अपना आत्मा और पर परमात्मा उनको जो गति नाम ज्ञान उस को समाधि से सम्यक देखले जो दुष्ट लोगों को देखने

में कभी नहीं आती ॥ ४६ ॥ सम्यक्दर्शनसम्पन्नःकर्मभिर्ननिबध्यते । दर्शनेनविहीनस्तु संसारंप्रतिपद्यते ॥ ४७ ॥ स० जब सन्यासी सम्यक ज्ञान से सम्पन्न होता है तब कर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ज्ञान से हीन सन्यासी है सो मोक्ष को तो नहीं प्राप्त होता किन्तु संसार ही में गिर पड़ता है ॥४७॥ अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैवकर्मभिः । तपसश्चरणैश्चोग्रैःसाधयन्तीहतत्पदम् ॥४८॥ स० वैर इन्द्रियों से विषयों का असंग वैदिक कर्म का करना अत्यन्त उग्र तप इन्हों से मोक्ष पद को सिद्ध लोग प्राप्त होते हैं अन्यथा नहीं ॥४८॥ अस्थिस्थूणंस्नायुयुतमांसशोणितलेपनम् । चर्मावनद्धंदुर्गन्धिपूर्णंमूत्रपुरीषयोः ॥४९॥ स० जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यंचभूतावासमिमंत्यजेत् ॥५०॥ स० हड्डि जिस का खंभा है नाड़ियों से बांधा भया मांस, और रुधिर का ऊपर लेपन चाम से ढपा हुआ दुर्गन्ध मूत और विष्ठा से पूर्ण ॥४९॥ जरा और शोक से युक्त रोग का घरक्षुधातृषादिक पीड़ाओं से नित्य आतुर और नित्य ही रजस्वल अर्थात् जैसी रजस्वला स्त्री नित्य जिसकी स्थिति नहीं और सब भूतों का निवास ऐसा जो यह देह इसको सन्यासी योगाभ्यास से छोड़ दे ५०॥ नदीकूलंयथावृक्षोवृक्षंवाशकुनिर्यथा । तथात्यजन्निमंदेहंकृच्छाद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥५१॥ स० जैसे वृक्ष जब नदीके तट से जलमें गिर के चला जाय वैसे ही समाधियोग से इसको छोड़े तब बड़ा भारी जन्म मरण रूप संसार के सब दुःखसे छूटके मुक्त हो जाय ॥५१॥ प्रियेषुस्वेषुसुकृतमप्रियेषुचदुष्कृतम् । विसृज्य

ध्यानयोगेनब्रह्माभ्येति परंपदम् ॥५२॥ स० जितने अपनी सेवा करने वाले उनमें ध्यान योग से सब पुण्य को छोड़ दे और दुःख देने वाले पुरुषों में सब पापों को छोडदे इससे पाप पुण्य रहित जब शुद्ध होता है तब सनातन परमोत्कृष्ट ब्रह्म उसको प्राप्त होता है फिर कभी दुःख सागरमें नहीं आता ॥५२॥ यदा भावेन भवतिसर्वभावेषुनिस्पृहः। तदा सुखमवाप्नोतिप्रेत्य चेहचशाश्वतम् ॥५३॥ स० जब सबप्रकार से सन्यासी का अन्तःकरण और आत्मा शुद्ध हो जाता है, उसका यह लक्षण है कि किसी पदार्थ में मोह नहींहोता तब वह पुरुष जीता भया और मृत्यु हो के निरन्तर ब्रह्म सुख उसको प्राप्त होता है अन्यथा नहीं ॥५३॥ अनेनविधिनासर्वांस्त्यक्त्वा संगानशनैः शनैःसर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तोब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥५४॥ स०इस विधि से जितने देहादिक अनित्य पदार्थ हैं इनको धीरे२ छोड़ और हर्ष, शोक, सुख, दुःख, शीत, उष्ण,रागद्वेष, जन्म मरणादिक सब द्वन्द्वों से छूट के जीता भया अथवा शरीर छोड़ के ब्रह्म ही में सदा रहता है फिर दुःख सागर में कभी नहीं गिरता क्योंकि पूर्व सब दुःखों को भोग से अनुभव किया है फिर बड़े भाग्य और अत्यन्त परीश्रम से परमेश्वर की प्राप्ति भई क्या वह मूर्ख है कि परमानन्द को छोड़ के फिर दुःख में गिरै कभी न गिरेगा ॥५४॥ ध्यानिकंसर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम्। नह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते ॥ ५५ ॥ स० सन्यास का यही मार्ग है कि नित्य ध्यानावस्थित होके एकान्त में सब पदार्थों का यथावत ज्ञान करना सो इस प्रकरण में सब ध्यान

नाममात्र से कह दिया परन्तु इसका यथावत विधान पातञ्जलदर्शन में लिखा है वहां सब देख लेवैं अन्यथा सिद्ध कभी न होगा क्योंकि प्राणायामादिक अध्यात्म विद्या जो कोई नहीं जानता उसको सन्यास ग्रहण का कुछ फल नहीं होता उस का सन्यासग्रहण ही व्यर्थ है ॥५५॥ अधियज्ञंब्रह्म जपेदधिदैविकमेवच । आध्यात्मिकञ्चसततंवेदान्ताभिहितंचयत् ॥५६॥ म० अधियज्ञ ब्रह्मजो ओंकार उसकाजप उसका अर्थ जो परमेश्वर उसमें नित्यचित्त लगावै और अधिदैविक इन्द्रियां और अन्तःकरण उसके दिशादिक देवता श्रोत्रादिकों के उनकाजो परस्पर सम्बन्ध उसको योगसे साक्षात्करै और अध्यात्मिक जीवात्मा और परमात्मा का यथावतज्ञान और प्राणादिकों का निग्रह इसको यथावत करै तब उस पुरुषका मोक्ष होसका है अन्यथा नहीं ॥५६॥ एषधर्मोऽनुशिष्टो वोयतीनांनियतात्मनाम् ।वेदसन्यासिकानांतुकर्मयोगंनिबोधत ॥५७॥ म० मुख्यसन्यासीनियतात्मा नाम जिनका आत्मास्थिर शुद्धहो गयाहै उन का धर्म ऋषि लोग से मनु जी कहते हैं मैंने कह दिया औरजो वेद सन्यासिक अर्थात् गौण सन्यासी उसका कर्मयोग मुझसे आप सुन लेवैं ॥५७॥ ब्रह्मचारीगृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिस्तथा । एतेगृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥५८॥म० ब्रह्मचारीगृहस्थवानप्रस्थ और सन्यासी येचारों गृहस्थाश्रम से उत्पन्न होते हैं पृथक २ क्योंकि गृहाश्रमन होय तो मनुष्य की उत्पत्ति ही न होय फिर ब्रह्मचर्यादिक आश्रम कभी न होंगे इससे उत्पत्ति तथा सब आश्रमों का अन्नवस्त्र स्थान और धनादिक दानों से

गृहस्थ लोग ही पालन करते हैं इन दो बातों में गृहस्थ ही मुख्य है विद्या ग्रहण में ब्रह्मचारी तप में वानप्रस्थविचारयोग और ज्ञान में सन्यासी श्रेष्ठ हैं ॥५८॥ सर्वेपिक्रमशस्त्वेतेयथा शास्त्रंनिषेविता। यथोक्तकारिणंविप्रंनयन्तिपरमाङ्गतिम् ॥५६॥ भ० सब आश्रमी यथावत् शास्त्रोक्तक्रम जो धर्माचरण उससे चलने वाले पुरुषों को वे आश्रमों के जितने व्यवहार श्रेष्ठ हैं उन से सब आश्रमी लोग मोक्ष पा सकते हैं परन्तु बाहर देख ने मात्र भेद रहेगा उनका भीतर व्यवहार सन्यासवत एक ही होगा ॥५६॥ चतुर्भिरपिचैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः। दशलक्षण कोधर्मः सेवितव्यःप्रयत्नतः ॥६०॥ भ० ब्रह्मचारी आदिक सब आश्रमी लक्षण है जिस धर्म के उस धर्म का नित्य सेवन करे वे लक्षण ये हैं ॥६०॥ धृतिःक्षमादमोऽस्तेयंशौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधोदशकंधर्मलक्षणम् ॥६१॥ भ० धर्म है नाम न्यायकान्यायहै नाम पक्षपातका छोड़ना उसका पहिला लक्षण अहिंसा किसी से वैर न करना दूसरा लक्षण धृति कि अधर्म से चक्रवर्ती राज्य भी मिलता होय तो भी धर्म को छोड़ के चक्रवर्ती राज्य का ग्रहण न करना तीसरा लक्षण क्षमा कोई स्तुतिवानिन्दा अथवा वैर करै तो भी सबको सहले परन्तु धर्म को न छोड़ै तथा सुख दुःखादिक भी सब सहले परन्तु अधर्म कभी न करै दमनामचित्तसे अधर्म करने की इच्छा न करै इसका नामहै दम अस्तेय अर्थात चोरी का त्याग किसी का पदार्थ आज्ञा के विना लेलेना इस का नाम चोरी है इस का जो सदा त्याग उसका नाम है अस्तेय शौच नाम पवित्र

ता सदा शरीर वस्त्रस्थान अन्नपात्र और जल तथा घृतादिक शुद्ध देशमें निवास रागद्वेषादिकका त्याग इसका नाम शौचहै इन्द्रिय निग्रह श्रोत्रादिक इन्द्रिय वे अधर्म में कभी न जावैं और इन्द्रियों को सदा धर्ममें स्थिर रक्खैं तथा पूर्वोक्त जितेन्द्रियता का करना इसका नाम इन्द्रिय निग्रह है शत्य सास्त्र पठन, सत्पुरुषों का संगाभ्यास सुविचार एकान्त सेवन परमेश्वर में विश्वास और परमेश्वर की प्रार्थना स्तुति और उपासना शील संतोष का धारण इनसे सदा बुद्धिवृद्धिकरनी इसका नाम धी है विद्या नाम पृथिवीसे लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान होना जो जैसा पदार्थ है उसको वैसा ही जानना उसका नाम विद्या है सत्य सदा भाषण करना पूर्वोक्त नियम से अक्रोध नाम क्रोध काम लोभ मोह शोक भयादिकों का त्याग उसका नाम क्रोध का त्याग है इनने संक्षेपसे धर्म के ग्यारह लक्षण लिख दिये परन्तु वेदादिक सत्य शास्त्रों में धर्म इत्यादिक सहस्रों लक्षण लिखे हैं जिसकी इच्छा होय उन शास्त्रों में देख लेवे अब इसके आगे अधर्म के लक्षण लिखे जाते हैं अधर्म नाम अन्याय का अन्याय नाम पक्षपात का न छोड़ना इसके भी एकादश लक्षण हैं पहिला लक्षण अहिंसा अर्थात् वैर बुद्धि का करना ॥६२॥ परद्रव्येष्वभिज्ञानं मनसा निष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्चत्रिविधंकर्ममानसम् ॥ ६२ ॥ म० पारुष्यमनृतंचैवपैशून्यमपिसर्वशः। असंबद्धप्रलापश्चवाङ्मयंस्याच्चतुर्विधम् ॥ ६३ ॥ म० अदत्तानामुपादानंहिंसाचैवाविधानतः। परदारोपसेवा च शारीरंत्रिविधंस्मृतम् ॥ ६४ ॥

म० परद्रव्य हरण करने की छल कपट और अन्याय से इच्छा यह दूसरा लक्षण अधर्म का है और तीसरा लक्षण पर का अनिष्टचिन्तन अन्य जीवोंको दुःख देना अपना सुखचाहना चौथा वितथाभिनिवेश अर्थात मिथ्यानिश्चय जो जैसा पदार्थ है उसको वैसा न जानना किन्तु विपरीत ही जानना जैसे कि विद्याको अविद्या और अविद्या को विद्या जानना सत्य अचौर श्रेष्ठ साधु इनको असत्य चौर अश्रेष्ठ असाधु जानना और पाषाणादिक मूर्त्ति और उनके पूजने से देव बुद्धि और मुक्ति का होना इत्यादिक मिथ्या निश्चय से जान लेना ये तीन मन से अधर्म के लक्षण उत्पन्न होते हैं पारुष्य नाम कठोर बचन बोलना जैसे कि आगच्छ काण इत्यादिक इसका नाम पारुष्य है मिथ्या भाषण नाम असत्य का बोलना देखने सुनने और हृदय से विरुद्ध बोलना उसका नाम असत्य भाषण है पैशून्य नाम चुगली खाना जैसे कि किसी ने धन देने को कहा वा दिया उससे राजा के वा अन्य के समीप जाके उसकी कार्य की हानि करनी और उनके सामने उसकी निन्दा करनी अर्थात् अन्य पुरुष की प्रतिष्ठा वा सुख देख के हृदय से बड़ा दुःखित होय फिर जहां तहां चुगली खाना फिरे इसका नाम पैशून्य है असंबद्धप्रलाप नाम पूर्वापर विरुद्ध भाषण और प्रतिज्ञा की हानि जैसे कि भागवतादिक और कौमुद्यादिक ग्रन्थों में पूर्वा पर विरुद्ध और मिथ्या भाषण हैं इसका नाम असंबद्धप्रलाप है अदत्ता-नामुपादानं विना आज्ञा से पर पदार्थ का ग्रहण करना अर्थात् चोरी विधान के विना हिंसा नाम पशुओं का हनन करना अपनी

इन्द्रियों की पुष्टि के वास्ते मांस का खाना और पशुओं का मारना यह राक्षस विधान है और यज्ञके वास्ते जो पशुओंकी हिंसा है सो विधि पूर्वक हनन है और जिन पशुओंसे संसार का उपकार होता उनपशुओंको कभी न मारना चाहिये क्यों- कि इनका मारने से आगे पशु दूध और घी की उत्पत्तिही मारी जाती है और इन्हींसे संसार का पालन होता है इससे पशुओं की स्त्रियों को तो कभी न मारना चाहिये औरजो इन पशुओं को मारना है इसका नाम अविधान से हिंसा है परदारोपसे- वन परस्त्री गमनअर्थात् वेश्या वा अन्य किसीकी स्त्रीके साथ गमन करना और अन्य पुरुषों के साथ स्त्री लोगों का गमन करना दोनों को तुल्य पाप है ये एकादश अधर्म के लक्षण कह दिये इनसे अन्य भी वेदादिक शास्त्रों में अभिमानादिक सहस्त्रों अधर्म के लक्षण लिखे हैं सो उनके विना पढ़ने और अधर्म न जानने से कभी ज्ञान नही हो सकता धर्म और अधर्म सब मनुष्यों के वास्ते एक ही है इनमें भेद नही जितने भेद हैं वे सब भ्रम ही हैं क्योंकि सबका ईश्वर एक ही है इससे उसकी आज्ञा भी सब के वास्ते एकरसही निश्चित होनी चाहिये किन्तु जो सत्य बात वाअसत्यबातहै सोतो सर्वत्र एकही होतीहै उसी कोजितनेबुद्धिमान लोग जानते हैं वे किसी जालवा बन्धनमें नही गिरते किन्तु धर्म ही करते हैं और अधर्म को छोड़ देते हैं यही बुद्धिमानों का मार्गहै और जितने संप्रदाय जाल, पाखण्ड हैं वे मूर्खों ही के हैं चारों आश्रम वाले पुरुष धर्मही का सेवन करें अधर्म का कभी नहीं ॥ दश लक्षणकंधर्मं मनुतिष्ठन्समाहितः ।

वेदान्तंविधिवच्छ्रुत्वासंन्यास्येदनृणोद्विजः ॥ ६५ ॥ भ० दशलक्षण और एक योग शास्त्र की रीति सेएवं ग्यारह लक्षण जिस धर्म के लक्षण कह दिये उस धर्म का अनुष्टान यथावत् करें समाहित चित्त होके वेदान्त शास्त्र को विधिवत् सुन के अनृण जो द्विज नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन विद्वान होके यथा क्रम से सन्यास ग्रहण करें ॥ ६५ ॥ सन्यस्यसर्वकर्माणि कर्म दोषानपानुदन् । नियतोवेदमभ्यस्यपुत्रैश्वर्येसुखंवसेत् ॥ ६६ भ० बाह्यजितने कर्म उनकात्याग करै और आभ्यन्तर योगाभ्यासादिक जितने कर्म उनकोयथावत करै इससे सब कर्म दोष अर्थात अन्तःकरण की मलिनता रागद्वेष इत्यादिकों को छोड़ दे निश्चित होके वेद का अभ्यास सदा करै और अपने पुत्रों से अन्न वस्त्र शरीर निर्वाह मात्र ले लेवै नगर के समीप एकान्त में जाके वास करें नित्यघर से भोजन आच्छादन करै हानि वा लाभ में कुछ दृष्टि न दे किसी का जन्म वा मरण होय घरमें तोभीकुछ उसमें मोह वा द्वेष न करै अपनी मुक्ति के साधनमें सदा तत्पर रहै ॥ ६६ ॥ एवंसन्यस्य कर्माणिस्वकार्यपरमोस्पृहः । सन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोतिपरमाङ्गतिम् ॥ ६७ ॥ भ० इस प्रकार से सब बाह्यकर्मों को छोड़दे स्वकार्य जो मुक्ति का होना अर्थात सब दुःखों से छूट के परमेश्वर को प्राप्त होना इस कार्य में तत्परहोय इससे भिन्नपदार्थ की इच्छा कभी न करै इस प्रकार के सन्यास से सब पापोंका नाशकरदे और परमगति जो मोक्ष उसको प्राप्त होजाय पूर्वपक्षसन्यासी धातुओं का स्पर्श करै वा नहीं उत्तर अवश्य धातुओं के स्पर्श

के विना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता क्योंकि भूआदिक धातुओं कास्पर्श भाषा वा संस्कृत बोलने में निश्चित ही करेगा और चिर्यादिक ७ सात धातुओं का भी स्पर्श निश्चित होगा और सुवर्णादिक जितनी धातु हैं उनका भी स्पर्श होगा पूर्व पक्ष ॥ यतीनाकांचनंदद्यात्तांबूलंब्रह्मचारिणम् । चौराणामभयंदद्यात्सनरोनरकंव्रजेत् ॥ इस श्लोक से यह आपका कथन विरुद्ध हुआ सन्यासी को सुवर्ण ब्रह्मचारी को तांबूल चोरों के अभय का देने वाला पुरुष नरक में जाता है ॥ उत्तरपक्ष ब्रह्मोवाच गृहीणांकाञ्चनं दद्याद्धनञ्चैवब्रह्मचारिणाम् चौराणांमानन्दद्यात्सनरोनरकम्व्रजेत् ॥ इससे आपका कहना विरुद्ध हुआ जैसा कि मेरा वचन उस श्लोक में यह कौन शास्त्र का श्लोक है अच्छा यह कौन शास्त्र का है यह तो पद्धति का है अच्छा तो यह हमारी पद्धति का है और ब्रह्मा का कहा है ऐसा श्लोक ब्रह्मा जी कभी न रचेंगे अच्छा तो यह मैंने रचा है जैसा कि यह किसी ने रच लिया है ये दोनों श्लोक अर्थ विचारने से मिथ्या ही हैं क्यों कि सन्यासी को काञ्चन नाम सुवर्ण के देने से इसने नरक लिखा इससे पूछना चाहिये कि चांदी हीरादिक रत्न भूमि राज्य और स्थान देने से तो नरक को नहीं जायगा और ब्रह्मचारी के विषय में भी जान लेना चोरके विषय में जो इसने लिखासो तो ठीक ही है और सब मिथ्या कथन है अच्छा तो श्लोक का ऐसा पाठ है ॥ यदिहस्तेधनन्दद्यात्तांबूलंब्रह्मचारिणाम् । अन्यत्पूर्ववत् यह भी मिथ्या श्लोक है क्योंकि यती के पास और आगे

वा वस्त्र में बांध के धन देने में तो पाप न होगा इससे ऐसी जो बात कहना सो मिथ्या ही है और जो धनमें दोष अथवा गुण है सो सर्वत्र तुल्य ही है जैसा उपद्रव धन के रखने में गृहस्थों को होता है इससे सन्यासी को धन के रखने में कुछ अधिक उपद्रव होगा क्यों कि गृहस्थोंके स्त्री पुत्र और भृत्यादिक रक्षा करने वाले हैं उसको कोई नहीं शरीर के निर्वाह मात्र धन रखले तब तो विरक्त को भी कुछ दोष नहीं और जो अधिक रक्खैगा सो तो मोक्ष पद को प्राप्त होके संसार में गिर पड़ेगा जैसे कि वैरागी, गुसांई बहुत से महन्त और मठधारी होगये हैं जैसे कि गृहस्थों से भी नीच हो जाते हैं और कोई धन को पाके अमीर हो जाता है इससे क्या आया कि पहले तो अधिकार के बिना सन्यास ग्रहण ही नहीं करना चाहिये जब तक विद्या ज्ञान, वैराग्य, और जितेन्द्रियता पूर्ण न हो जाय तब तक गृहाश्रम ही में रहना उचित है इससे धातु स्पर्श धन देने और लेने में दोष करते हैं यह बात मिथ्या ही है उनको कोई दे और विरक्त लेवै अथवा न लेवै अपनी २ इच्छा के आधीन व्यवहार हैं एक बात देखना चाहिये कि जो विद्वान् सो सब पदार्थों का गुण और दोष जानता है उसको देने वाला स्वर्ग जाय सो तो ठीक बात है परन्तु नरक को वह जाता है यह बात अत्यन्त नष्ट है वह विद्वान् जो सन्यासी सत्कार और उत्तम पदार्थों की प्राप्ति में हर्ष कभी न करेगा असत्कार और अनिष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति में शोक न करेगा सो देने लेने वाले दोनों धर्मात्मा और

विद्यावान् होंगे तब तो उभयत्र सुख हो सकता है और जो दोनों कुकर्मी हैं तो पाप ही है जैसे किचक्रांकितादिक वैरागी और गोकुलिये, गुसांई और नान्हक, कबिरादिकों के सम्प्रदायी लोग हैं और मूर्ख ब्रह्मचारी गृहस्थवानप्रस्थ और सन्यासी इनको देने में पाप ही होगा पुण्य कुछ नहीं क्यों कि पुण्य तो विद्वान् और धर्मात्माओं को देने में है अन्यथा नहीं चार वर्ण और चार आश्रम इनकी शिक्षा संक्षेप से लिख दिया और बिस्तार जो देखना चाहे सो वेदादिक सत्य शास्त्रोंमें देख लेवैं इससे आगे राजा और प्रजाके विषय में लिखा जायगा ॥

इति श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थ प्रकाशे सुभाषा विरचिते पंचमस्समुल्लासः संपूर्णः ॥ ५ ॥

अथराजाप्रजाधर्मान्व्याख्यास्यामः ॥ राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तोभवेन्नृपः । सम्भवश्चयथातस्य सिद्धिश्चपरमोयथा ॥ ॥ १ म० राजधर्मों को मनु भगवान कहते हैं कि मैं कहूंगा जिस प्रकार से राजा को बर्तमान करना चाहिये जिन गुणों से राजा होता है और जिन कर्मों के करने से परम सिद्धि होती है कि राज्य करै और सद्गति भी उस की होय इसको यथावत प्रतिपादन आगे २ किया

जायगा ॥ १ ॥ ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि सर्वस्यास्ययथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम् ॥२॥ भ० जैसा ब्राह्मणों का संस्कार होना है वैसा ही सब संस्कार यथाविधि जिस का होता है अर्थात सब विद्याओं में पूर्ण बल बुद्धि, पराक्रम, तेज, जितेन्द्रियता और शूरवीरता जिस मनुष्य में इस प्रकार के गुण होवैं और कोई मनुष्य उस देश में विद्यादिक गुणों में उस्से अधिक न होय ऐसे पुरुष को देश का राजा करना चाहिये तब वह देशआनन्दित और अत्यन्त सुखी होता है अन्यथा नहीं उस राजा का मुख्य यही धर्म है कि अपनी प्रजा की यथावत रक्षा करै ॥२॥ अराजके हिलोकेस्मिन्सर्वतोविद्रुतेभयात्। रक्षार्थमस्यसर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥३॥ भ० जिस देश में धर्मात्मा राजा विद्वान् नहीं होता उस देशमें भयादिक दोष संसार में बहुत हो जाते हैं इस वास्ते राजा को परमेश्वर ने उत्पन्न किया है कि यह सब जगत्की रक्षा करै और जगत में अधर्म नहोने पावै ॥३॥ इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्चवरुणस्यच चंद्रवित्तेशयोश्चैवमात्रा निर्हृत्यशाश्वतीः ॥४॥ भ० इन्द्रअनिल नाम वायु अर्क नाम सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र वित्तेश अर्थात कुवेर इन आठ राजाओं की नीति और गुणों से मनुष्य राजा होने का अधिकारी होता है तैसे ही इन्द्र का गुण शूरवीरता दाता का होना इन्द्र जैसा प्रजा की रक्षा सब प्रकार से करता है तैसेही राजा, वायु का गुण बल और दूत द्वारा सब प्रजा को वर्तमान का जानना जैसा कि वायु सबके हृदय में व्याप्त हो के धारण कर्ता है और सब

मर्मों को जानता है यम का गुण पक्षपात को छोड़ना सदा न्याय ही करना अन्याय कभी नहीं जैसा कि भरत राजा ने अपने पुत्र जो अन्याय कारी थे उनका स्वहस्तसे शिरच्छेदन कर दिया और सगर ने अपना एक जोपुत्र असमंजा थोड़े अपराध से बन में निकाल दिया यह बात महाभारत में बिस्तार से लिखी है कि अपने पुत्र का जब पक्षपात न किया तो और का कैसे करेंगे अर्क नाम सूर्य जैसा किसब पदार्थों को तुल्य प्रकाश करता है और अन्धकार का नाश कर देताहै ऐसे ही राजा सब राज्य में प्रजा के ऊपर तुल्य प्रकाश करै और अधर्म करने बाले जितने दुष्ट अन्धकार रूप उनका नाश करदे और जैसे अग्नि में प्राप्त भया पदार्थदग्ध हो जाताहै वैसे ही धर्म नीति से विरु करने वाले पुरुषों को दग्ध अर्थात यथावत दंडदेवै जैसा कि अग्नि सूखे वा गीले पदार्थों का भस्म कर देता है और मित्र वा शत्रु जबर अधर्म करैं तब २ कभी दंड के बिना न छोड़ै बरुण का गुण ऐसे पाश अर्थात बन्धनों से दुष्टों को बांधे कि फिर छूटने न पावैं औरकभी छूटैं तो ऐसा दुःख पावैं कि उस दुःख का विस्मरण कभी न होय जिस्से अधर्म में उनका चित्त कभी न जाय चन्द्रका गुण जैसे कि चन्द्रमा सबप्राणियों को तथा स्थावर औषधियोंको शीतल प्रकाश और पुष्टि से आनन्द युक्त कर देता है और राजा अपनी प्रजा के ऊपर कृपा दृष्टि रक्खै और प्रजाकी पुष्टि कि किसी प्रकार से प्रजा दुखित न होवै सदा प्रसन्नही रहै कुवेर का गुण जैसे कि कुवेर बड़ा धनाढ्य है धन की वृद्धि और

धनकी रक्षा यथावत करता है वैसे राजा भी धन की रक्षा सदा करै जिससे कि राजा के ऊपर ऋण वा दरिद्र कभी न होवै अपने वा प्रजा के ऊपर जब आपत्काल आवै तब उस धन से अपनी वा प्रजा की रक्षा कर लेवैं इन आठ गुणों से राजा होता है अन्यथा नहीं ॥४॥ सोऽग्निर्भवतिवायुश्चसोऽर्कः सोमःसधर्मराट्। सकुबेरःसवरुणःसमहेन्द्रः प्रभावतः॥५॥ भ० प्रभाव अर्थात गुणों ही से अग्नि, वायु, आदित्य, सोम, धर्म राज, कुबेर, वरुण और महेन्द्र नाम इन्द्र राजा हो इन गुणों से जब युक्त होता है तब वही राजा ये आठ नामवाला होता है ॥५॥ कार्यंसोऽवेक्ष्यशक्तिञ्चदेशकालौचतत्त्वतः। कुरुतेधर्म सिद्ध्यर्थंविश्वरूपंपुनःपुनः॥६॥ भ० सो राजा कार्य और शक्ति नाम सामर्थ्य देश और काल तत्त्व अर्थात यथावत इनको विचार के करै किस के वास्ते कि धर्म सिद्धि के वास्ते वारंवार विश्वरूप धारण करता है ॥ ६ ॥ यस्य प्रसादे पद्मा श्री विजयश्चपराक्रमे। मृत्युश्चवसतिक्रोधे सर्वतेजोमयोहिसः ॥ ७ ॥ भ० जिसकी कृपा से दरिद्र जो है सो धनाढ्य हो जाय और अकृपा से दुष्ट दरिद्र हो जाय और पराक्रममें निश्चय करके विजय होय इससे राजा सर्व तेजोमय होता है और जिसके क्रोध में दुष्टों का मृत्यु ही वास करता होय अर्थात सब प्रकारके गुण बल पराक्रम जिस में होवैं वही राजा हो सक्ता है अन्यथा नहीं ॥ ७ ॥ तस्माद्धर्मंयमिष्टेषुसव्यवस्येन्नराधिपः। अनिष्टंचाप्यनिष्टेषुतधर्मं न विचालयेत् ॥ ८ ॥ भ० जो राजा धर्म को इष्ट अर्थात धर्मात्मा

और विद्वानों के ऊपर निश्चित करै तथा अनिष्ट अर्थात मूर्ख और दुष्टों के बीच में दण्ड की व्यवस्था करै उस धर्म को कोई मनुष्य न छोड़ै किन्तु सब लोग करैं जिस्से धर्मात्मा और विद्वानों की बढ़ती होय और मूर्ख और दुष्टों की घटी इस हेतु अवश्य इस व्यवस्था को करै ॥ ८ ॥ तस्यार्थसर्वभूतानांगोप्ता-रंधर्ममात्मजम्। ब्रह्मतेजोमयंदंडमसृजत्पूर्वमीश्वरः ॥९॥ भ० उस राजा के लिये दण्ड को परमेश्वर ने पूर्व ही से उत्पन्न किया वह दण्ड कैसा है कि ब्रह्मतेजोमयब्रह्मपरमेश्वर और विद्या का नाम है उनका जो तेज अर्थात सत्यव्यवस्था वही दण्ड कहलाता है फिर वह दण्ड कैसा है कि परमेश्वर ही से उत्पन्न भया क्यों कि परमेश्वर न्यायकारी है उसकी आज्ञा न्याय ही करने की है उसी का नाम दण्ड है और जो न्याय है कि पक्षपात का छोड़ना सोई धर्म है जो धर्म है सोई सब भूतों की रक्षा करने वाला है अन्य कोई नहीं और वह दण्ड राजा के आधीन रक्खा गया है क्यों कि वही राजा समर्थ है इस दण्ड के धारण करने में अन्य कोई नहीं जो कोई राजा कहै कि धर्मकी बात हम नहीं सुनते तो उसका कहना मिथ्या है क्यों कि धर्म न करेगा तो राजा और धर्म का स्थापन तथा पालन भी न करेगा वह राजा ही नहीं राजा तो वह होता है कि धर्म का यथावत् स्थापन और अधर्म का खंडन करै यही राजा का मुख्य पुरुषार्थ है ॥ ९ ॥ तस्यसर्वाणिभूतानिस्थावरा-णिचराणिच। भयाद्भोगायकल्पन्तेस्वधर्मान्नचलन्तिच ॥ १० ॥ भ० उस दंड के भय से ही जितने जड़ और चेतन भूत हैं दंड

के नियम से वे सब भोग में आते हैं अपना २ जो पुरुषार्थ अर्थात अधिकार उसमें यथावत चलते हैं अपने स्वधर्म अर्थात जो २ जिसका व्यवहार करने का अधिकार उससे भिन्न मार्गमें कभी नहीं चलते॥१७॥ तंदेशकालौशक्तिंचविद्यांचावेक्ष्यतत्वतः यथार्हतःसंप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्त्तिषु ॥ १ म० उस दण्ड को अन्याय करने वाले जो मनुष्य हैं उनमें यथावत स्थापन करें अर्थात् यथावत दण्ड देवै परन्तु देश काल सामर्थ्य और विद्या इन से यथावत् तत्वका विचार करके दण्ड दे क्योंकि अदण्डय पुरुष अर्थात धर्मात्मा को कभी न दण्ड दिया जाय और अध र्मात्मा पुरुष दण्ड के बिना त्याग कभी न किया जाय ॥१९॥ सराजापुरुषोदण्डःसनेताशासिताचुसः। चतुर्णामाश्रमाणांच-धर्मस्यप्रतिभूःस्मृतः ॥ १२ ॥ राजा पुरुष नेता अर्थात व्यवस्था में सब जगतको चलाने वाला शासिता अर्थात यथावत शिक्षक दण्ड ही है किन्तु राजा और प्रजास्थ मनुष्य सब तुल्य ही हैं जैसा राजा मनुष्य है वैसा ही और सब मनुष्य हैं इस वास्ते मनुभगवानूने लिखा कि दण्ड ही राजा दण्ड ही पुरुष; दण्ड ही नेता और दण्ड ही शासिता, जिसमें यथावत विद्यादिक गुण और दण्ड की व्यवस्था होय सोई राजा है, अन्य कोई नहीं और ब्रह्मचर्याश्रमादिक चार आश्रम और चारों वर्णों का यथावत स्थापन तथा उनका रचन करने वाला दण्ड ही है किन्तु प्रतिभूः अर्थात जामिन है इसके बिना धर्म या वर्णाश्रम व्यवस्था नष्ट हो जाती हैं कभी नहीं चलती उस व्यवस्था के बिना जितने उत्तम व्यवहारहैं वे तो नष्ट ही होजाते हैं किन्तु

भ्रष्ट व्यवहार भी होजाते हैं जैसे कि आज काल आर्य्यावर्त्त देश की व्यवस्था है ॥ १२ ॥ दण्डःशास्तिप्रजाःसर्वादण्डएवाभिरक्षति । दण्डःसुप्तेषुजागर्त्तिदण्डंधर्मंविदुर्बुधाः ॥ १३ ॥ भ० सब प्रजा को दण्ड ही शिक्षा करता है और दंड ही सब जगत्का रक्षक है जब प्राणी सो जाते हैं तब प्राय मृतक होजाते हैं परन्तु दंड ही नही सोता इस्से सब आनन्द से सोके उठते हैं उठके अपना २ काम काज और आनन्द करते हैं और जो दंड सोजाय तो जगत्का नाश ही हो जाय इस्से जो दंड है सोई धर्म है ऐसा बुद्धिमान लोगों का दृढ़ निश्चय है ॥ १३ ॥ समीक्ष्यसधृतस्सम्यक्सर्वाञ्जयतिप्रजाः । असमीक्ष्यप्रणीतस्तुविनाशयतिसर्वतः । १४ । भ० उस दण्ड को सम्यक् विचार कर के जो धारण करता है वह राजा सब प्रजा को प्रसन्न कर देता है और जो बिचार के बिना दण्ड देता है वा आलस्य, मूर्खता से दंड को छोड़ देता है वही राजा सब जगत्का नाश करने वाला होता है राजृदीप्तौ इस धातु से राजा शब्द सिद्ध होता है दीप्ति नाम प्रकाश का है जो सब धर्मों का प्रकाश और अधर्म मात्रका नाश करै उस का नाम राजा है और जो ऐसा नहीं है उसका नाम राजा तो नही रखना चाहिए किन्तु उसका नाम डाकू और अन्धकार रखना चाहिये ॥ १४ ॥ दुष्येयुःसर्ववर्णाश्चभिद्येरन्सर्वसेतवः । सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दंडस्यविभ्रमात् ॥ १५ ॥ भ० दंड के नाश से सब वर्णाश्रम नष्ट होजाते हैं तथा धर्म की जितनी मर्यादा वे भी सब नष्ट होजाती हैं और

सब लोगों में प्रकोप अर्थात अधर्म पूर्ण हो जाता है इससे दंड को कभी न छोड़ना चाहिए ॥ १५ ॥ यत्रश्याम लोहिताक्षो दंड-श्चरतिपापहा । प्रजास्तत्रनमुह्यन्तिनेताचेत्साधुपश्यति ॥ १६ ॥ भ० जिस देश में श्याम वर्ण रक्त जिसके नेत्र ऐसा जो पाप नाश करने वाला दंड विचरताहै उस देशमें प्रजा मोह वा दुःख को नही प्राप्त होती परन्तु दंड का धारण करने वाला राजा विद्वान और धर्मात्मा होय तो अन्यथा नहीं कैसा राजा होय कि ॥ १६ ॥ तस्याहुःसंप्रणेतारंराजानंसत्यवादिनम् । समीक्ष्य-य कारिणंप्राज्ञंधर्मकामार्थकोविदम् ॥ १७ ॥ भ० इस दंड का सम्यक् चलाने वाला सत्यवादी कि कभी मिथ्या न बोलै और जो कुछ करै सो विचार ही से सत्य ही करै असत्य कभी नहीं प्राज्ञ अर्थात पूर्ण विद्या और पूर्ण बुद्धि जिसको होय धर्म अर्थ और काम इनको यथावत जानता होय उसको दंड चलाने का अधिकारी कहते हैं और किसी को नहीं ॥ १७ ॥ तंराजाप्रणय-नसम्यक्त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते । कामात्माविषमःक्षुद्रोदंडेनैवनिह-न्यते ॥ १८ ॥ भ० उस दंड अर्थात धर्म को राजा यथावत निश्चयसे करेगा तो धर्म अर्थ और काम ये तीन राजाके सिद्ध होजायगे और जो कामात्मा अर्थात वेश्या, पर स्त्री लौंडे इ-त्यादिकों के साथ फसा रहता है तथा नम्रता, शील, नीति, विद्या, धैर्य, बुद्धि, बल, पराक्रम तथा सत्पुरुषों का संग इन को छोड़ के विषम नाम कुटिल अर्थात अभिमान ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य और क्रोध इन से युक्त होके कर्म विपरीत करने से वह राजा विषम पुरुष हो जाता है नीच बुद्धि नीच संग नीच कर्म

और नीच स्वभाव इत्यादिक दोषोंसे पुरुष जब युक्त होगा तब वह पुरुष नाम राजा क्षुद्र होजायगा जब धर्म नीति से दंड यथावत् न कर सकेगा तब उसी के ऊपर दंड आके गिरेगा सो दंड से हत हो जायगा जैसे कि आज काल आर्यावर्त्त देश के राजाओं की दशा नित्य देखने में आती है ॥१८॥ दंडो हिसुमहत्तेजो दुर्द्धरश्चाकृतात्मभिः। धर्माद्विचलितंहन्तिनृपमेवसबान्धवम् ॥ १९ ॥ ततोदुर्गं चराष्ट्रञ्चलोकंचसचराचरम्। अन्तरीक्षगतांश्चैवमुनीनदेवांश्चपीडयेत् ॥ २० ॥ भ० दंड जो है सो बड़ा भारी तेज है उसका धारण करना मूर्ख लोगों को कठिन है जब वेदंड अर्थात् धर्मसे विचल जाते हैं तब कुटुम्ब सहित राजाको वह दंड नाश कर देता है ॥१९॥ तदनन्तर दुर्ग जो किला राष्ट्र नाम राज्य चर अचर लोग अन्तरिक्षमें रहने वाले अर्थात् सूर्य चन्द्रादिक लोकों में रहने वाले अथवा मुनि नाम विचार करने वाले देव नामपूर्ण विद्या वाले उनका नाश और अत्यन्त पीड़ा करता है इससे क्या आया कि पक्षपात को छोड़ के यथावत दंड करनाचाहिये तभी सुख कीउन्नति होगी और जो दंड को यथावत न्यायसेन करेंगे तो उनका ही नाश हो जायगा ॥ २० ॥ सोऽसहायेनमूढेनलुब्धेनाकृतबुद्धिना। नशक्योन्यायतोनेतुंसक्तेनविषयेषुच ।२१॥ भ० सो श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से रहित मूढ़ नाम मूर्ख, लुब्ध नाम बड़ा लोभी, अकृतबुद्धि जिसको बुद्धि नहीं है सो राजा मूर्ख है वह न्याय से दंड कभी न दे सकेगा क्योंकि जो जितेन्द्रिय

होता है वही राज्य करनेका अधिकारी होता है और जो विषयासक्त तथा मूढ़ सो कभी दंड देने वा राज्य करने को समर्थ नहीं होता ॥ २१ ॥ राजा कैसा होना चाहिये कि ॥ शुचिनासत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा । प्रणेतुं शक्यतेदण्डःसुसहायेनधीमता ॥ २२ ॥ भ० शुचि जो बाहर भीतर अत्यन्त पवित्र होय सत्य धर्म से सदा जिस का सन्धान रहे तथा जैसी शास्त्र में परमेश्वर की आज्ञा है वैसा ही करै सुसहाय अर्थात सत्पुरुषों का सङ्ग जो करता है और बड़ा बुद्धिमान वही राजा दण्ड व्यवस्था करने को समर्थ होताहै अन्यथा नहीं ॥२२॥ वृद्धांश्चनित्यंसेवेत्विप्रान्वेदविदःशुचीन । वृद्धसेवीहिसततंरक्षोभिरपिपूज्यते ॥ २३ ॥ भ० जितने ज्ञान वृद्ध विद्या वृद्ध तपो वृद्ध, पवित्र विचक्षण वेदवित्त धर्मात्माधैर्यवान होवैं उनकी ही राजा नित्य सेवा और आर सङ्ग करै जो इन पुरुषों का राजा संग करैगा तो उसका राक्षस अर्थात दुष्ट पुरुष भी सत्कार और आज्ञा करैंगे । २३ । पश्चाऽधिगच्छेद्विनयविनीतात्माऽपिनित्यशः । विनीतात्माहिनृपतिर्नविनश्यतिकर्हिचित् ॥ २४ ॥ जो राजा विनीतात्मा होवे अर्थात सब श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न भी होवै तो भी उत्तम पुरुषों से विनय को ग्रहण करै क्यों कि जो अभिमानादिक दोषों से रहित और विद्या नम्रतादिक गुणोंसे युक्त होता है उस राजा का कभी नाश नहीं होता ॥ २४ ॥ त्रैविद्येभ्यस्त्रयींविद्यांदण्डनीतिंचशाश्वतीम् । आन्वीक्षिकींचात्मविद्यांवार्त्तारम्भांश्चलोकतः ॥ २५ ॥ भ० तीनों वेदों को जो पाठ स्वरथो अर्थ

सहित पढ़ा होवै उससे तीन वेदों को राजा यथावत पढ़ै दंड नीति जो कि सनातन राजा धर्म शिक्षा अर्थात् दंड की जो व्यवस्था है इसको भी पढ़ै तथा आन्वीक्षिकी जो न्याय शास्त्र, आत्म विद्या और श्रेष्ठ मनुष्यों से कहने पूंछने और निश्चय करने के वास्ते वार्त्ताओं का आरंभ इनको राजा यथावत पढ़ै और पढ़ के यथावत करै ॥ २५ ॥ इन्द्रियाणां-जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् । जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे-स्थापयितुं प्रजाः ॥ २६ ॥ भा० राजा रात दिन इन्द्रियों के जीतने में नित्य ही प्रयत्न करै क्योंकि जो जितेन्द्रिय राजा होता है वही प्रजा को वश में स्थापन करने में समर्थ होता है और जो अजितेन्द्रिय अर्थात कामी सो तो आपही नष्ट भ्रष्ट हो जाता है फिर प्रजा को वश कैसे करैगा इससे क्या आया कि जो शरीर, मन और इन्द्रिय इनको वश में रखता है सो-ई राजा प्रजा को वश में करता है अन्यथा कभी प्रजा वश में राजा के नहीं होगी जब तक प्रजा वश में न होगी तब तक निश्चल राज्य कभी न होगा इससे जितेन्द्रिय होय उसको ही राजा करना चाहिये अन्य को नहीं ॥ २६ ॥ दशकामस-मुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च । व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ २७ ॥ भा० जो राजा कामी होता है उसमें दश दुष्ट व्यसन अवश्य होंगे और जो राजा क्रोधी होगा उसमें आठ दुष्ट व्यसन अवश्य होंगे उनको अत्यन्त प्रयत्न से छोड़ दे अन्यथा राजा भी राज्य सहित नष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥ फिर क्या होगा कि कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ।

वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैवतु ॥२८॥ भ० जो राजा कामसे उत्पन्न भयेजो दश दुष्ट व्यसन उनमें जब फस जायगा तब उसका अर्थ नाम द्रव्य और राज्यादिक सब पदार्थ तथा धर्म इनसे रहित हो जायगा अर्थात दरिद्र और पापी हो जायगा और क्रोध से उत्पन्न होते हैं जो आठ दुष्ट व्यसन उन में फस जाने से वह आप राजा ही मर जाता है इस्से इन अठारह दुष्ट व्यसनों को राजा छोड़ दे जो अपने कल्याण की इच्छा होवै कौन से १८ अठारह दुष्ट व्यसन हैं ॥ २८ ॥ मृगयाक्षोदिवास्वप्नःपरिवादः स्त्रियोमदः। तौर्यत्रिकंवृथाट्या-चकामजोदशकोगणः। २९। भ० मृगया नाम शिकार का खेलना अक्ष नाम फांसाओं से क्रीड़ा वा द्यूत का करना दिवास्वप्न दिवस में सोना परिवाद नाम वृथा वार्त्ता वा किसी की निन्दा करना स्त्री नाम वेश्या और परस्त्री गमन तो अत्यन्त भ्रष्ट है किन्तु अपनी जो विवाहित स्त्री उस्से भी काम से आसक्त होके अत्यन्त फस जाना वा स्वस्त्री में अत्यन्त वीर्य का नाश करना मद नाम भांग, गांजा, अफीम और मद्य इनका सेवन करना तौर्यत्रिकंनृत्य का देखना और करना वादित्रोंका बजाना व सुनना गान का सुनना वा कराना वृथाट्या नाम वृथा जहां तहां भ्रमण करना अथवा वृथा वार्त्ता वा हास्य करना यह काम से दश व्यसन समूह गण उत्पन्न होते हैं इसको प्रयत्न से राजा छोड़ दे इसको जो न छोड़ैगा तो धर्म और अर्थ अर्थात धन सहित राज्य नष्ट हो जायगा इसमें कुछ सन्देह नहीं क्रोध से आठ उत्पन्न जो

दुष्ट व्यसन वे ये हैं ॥ २९ ॥ पैशून्यं साहसंद्रोहईर्ष्यासूयार्थ दूषणम्। वाग्दण्डजंचपारुष्यंक्रोधजोपिगणोऽष्टकः ॥ ३० ॥ भ० पैशून्य नाम चुगली करना साहस नाम विचार के बिना अन्याय से पर पदार्थ का हरण कर लेना अभिमान वश युक्त होके द्रोह नाम सज्जनों से भी प्रीति का न करना ईर्ष्या नाम पर सुख न सहना असूया नाम गुणों में दोष और दोषों में गुणों का कहना अर्थ दूषण नाम अपने पदार्थों का वृथा नाश करना अथवा अभिमानसे दूसरेके कहे अर्थमें अनर्थ का लगाना वाग्दण्डज पारुष्य नाम बिना विचारे मुख से बोल देना अथवा कठोर वचन का कहना इसका नाम वाक् है पारुष्य बिना विचारे दण्ड का देना वा अपराध के बिना किसी को दण्ड देना अपराध के उपर भी पक्षपातसे मित्रादिकों को दण्ड का न देना यह क्रोध से आठ दुष्ट व्यसन युक्त गण उत्पन्न होता है इसको अत्यन्त प्रयत्न से राजा छोड़ दे अन्यथा अपने शरीर सहित शीघ्र ही राज्य का नाश हो जाता है इन दोनों गणों का जो मूल है सो यह है ॥ ३० ॥ द्वयोरप्येतयोर्मूलं सर्वेकवयोविदुः। तंयत्नेनजयेल्लोभंतज्जावेता वुभौगणौ ॥ ३१ ॥ भ० जिससे कामज और क्रोधज दोनों गण उत्पन्न होते हैं अर्थात् सबपाप औरसब अनर्थों का मूल लोभ ही है ऐसा सब विद्वान लोग जानतेहैं उस लोभ को प्रयत्न से राजा छोड़दे क्योंकि लोभ ही से दोनोंगण पूर्वोक्त कामज और क्रोधज उत्पन्न होते हैं इससे राजा और सज्जन लोग जो सब पापों का मूल उसी को छेदन कर देवें इसके छेदन से सब

अनर्थ और पाप नष्ट हो जायगे जैसे कि मूल छेदन से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ पानमक्षाः स्त्रियश्चैवमृगयाचयथाक्रमम्। एतत्कष्टतमंविद्याच्चतुष्कंकामजेगणे ॥ ३२ ॥ भ० पान नाम मद्यादिक नशा का करना अक्ष तथा स्त्री मृगया पूर्वोक्त सब जान लेना ये चार कामज गणमें अत्यन्त दुष्टहैं ऐसा राजा जानै ॥ ३२ ॥ दंडस्य पातनंचैववाक्पारुष्यार्थदूषणे। क्रोधजेपिगणेविद्यात्कष्टमेतत्त्रिकंसदा ॥ ३३ ॥ भ० दंडकानिपातन वाक्पारुष्य और अर्थ दूषण ये तीन क्रोध के गण में अत्यन्त दुष्ट हैं १८ अठारह मेंसे येतीन अत्यन्त दुष्ट हैं ॥ ३३ ॥ सप्तकस्यास्यवर्गस्यसर्वत्रैवानुषंगिणः। पूर्वंपूर्वं गुरुतरंविद्याद्व्यसनमात्मवान ॥ ३४ ॥ भ० चार काम के गण में और तीन क्रोध के गण में सर्वत्रये अनुसंगी हैं कि एक होवै तो दूसरा भी हो जाय इनसातों में पूर्व २ अत्यन्त दुष्ट हैं ऐसा विचारवानको जानना चाहिये जैसेकि अर्थ दूषणसे वाक्पारुष्य दुष्ट है वाक् पारुष्यसे दंडका निपातन दंडके निपातनसे शिकार शिकारसे स्त्रियोंका सेवन इससे अक्ष क्रीडा और सबसे मद्यादिक पान दुष्टहै ऐसा निश्चित सबसज्जनोंको जानना चाहिए ॥३४॥ व्यसनस्य चमृत्योश्चव्यसनंकष्टमुच्यते। व्यसन्यधोऽधो व्रजतिस्वर्यात्यव्यसनीमृतः ॥ ३५ ॥ भ० व्यसन और मृत्यु इनदोनों में जो व्यसन है सो मृत्यु से भी बुरा है क्योंकितो व्यसनी पुरुष है सो पापों में फस के नीचे २ गति को चला जाता है और जो व्यसन रहित पुरुष है सो मर जाय तोभी स्वर्ग अर्थात् सुख को प्राप्त होता है इससे जिसका बड़ा दुष्ट भाग्य होता है वही

दुष्ट व्यसन में फस जाता है और जिसका भाग्य अच्छा होता है वह दुष्ट व्यसनों से दूर रहता है ॥ ३५ ॥ मौलान् शास्त्रविदः शूरान्लब्धलक्ष्यान्कुलाद्गतान्। सचिवान् सप्तचाष्टौवाप्रकुर्वीतपरीक्षितान् । ॥ ३६ ॥ म० फिर राजा सात वा आठ पुरुषों को अपने पास रख लेवे कैसे होवें कि बड़े उदार सब शास्त्र के जानने वाले शूरवीर जिनोंने प्रमाणोंसे पदार्थ विद्या पढ़ लिया है श्रीमानों के उत्तम कुल में जिनका जन्म होय उनकी यथावत परीक्षा करके राजा देख ले क्योंकि राज्य के कार्य एक से कभी नहीं हो सकते इससे जितने पुरुषोंसे अपना काम हो सके उतने पुरुषों की परीक्षा कर २ के रख ले उनसे यथावत काम लेवें परंतु विना परीक्षा मूर्खको कभी न रक्खे और विना उन सभा सदों की सम्मति से किसी छोटे कामको भी राजा स्वतन्त्र होके न करे और जो स्वाधीन होके कुकर्मी राजा करे तो वे सभासद् पुरुष राजा को दंड दें फिर दंड से भी न माने तो उसको निकाल के दूसरा राजा उसी वक्त बैठादें ॥ ३६ ॥ सेनापत्यं चराज्यंचदंडनेतृत्वमेवच। सर्वलोकाधिपत्यंच वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ३७ ॥ म० सेनापति राज्य करने के योग्य राजा दण्ड देने वाला सर्व लोकाधिपति अर्थात् राजा के नीचे मुख्य सर्वोपरि जिसका नाम दीवान कहते हैं ये चार अधिकार वेद और सब सत्य-शास्त्र इनमें पूर्ण विद्वान होवें उनही को देवें अन्य को नहीं क्योंकि ये चार अधिकार मुख्य हैं विना विद्वानों के ये चार अधिकार यथावत नहीं होते और जो मूर्ख काम, क्रोधादिक,

दोष युक्त इनको देने से येचार अधिकार नष्ट हो जायंगे इस वास्ते अत्यन्त परीक्षा करके चार पुरुष विद्वानों को चार अधिकार देना चाहिये जिससे कि विजय राज्य वृद्धि धर्म न्याय और सब व्यवहारों की यथावतव्यवस्था होय अन्यथा सब राज्य और ऐश्वर्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ३७ ॥ तेषामर्थेनियुञ्जीतशूरान्दक्षान्कुलोद्गतान् । शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥ ३८ ॥ स० उन अमात्यों के समीप राज्य कार्य करने के वास्ते राजा शूर चतुर, कुलीन पवित्र जो हैं वे उनको राजा रख देवे अमात्य उनसे सब राज्य कार्यों को सिद्ध करै उनमें से जितने शूर होवें उनको जहां २ शंका वा युद्ध वहां २ रख दे और जितने भीरु होंय उनको भीतर गृह के अधिकार में रक्खै जहां कि स्त्री लोग और कोश वहां डरने वालों को रक्खै और जहां शूरवीर लोगों का काम होय वहां शूरवीरों को रक्खै ॥ ३८ ॥ दूतंचैवप्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् । इङ्गिताकारचेष्टज्ञंशुचिन्दक्षंकुलोद्गतम् ॥ ३९ ॥ स० फिर राजा दूत को रक्खै वह दूत कैसा होय कि सब शास्त्र विद्या से पूर्ण होय मनुष्य को हृदय की बात गमन शरीर की आकृति और चेष्टा इनसे जान लेना जो कि उसके हृदय में होय पवित्र चतुर और बड़े कुलका जो पुरुष होय ऐसे पुरुष को राजा दूत का अधिकार देवें ॥ ३९ ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित् । वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मीदूतोराज्ञःप्रशस्यते ॥ ४० ॥ स० फिर वैसे को दूत करै कि राजा में बड़ी प्रीति जिसकी होय दक्ष नाम बड़ा चतुर एक बेर कही बात को कभी न भूलै

और जैसा देश जैसा काल वैसी बात को जानै वपुष्मान्नाम रूप बल और शूरवीरता जिसमें होय वीत भी नाम किसी से जिसको भयन होय वाग्मी बड़ा वक्ता धृष्ट और प्रगल्भ होवै ऐसा जो दूत राजा का होय सोश्रेष्ठ होताहै ॥ ४० ॥ अमात्ये-दण्ड आयत्तोदण्डेवैनयिकी क्रिया । नृपतौकोशराष्ट्रे चदूते-सन्धिविपर्ययौ ॥ ४१ ॥ भ० दण्ड देनेका जितना व्यवहार वह सर्वशास्त्रवित धर्मात्मा पुरुषों के आधीन रक्खे और दण्ड अन्यायसे न होने पावै किन्तु विनय पूर्वक ही होवे कोश और राज्य यह दोनों राजा के अधिकार में रहैं सन्धि नाम मिलाप विपर्य नाम विरोध येदोनों दूत के आधीन राजा रक्खै ॥ ४१॥ तस्मात्स्यादायुधसम्पन्नंधनधान्येनवाहनैः । ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रै र्यवसेनोदकेनच ॥ ४२ ॥ भ० तन्नामदुर्ग किला सब प्रकार के आयुध धन धान्य नाम अन्नवाहन सवारी ब्राह्मण विद्वान शिल्पी नाम कारीगर लोग नानाप्रकार के यन्त्र तथा घास आदिक चारा और उदक नाम जल इनसेपूर्ण सदा रहै कभी किसी बात को न होय ॥ ४२ ॥ तस्यमध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः । गुप्तं सर्वर्तुकंशुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ४३॥ भ० उस श्रेष्ठ देश में सब प्रकार से श्रेष्ठ अपना घर राजा रहने को बनावै सब प्रकार से उस स्थान की रक्षा करै और सब ऋतुओं में जिस घर में सुख होवै शुभ्रनामसुफेद वह घर होवै चारोंओर घर के जल औरश्रेष्ठ वृक्ष हरे २ पेड़ रहैं उसमें आप रहै सब राज्यको देखै भ्रमण करै और सब के ऊपर सदादृष्टि रक्खै जिससे कोईअन्याय न करनेपावै ॥४३॥

तदध्यास्योद्वहेद्भार्यांसवर्णां लक्षणान्विताम् । कुलेमहतिसम्भूतांहृद्यांरूपगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥ भा० उस स्थानमें रह के अपने वर्ण की सब श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त और बड़े कुल में उत्पन्न भई अत्यन्त हृदय को प्रसन्न करने वाली उत्तम जिसका रूप और सब विद्यादिक श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न स्त्री के साथ राजा विवाह करै देखना चाहिये कि ब्रह्मचर्याश्रम से सब विद्या को पढ़ना सब राज्य कार्य का प्रबन्ध करना और सब व्यवहारों को यथावत जानना पीछे राजाकाविवाह मनुभगवानने लिखा इससे क्या आया कि४८वा४४वा४० चालीस वा३६सवर्षमें राजा को विवाह करना उचित है इससे पहिले कभी नहीं और स्त्री भी २० वर्ष से ऊपर २४ वर्ष तक की होना चाहिये तब राजा कासन्तान सर्वोत्तम होय अन्यथा नष्ट भ्रष्ट ही होजाता है ॥४४ पुरोहितंच कुर्वीतवृणुयादेवचर्त्विजम् । तेऽस्यगृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानिच॥४५॥ भा० सब शास्त्रोंमें विशारदनाम निपुण धर्मात्मा जितेन्द्रिय और सत्यवादी जो कि पूर्वोक्तलक्षण वाला कहा उसको पुरोहित करै और ऋत्विज भी वैसे ही को करै व राजा के जितने अग्नि होत्रादिक गृह्यकर्म औरइष्टियां- उनको नित्य करै ॥ ४५ ॥ यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः धर्मार्थंचैवविप्रेभ्योदद्याद्भोगान्धनानिच ॥ ४६ ॥ भा०अग्निष्टोम से लेके जितनेअश्वमेध तक यज्ञ हैं उनमें से कोई यज्ञ कोराजा करै सो पूर्ण क्रिया और पूर्ण दक्षिणा से करै, जितने विद्वान और धर्मात्मा होवैं उनको नाना प्रकार के भोजन करावै और

दक्षिणार्भी देवै ।४६॥सांवत्सरिकमाप्तैश्चराष्ट्रादाहारयेद्बलिम् । स्याच्चाम्नायपरोलोकेवर्तेतपितृवन्नृषु ॥ ४७ ॥ म०श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा वर्ष २ के प्रजा से करों को राजा लिया करै केवल वेद विदित और धर्म शास्त्रोक्त आचारमें तत्पर होवै जितनी प्रजा में कन्या युवती औरवृद्ध होवैं इनकोकन्या भगिनी और माता की नांई राजा जानै जितने बालक युवा और वृद्ध उनको पुत्र भाई और पिताकी नांई राजा जानै अधिक क्या कि सब प्रजा को पुत्र की नांई जानै और अपने पिताकी नांई वर्तमान करै॥४७॥ अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्रतत्रविपश्चितः ।तेऽस्यसर्वाण्यवेक्षे-रन्नृणांकार्याणिकुर्वताम् ॥ ४८ ॥ म० जहां २ जैसा २ काम होय वहां २ नाना प्रकार के मन्त्रियों को रक्खेवै सब प्रजा के सुख के वास्ते सब कार्योंको देखतेरहैं और व्यवस्था करते रहैं जिस्से किअधर्म न होने पावै परन्तु वे मूर्ख न होवैं किन्तु सब विद्वान ही होवैं॥४८॥आवृत्तानांगुरुकुलाद्विप्राणांपूजको भवेत् नृपाणामक्षयोह्येष-निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ॥ ४९ ॥ म० नतंस्तेनानचामित्राहरन्ति नचनश्यति । तस्माद्राज्ञानिधातव्योब्राह्मणेष्वक्षयोनिधिः ॥५०॥ म० नस्कन्दतेनव्यथतेनविनश्यतिकर्हिचित् । परिष्टमग्निहोत्रे- भ्योब्राह्मणस्यमुखेहुतम् ॥ ५१ ॥ म० जोब्रह्मचर्याश्रम से गुरुकुल में गुरू के पास विद्या पढ़ के पूर्ण विद्वान होके आवैं उनको राजा यथा योग्य सत्कारकरै औरयथा योग्य उनको अधिकार भी देवै जिस्से कि सत्य विद्या का लोप कभी न होय किन्तु सब विद्या सब मनुष्यों के बीच में सदा प्रकाशित रहै अर्थात्

पुरुष वा स्त्री विद्या रहित न रहने पावें यही राजाओं का अक्षय निधि अर्थात अक्षय पुण्य है जो कि ब्रह्मनाम वेद का यथावत पढ़ना और यथावत वेदोक्त कर्मों का करना इससे आगे कोई पुण्य नहीं है क्यों कि ॥ ४९ ॥ जितने धन हैं सुवर्ण रजतादिक पुत्र दारा और शरीर उनको चोर ले सकते हैं शत्रु भी हरण कर सकते हैं और उनका नाश भी हो जाता है परन्तु जो विद्या निधि है उसको न चोर न शत्रु हर सकते हैं और न कभी उसका नाश होता है इससे राज लोगों को विद्या का प्रकाश रूप जो निधि उसको विद्वानों के घर में स्थापन करना चाहिये और नित्य उसका प्रचार करना चाहिये ॥ ५० ॥ जो विद्या निधि है उसको कोई उठाई गिरा उठा नहीं सकता न उसको व्यथा अर्थात कभी पीड़ा होती है अग्निहोत्रादिक जितने यज्ञ हैं उनसे यह जो विद्या रूप क्षेत्र और मुखमें ब्रह्मके जानने वाले अथवा पढ़ने वाले के मुख रूप वेद में होम अर्थात् विद्या का जो स्थापन करना है सो विशिष्ट अर्थात् श्रेष्ठ है इससे राजा लोगों को अवश्य २ चाहिये कि शरीर, मन और धन से अत्यन्त प्रयत्न विद्या के प्रचार में करें इसी से राजा लोगों का ऐश्वर्य पूर्ण आयु, बल, बुद्धि और पराक्रम सदा अधिक होते हैं ॥ ५० ॥

संग्रामेष्वनिवर्त्तित्वं प्रजानांचैव पालनम्। शुश्रूषा ब्राह्मणानांच राज्ञांश्रेयस्करं परम् ॥५२॥ स० संग्रामों से भी निवृत्त न होना कि जब तक उस शत्रु को न जीत ले तब तक उपाय में ही रहे किन्तु भागने के समय में भाग भी जाना और पराक्रम

के समय में पराक्रम करना इसका नाम शूरवीर पना है जो कि पशु की नांई मार खाना वा मर जाना इसका नाम शूरवीरता नहीं किन्तु बुद्धि ही से विजय होता है अन्यथा कभी नहीं प्रजाओं का पालन करना जितने विद्वान् सत्यवादी धर्मात्मा ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवित् सब विद्याओं में पूर्ण उनका यथावत् सत्कार करना यही राजा लोगों का कल्याण करने वाला परम श्रेष्ठ कर्म है अन्य कोई नहीं ॥ ५२ ॥ आहवेषुमिथोऽन्योऽन्यंजिघांसन्तोमहीक्षितः । युध्यमानाःपरंशक्त्यास्वर्गंयान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ५३ ॥ म० प्रजा के पालन करने के वास्ते श्रेष्ठ धर्मात्माओं का यथावत् पालन और दुष्टों का ताड़न करने के लिये जितना अपना सामर्थ्य उसे यथावत् सब पुरुष मिलके परस्पर जो राजा लोग हनन दुष्टोंका करते हैं उसमें अपने भी मरणमें जो शंका नहीं करते हैं और युद्ध में पीठ नहीं दिखाते हैं अर्थात् कभी युद्ध से भागते नहीं परम हर्ष और शूर वीरता से जो युद्ध करते हैं उनको इस लोक में अखण्डित राज्य होता है और मर जांय तो मरनेके पीछे परम स्वर्ग को प्राप्त होते हैं क्योंकि उन राजा लोगों का जितना कर्म है सो सब धर्म के वास्ते ही है और शूरवीरता से उत्साह पूर्वक निर्भय समय में देह का जो छोड़ना सोई स्वर्ग जाने का कारण है ॥ ५३ ॥ युद्धमें धर्म से इतने नियम राजा लोगों को अवश्य मानना चाहिये । नकूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानोरणे रिपून् । नकर्णिभिर्नापिदिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥ ५४ ॥ म० न चहन्यात्स्थलारूढं क्लीं-

न कृताञ्जलिम् । न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥ ५५ ॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् । नायुध्यमानं पश्यन्तं न-
परेण समागतम् ॥ ५६ ॥ म० नायुधव्यसनप्राप्तं नार्त्तं नाति-
परीक्षतम् न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ५७ ॥

स० कूट आयुध अर्थात् काट, छल, से कोई को कभी युद्ध में न मारे विष नाम शत्रुओं को कर्णि नाम कुटिल शस्त्र विष से युक्त शस्त्र से तथा अग्नि से तपाये इन शस्त्रों से शत्रु को कभी न मारे ॥ ५४ ॥ जो आसन में बैठा होय नपुंसक हाथ को जोड़ ले जिसके शिर के बाल खुल जांय मैं आपका हूं मुझको मत मारो जो ऐसा कहे ॥ ५५ ॥ जो सोता होय जो युद्ध से भाग खड़ा होय विषाद को प्राप्त भया होय वा नग्न हो गया होय आयुध से रहित कि जिसके हाथ में शस्त्र न होय जो युद्ध न करता होय वा देखने को आया होय अथवा दूसरे के साथ आया होय मूर्छित हो गया होय शस्त्र के प्रहार से दुःखित होगया होय और शस्त्रों के लगने से शरीर में छेदन होगया होय भयभीत होगया होय भूमि में खड़ा क्लीब नाम नपुंसक और भय से हाथ जोड़ ले इनको युद्ध में राजा कभी न मारे क्योंकि सत्पुरुष राजाओं का यही धर्म है जो युद्ध करने को प्राप्त शूरवीरता से उसी को मारे अन्य को नहीं किन्तु पकड़ के सुख में अपने वश में उसी वक्त करले जो स्त्री और बालक हैं उनको मारने की इच्छा भी राजा लोग न करें क्यों कि जो युद्ध की इच्छा वा युद्ध नहीं करते हैं उनके मारने में बड़ा पाप है इससे कभी इनको न मारें ॥ ५७ ॥ और जो राजा

का भृत्य होय वह युद्ध न करै वा युद्धसे भाग जाय अथवा छल, कपट, रक्खै युद्धमें उसको बड़ा भारी पाप होता है यस्तुभीतःपरावृत्तःसंग्रामेहन्यतेपरैः। भर्त्तुर्यद्दुष्कृतंकिंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ५८ ॥ भ० जो भृत्य भय युक्त होके युद्ध से भाग जाता है और भागे हुये को भी शत्रु लोग मार डालैं तो बड़ी कृतघ्नता उसने किया क्योंकि राजाने उसका पालन और सत्कार किया था सो युद्ध के वास्ते ही किया था सो युद्ध उनसे कुछ किया नहीं राजा के किये का नाश करने से वह कृतघ्न होता है और जो राजा का कुछ पाप उस को सदा प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ यच्चास्यसुकृतंकिंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम् । भर्तातत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्यतु ॥ ५९ ॥ भ० उस भृत्य ने जो कुछ परलोक के वास्ते पुण्य किया था इस सब पुण्यको राजा लेलेता है और उस भृत्य को घोर नरक होता है सुख कभी नहीं यही धर्म स्वामी और सब सेवकों का भी है कि जो जिसका स्वामी वा जो जिसका भृत्य वे परस्पर हित करने ही में सदा प्रवृत्त रहैं छल और कपट मन में भी न करैं अन्यथा दोनों अधर्मी होते हैं ॥ ५९ ॥ रथाश्वंहस्तिनंछत्रंधनंधान्यंपशून्स्त्रियः । सर्वद्रव्याणिकुप्यञ्चयोयज्जयतितस्यतत् । ६० ॥ भ० रथ घोड़ा हाथी छाता, धन धान्य पशु गाय छेरी आदिक स्त्री और वस्त्रादिक सब द्रव्य घी वा तेल का कुप्पा इन को जो युद्ध करने वाला जीते सोई ले लेवै उन में से राजा कुछ न ले ॥ ६० ॥ राज्ञश्चदद्युरुद्धारमित्येषावैदिकीश्रुतिः । राज्ञाचसर्वयोधेभ्योदातव्यमपृथग्जितम् ॥ ६१ ॥ भ० परन्तु

सब भृत्य लोग सोलहवां हिस्सा उन द्रव्यों में से राजा को देवें जो राजा और सेना ने मिलके जीता होय द्रव्य मिला भया उस में से राजा भी सोलहवां हिस्सा भृत्यों को देवें इसमें राजा अधिक वा न्यूनता कभी न करै क्योंकि इसके बिना युद्ध में उत्साह कभी कोई न करेगा ॥९१॥ अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धंरक्षेदवेक्षया। रक्षितंवर्द्धयेद्वृध्या वृद्धंदानेननिःक्षिपेत् ॥९२॥ भ० चार भेद हैं पुरुषार्थ के अलब्ध जो राज्यादिक उनको दंड से ग्रहण करै जो प्राप्त भया उसकी खूब बुद्धि और प्रीति से रक्षा करै और रक्षित पदार्थों को व्याजादिक उपायों से बढ़ावै और जो बढ़ा भया धन उसको विद्यादान यज्ञधर्मात्माओं का पालन और अनाथों के पालन में लगावै इनमें से भी वेदादिक सत्य शास्त्रों के पढ़ने और पढ़ाने ही में बहुधा धन खर्च करै अन्यमें नही ॥९२॥ बकवच्चिन्तयेदर्थान्सिंहवच्चपराक्रमेत् । वृकवच्चावलुम्पेतशशवच्चविनिष्पतेत् ॥ ९३ ॥ भ० राजा सब अर्थों के संग्रह करने में अत्यन्त बुद्धि से विचार करै जैसा कि मत्स्यादिक ग्रहण करने के वास्ते बकुला ध्यानावस्थित हो के विचार करता है वैसे राजा ध्यानावस्थित होके सब अर्थों का विचार करै युद्ध समय में सिंह की नाई पराक्रम करै जिस्से विजय होवै और पराजय कभी न होय आपत्काल में अथवा दुष्टोंके निग्रह करनेके वास्ते ऐसा गुप्त रहै जैसा कि चीता वा भेड़िया और खरहा जैसे अपने बिल से निकल के कूदता दौड़ता चला जाता है वैसे ही राजा शत्रु की सेना से निकल के भाग जाय वा छिपजाय अथवा किला

तोड़ने में और शत्रु ग्रहण करने में पराक्रम करै ॥ ६३ ॥ शरीर कर्षणात्प्राणाःक्षीयन्ते प्राणिनांयथा। तथाराज्ञामपिप्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥६४॥ भ० जैसे शरीर दुर्बल करने से बलादिक जो प्राण वे क्षीण हो जाते हैं वैसे ही राज्य के नाश अर्थात् अरक्षण से राजा लोगों के भी प्राण क्षीण हो जाते हैं अर्थात राज्य सहित नष्ट हो जातेहैं ॥६४॥ यथाल्पाऽल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः। तथाल्पाऽल्पोगृहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकःकरः ॥६५॥ भ० जैसे जोंक बछरा और भौंरा थोड़ा२ रुधिर दूध और सुगन्ध को जिन से ग्रहण करतेहैं उनका नाश कभी नहीं करते वैसे ही राजा प्रजा से थोड़ा २ कर ग्रहण करै साल २ में ॥६५॥ परस्पर विरुद्धानांतेषांचसमुपार्जनम्। कन्यानांसम्प्रदानांच कुमाराणांचरक्षणम् ६६॥ भ० जब सब आमात्योंके साथ वा प्रजास्थ पुरुषों के साथ कोई व्यवहार के निश्चय के वास्ते राजा बिचार करै उन में जिस बात में परस्पर विरोध होय उसमें से विरुद्धांश को छोड़ा के सिद्धान्त में सबकी जब एकता होय उस बात का आरम्भ करै अन्यथा नहीं कन्याओं का सोलहवें वर्ष से पहिले विवाह कभी न होने पावै तथा चौबीस वर्ष के आगे कन्या विवाहके बिना कभी न रहने पावे जिसको की विवाह की इच्छा होय तथा कुमार पुरुषोंका २५ वर्ष के पहिले विवाह किसी का न होने पावै और ४०,४४, वा ४८, वर्ष के आगे विवाह के विना पुरुष भी न रहैं तब तक कन्या और पुरुषों को विद्यादान राजा करै और उन से करावै तथा उनकी रक्षा भी राजा करावै जिस्से कि कोई भ्रष्ट न होवै

और विद्याहीन भी कोई कन्या वा पुरुष न रहे यही राजा लोगों का परम धर्म और परम पुरुषार्थ है जिस्से सब व्यवहार उत्तम होते हैं अन्यथा नहीं और जिस पुरुष वा कन्या को विवाह की इच्छा ही न होवे उसके ऊपर राजा वा अन्य का कुछ बल नहीं ॥६६॥ दूतसंप्रेषणंचैव कार्यशेषंतथैवच। अन्तःपुरप्रचारञ्च प्रणिधीनांचचेष्टितम् ॥६७॥ दूत को भेजना और उस्से सब यथावत व्यवहारों का जानना कार्यशेष नाम इतना कार्य सिद्ध हो गया और इतना कार्य सिद्ध बाकी है उसको विचार से यथावत पूर्ण करै जिस नगर में वा जिस स्थान में रहै उन मनुष्यों का यथावत अभिप्राय जान ले प्रणिधी नाम दूती अथवा दासी इनको भी चेष्टा को यथावत जानै जिस्से कि कोई विघ्न न होने पावै ॥६७॥ कृत्स्नंचाष्टविधं कर्मपञ्चवर्गंचतत्त्वतः। अनुरागापरागौच प्रचारंमण्डलस्यच ॥६८॥ म० ये आठ विध जो कर्म राजा अमात्य सेना कोश और राज्य ये पांच वर्ग हैं जिसमें उस कर्म को तत्त्व से जानै और उसकी रक्षा भी करै आपने में सबकी प्रीति वा अप्रीति अथा मण्डल के राजाओं का व्यवहार और उनके मन की इच्छा इसको यथावत राजा जानता रहै जिस्से आपत्काल अकस्मात कभी न आवै ॥६७॥ मध्यमस्यप्रचारञ्च विजिगीषोश्चचेष्टितम्। उदासीनप्रचारंच शत्रोश्चैवप्रयत्नतः ॥६९॥ अपने और परराज्य की सीमा में जो राजा होय विजिगीषु नाम शत्रु के तरफ से जो जीतने को आवै उदासीन जो अपने वा शत्रु के पक्ष में न होवै और शत्रु इन चारों की चेष्टा और अभिप्राय को यथावत

राजा जान लेवै अन्यथा सुख कभी न होगा इस्से अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक राज्य के मूल जितने हैं उनको कहै और तत्पर होके जानै जान के यथावत् राजा व्यवस्था करै॥ ६१॥ इनको साम अर्थात् मिलाप दान अर्थात् धन का देना भेद नाम परस्पर सभों को तोड़ फोड़ रक्खै और दण्ड ये चार राजा लोगों के साधन हैं परन्तु उन चारों में से मिलाप उत्तम है उस्से नीचे दाम और भेद सबसे कनिष्ट दण्ड है इस्से तीन उपाय से जब कार्य सिद्धि न होवे तब दण्ड करै इनका तत्व यह है कि जिससे बहुत धर्मात्मा होवें और दुष्ट न होवैं ऐसे उपाय विद्यादिक दानोंसे राजा सदाय करता रहै एक तो उक्त प्रकार से युवावस्था में ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या को पढ़ के विवाह का होना और पांचवें वर्ष पुत्र वा कन्या को पढ़ने के वास्ते न भेजैं तो उनके माता पितादिकोंके ऊपर राजा अवश्य दण्ड करै यथावत् पठन और पाठन की व्यवस्था करै जो कोई इस मर्यादा को भंग करै विद्यादिक गुण ग्रहण न करै तब उस मनुष्य को शूद्र का अधिकार दे देवै और शूद्रादिक नीचों में कोई उत्तम होवै उसको यथायोग्य द्विज का अधिकार देवै जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्यों के दुष्ट पुत्र वा कन्या मूर्ख हो जांय तब उनको शूद्र कुल में रख दें औरशूद्रादिकों में जब द्विजत्व अधिकार के योग्यहोवें तब यथा योग्य द्विज का अधिकार देवै अर्थात् द्विज बना देवै तब जिस ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य के पुत्र वा कन्या एक दो तीन वा जितने शूद्र होगयेहोंय उनके बदले पुत्र वा कन्याओंको राजा गिन २ के देवै तथा शूद्रादिकों

को भी क्योंकि जिसको एक ही पुत्र वा कन्या है और वह शूद्र हो गया अथवा शूद्र की पुत्र वा कन्या द्विज हो गई फिर उनका वंश तो छिन्न ही हो गया इससे राजा लोगों से यथा योग्य गिन २ के लिये जांय और दिये भी जांय दूसरी बात यह है कि वेदादिक सत्यशास्त्रों का अत्यन्त प्रचार करै और जो कोई जाल पुस्तक रचै वा पढ़ै पढ़ावै उसको राजा शिरच्छेदन तक दण्ड देवै जिससे कि कोई मिथ्या जाल पुस्तक न रचै तीसरी बात यह है कि जबकोई जितेन्द्रिय, पूर्णविद्यावान, पूर्ण ज्ञानवान; सत्यवादीदयाल और तीव्र बुद्धि वाला विरक्त होना चाहै उसकी राजा यथावत् परीक्षा करके आज्ञा देवै और कह दे कि आप सत्य विद्या सत्य उपदेश का प्रचार संसार में करैं उसका आकार स्वभाव और गुण पत्र में लिखे और ग्राम २ नगर २ में विदित कर दे जिस्से कि कोई पुरुष उसका अपमान न करै और उसके वेष वा नामसे कोई फिरने न पावै चौथी बात यह है कि कोई मूर्ख; धूर्त, अध र्मी और मिथ्या वादी विरक्त न होने पावै क्योंकि उसके विर- क्त होनेसे सब संसारकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है जैसी उसकी भ्रष्ट बुद्धि होगी वैसाही उपदेश करेगा अच्छा कहांसे करेगा इससे ऐसा पुरुष विरक्त न होनेपावै जो विरक्त होय तो उस को कड़े दण्ड दे पांचवी बात यहहै कि जो कोई कर्मकाण्ड का अधिकारी होय उसको कर्मकाण्डमें रक्खे सो कर्मकाण्ड वेदोक्त लेना तन्त्रवापुराणकी एकबात भी न लेनी पूर्वमीमांसा अर्थात् जैमिनि जो व्यास जीके शिष्य के किये सूत्रों के अनुसार

कर्म काण्ड की व्यवस्था राजा नित्य रक्खै संध्योपासन अग्नि होत्र से लेके अश्वमेध तक कर्म काण्ड है उसके दोभेद हैं एक तो सकाम दूसरा निष्काम सकाम यह कहता है कि विषय भोग ऐश्वर्य के वास्ते कर्म का करना औरनिष्काम यह है कि कर्मों से मुक्ति होका चाहना उससे भिन्न पदार्थों की चाहना नहीं उसमें वेद के जो मन्त्र हैं वेहादेव हैं इनसे भिन्न कोई देव नहीं और मन्त्रों के कहने वाले परमेश्वर परमदेव है ऐसा ही निश्चय पूर्व मीमांसादिकों और निरुक्तादिकों में किया है दूसरा उपासना काण्ड है सो भी वेदोक्त ही लेना उसके व्यवस्था के निमित्त पातञ्जल मुनि के सूत्र और उसके ऊपर व्यास मुनि जी का किया भाष्य तथा दश उपनिषद इन्हीं को रक्खै इनमें जैसी उपासना की व्यवस्था है उसी पूर्वक आप और अपनी प्रजा को चलावै पाषाणादिक मूर्त्ति पूजनादिक उपासना ही नहीं इससे इसको छोड़ना ही उचित है तीसरा ज्ञान काण्ड है उसमें पृथ्वी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थोंका यथावत तत्त्व ज्ञानका होना इसका विधानवे दश उपनिषद और व्यासजी का किया शारीरिक सूत्र इनकी रीति से ज्ञान काण्ड की व्यवस्था करै इसी आप राजा चले और प्रजाको चलावै औरजिनने पुराण तंत्र वैष्णवशाक्तादि पाखण्ड लिये हैं उनको कभी न प्रचलित करे क्योंकि ये सब पाखण्ड है तीनों काण्डों में नहीं हैं उनसे विरुद्ध ही हैं इन पाखण्डोंके चलनेसे राजा और राज्य नष्ट हो जाते हैं सो अत्यन्त प्रयत्नोंसे इन पाखण्डोंका अंकुर मात्र भी न रहने पावै जैसे

कि आज काल आर्यावर्त्त देशमें मण्डली की मण्डली फिरती
है हैं लाखों पुरुषों में विरक्तता धारण किया है यह मिथ्या
जालही है इन लाखों में कोई एक पुरुष विरक्तता के योग्य है
और सब पाखण्ड में रहे हैं इनको राजा यथावत् परीक्षा करै
सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सब विद्याओं में निपुण और शान्त्या-
दिक गुण जिसमें होंय उसको तो विरक्त हो रहने दे इससे
जितने विपरीत होंय उनको यथा योग्य हल ग्रहणादिक कर्मों
में राजा लगादेवै इस व्यवस्था को अवश्य करै अन्यथा कभी
सुख न होगा ॥ सन्धिञ्चविग्रहञ्चैव यानमासनमेवच । द्वैधी-
भावंसंश्रयञ्च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा ॥८०॥ सन्धि नाम मिलाप,
विग्रह नाम विरोध याना नाम यात्रा कि शत्रु के ऊपर चढना
आसन नाम युद्ध को न करना और अपने राज्य का प्रबन्ध
करके घरमें बैठ रहना द्वैधीभाव नामदो प्रकारका बल अर्थात्
सेना रख लेना इन छः गुणों का विचार किया है सो मनु
स्मृति में विचार लेना और भी बहुत प्रकार के राजकर्मों का
उन्हीं में विचार किया है सो देख लेवें ॥ प्रमाणानिचकुर्वीत-
तेषांधर्म्यान्यथोदितान् । रत्नैश्चपूजयेदेनप्रधानपुरुषैःसह ॥८१॥
भा० जिस राजा को जीतले उससे नियम करदे कि जब हम
तुमको बुलावें वा जैसी आज्ञा करैं उसको यथावत करना
और मेरे अमात्य के तुल्य होके यथोक्त मेरी आज्ञा करो यथा-
वत तुम धर्म से सब काम करो अन्याय मत करो पराजय के
शोक निवारणके निमित्त राजा और राजाके सब पुरुष मिलके
उनको रत्नादिक से उस राजाको प्रसन्न करैं जिससे कि उसको

पराजय दुःख भया होय उसका सत्कार से निवारण हो जाय फिर उनकी यथावत आजीविका करते जिससे उन के भोजनादिकों का निर्वाह होवनके उतनी जीविका करदे और जो राजा धर्मसे राज्य करै विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम, और जितेन्द्रिय होय उस्से न युद्ध करै न उस्से राज्य लेनकी इच्छा करै किन्तु उसको बन्धु और मित्रवत् जानै ॥ ६६ ॥ प्राज्ञंकुलीनंशूरंचदक्षं दातारमेवच । कृतज्ञंधृतिमन्तञ्च कृष्टमाहुररिंबुधाः ॥ ६७ ॥ भ० पण्डित, कुलीन, शूर वीर, चतुर, दाता; कृतज्ञ और धैर्यवान पुरुष से वैर कभी न करैगा जो कभी वैर करैगा तो उस को दुःखही हो होगा ऐसे पुरुष का पराजय कभी नहीं हो सका ॥ ६७ ॥ एवंसर्वमिदंराजासहसंमन्त्र्यमन्त्रिभिः । व्यायाम्याप्लुत्यमध्यान्हेभोक्तुमन्तःपुरंविशेत् ॥ ६८ ॥ भ० इस प्रकार से सर्व राज सम्बन्धी जो धर्म उस का विचार मन्त्रियों के साथ करके व्यायाम नाम दण्ड मुद्गर करके सिंह की नाई अथवा नद्र की नाई अभ्यास करके मध्यान्ह समय के पहिले भोजन करै भोजन करके न्याय घर में जावै सब न्यायों को यथावत करै जितने राज सम्बन्धी बातें लिखी हैं ये सब मनु स्मृति सप्तमाध्याय की हैं यहां तो संक्षेप से लिखी हैं विस्तार से देखा चाहैं तो वहां देख ले एक यह बात अवश्य होनी चाहिये कि जो मनुष्य राजा हो उसी की आज्ञा में चलैं यह बात ठीक नहीं क्यों कि राजा तो प्रतिष्ठा और मान के वास्ते सर्वोपरि है परन्तु विचार करनेको एक पुरुष समर्थ नहीं होता जितने देश या अन्य देश बुद्धिमान पुरुष होवैं उन सब को

राजा एक सभा रक्खे उस सभा में आप भी रहै फिर सब पुरुषोंके विचारसे जो बात ठीक २ ठहरे उस बातको सब करैं इससे क्या आया कि जो राजा अन्यायकारी होजाय तो उस को निकाल बाहर करैं और उसी के स्थानमें उक्त लक्षण वाले क्षत्रिय को बैठा देवैं क्योंकि राजा तो प्रजा के भय से अन्याय न कर सकैगा और प्रजा राजा के भय से अन्याय न कर सकैगी राजा जब अन्याय करै तब उसको यथावत् दण्ड देवें॥ कार्षापणंभवेद्दण्ड्योयत्रान्यःप्राकृतोजनः। तत्रराजाभवेद्दण्ड्यः सहस्रमितिधारणा॥६८॥ स० जिस अपराध में प्रजास्थ पुरुष के ऊपर एक पैसा दंड होय उसी अपराध को जो राजा करै उस के ऊपर हजार पैसा दण्ड होय यह केवल उपलक्षण मात्र है कि प्रजा से हजार गुना दंड राजा के ऊपर होय क्योंकि राजा जो अधर्म करैगा तो धर्म का पालन कौन करैगा कोई भी न करैगा इससे दोनों के ऊपर दंड की व्यवस्था होनी चाहिये ॥६९॥ अष्टापाद्यन्तुशूद्रस्यस्तेयेभवतिकिल्बिषम्। षोडशैवतुवैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्यच॥७०॥ ब्राह्मणस्यचतुःषष्टिःपूर्णंवापिशतंभवेत्। द्विगुणावाचतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः॥७१॥ जितना पदार्थ कोई चोरावै वह मूर्ख वा बालक न होय किन्तु गुण और दोषों को जानता होवै सो जो शूद्र चोर होय तो उससे आठ गुण दंड ले वैश्य से सोलह गुण, क्षत्रिय से ३२ गुण, और १०० वा १२८ गुण दंड राजा ब्राह्मण से लेवे क्योंकि श्रेष्ठ होके नीच कर्म करै उसको अधिक ही दंड होना चाहिये ॥७२॥ पिताचार्यःसुहृन्माता भार्यापुत्रःपुरोहितः। नादंड्योना

मराज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥७२॥ भ० पिता आचार्य विद्यादाता सुहृत् नाम मित्र माता भार्या नाम स्त्री पुत्र और पुरोहित जब २ अपराध करें तब २ कभी दंड के विना न छोड़े क्योंकि राजा के सामने कोई अपराधी अदंड नहीं क्यों कि स्वधर्म में स्थिर न रहे ॥७२। अदंड्यान्राजा दंडयाश्चैवाप्य-दंडयन । अयशो महदाप्नोति नरकंचैव गच्छति ॥७३॥ भ० जो राजा अन्याय करने वाले को दंड नहीं देता और अनपराधि को दंड देता है उस की बड़ी अपकीर्ति होती है और नरक को भी वह जाता है इस्से राजा को अवश्य चाहिये कि पक्षपात को छोड़ के यथावत दंड व्यवस्था रक्खे किसी का पक्षपात कभी न करे इस्से क्या आया कि किसी ने मनुस्मृति वा अन्यत्र से ऐसे श्लोक प्रक्षिप्त किया होय कि ब्राह्मणवा सन्या-सि आदि का दंड देना उस को सज्जन लोग मिथ्या ही मानें ॥७३॥ क्योंकि धर्मोविद्धस्त्वधर्मेण सभांयत्रोपतिष्ठते । शल्यं चास्यनकृन्तन्तिविद्धास्तत्रसभासदः ।७४॥ भ० धर्म और अधर्म से विद्ध अर्थात घायल भया राजा और सभासदों के पास धर्मी और अधर्मी दोनों आवैं फिर उस धर्म का जो घाव उस को राजा और सभासद न निकालें जैसे कि घावको औषध्यादिक यत्नों से अच्छा करते हैं वैसे ही धर्मात्मा का सत्कार और दुष्टों के ऊपर दंड जिस सभा में यथावत न होगा उस सभा के राजा और सभासद सब मनुष्यों को मुर्दा ही जानना तथा जहां २ शिष्ट पुरुषों की अथवा सत्यासत्य निश्चय के वास्ते सभा होवे फिर जिस सभा में सत्य का स्थापन

न होय और असत्य का खंडन वे भी सब सभा समूह ही हैं और मुरदे क्यों कि ॥ ७३ ॥ सभां वानप्रवेष्टव्य वक्तव्यं वासमं-जसम्। अब्रुवन्विब्रुवन्वापिनरोभवतिकिल्विषो ॥ ७४ ॥ स० पुरुष प्रथम तो सभा में प्रवेश हो न करै और जो सभामें प्रवेश करै तो सत्य ही कहै मिथ्या कभी न कहै क्यों कि जानता भया पुरुष सत्या सत्य को न कहै अथवा जैसा जानता होय उस्से विरुद्ध कहै तो भी वह मनुष्य पापी हो जाता है इस्से क्या आया कि जैसा जो पुरुष हृदय से जानता होय वैसा ही कहै उस्से विरुद्ध कभी न करै क्यों निसत्य बोलना ही सब धर्मों का मूल है और असत्य अधर्म का मूल है इस में महा-भारत का प्रमाण है नसत्याद्विद्यतेधर्मोनानृतात्पातकंपरम्। इसका यह अभिप्राय है कि सत्य बोलने से बढ़ कर कोई धर्म नहीं और मिथ्या बोलने से बढ़कर कोई पाप नहीं इस्से सत्य भाषण ही सदा करना चाहिये मिथ्या कभी नहीं ॥७५॥ यत्रध-र्मोह्यधर्मेणसत्यं यत्रानृतेनच। हन्यतेप्रेक्षमाणानांहतास्तत्रस-भासदः ॥ ७६ ॥ स० जिस राजा की सभा में धर्म अधर्म और सत्य का राजा तथा अमात्यों के देखते भी अनृत नाश करता है फिर वे न्याय न करैं तथा सर्वत्र सभा में उनको भी सज्जन लोग नष्ट ही जानैं क्यों कि ॥ ७६ ॥ धर्मएवहतोहन्ता-हन्तिधर्मोरक्षतिरक्षितः। तस्माद्धर्मो नहन्तव्योमानोधर्मोहतो-ऽवधीत् ॥ ७७ ॥ स० जो पुरुष धर्म का नाश करता है अर्थात धर्म को छोड़ के अधर्म करता है उसको अवश्य ही धर्म मार डालता है उस अधर्मी की रक्षा करने को

ब्रह्मादिक देव भी समर्थ नहीं और परमेश्वर भी अपनी आज्ञा को अन्यथा नहीं करते क्योंकि परमेश्वर तो सत्यसङ्कल्प ही है इस्से जैसी आज्ञा विचार के यथावत किया है वही रहती है कि अधर्म करै सो अधर्म का फल पावै और धर्म करै सो धर्म का और जो पुरुष धर्म की रक्षा करता है उसकी धर्म भी सदा रक्षा करता है उसका नाश करने को तीनों लोक में कोई भी समर्थ नहीं इससे सब सज्जन लोग धर्म का नाश और अधर्म का आचरण कभी न करैं । ७७ । वृषोहिभगवान्धर्मस्तस्ययःकुरुतेह्यलम् । वृषलन्तंविदुर्देवास्तस्माद्धर्मंनलोपयेत् ॥ ७८ ॥ भ० जो मनुष्य धर्म का लोप अर्थात् धर्म को छोड़ के अधर्म करता है वही शूद्र वा भडुवा है क्योंकि वृषनाम धर्म का है और भगवान् भी तीनों लोक में धर्म ही है जो आज्ञा करने वाला है सो आज्ञा से भिन्न नहीं क्योंकि उसके आत्म रूप ही आज्ञा है उस धर्म को जो त्याग करता है उसको देव नाम विद्वान लोग शुद्र या भंडुवा की नांई जानते हैं इस्से धर्म का त्याग कभी न करना चाहिये ॥ ७८ ॥ एक एवसुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयातियः शरीरेणसमनाशं सर्वमन्यद्धिगच्छति ॥ ७९ ॥ भ० देखना चाहिये कि सब जगत् में एक धर्म ही सब मनुष्यों का मित्र है अन्य कोई नहीं क्योंकि धर्म करने के पीछे भी साथ देता है और धर्म के भिन्न जितने पदार्थ हैं वे शरीर के छोड़ने के साथ ही छूट जाते हैं परन्तु धर्म का संग सदा बना रहता है इससे धर्म को कोई कभी न छोड़ै ॥ ७९ ॥ पादोधर्मस्यकर्त्तारं पादःसाक्षिणमृच्छति । पादःसभासदःसर्वान्पादोराजानमृ-

च्छति ॥८०॥ भ० जिस सभा में अन्याय होता है उस सभा में यह बात होती है कि जो अधर्म को करता है उसको अधर्म का चौथा हिस्सा प्राप्त होता है उसके जो मिथ्या साक्षी हैं उनको अधर्म का तृतियांश मिलता है जितने सभासद हैं कि राजा के अमात्य उनको एक अंश अधर्म का राजा को मिलता है अर्थात् उस अधर्म के चार हिस्से हो जाते हैं और चारों को उक्त प्रकार से एक २ हिस्सा मिल जाता है ॥ ८० ॥ राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्तेच सभासदः । एनोगच्छतिकर्त्तारं निन्दा-र्होयत्रनिन्द्यते ॥ ८१ ॥ भ० जिस सभा में धर्म और अधर्म का विवेक यथावत होता है कि यथावत् पक्षपातको छोड़ के सत्य २ ही न्याय होता है उस सभा के राजा साक्षी और अमात्य सब धर्मात्मा होजाते हैं और जिसने अधर्म किया उसीके ऊपर सब अधर्म होता है किन्तु वही अधर्मका फल भोगता है राजा-दिक आनन्द से पुण्य का फल भोगतेहैं दुःख कभी नहीं इस्से राजा अमात्य और साक्षी पक्षपात से अन्याय कभी न करैं ॥ ८१ ॥ बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गै र्भावमन्तर्गतन्नृणाम् । स्वरवर्ण-ङ्गिताकारैश्चक्षुषाचेष्टितेनच ॥८२॥ भ० जब कोई वादी प्रतिवादी का न्याय करने लगै तब बाहर के चिन्हों से भीतर के भाव को जान लेवै उसका शब्द का इङ्गितनाम सूक्ष्म हृदय और नाड़ी की चेष्टा आकृति तथा नेत्र की चेष्टा औरहाथ अंगों की भी चेष्टा इनसे सत्य २ निश्चय कर ले कि इनने अपराध किया है और इनने नहीं किया एक बात यह भी परीक्षा की है जो हाथ के मूल में धमनी नाड़ी औरहृदय उनको वैद्यक शास्त्र की रीति

से स्पर्श करके यथावत परीक्षा करै फिर यथावत् दंड और अदंड करै इन १८ अठारह स्थानों में विचार की व्यवस्था है ॥ २॥ तेषामाद्यमृणादाननिःक्षेपोऽस्वामिविक्रमः । संभूयचसमुत्थानंदत्तस्यानपकर्मच ॥ ८३ ॥ वेतनस्यैवचादानं संविदश्चव्यतिक्रमः । क्रयविक्रयानुशयोविवादःस्वामिपालयोः ॥८४ ॥ सीमाविवादधर्मश्च पारुष्येदंडवाचिके । स्तेयंचसाहसंचैवस्त्रीसंग्रहणमेवच ॥ ८५ ॥ स्त्रीपुंधर्मोविभागश्चद्यूतमाह्वयएवच । पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ८६ ॥ एषुस्थानेषुभूयिष्ठंविवादंचरतांनृणाम् । धर्मंशाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यं विनिर्णयम् ॥ ८७ ॥ म० ऋण का लेना और देना १ निक्षेप के दो भेद हैं जो गिनके तोल के वा किसीके पास पदार्थ रक्खै उसका नाम निक्षेप है दूसरा गुप्त बांध के किसी के पास धरोहर रक्खो और आधे२ धनसे व्यवहार करना २ अस्वामिविक्रय नाम अन्य का पदार्थ कोई बेच ले वा किसी का पदार्थ कोई दबाले ३ संभूयसमुत्थान नाम धर्मार्थ यज्ञार्थ वा दक्षिणा के वास्ते धन दिया जाय इनमें विवाद का होना वा अन्यथा करना ४ और दिये भये पदार्थ को छिपाले ५ नौकरी का देना वा न देना अथवा न लेना ६ प्रतिज्ञा का भंग करना ७ बेचना और खरीदना ८ पशुओं का स्वामी और उनके पालने वाले में विवाद का होना सीमा में विवाद का होना १० कठोर वचन और बिना विचारे दण्ड देना ११ चोरी १२ साहस नाम परस्पर स्त्री पुरुषोंका व्यभिचार और डांकुपना १३ किसी की स्त्री को बल से वाफुसला कर लेलेना १४ स्त्री और पुरुषों के

परस्पर नियम उनको भंग करना १५ दायभाग १६ द्यूत नाम जूवा १७ और जो प्राणि अर्थात् स्त्री पुत्र कुटुम्ब गाय हस्ती अश्वादिक पशुओं को दयाकर द्यूत का करना उसका नाम समाह्वय है १८ इन अठारह व्यवहारोंमें प्रजामें अत्यन्त विवाद होता है इनका उक्त लक्षण इन प्रसंग और पूछने से राजा यथावत् न्याय करै इन न्यायों का विधान यथावत् मनुस्मृति के अष्टमाध्याय और नवमाध्याय की रीति से करना चाहिये ॥ ८७ ॥ दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम्। राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ८८ ॥ जो प्रजा में चोरी होय तो उसमें जितने पदार्थ चोरी जांय उन सब पदार्थों को चोरों का निग्रह करके जो जिस का पदार्थ चोरी गया होय उसको चोरों से लेके पदार्थ के स्वामी को राजा देदे और जो चोर न पकड़ा जाय और पदार्थ न मिलै तो अपने पास से राजा देदे क्यों कि इसी वास्ते राजा का होना आवश्यक है प्रजा नित्य राजा को देती है इस वास्ते कि अपना पालन राजा यथावत् करै जो यथावत् पालन न करेगा और प्रजा से धन लेगा तो वही राजा चोर और डाकू के पाप का भागी होगा जो चोरों से मिलके चोरी के धन को ग्रहण करने की इच्छा करै वह राजा नहीं है किन्तु वही चोर और डाकू है ॥ ८८ ॥ यादृशा धनिभिः कार्य्या व्यवहारेषु साक्षिणः। तादृशान् संप्रवक्ष्यामि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥ ८९ ॥ म० राजा और धनिक लोगों को जिस प्रकार के साक्षी व्यवहारों में करना चाहिये उनको यथावत कहते हैं और साक्षियों को जैसा सत्य २

वचन वा बिना विचारे दण्डका देना इन कर्मोंमें साक्षीकी परीक्षा ही राजा नकरे किन्तु यथावत् विचार करके इनको दण्ड देना उचित है ॥१०६ ॥ सत्येनपूयतेसाक्षी धर्मःसत्येनवर्द्धते । तस्मात्सत्यंहिवक्तव्यंसर्ववर्णेषुसाक्षिभिः ॥ १०७ ॥ भ० सत्य बोलनेसे साक्षी पवित्र और मिथ्या बोलनेसे महापापी होता है धर्म भी सत्य बोलने ही से बढ़ता है इससे सब मनुष्यों को सत्य ही साक्षी देनीचाहिये मिथ्या कभी बोलनानहीं ॥ १०७ ॥ आत्मैवह्यात्मनःसाक्षीगतिरात्मातथात्मनः । मावमंस्थाःस्वमात्मानंनृणांसाक्षिणमुत्तमम् ॥१०८॥ भ० साक्षीसे पूछना चाहिये कि तेरे आत्मा का साक्षी तूं ही है औरतेरी सद्गतिका करने वाला भी तूं ही है क्योंकि जो तूं सत्य बोलेगा तो तुझको कभी दुःख न होगा और मिथ्या बोलने से सदा तूं दुःखी ही रहेगा इसमें कुछ संदेह नहीं इससे हे मित्र सब साक्षियोंमें से उत्तम जो साक्षी अपना आत्मा उसका मिथ्या बोलने से अपमान तूं मत कर और जो तूं अपमान स्वात्मा का करेगा तो किसी प्रकारसे तेरी सद्गति नहीं होगी किन्तु असद्गति ही होगी इससे सत्यही साक्षी बोले मिथ्या कभी नहीं ॥ १०८ ॥ ब्रह्मघ्नोयेस्मृतालोकायेचस्त्रीबालघातिनः । मित्रद्रुहःकृतघ्नस्य तेतेस्युर्ब्रुवतोमृषा ॥ १०९ ॥ भ० ब्रह्मघ्न नाम ब्रह्मवित् पुरुषों का मारने वाला औरजेलोक कर्मों का त्यागी स्त्री और बालकों का मारने वाला मित्र का द्रोही कृतघ्न नको जैसे कुम्भी पाकादिक दुःख रूपी लोक और जन्म प्राप्त होते हैं वे तुझको सब होवें जो तूं सत्य न बोले ॥ १०९ ॥ जन्मप्रभृतियत्किञ्चि-

स्पुण्यंभद्र त्वयाकृतम्। तत्तेसर्वंशुनोगच्छेद्यदिब्रूयास्त्वमन्यथा ॥ ११० ॥ हे भद्र साक्षिन जो तूं मिथ्या कहेगा तो तैने जितना पुण्य जन्म भर किया है वह सब तेरा पुण्य कुत्ते को प्राप्त होय इससे तूं सत्य बोलै ॥ ११० ॥ एकोऽहमस्मीत्यात्मानंय त्वंकल्याणमन्यसे। नित्यंस्थितस्तेहृद्येषपुण्यपापेक्षितामुनिः ॥ १११ ॥ हे कल्याण तूं जानता है कि मैं एक ही हूं ऐसा तूं मत जान क्योंकि न्यायकारी सर्वज्ञ जो परमेश्वर सब जगत में व्यापी निरंतरस्थित है सोई तेरे हृदय में भी व्यापक है तेरा जो पाप वा पुण्य इन सबको यथावत् जानता है इससे तूं परमेश्वर और अधर्म से भय करके सत्य ही बोल ॥ १११ ॥ यमोवैवस्वतोदेवोयस्तवैषहृदिस्थितः। तेनचेदविवादस्ते मागंगाम्मा कुरुनमः ॥ ११२ ॥ स० जो यमनाम यथावत् न्याय से व्यवस्था करने वाला वैवस्वतनामसूर्यादिकसब जगतकाप्रकाशकरने वाला देवनाम स्वप्रकाश स्वस्वरूप सर्वान्तर्यामी तेरे हृदयमें भी नित्य स्थित है उस परमेश्वर से शत्रुता वा विवाद तुझको न करना होय तो तूं सत्य ही बोल और जो तूं परमेश्वर ही से विरोध रक्खेगा तो तुझको कभी सुख न होगा और जो तूं सत्य ही बोलेगा तो गंगा व कुरुक्षेत्र में प्रायश्चित करना वा राज गृहमें दण्ड अथवा परलोक परजन्म में नरकादिक सब दुःखों का प्राप्त तुझ को कभी न होगा इससे तुझ को अवश्य सत्य ही बोलना चाहिये मिथ्या कभी नहीं ॥ ११२ ॥ यस्यविद्वान् हिवदतःक्षेत्रज्ञोनाभिशंकते। तस्मान्नदेवाः श्रेयांसंलोकेऽन्यंपुरुषंविदुः ॥ ११३ ॥ स० जिस पुरुष का क्षेत्रज्ञ जो

हृदयस्थ आत्मा विद्वान् नाम सब पाप पुण्य को जानने वाला सोई अपना आत्मा जिस कर्म में शंका नहीं करता है जिस में भय शङ्का और लज्जा होवै उस कर्म को कभी नहीं करता कि सत्याचरण और सत्य वचन ही बोलता है उस्से अधिक अन्य धर्मात्मा पुरुष कोई नहीं ऐसा देव नाम विद्वान् लोग निश्चित जानते हैं और मनुस्मृति के अष्टमाध्याय में बहुत सा विस्तार लिखा है सो देख लेना व्यवहारों को निश्चय करने के वास्ते दूत का भेजना और उक्त प्रकारों से यथावत् निश्चय हो सक्ता है अन्यथा नहीं ॥ ११३ ॥ उपस्थमुदरंजिह्वाहस्तौपादौचपञ्चमम् । चक्षुर्नासाचकर्णौचधनंदेहस्तथैवच ॥ ११४ ॥ म० उपस्थ नाम लिंगेन्द्रिय, उदर जिह्वा, हस्त, पाद, चक्षु, नाशिका, कान, धन और देह ये दश दण्ड देनेके स्थान हैं इन्हीं में दण्ड का स्थापन होता है ॥ ११४ ॥ वाग्दण्डंप्रथमंकुर्याद्धिग्दण्डंतदनन्तरम् । तृतीयंधनदण्डन्तुवधदण्डमतःपरम् ॥ १०५ ॥ म० प्रथम तो वाग्दंड करै कि ऐसा काम कोई दुष्ट न करै दूसरा धिक्दण्ड कि तुझ को धिक्कार है दुष्ट तैने नीच कर्म किया तीसरा धन दण्ड कि उस्से धन ले लेना चौथा बध दण्ड कि उसको मार डालना ॥ ११५ ॥ अनादेयस्यचादानादादेयस्यचवर्जनात् । दौर्बल्यंख्याप्यतेराज्ञःसप्रेत्येहचनश्यति ॥ ११६ ॥ राजा जो न लेने की वस्तु हो उस को कभी न ले और लेने का अपना जो कर उस में से एक कौड़ी भी न छोड़ै क्यों कि इस्से राजा की दुर्बलता जानी जाती है उस राजा का इस लोक वा परलोक में नाश ही होता है इस्से क्या आया कि राजा अपने अंशों

को प्रजा से यथावत् लेता है और प्रजा के अंशको कभी ग्रहण नहीं करता सोई राजा श्रेष्ठ है ॥ ११६ ॥ यस्त्वधर्मेणकार्याणि-मोहात्कुर्यान्नराधिपः । अचिरात्तंदुरात्मानंवशेकुर्वन्तिशत्रवः ॥ ११७ ॥ भ० जो राजा अन्याय तथा मोह से कार्यों को करता है उस राजा का शीघ्र ही नाश हो जाता है क्यों कि उस को शत्रु लोग शीघ्र ही वश में कर लेते हैं ॥ ११७ ॥ संभोगोदृश्य-तेयत्रनदृश्यंतागमःक्वचित् । आगमःकारणंतत्रनसंभोगइति-स्थितिः ॥ ११८ ॥ प्रजा में भोग नाना प्रकार का देख पड़े उस को राजा विचार करै कि आमदनी इन को कहां से होती है जो आमदनी निश्चित होय तो कुछ चिन्ता नहीं और जो नौ-करी व्यापार वा कुछ उद्यम न करै और भोग नाना प्रकार का करता होय उस को पकड़ के राजा दण्ड दे क्यों कि अवश्य यह चौर्यादिक कुकर्म करता होगा इसके पास धन कहांसे आया भोगका कारण आगमहो है और संभोगका कारण संभोग कभी नहीं ऐसी मर्यादाहै इसको राजा अवश्य पालन करै ॥ ११८ ॥ धर्मा-र्थयेनदत्तंस्यात्कस्मैचिद्याचतेधनम् । पश्चाच्चनतथातत्स्यान्न-देयंतस्यतद्भवेत् ॥ ११९ ॥ भ० किसी ने किसी को पठन पाठन अग्नि होत्रादिक यज्ञ सुपात्रों को देने के वास्ते वा अपने भोज-नादिक निर्वाह के निमित्त धन दिया गया कि इनके काम के हेतु हम आपको धन देते हैं सो आप इतना ही काम इससे करैं और पुण्य के वास्ते दान दिया होय फिर वह वैसा कर्म न करै कि वेश्यागमन, पानशादिक प्रमाद उस धन से करै तो उससे सब धन ले लिया जाय जिसने कि दिया था नहीं ले ले

और जो उसको वह न दे तो राजा उसको पकड़ के दण्ड से दिलादे ॥ ११९ ॥ धनुःशतंपरीहारोग्रामस्यस्यात्समन्ततः। शम्यापातास्त्रयोवापित्रिगुणोनगरस्यतु ॥ १२० ॥ म० गांव के चारों ओर १०० सौधनुष्य परिमाण से मैदान रक्खे धनुष्य होता है साढ़े तीन हाथ का अथवा कोई बलवान पुरुष एक दण्डा को लेके खूब बलसे फेंके जहां वह दण्ड पड़ उससे फिर फेंके उस स्थान से भी तीसरी बार फेंके जहां वह दण्डा जाय वहां तक मैदान रक्खे इसमें सौ धनुष्य से कुछ अधिक मैदान रहेगा और नगर के चारों ओर तिगुण मैदान रक्खे क्यों कि ग्राम वा नगर में वायु शुद्ध रहेगा इससे रोग थोड़े होंगे और पशुओं को सुख होगा इस वास्ते अवश्य इतना मैदान रखना चाहिए ॥ १२० ॥ परमंयत्नमातिष्ठेत्स्तेनानांनिग्रहेनृपः। स्तेनानांनिग्रहादस्ययशोराष्ट्रंचवर्द्धते । १२१ । म० चोरोंके निग्रह में राजा अत्यन्त यत्न करै क्योंकि चोरों और दुष्टों के निग्रह से राजा की कीर्त्ति और राज्य नित्य बढ़ते चले जाते हैं अन्यथा नहीं । १२१ । रक्षन्धर्मेणभूतानि राजावध्यांश्चघातयन् । यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ १२२ ॥ म० जो राजा धर्म नाम न्यायसे सब भूतोंकी रक्षा करता है और दुष्टों को दण्ड से मारता है वह राजा सहस्रों वा सैकड़ों रुपयों से अर्थात लक्ष और कोटि रुपयों से जानो कि नित्य यज्ञ ही करता है क्यों कि राजाका मुख्य धर्म यही है श्रेष्ठों का पालन और दुष्टोंका ताड़न करना । १२२ । अरक्षितारंराजानं बलिषड्भागहारिणम् । तमाहुःसर्वलोकस्यसमग्रमलहारकम् ॥ १२३ ॥

म० जो राजा धर्म से यथावत् प्रजा का पालन नहीं करता और प्रजा से धान्य में षष्ठांश इत्यादिक करों को लेता है वह राजा कर क्या लेता है कि सब संसार के मलों को खाता है और सब के जैसा विष्टादिकों की शुद्धि करता है चांडाल वैसा ही वह राजा है ॥१२३॥ निग्रहेणचपापानांसाधूनांसंग्रहेणच्च द्विजातयइवेज्याभिः पूज्यन्तेसततंनृपाः ॥ १२४ ॥ म० जो राजा पापी पुरुषों को अत्यन्त उग्र दण्ड देता है और श्रेष्ठोंकी रक्षा तथा सन्मान करता है वह राजा सदा पवित्र है और स्वर्गका भागी है जैसे कि द्विजाति लोग विद्या, तप और यज्ञों सेपवित्र रहतेहैं ॥१२४॥ यःक्षिप्तोमर्षयत्यार्त्तैस्तेनस्वर्गेमहीयते। यस्त्वैश्वर्यान्नक्षमतेनरकंतेनगच्छति ॥ १२५ ॥ म० जो राजा आर्त नामदुःखी लोगगाली तक भीदें तोभी सहन करताहै सोई राजा स्वर्ग में पूज्य होता है और जो ऐश्वर्य के अभिमान से किसी का सहन नहीं करता इसी से वह राजा नरक को जाता है क्योंकि जो समर्थ है उसीको सहन करना चाहिये और जो निर्बल है सो तो अपने ही से सहन करेगा ॥ १२५ ॥ राजभिर्धृतदण्डास्तुकृत्वापापानिमानवाः। निर्मलाःस्वर्गमायान्तिसन्तःसुकृतिनोयथा ॥ १२६ ॥ म० जिनके ऊपर अपराध करने से राजाओं का दण्ड होता है फिर वे इस लोक में आनन्द पाते हैं और मरने के पीछे उत्तम स्वर्गको प्राप्त होते हैं जैसेकि धर्मात्मा सुकृति लोग ॥ १२६ ॥ येनयेनयथांगेनस्तेनोनृषुविचेष्टते। तत्तदेवहरेत्तस्य प्रत्यादेशा-यपार्थिवः ॥ १२७ ॥ म० जिस २ अंगसे जैसा २ कर्म मनुष्यों

के बीच में करैं चोर लोग उस अंग को अर्थात नेत्र से चोरी करने के वास्ते चेष्टा करैं उसका नेत्र निकाल दें जो जीभ से चोरी का उपदेश करैं तो उसकी जीभ काटले पग और हाथ से किसी की वस्तु उठावैं तो राजा उसका पग हाथ काटले क्यों कि एक को दण्ड देने से सब लोग उस दुष्ट कर्म को छोड़ देते हैं दण्ड जो होता है सो सब जगत् के मनुष्यों के वास्ते उपदेश है ॥ १२७ ॥ अनेनविधिनाराजाकुर्वाणस्ते-ननिग्रहम् । यशोऽस्मिनप्राप्नुयाल्लोकेप्रेत्यचानुत्तमंसुखम्॥१२८॥ भ० इस विधि से चोरों का निग्रह करता है वह राजा इस लोक में अत्यन्त कीर्त्ति को प्राप्त होता है और मर के अत्यन्त उत्तम स्वर्ग को प्राप्त होता है इस्से चोरों का निग्रह अत्यन्त प्रयत्न से राजा करैं ॥ १२८ ॥ वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैवदण्डेनैव-चहिंसतः । साहसस्यनरःकर्त्ताविज्ञेयःपापकृत्तमः ॥ १२९ ॥ भ० जो पुरुष दुष्ट वचन कहना सिखलाता व चोरी का उपदेश है और किसी को मार डालना है छल कपट से वह साहसिक पुरुष कहाता है जैसे कि गुंडे और वैराग्यादिक संप्रदाय वाले वे सब पापियों में भी बड़े पापी हैं क्यों कि पापी तो आप ही दुष्ट होता है और जितने दुष्ट उपदेश करने वाले हैं वे सब जगत् को दुष्ट कर देते हैं इस्से ॥ १२९ ॥ भ० नमित्रका-रणाद्राजा विपुलाद्वाधनागमात् । समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्व-भूतभयावहान् ॥ १३० ॥ भ० जितने पुरुष साहसिक नाम दुष्ट कर्म करने और कराने वाले होंय अर्थात अधर्म का उपदेश, चोरी, परस्त्री, वेश्या गमन और जूवाइन को करने वाले सब

साहसिक गिन लेना उनको मित्र कारण से और उनसे बहुत धन लाभ होता होय तो भी इनको राजा न छोड़े क्योंकि सब भूतोंको भय देने वाले ये ही हैं ॥ १३० ॥ गुरुंवाबालवृद्धौवाब्राह्मणंवाबहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तंहन्यादेवाविचारयन् ॥ १३१ ॥ गुरु वा पुत्र अथवा पिता बालक वा वृद्ध वा ब्राह्मण कि सब शास्त्रोंको पढ़ा हुवा और बहुश्रुत नाम सब शास्त्र का सुनने वाला वह जो आततायी नाम धर्म को छोड़ के अधर्म में प्रवृत्त भया होय तो इन पुरुषों को मार ही डालना उचित है इसमें कुछ विचार न करना क्योंकि दण्ड ही से सब शिष्ट हो जाते हैं बिना दण्ड कोई नहीं इससे सबके ऊपर दण्ड का होना उचित है कि कोई अपराधी पुरुष दंड के बिना रहने न पावै ॥ १३१॥ परदाराभिमर्शेषुप्रवृत्तान्नॄन्महीपतिः । उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वाप्रवासयेत् ॥ १३२ ॥ स० जो पुरुष पर स्त्री गमनमें प्रवृत्त होवै वा अन्य पुरुषोंसे स्त्री लोग गमन करैं उनके ललाट में चिन्ह करके देश बाहर निकाल दे जो पहिले चोरी करै उसके ललाट में कुत्ते के पंजा की नाई लोहे का चिन्ह अग्नि में तपा के लगा दे कि मरण तक वह चिन्ह न बिगड़े फिर जो दूसरी बार वही पुरुष चोरी करै तो हाथ वा पग उसका राजा काट डालै और फिर भी चोरी करै वा करावै तो पहिले दिन नाक काट ले दूसरे दिन कान तीसरे दिन जीभ चौथे दिन नख निकाल ले पांचवें दिन आंख छठवें दिन शिर छेदन कर दे सब मनुष्यों के सामने जिस्से कि फिर चोरी की इच्छा भी कोइ न करै और जो पर स्त्री वा वेश्या के पास

गमन करैं अथवा पर पुरुषों से स्त्री लोग गमन करैं उनके ललाट में पुरुष के लिंग इन्द्रिय का चिन्ह अग्नि में तपा के लगा दे जिस्से कि मरण तक लज्जा और अप्रतिष्ठा उनकी होवे उनको देख के और कोई इन कर्मों में प्रवृत्त न होय क्योंकि ॥ १३२ ॥ तत्समुत्थोहिलोकस्यजायतेवर्णसंकरः । येनमूलहरोधर्मःसर्वनाशायकल्पते ॥ १३३ ॥ म० इन्ही कर्मों से प्रजा के मनुष्य वर्णसंकर और पापी हो जाते हैं जिस्से कि मूल सहित धर्म नष्ट हो जाता है इस्से इनके निग्रह में राजा अत्यन्त यत्न करै ॥ १३३ ॥ भर्त्तारंलंघयेद्यातुस्त्रीज्ञाति गुणद-र्पिता तांश्वभिःखादयेद्राजासंस्थानेबहुसंस्थिते ॥ १३४ ॥ म० जो स्त्री जाति और गुणों के अभिमान अथवा मूर्खता से विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुष से व्यभिचार करतीहै उसको नगर ग्राम वा देशकी स्त्रियों और पुरुषों के सामने कुत्तों से खिपवा डालै इस रीति से उस का मरण हो जाय जिस्से कि अन्य कोई स्त्री ऐसा काम कभी न करै ॥ १३४ ॥ पुमांसंदाहयेत्पापं शयनेतप्त आयसे । अभ्यादध्युश्चकाष्ठानित त्रदह्येतपापकृत् ॥१३५॥ म० जो पुरुष पर स्त्री से गमन करै उसको लोहे के पर्यंक अग्नि से तपा औरनीचे काष्ठों से अग्नि करके व्यभिचार रूप पाप करने वाले पुरुष को सोलादे उसी के ऊपर उसका शरीर दग्ध हो जाय और मर जाय यह भी कर्म सब पुरुष और स्त्रियोंके सामने ही होना चाहिये जिस्से कि सबको भय हो जाय फिर ऐसा काम कोई पुरुष न करै ॥ १३५ ॥ यस्यस्तेनःपुरेनास्तिनान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् । नसा-

हृसिकद्दण्डघ्नौ सराजाशक्रलोकभाक् ॥ १३६ ॥ भ० जिस राजा के पुर वा राज्य में चोर पर स्त्री गामी दुष्ट वचन का कहने वाला साहसिक और दण्डघ्न अर्थात् जो दण्डको न मानै ये सब नहीं है वह राजा शक्र लोक अर्थात् स्वर्ग के राज्य का भागी होता है अन्यथा नहीं ॥ १३६ ॥ एतेषांनिग्रहोराज्ञः पंचानांविषयेस्वके । साम्राज्यकृत् स्वजात्येषुलोकेचैवयशस्करः ॥ १३७ ॥ भ० जिस राजा के राज्य में पूर्वोक्त पांच दुष्ट पुरुष नहीं होते वह राजा सब राजाओं के बीच में संम्राट् चक्रवर्ती होने के योग्य है और लोगों में बड़ी कीर्तिका करने वाला है ॥१३७॥ दास्यंतुकारयनलोभाद्ब्राह्मणःसंस्कृतान्द्विजान् । अनिच्छतःप्राभवत्याद्राज्ञादण्ड्यःशतानिषट् ॥ १३८ ॥ भ० जो ब्राह्मण भी द्विज लोगों से सेवा कराते हैं उनकी इच्छा के विना उनको राजा छः सै मुद्रा दंड करै क्योंकि सेवा करना बुद्धिमान श्रेष्ठ लोगों का धर्म नहीं वह व्यवहार शूद्र ही का है क्योंकि जो मूर्ख पुरुष है वह अन्य का काम विना सेवा के क्या करेगा ॥ १३८ ॥ अहन्यहन्यवेक्षेतकर्मान्तान्वाहनानिच । आयव्ययौचनियतावाकरान्कोषमेवच ॥ १३९ ॥ भ० नित्य २ राजा सब राज कर्मों में अपने अधिकारी अमात्य चेष्टा वा कर्म वाहन हस्ती, अश्व, रथ और नौकादिक आयनाम पदार्थों का आना व्यय नाम पदार्थों का खर्च पदार्थों का समूह शस्त्रोंका समूह और धन का कोष इनको यथावत देखता रहै कि कोई पदार्थ वा कोई कर्मनष्टवाअन्यथा न होय ॥ १३९ ॥ एवंसर्वानिमान्राजाव्यवहारान्समापयन् व्यपोह्यकिल्बिषंसर्वंमाप्नोतिपरमां-

गतिम् ॥ १५० ॥ भ० इस प्रकार से सब व्यवहारों को न्याय पूर्वक जो राजा करता है वह सब पापों से छूट के परम गति जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है जिस व्यवहार को किया चाहै उसको सम्यक् विचार के करै जिस्से कि वह कार्य पूर्ण हो जाय अपूर्ण कभी न रहे ॥ १५० ॥ अनंशौक्लीवपतितौजात्यंधवधिरौतथा । उन्मत्तजड़मूकाश्च येचकेचिन्निरिन्द्रियाः ॥ १५१ ॥ भ० क्लीव नाम नपुंसक पतित नाम पापी जन्म से अन्ध तथा वधिर उन्मत्त नाम पागल जड़ नाम मूर्ख, मूक और विद्याहीन वा अजितेन्द्रिय, काम, क्रोधादिकों में ये सब दाय भाग न पावैं क्यों कि ये दाय भाग पावेंगे तो सब पदार्थों का व्यर्थ नाश कर देंगे इस्से राजा को यह बात अवश्य करनी चाहिये अपने पुत्र वा प्रजा के सन्तानों को जितने पदार्थ राज्य और धनादिक उनमें से कुछ न दिलावै और जो कोई मूर्खता वा मोहसे उनको दाय भागदेवै तो उसको राजा दंड दे और नपुंसादिकों से दिये हुये पदार्थ को लेके यथावत रक्षा करै क्यों कि मूर्खों के हाथ पदार्थ वा अधिकार आवेगा तो शीघ्र सब का नाश करके आप ही दरिद्र बन जांयगे फिर राजा के राज्य में सब दरिद्रता छा जायगी फिर राजा को भी कुछ प्राप्ति प्रजा से न हो सकेगी इस्से राज्य और धनादिक जितने प्रजाओं के पदार्थ हैं उन पदार्थों को राजा कभी न दे और न दिलावै जो सम्यक् विद्या, बुद्धि और विचार से उन पदार्थों की रक्षा में योग्य होय उसकी सम्यक् परीक्षा करके उन पदार्थोंका स्वामी उसको करदे अन्यथा नहीं ॥१५१॥

सर्वेषामपितुन्याय्यंदातुंशक्त्यामनीषिणा। ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितोह्यदद्भवेत् ॥ १४२ ॥ परन्तु उन नपुंसकादिकों को अपने सामर्थ्य के योग्य वह दाय भाग लेने वाला भोजन, वस्त्र और उनका स्थानादिक से योग क्षेम यथावत् करै जो वह भोजनादिक भी उनको न दे तो पतित हो जाय और राजा उसको दंड भी दे इससे क्या आया कि भोजन और वस्त्रादिकों के बिना वे दुःखी नर हैं और जो उनका पुत्र योग्य होय तो उसके पिता के दाय भाग को राजा दिलावै इस बात को राजा प्रयत्न से करै अन्यथा राज्यवृद्धि नहीं होगी राजा अपनी प्रजा की रक्षा और हित में सदा प्रवृत्त रहै और प्रजा भी राजा की रक्षा तथा हित में प्रवृत्त रहै जो प्रजा को आपत्काल आवै तो राजा सब प्रयत्नों से प्रजा की रक्षा करै अर्थात् राजा को आपत्काल किसी प्रकारका आवै तो प्रजास्थ सब मनुष्य राजा का सब प्रकार से सहाय करैं क्यों कि प्रजा राजा के पुत्र की नाईं होती है पिता को अवश्य चाहिये कि अपनी प्रजा की सदा रक्षा करै तथा प्रजा पुत्र की नाईं जैसे कि पिता की पुत्र रक्षा करता है वैसी राजा की प्रजा रक्षा करै और जिस बात से प्रजा को पीड़ा होय उस बातको राजा कभी न करै तथा राजा को जिस बात में दुःख होय उस बात को प्रजा कभी न करै जैसे कि जिन पशुओं वा जिस पदार्थों से सब प्रजा का उपकार होता है उनका राजा कभी विनाश न करै जैसे कि गाय, भैंस, छेरी बैल और ऊंट तथा गधादिक इन को कभी न मारै न मरवावै क्यों कि दुग्ध

घृत, अन्नादिक और सब व्यवहार इन्हीं से सब मनुष्यों का चलता है तथा राजा का भी इनका मारना दोनों को अनुचित ही है राजा भृत्य तथा युद्ध से निवृत्त कभी न होवै क्योंकि युद्ध से निवृत्त होगा तो उसी वक्त शत्रु लोग सब पदार्थोंको छीन लेंगे तथा मार डालेंगे वा अत्यन्त दुःख देंगे जब युद्ध का समय आवै तब राजा जल, अन्न मनुष्य, शस्त्र, यान सब पदार्थों की पूर्त्ति रक्खै जिससे कि किसी पदार्थ के बिना दुःख कभी न होवे और युद्ध में युद्धका आचार विचार रक्खै युद्ध करते भी जांय और खाते पीते भी जांय कुछ शंका न रक्खै उस वक्त जूते, वस्त्र, शस्त्र, धारण किये रहैं युद्ध और भोजन भी करते जांय ऐसा न करैं कि वस्त्र, जूते, शस्त्र इत्यादिक सब छोड़ के हाथ गोड़ धोके भोजन करैं तब तक शत्रु लोग मार डालैं देखना चाहिये कि युधिष्ठिर जी के राज्यसूय और अश्वमेध यज्ञमें सब समुद्र पार टापू भूगोलके सब राजा आये थे वे सब ब्राह्मण, क्षत्रियों के साथ एक पंक्ति में भोजन करते थे और विवाह भी उनका परस्पर होता था जैसे कि काबिल कंधार की कन्या गान्धारी, धृतराष्ट्र से विवाही गई थी तथा मद्री ईरान देश की राजा की कन्या पांडु से विवाही गई थी अर्जुन के साथ नाग अर्थात अमेरीका के लोगोंकी कन्या विवाही गई थी इत्यादिक व्यवहार महाभारत में लिखे हैं और शूद्र ही सब ब्राह्मण और क्षत्रियादिकों के घर में पाक कराने वाले थे जिनका नाम सूद ऐसा प्रसिद्ध था जो शूद्र पाक करने वाला होता है उसकी सूद ऐसी

संज्ञा होती थी क्यों कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वेदोविद्यापठन और पाठन तथा नाना प्रकारके पुरुषार्थ और शिल्प विद्या से पदार्थों का रचन इन्हीमें सदा प्रवृत्त रहें रसोई आदिक सेवा सब लोगोंकी शूद्रही करैं अर्थात ब्राह्मण क्षत्रिय, और वैश्य इनको भोजन एकता ही होनी चाहिये जिससेकि परस्पर प्रीति होवै और भोजन के बड़े बड़े बखेड़े हैं वे सब नष्ट हो जांय कोई परदेश को जाताहै तब पात्रादिकोंका भार गधे की नांई उठाया करता है तथा मांजना और चौका देना अन्न, काष्ठ, अग्न्यादिक को अपने हाथ से ले आना और बनाना गमनसे बड़े पीड़ित होके आये फिर भी समय के ऊपर भोजन का न होना इस्से बड़े दुःख होते हैं इस्से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इनके एक भोजन होने से किसी को किसी प्रकार का दुःख नही होगा क्यों कि शूद्र ही सब कर देगा और खिलावैं पिलावैगा परन्तु ब्राह्मणादिकों हो के पदार्थ सब पात्रादिक होवैं शूद्र के घर के नहीं शुद्ध होके बनावै और ब्राह्मणादिक विद्यादिक श्रेष्ठ पदार्थों की उन्नति करैं जिस्से कि सब सुख होवैं इस्से इस बात को राजा लोग अवश्य करैं इसके बिना उनकी उन्नति नहीं होनी है देखना चाहिये भोजन के पाखंडों से आर्यावर्त्त देश का नाश होगया ब्राह्मणादिक चौका देने लगे ऐसा चौका दियाकि राज्य, धन और स्वतन्त्रादिक सुखों के ऊपर चौका ही फेर दिया कि सब आर्यावर्त्त देश को सफाचट करदिया इस्से राजा लोगों को चाहिये कि व्यर्थ पाखंड प्रजा में न होने देवैं विवाह का जिस कालमें जैसा पूर्व

नियम लिखाहै और परीक्षा उसी प्रकारसे राजा करवावै ब्रह्म चर्याश्रम कन्या वा पुरुषका जब होजाय तभी विवाहकी आज्ञा राजादे कि यही सब सुख और धर्मका मूल है अन्य नहीं सब देश देशान्तरस्थ पुरुषों से भोजन विवाह और परस्पर प्रीति रक्खैं प्रजा में जितने धर्मात्मा, बुद्धिमान् पक्षपात रहित और सब विद्याओं में पूर्ण इनकी सम्मति से सब काम और सब नियम किया करैं कि जिसके ऊपर सब प्रजा प्रसन्न होवैं वही राजा होय उस देश के सब प्रजा उस राजा को प्रसन्न रक्खैं ऐसे सब परस्पर विद्या और सब गुणों की उन्नति करैं अर्थात् राजा और सभा की सम्मति के बिना प्रजा में कुछ कर्म न होवै और प्रजा की सम्मति के बिना सभा और राजा कुछ कर्म न करैं किन्तु दोनों की सम्मति के बिना कुछ राज कार्य न होने पावै क्यों कि इसके होने से उस देश में कभी दुःख के दिन न आवेंगे सदा आनन्द ही रहेगा ॥१४२॥ चोर दो प्रकार के होते हैं एक तो प्रसिद्ध दूसरा अप्रसिद्ध प्रसिद्ध वे हैं कि हाट धारी डांकू और पाखण्डी जैसे कि वैराग्यादिक मन्दिर रच के सब मनुष्यों से फुसलाने वा दुष्ट उपदेश बुद्धि भ्रष्ट करके धनादिक पदार्थोंका हरण कर कर लेते हैं यहां तक कि मनुष्यों को मूड़ के चेला बना लेते हैं इनको राजा दण्डसे निवृत्त करदे पूर्व पक्ष इनको दण्ड न देना चाहिये क्यों कि वे तो प्रसन्नता से धन देते और लेते हैं और प्रसन्नता से उनको देते हैं उन के दण्ड का होना उचित नहीं उत्तर इनको अवश्य दण्ड देना

चाहिये क्योंकि जैसे कोई पुरुष छोटे बालक को फुसला के वा कुछ पुष्प फल खाने की चीज हाथ में देके वस्त्र, आभूषण वा धनादिक पदार्थों को प्रसन्नता से लेलेता है और बालक भी उसको प्रसन्नता से दे देता है फिर लेके वह भाग जाता है फिर उसके ऊपर राजा दण्ड करता ही है वैसे ही जितने प्रजा में विद्या, बुद्धि, और विचार हीन पुरुष हैं वे बालक की नाईं हैं उनमें से भी प्रसाद चरणादिक कंठी, माला, छापा और तिलक एकादश्यादिक महात्म सुनाना तीर्थ नामस्मरण और स्तोत्र, पाठ इत्यादिकों को सुनाना इत्यादिक छलधनादिसे कपदार्थोंको लेते हैं फिर उनके ऊपर दण्ड क्यों न करना चाहिये किन्तु अवश्यही करना चाहिये जो राजा इनको दण्ड न देगा तो उसकी प्रजा सब भ्रष्ट हो जायगी और राज्य का भी नाश होजायगा क्योंकि वे अधर्म करते हैं और कराते हैं नाम रखते हैं धर्म और वेद का चलाते हैं पाखण्ड को इससे इस जाल को राजा अवश्य छेदन कर दे कि कोई उसके देश में पाखण्डी न रहे और न होने पावें वे पाषाणादिकों की मूर्त्तियों को बना और मन्दिर को रच के उन में उन मूर्त्तियोंको बैठाके उनका नाम शिवनारायणादिक रखते हैं कलाबत्तू झूठे वा सच्चे आभूषणों को पहिराके फिर घड़ी, घंटा, नगारा, रणसिंघा और शंख इत्यादिकों को बजा के मूर्खों को मोहित करके सब धनादिक पदार्थों को हरण कर लेते हैं जैसे कि डांकू लोग नगारादिक बजाके प्रसिद्ध धन हर लेते हैं इन ठगों को दण्ड के बिना कभी न छोड़ना चाहिए

क्यों कि ॥ अज्ञोभवतिवैबालः पिताभवतिमन्त्रदः । अज्ञंहिबालमित्याहुः पितेत्येवचमन्त्रदम् ॥ १८३ ॥ म० इसमें मनु भगवान् का प्रमाणहै कि जो अज्ञानीहै सोई बालक है और ज्ञानी अर्थात् सत्य उपदेश और विचार का करने वाला सोई पिता होता है इस्से क्या आया कि जो अज्ञानी है ,उसको बालक कहना चाहिए ॥ १४३ ॥ जितने दुकानदार प्रसिद्ध चोर उनके ऊपर भी राजा अत्यन्त दृष्टि रक्खे कि वे प्रसिद्ध चोरी कभी न करने पावैं ॥ तुलामानंप्रतीमानंसर्वस्यात्सुलक्षितम् । षट्सुषट्सुचमासेषुपुनरेव परीक्षयेत् ॥ १८४ ॥ म० तुला नाम तराजू की दण्डी और तराजू की परीक्षा करै पक्ष २ मास २ वा छटहे २ मास क्यों कि दुकानदार लोग बीच का सूत और दोनो पलले दण्डी के बीच में छेद करके पारा भर देते हैं उस्से लेते हैं तब अधिक ले लेते हैं और देते हैं तब न्यून देते हैं जब बुद्धिमान् जाय तब और भाव जब मूर्ख जाय तब और भाव ऐसा करके मूड़ लेते हैं प्रतीमान अर्थात प्रतिमा नाम छटांक आदिक उसको घटा बढ़ा लेते हैं उस्से भी अधिक लेते हैं और न्यून देते हैं फिर महाजन और साहुकार बने रहते हैं परन्तु वे बड़े ठग हैं जैसे कि व्यास अर्थात एकादशी भागवतादिकों की कथा करने वाले और मन्दिरोंके पूजारी और सम्प्रदाय वाले, वैरागी, शैव वाममार्गी, आदिक पण्डित महात्मा और सिद्ध ये तो ऊपरसे बने रहते हैं परन्तु उनको सब जगत् के ठगने वाले जानना वैश्य और ये सब प्रसिद्ध चोर हैं इन को दण्ड से राजा उपदेश करदे ऐसा दण्ड दे कि कोई इस

प्रकार का मनुष्य प्रजा में न रहने पावै तभी राजा और प्रजा की उन्नति होगी अन्यथा नहीं पुराण शब्द विशेषण वाची संज्ञा है जैसे कि पुरातन प्राचीन सनातन शब्द हैं इनके विरोधी नवीन अद्यतन अर्वाचीन इदानीन्तन शब्द विशेषण वाची हैं कि यह चीज नयी है अर्थात् पुरानी नहीं ऐसे परस्पर विशेषण विरोध से निवर्तक होते हैं तथा देवालय देवमन्दिर, देवागार, देवायतन इत्यादिक नाम यज्ञशाला के हैं क्यों कि जिस स्थान में देवों की पूजा होय उसी के ए नाम हैं देव हैं वेद के सब मन्त्र और परमेश्वर क्यों कि परमेश्वर सब का प्रकाशक है और वेद के मन्त्र भी सब पदार्थ विद्याओं के प्रकाशने वाले हैं इससे इन का नाम देव है सोई शास्त्र में लिखा है॥ यत्रदेवतोऽभ्यमेतस्तल्लिङ्गोमन्त्रः। यह निरुक्त का वचन है इस का यह अभिप्राय है कि जहां २ देवता शब्द आवै वहां २ मन्त्र ही को लेना परन्तु कर्मकांड में उपासना और ज्ञानकांड में परमेश्वर ही देव है जैसे कि अग्निमीलेपुरोहितमित्यादिक ऋग्वेद के मन्त्र हैं तथा अग्निर्देवता इत्यादिक यजुर्वेद के मन्त्र हैं इस में अग्नि देवता है इससे अग्नि शब्द देवता विशेषण पूर्वक जिस मन्त्र में होगा उससे जो अग्नि शब्द वाला मन्त्र होवै उसको ले लेना जैसा कि अग्निमीलेपुरोहितमित्यादिक यही बात व्यास जी के शिष्य जैमिनी ने कर्मकांड के ऊपर पूर्व मीमांसा एक दर्शन शास्त्र बनाया है उसमें बिस्तार से लिखी है कि मन्त्रही देव हैं और कोई नहीं उसमें इस प्रकार के दोष लिखे हैं जैसे यज्ञेनयज्ञमयजन्तदेवास्तानिधर्माणिप्रथमान्यासन्। इत्यादिक

मन्त्रों से भिन्न जो ब्रह्मादिक देव उनके भी पूजन का अत्यन्त निषेध किया है सो ठीक ही किया है क्यों कि ब्रह्मादिक देव नित्य पञ्च महायज्ञ और अग्निष्टोमादिक यज्ञों को करते हैं तब वेयजमान होते हैं फिर उन से अन्य देव कौन हैं कि ब्रह्मादिकों के यज्ञ में जिनकी पूजा की जाय वा भाग लेवैं उन के सिवाय अन्य कोई देव देह धारी नहीं है और कोई कहे कि उन्हों से अन्य देव हैं तो उनसे पूछा जाता है कि वे जब यज्ञ करैंगे तब उन से आगे भी तीसरे देव मानें जांयगे तीसरे जब यज्ञ करैंगे तब चौथे इन से आगे देव मानें जांयगे ऐसे ही अनवस्था उन के मत में आवेगी इस्से परमेश्वर और मन्त्रों ही को देव मानना चाहिए और अन्य को नहीं जब ब्रह्मादिक विद्या, सिद्ध ज्ञान, योग और सत्य वचन, गुण वालों का निषेध जैमिनीजी ने किया तो पाषाणादिक मूर्त्तियों की पूजा का निषेध अत्यन्त होगया क्यों कि पाषाणादिक मूर्त्तियों में जो देव भाव करना है सो तो अत्यन्त पामरपना है इस बात में कुछ सन्देह नहीं और जो कहे कि वे हैं तो पाषाणादिक परन्तु मेरे भाव से देव हो जाते हैं और फल भी देते हैं तो उनसे पूछना चाहिए कि आपका भाव सत्य है वा मिथ्या जो वे कहैं कि सत्य है तो दुःख का भाव और सुख का अभाव कोई नहीं चाहता फिर उनको दुःख का भाव और सुख का अभाव क्यों होता है जो अन्य पदार्थ में अन्य का भाव करना है सो मिथ्या ही है जैसे कि अग्नि में जलका भाव करके हाथ डालै तो हाथ जल ही जायगा इस्से ऐसा भाव मिथ्या ही है

और जो पाषाणादिकों को पाषाणादिक मानना और देवों को देव मानना यह भाव तो सत्य है जैसा कि अग्नि को अग्नि मानना और जलको जल इस्से क्या आया कि जो जैसा पदार्थ है उसको वैसा ही मानना अन्यथा नहीं फिर उन से पूछना चाहिए कि आप लोग भाव से पाषाणादिकों को देव बनालेते हो और उन से अपनी इच्छा के योग्य फल लेते हो तो उस भाव से आप ही देव क्यों नहीं बन जाते और चक्रवर्त्यादिक राज्य रूप फल को क्यों नहीं पाते तथा सब दुःखों का नाश रूप फल क्यों नहीं होता फिर वे ऐसा कहैं कि सुख वा दुःख और चक्रवर्त्यादिक राज्योंका पाना कर्मों का फल है यह बात तो आप लोगोंकी सत्य है कि जैसा कर्म करै वैसा ही फल होता है फिर आप लोगों ने कहा था कि पाषाणादिक मूर्त्तियों से फल मिलता है यह बात आप लोगों की झूठी होगई पूर्व पक्ष जब तक वेद मन्त्रों से प्राण प्रतिष्ठा नहीं करते तब तक तो वे पाषाणादिक ही हैं और प्राण प्रतिष्ठा के करने से वे देव हो जाते हैं उत्तर यह बात भी आप लोगों की मिथ्या है क्यों कि वेद वा ऋषि मुनियों के लिये शास्त्रों में प्राण प्रतिष्ठा का पाषाणादिक मूर्त्तियों में एक अक्षर भी नहीं तो मन्त्र कैसे होंगे जिस२ मन्त्र से प्राण प्रतिष्ठा करते कराते हो उस २ मन्त्र काआपलोग अर्थभी नहीं जानते जैसाकि प्राणदा,अपानदा उद्बुध्यास्वाग्ने, इस्से ले के प्राण प्रतिष्ठ यहां तक एक मन्त्र है सह स्रशीर्षापुरुषः शन्नोदेवीरभिष्टय प्राणंददातीतिप्राणदःपरमेश्वरः इत्यादिक अर्थ मन्त्रों का है इन पाषाणादिक मूर्त्तियों में प्राण

प्रतिष्ठा करना इस का लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं और प्राणा-इहागच्छन्तुसुखंचिरंतिष्ठन्तुस्वाहा । यह तो मिथ्या संस्कृत किसी ने रच लिया है और वेदों के मन्त्र मे भी आप लोगों के कहने की रीति से दोष आते हैं कि वेद के मन्त्रों से तो प्राण प्रतिष्ठा की जाय फिर प्राणों का मूर्त्ति में लेश भी नहीं देख पड़ता है इस्से यह बात भी न करनी चाहिए क्यों कि जो प्राण मूर्त्ति में आते तो मूर्त्ति चेतन ही बन जाती सो तो जैसी पूर्व जड़ थी वैसी ही जड़ सदा रहती है पाषाणादिक मूर्त्तियों में प्राण के जाने और आने का छिद्र भी नहीं परंतु मनुष्य जो मर जाता है उसके शरीर में सब छिद्र मार्ग प्राण के जाने और आने के यथावत् हैं उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर के क्यों नहीं जिला लेते हैं कि कोई मनुष्य कभी मरने ही न पावें ऐसा किसी का भी सामर्थ्य नहीं इस्से यह बात अत्यन्त मिथ्या है पूजा नाम सत्कार है देव पूजा होम ही से होती है अन्य प्रकार से नहीं क्योंकि मनु आदिक ऋषि लोगोंके ग्रन्थों में और वेदमें यही बात लिखी है ॥ स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि । इस पूर्वोक्त श्लोक से होम ही से देव पूजा यथावत् करनी चाहिये ऐसा सिद्ध भया कि होम जो है सोई देव पूजा है और जिन स्थानों में होम होवै उन्हीं का देवाल-यादिक नाम जानना ॥ यद्धित्तं यज्ञशीलानांदेवस्वन्तद्विदुर्बुधाः । अयज्वानान्तुयद्वित्तमासुरस्वंप्रचक्षते ॥ म० जो यज्ञ ही को नित्य करता है उसका जो धन सो देव शब्दवाच्य है जो कोई यज्ञ के वास्ते अन्य पुरुषों से धन लेके भोजन छादनादिक

उस्से करै और यज्ञ को न करै उसका नाम देवल है ॥ कुत्सितो देवलादेवलकः कुत्सिते इत्यनेनकन्प्रत्ययः। जो यज्ञ के धन की चोरी करके भोजन, छादनादिक करै उससे परस्त्री गमन वा वेश्यागमन भी करै उसको देवलक कहते हैं यह देवल से भी दुष्ट है इन दोनों का श्रेष्ठ कर्मों में देव पितृ कर्मादिक यज्ञों में निषेध है कि इनको निमन्त्रण वा अधिकार कभी न देना ऐसे ही नाम स्मरण एकादशी इत्यादिक काल काश्यादिक देश, इनका जो महात्म्य जिस किसीने लिखा है वह सब मिथ्या ही है क्योंकि वेदादिक सत्य शास्त्रों में इनका कुछ भी लेख नहीं देखने में आता और युक्ति से भी यह प्रतिमा पूजनादिक मिथ्या ही है ऐसे व्यवहारों में राजा और प्रजा को भ्रम हो सक्ता है इस निमित्त लिखा गया कि राजा और प्रजा इन भ्रमों में प्रवर्त न होवै न किसी को होने दें जितनी युद्ध की विद्या यथावत् जानें और प्रजा को जनावैं नाना प्रकार की पदार्थ विद्या तथा शिल्प विद्या को भी राजा और प्रजा सदा उसको अत्यन्त प्रकाश करैं युद्ध विद्या के दो भेद हैं एक शस्त्र विद्या दूसरी अस्त्रशस्त्रविद्या यह कहाती है कि तलवार बंदूक तोप लकड़ी पाषाण और मल्लविद्यादिकों का यथावत् जानना और चलाना दूसरे के शस्त्रों का निवारण करना और अपनी रक्षा करनी तथा शत्रु को मारना और अस्त्रविद्या यह कहती है कि जो पदार्थों के परस्पर मेलन और गुणों से होती है जैसा कि अग्नेयास्त्र ऐसे पदार्थों का रचन करैं कि वायु के स्पर्श से उस्से अग्नि उत्पन्न होवै फिर उसको फेंकने से जो जो पदार्थ

उसके समीप होय उसको वह भस्म ही कर देता है जैसे दीप सलाकाको घसने से अग्नि उत्पन्न होता है वैसेही सब अस्त्र विद्या जाननी इस प्रकारकी आर्यावर्तमें पूर्व बहुत पदार्थ रचने की उन्नतिथी जैसेकि विशल्या एक औषधि राजा लोग रख लेते थे कैसाही घाव शस्त्रसेहो जाय परन्तु उसको घसके लगाया उसी वक्त वह घाव पूर जाय और उसमें पीड़ा भी कुछ नहीं होतीथी तथा विमान अर्थात आकाशयान बहुत प्रकारोंके और जहाज समुद्र पार जाने के निमित्त तथा द्वीप, द्वीपान्तर में जाते और आते थे यह महाभारत तथा वाल्मीकी रामायण में लिखी है आर्यावर्त्त के राजाओं की आज्ञा और राज्य सब द्वीप द्वीपान्तर में था क्योंकि युधिष्ठिरादिकों के राजसूय तथा अश्वमेध में सब द्वीप द्वीपान्तर के राजा आये थे यह सभा और आश्वमेधिक पर्व में महाभारत में लिखा है जैन और मुसलमानों ने बहुत से इतिहास नष्ट करदिए इससे बहुत बात यथावत् मिलती भी नहीं बड़े बलवान तथा विद्वान् इस देश में होते थे इसी देश में भूगोल में विद्या वा आचार सब मनुष्य सीखते थे सब स्त्रियांभी आर्यावर्त्त में विद्वान होती थीं सो आजकाल आर्यावर्त्त देशवालोंकी जैसी मूर्खता और दशा है ऐसी कोई देशकी न होगी फिरभी वेदादिक सत्य विद्याओं को यथावत् पढ़ें और पढ़ावें धर्माचरण और श्रेष्ठ आचार राजा और प्रजा की परस्पर प्रीति तथा परस्पर गुण ग्रहण करें तभी मनुष्यों को आनन्द होगा अन्यथा नहीं ब्रह्मचर्याश्रम ४८, ४४, ४०, ३६, ३०, २५, वर्ष तक होगा सब

विद्याओं का ग्रहण करना वीर्य का निग्रह जितेन्द्रियता और यथावत् न्याय का करना पक्षपात छोड़के यही सब सुखों के मूल हैं मनुस्मृतिके सप्तम अष्टम औरनवम अध्यायों में राजा और प्रजा के धर्म विस्तार से लिखा है महाभारत और वेदादिकोंमें भी बहुत प्रकारसे लिखा है राजा और प्रजाओंका धर्म जो देखा चाहै सो देख ले इसमें तो हमने संक्षेप से लिखा है इसके आगे ईश्वर और वेद विषय में लिखा जायगा॥

इति श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थ प्रकाशे सुभाषा विरचिते षष्टः समुल्लास. संपूर्णः॥ ६ ॥

अथेश्वरवेदविषयंव्याख्यास्यामः॥ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्यजातःपतिरेक आसीत् सदाधार पृथिवीद्यामुतेमां कस्मैदेवायहविषाविधेम॥ १ ॥ अग्रे नाम जब कुछ जगत् उत्पन्न ही नही भया था तब एक अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावहिरण्यगर्भ अर्थात परमेश्वर ही था सो सब भूतोंका जनक और पति है दूसरा कोई नहीं सोई परमेश्वर पृथिवी से लेके स्वर्ग पर्यन्त जगत् को रचके धारण करता भया तस्मै एकस्मै परमेश्वराय देवायहविनामप्राण चित्त मनादिकों से स्तुति प्रार्थना और उपासना हम लोग नित्य करें॥ १ ॥ पूर्व पक्ष ईश्वर की सिद्धि किसी प्रकार से

नहीं हो सक्ती और ईश्वर के मानने का प्रयोजन भी कुछ नहीं क्यों कि हर्दी चूना और जल के मिलाने से एक रोरी पदार्थ हो जाता है ऐसे ही पृथिव्यादिक स्थूल भूत तथा इनके परमाणु और जीव परस्पर मिलने से सब पदार्थों की उत्पत्ति होती है जैसे कि मिट्टी जल चाक और दण्डादिक सामग्री से कुलाल घटादिक पदार्थों को रच लेता है इन से भिन्न पदार्थ की अपेक्षा नहीं वैसे ही जीव और पृथिव्यादिक भूतों से भिन्न जो ईश्वर उसके मानने का कुछ आवश्यक नहीं स्वभाव ही से सब जगत् होता है और जगत् नित्य भी है कभी इस का नाश नहीं होता फिर जगत रूप कार्य को देख के कारण जो ईश्वर उसका अनुमान करते हैं सो व्यर्थ हो गया और प्रत्यक्ष ईश्वर का कोई गुण नहीं है इससे प्रत्यक्ष भी ईश्वर के विषय में नहीं बनता जब ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं तो उपमान कैसे बन सकेगा कि इस के तुल्य ईश्वर है जब तीन प्रमाण नहीं बनते तब शब्द प्रमाण कैसा बनेगा शब्द प्रमाण मनुष्य लोग ऐसे ही परंपरा से कहते और सुनते चले आते हैं किसी ने किसी से कहा कि मैंने बन्ध्या का पुत्र सींग वाला देखा ऐसा अन्यों से कहा अन्यों ने अन्य पुरुषों से कहा ऐसे ही अन्ध परंपरावत् कहते और सुनते चले आते हैं इस्से ईश्वर की सिद्धि किसी प्रकार से नहीं हो सक्ती उत्तर पक्ष ईश्वरकी सिद्धि यथावत् होती है क्यों कि जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति मानेगा उस के मतमें यह दोष आवेगा जगत्में जितने

पदार्थ हैं उनके विलक्षण २ संयोग आकृति तथा गुण और स्वभाव देख पड़ते हैं जैसे कि मनुष्य और वानर आमका और बबूर का वृक्ष इत्यादिकोंमें विलक्षण २ गुण और आकृति देख पड़ती है इन नियमों का कर्ता कोई न होगा तो ये नियम कभी न बनेंगे क्यों कि जड़ पदार्थों में तो मिलने वा जुदा होने की यथावत् समर्थता नहीं कि उनमें ज्ञान गुण हो नहीं जो ज्ञान गुण वाला होता है वही यथावत् नियम कर सक्ता है अन्य नहीं जो जीव है सो ज्ञान वाला तो है परन्तु जीव का उतना साम-र्थ्य हो नहीं इस्से कोई पृथिव्यादि व भूत और जीव से भिन्न पदार्थ अवश्य है जो सब जगत् का करता और नियमों का नियन्ता ईश्वर अवश्य हो किन्तु स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति जो मानता है उस के मत में प्रदोष आवेंगे यह पृथिवी स्व-भाव से जो होती तो इसका करता और नियन्ता न होता इस पृथिवी से भिन्न दशवें कोश अन्तरिक्ष में दूसरी आप से आप पृथिवी बन जाती सो आज तक नहीं बनी इस्से जाना जाता है कि जीव और सब भूतों से सर्व शक्तिमान सब जगत् का कर्ता और नियन्ता परमेश्वर उसी को ईश्वर कहते हैं दूसरा दोष कि जितने परमाणु पृथिव्यादिक भूतों के हैं वे सब मिल गए अथवा इन से बिना मिले भी हैं जो कहै कि सब मिल गए तो त्रसरेण्वादिक हम को प्रत्यक्ष देख पड़ते है इस्से वह बात मिथ्या होगई और जो कहे कि कुछ मिले कुछ नही मिले भी हैं तो उनसे पूछनो चाहिए कि सब क्यों नही मिले अथवा पृथक् २ क्यों न रहे तथा एक प्रकार के रूप वाले सब पदार्थ

क्यों नहीं हुए भिन्न २ संयोग और रूप के होने से सब जगत् का कर्त्ता और नियन्ता अवश्य सिद्ध होता है तीसरा दोष उसके मतमें यह है कि कोई कर्म कर्त्ता के बिना होता है वा नहीं जो यह कहे कि बनादिकों में घासादिक पदार्थ आप ही से होते हैं उसका कर्त्ता और निमित्त कोई नहीं देख पड़ता उससे पूछना चाहिए कि पृथिव्यादिक सब भूत निमित्त हैं और सब बीज बिना कर्त्ता और नियन्ता के कभी नहीं बन सकें क्यों कि आमके बीज में जैसा परमाणुओं का मेलन कर्त्ता ने किया है वैसे ही अंकुर पत्र पुष्प फल काष्ठ और स्वाद देखने में आते हैं उस्से भिन्न जो कदली उसके अवयवस्वाद आम से कोई नहीं मिलते क्यों कि सब पदार्थों में परमाणु तो वे ही हैं फिर रचने वालेके बिना भिन्न२ पदार्थ कैसे होते इस्से जाना जाता है कि सब जगत का रचने वाला कोई पदार्थ है जो चूना, हर्दी और जल के मिलाने से रोरी होती है उस का मेलन करने वाला जब मिलाता है तब वे मिलके रोरी होती है वे आप से आप तो नहीं मिलते इस्से यह दृष्टान्त मिथ्या हो गया कुम्हार का जो दृष्टान्त दिया सोकोहारव्यानी आपने जीव को रक्खा क्यों कि ईश्वर को तो आप मानते ही नहीं सो जीव सर्वशक्तिमान नहीं क्यों कि परमाणुआदिकों का संयोग वा वियोग जीव कभी नहीं कर सक्ता जो जीव कर सक्ता तो चाहता तो सूर्य, चन्द्रादि लोकों को रच लेता सो रच सक्ता नहीं इस्से जाना जाता है कि सब जगत् का कर्त्ता और नियन्ता कोई अवश्य है जब जगत् रचा गया है तो नित्य कभी

नहीं हो सक्ता क्यों कि जब तक नहीं रचा था तब तक नहीं था और जो रचने से भया है सो कभी मिट भी जायगा बिना कर्त्ता वा कार के कर्म वा कार्य नहीं होता तो यह नाना प्रकार की रचना और इतना बड़ा कार्य जगत् कभी नहीं हो सक्ता इससे तीन प्रकार जो अनुमान है सो ईश्वर में यथावत् घटता है कि कारण के बिना कार्य कभी नहीं हो सक्ता कार्य से कारण अवश्य जाना जाता है और कर्त्ता के बिना कर्म नहीं होता इससे पूर्ववत् शेषवत् और सामान्यतो दृष्ट तीन प्रकार का अनुमान ईश्वर को यथावत् सिद्ध करता है ईश्वर के सर्वशक्तिमत्त्व दयालुता और न्यायकारित्वादिक गुण जगत् में प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं स्वाभाविक गुण और गुणी का नित्य संबंध होता है जैसा कि रूप और अग्नि का सो जैसे अग्नि का रूप देख पड़ता है और अग्नि नेत्र से नहीं देख पड़ता परन्तु हम लोग ज्ञान से अग्नि को प्रत्यक्ष देखते हैं क्यों कि अग्नि को बुद्धि से प्रत्यक्ष हम लोग न देखते तो अग्नि को ले आते और अग्नि से जितने व्यवहार होते हैं उनमें प्रवृत्त कर्त्ता न होते इससे जैसा अग्नि हम को प्रत्यक्ष है गुण और गुणी के ज्ञान से वैसे परमेश्वर भी प्रत्यक्ष है जो धर्मात्मा और योगी पुरुष होते हैं उनको परमाणु जीव और परमेश्वर भी यथावत् प्रत्यक्ष होते हैं जो कोई इस में संदेह करै सो करके देखले उपमान प्रमाण तो परमेश्वर में नहीं हो सक्ता क्यों कि परमेश्वर के सदृश कोई पदार्थ नहीं जिसकी उपमा परमेश्वर में हो सकै परन्तु परमेश्वर की उपमा परमेश्वर ही में हो सक्ती है ऐसा जगत् में व्यहार देखने में

आता है कि आप के तुल्य आप ही होवे वैसे हम लोग भी कह सक्ते हैं कि परमेश्वर के तुल्य परमेश्वर ही है और कोई नहीं जब तीन प्रमाणों से ईश्वर की सिद्धि हो गई तो शब्द, माण भी अवश्य होगा सो शब्द प्रमाण इस प्रकार का लेना ॥

दिव्योह्यमूर्त्तःपुरुषःसबाह्याभ्यन्तरोह्यजः । अप्रमाणोह्यमनाः शुभ्रोऽक्षरात्परतःपरः ॥ २ ॥ दिव्य नाम सब जगत्का प्रकाशक अमूर्त्त निराकार और सदा अशरीर पुरुष नाम सब जगह में पूर्ण सोई बाहर और भीतर एक रस अजकभी जिसका जन्म नही होता अप्राणनाम किसी प्रकार की चेष्टा चालीला नहीं करता अमना नाम राग द्वेष संकल्पविकल्पादिक दोष रहित अक्षर जो जीव उससे परे जो प्रकृति उससे भी परमेश्वर श्रेष्ठ और पर है ॥ २ ॥ नतत्रसूर्योभातिनचन्द्रतारकंनेमाविद्युतोभान्तिकुतोऽयमग्निः । तमेवभान्तमनुभातिसर्वंतस्यभासासर्वमिदंविभाति ॥ ३ ॥ मन्त्र० उस परमेश्वरमें सूर्य, चन्द्र, तारे, बिजली और अग्नि एकुछ भी प्रकाश नहीं कर सक्ते किन्तु सूर्यादिकों को परमेश्वरही प्रकाशते हैं सब जितना जगत् है उसके प्रकाश से प्रकाशित होता है परमेश्वर का प्रकाशक कोई नहीं ॥ ३ ॥ अपाणिपादोजवनोगृहीता पश्यत्यचक्षुः शृणोत्यकर्णः । सवेत्तिविश्वंनचतस्यास्तिवेत्तातमाहुरग्र्यं पुरुषंपुराणम् ॥ ४ ॥मन्त्र० । परमेश्वर निराकार है परन्तु उसमें शक्तियां सब हैं हाथ परमेश्वर को नहीं है परन्तु हाथ की शक्ति ऐसी है कि सब चराचर को पकड़ के थांभ रक्खा है तथा पाद नहीं है परन्तु सब से वेग वाला है नेत्र नही है परन्तु चराचर को यथावत्

सब काल में देख रहा है कान नहीं है परन्तु चराचर की बात सुनता है मन, बुद्धि चित्त और अहङ्कार तो नहीं है परन्तु मनन निश्चय और स्मरण अपने स्वरूप का आपही जानने वाला है और वह सब को जानता है परन्तु उसको कोई नहीं जान सका कि इतना बड़ा या इस प्रकार का या इतना सामर्थ्य उसमें है ऐसा कोई नहीं जान सका उस परमेश्वर को ज्ञानी और शास्त्र सर्वोत्कृष्ट पूर्ण और सनातन कहते हैं॥ ४॥ अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसन्नित्यमगन्धवच्चयत्। अनाद्यनन्तमहतःपरंध्रुवंनि-चाय्यतंमृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥ ५॥ मन्त्र॰ वह परमेश्वर अशब्द अर्थात् कहने और सुनने मात्र में नहीं जाना जाता बिना उसके आज्ञापालन विज्ञान प्रीति और योगाभ्यास के स्पर्श रूप रस और गन्ध परमेश्वर में नहीं इससे परमेश्वर का ज्ञान सहस्रों पुरुषों में किसी को होता है सबको नहीं वह कैसा है अनादि और अनन्त जिसका आदि कारण अथवा अन्त कोई नहीं देख सका क्यों कि उसका मरण वा अन्त नहीं है तो कैसे कोई देख सकै परमेश्वर बुद्धि से भी सूक्ष्म और परे है जो कोई परमेश्वरको जानता है सो जन्ममरणादिक सब दुःखों से छूटके परमेश्वरको प्राप्त होता है फिर कभी उस को दुःख लेश मात्र भी नहीं होता॥ ५॥ समाधिनिर्धूतमलस्यचे-तसोनिवेशितस्यात्मनियत्सुखंभवेत्। नशक्यतेवर्णयितुंगिरा-तदास्वयंतदन्तःकरणेनगृह्यते॥ ६॥ म॰ जिस पुरुष का धर्मा-चरण विद्या और समाधि योग से चित्त शुद्ध हो जाता है

उसका चित्त परमेश्वर के ज्ञान में और प्राप्ति के योग्य होता है जब समाधि योग में चित्त और परमेश्वर का योग होता है उस वक्त ऐसा आनन्द उस जीवको होता है कि कहने में नहीं आता क्योंकि वह जीव अपने अन्तःकरण अर्थात बुद्धि ही से ग्रहण करता है वहां तीसरा कोई नहीं है कि जिस्से कहैं कि फिर जागृतावस्था कहने में भी नहीं आता क्यों कि वह परमेश्वर उसका आनन्द और उसको जानने वाला जीव तीनों अद्भुत पदार्थ हैं इस्से वह सब आनन्द कहने में नहीं आता ॥ ६ ॥ आश्चर्योऽस्यवक्ताकुशलोऽस्यलब्धा । आश्चर्योऽस्यज्ञाताकुशलानुशिष्टः ॥ ७ ॥ मन्त्र० परमेश्वर का वक्ता और प्राप्ति होने वाला दोनों आश्चर्य पुरुष हैं क्यों कि आश्चर्य जो परमेश्वर उसको जानने वाला भी आश्चर्यही होता है जिसको ब्रह्मवित् पुरुषोंका उपदेश हुआ होय और आने भी सब प्रकार से विद्यावान शुद्ध और योगी तब परमेश्वर को जान सक्ता है सो भी आश्चर्य है अन्यथा नहीं ॥ ७ ॥ सर्वेवेदायत्पदमामनन्तितपांसिसर्वाणिचयद्वदन्ति यदिच्छन्तोब्रह्मचर्यंचरन्ति तत्ते पदंसंग्रहेणब्रवीम्योमेतत् ॥ ८ ॥ जिस पद अर्थात् परमेश्वर सब वेद अभ्यास पुनः पुनः उसी होका कथन करते हैं अर्थात् वे परमेश्वर ही को कहते हैं और उसके वास्तेही है जिसकी प्राप्ति की इच्छा से मनुष्य लोग ब्रह्मचर्यसे यथावत् विद्या पढ़ते हैं कि हम लोग परमेश्वर को जानें उसकी प्राप्ति के विना अनन्त सुख और सब दुःख की निवृत्ति नहीं होती यही बात यमराजनचिकेता से कहते हैं कि हे नचिकेता जो

ओङ्कार का अर्थ है सोई परब्रह्म है ॥ ८ ॥ एकोदेवःसर्वभूतेषु गूढ़ःसर्वव्यापीसर्वभूतान्तरात्मा। सर्वाध्यक्षःसर्वभूताधिवासः साक्षीचेताकेवलोनिर्गुणश्च ॥ ६ ॥ मन्त्र एक जो अद्वितीय परमेश्वर ब्रह्म है सोई सब भूतों में गूढ़ है अर्थात गुप्त कि सब जगह में व्याप्त है फिर मूढ़ लोग उसको नहीं जानते सब भूतों का अंतरात्मा कि निकट से भी निकट सब संसार का वही है अध्यक्ष नाम स्वामी और सब भूतों का निवास स्थान सबसे श्रेष्ठ सबके ऊपर विराजमान सबका साक्षी कि कोई कर्म जीव का उससे बिना जाना नहीं रहता किन्तु सब जानते हैं चेतन स्वरूप और केवल अर्थात उसमें कुछ भी नहीं मिलता है एक रस चेतन स्वरूप ही है जैसा दूध में जल मिला रहता है वैसा नहीं जितने अविद्या जन्म, मरण हर्ष, शोक क्षुधा, तृषा, तमोरजः और सत्वगुणादिक जगत के हैं उनसे सदा भिन्न होनेसे परमेश्वर निर्गुण है और सच्चिदानन्द सर्व शक्तिमत्वदयालुन्यायकारित्व और सर्वज्ञादिक गुणों से सदासगुण हैं ॥ ६ ॥ नतस्यकार्यंकरणंचविद्यतेनतत्समश्चा-भ्यधिकश्चदृश्यते। परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयतेस्वाभाविकी ज्ञानबल क्रियाच १० ॥ मन्त्र परमेश्वर सदा कृत कृत्य है उसको कर्तव्य कुछ नहीं कि इसको करनेके बिना हमको सुख नहीं होगा ऐसा नहीं करना जैसा कि चक्षु के बिना रूप नहीं देख सक्ता ऐसा भी परमेश्वर में नहीं किन्तु विविध शक्ति स्वाभाविक अनन्त सामर्थ्य परमेश्वर का सुना जाता है कि अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त क्रिया परमेश्वर में स्वा-

भाविक ही है इसमें कुछ सन्देह नहीं क्यों कि परमेश्वर के तुल्य वा अधिक कोई नहीं ॥ १० ॥ एषसर्वेषुभूतेषुगूढात्मान-प्रकाशते । दृश्यतेत्वग्र्ययाबुध्या सूक्ष्मयासूक्ष्मदर्शिभिः ॥ ११ ॥ मन्त्र यह जो परमेश्वर सब भूतों से सूक्ष्म व्यापक और गुप्त है इस्से मूढ़ जो विज्ञान और योगाभ्यास हीं उनकी बुद्धि में नहीं प्रकाशित है जितने सूक्ष्मदर्शी यथावत् विद्वान् उनकी शुद्धि और सूक्ष्म जो बुद्धि, विद्या, विज्ञान, योगाभ्यास से होता है उस्से परमेश्वरको वे यथावत् जानते हैं अन्यथा नहीं ॥ ११ ॥ तदेजतितन्नैजतितद्दूरेतद्वन्तिके । तदन्तरस्यसर्व-स्यतदुसर्वस्यास्यबाह्यतः ॥ १२ ॥ मन्त्र सोई परमेश्वर प्राणा-दिकोंको चेष्टा करता है और आप अचल ही है वह अधर्मात्मा और मूढ़ पुरुषों से अत्यन्त दूर है और धर्मात्मा विज्ञान वाले पुरुषों से अत्यन्त निकट अर्थात उनका अन्तर्यामी ही है सोई ब्रह्म सब जगत् के बाहर भीतर और मध्य में पूर्ण है ॥ १२ ॥ अनेजदेकम्मनसोजवीयोनैनद्देवाआप्नुवनपूर्वमर्षत् । तद्धावतो-न्यानत्येतितिष्ठत्तस्मिन्नपोमातरिश्वादधाति ॥ १३ ॥ मन्त्र यह ब्रह्म निष्कंप निश्चल है परन्तु मन से भी वेगवाला है इस ब्रह्म को देव अर्थात् चक्षुरादिक इन्द्रियां प्राप्त नहीं होती क्यों कि इन्द्रिय और मन का वही आत्मा है सो आत्मा का ग्राह्य जो शरीर सो उसको कभी नहीं देख सक्ता वह आत्मा तो सबको देख सक्ताही है और मन वेग से जहां २ जाता है वहां २ व्या-पक होने से परमेश्वर आगे देख पड़ता है सो परमेश्वर जितने वेग वाले हैं उनको उल्लङ्घन कर लेता है अर्थात परमेश्वर के

कोई गुण के तुल्य वा अधिक किसी का गुण सामर्थ्य नहीं सो परमेश्वर स्थिर व्यापक और चेतन उसके सत्ता से उसमें ठहरा भया मातरिश्वा अर्थात् माता जो आकाश उसमें चलने और रहने वाला जो प्रमाण सो चेष्टादिक सब कर्मों का कर्ता है अन्यथा नहीं ॥ १३ ॥ यस्मिन्सर्वाणिभूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्रकोमोहःकःशोकएकत्वमनुपश्यतः ॥ १४ ॥ मन्त्र जिस परमेश्वर के जानने से सब भूत प्राणि मात्र आत्मा के तुल्य हो जाते हैं कि किसी भूतसे न राग और न द्वेष उसको कभी राग और नहीं होने करो कि वह एक जो अद्वितीय उस परमेश्वर में स्थिर ज्ञान वाला जो पुरुष उनको किसी में मोह वा किसी से क्या शोक अर्थात उसको कभी मोह वा शोक होता ही नहीं ॥ १५ ॥ वेदाहमेतपुरुषम्महान्तमादित्यवर्णन्तमसःपरस्तात् तमेवविदित्वातिमृत्युमेतिनान्यः पन्थाविद्यतेयनाय ॥ १५ ॥ मन्त्र जो ब्रह्मवित् पुरुष उसका यह अनुभव है कि पूरण सब से बड़ा प्रकाशस्वरूप और सबका प्रकाश जन्म मरण सुख दुःख और अविद्या जो तम उससे भिन्न उस परमेश्वर को जानता हूं सब दुःख से छूट के परमानन्द उसको जानने से यथावत प्राप्त भया हूं उसीको जानके अतिमृत्यु जो परमेश्वर कि जिसमें जन्म मरणादिक दुःखों का लेशमात्र भी नहीं अर्थात मोक्ष पद का प्राप्त होता है और कोई इससे भिन्न मोक्ष का मार्ग नहीं ॥ १५ ॥ सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषीपरिभूःस्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यःसमाभ्यः ॥ १६ ॥ मन्त्र सो परमेश्वर सब

पदार्थों में एक रस अद्वितीय पूर्ण है सब जगत् कर्ता स्थूल सूक्ष्म और अकाय अर्थात् जागृत और सुषुप्ति इन तीन शरीर रहित शुद्ध निर्मल सर्व दोष रहित जिसको पाप का लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं सर्वज्ञ सर्व विद्वान् अनन्त जिसका विचार और ज्ञान सबके ऊपर विराजमान स्वयंभू नाम जिसकी कभी उत्पत्ति न होय आप से आपही सदा सनातन होवे जिन्नेवेद रूप सर्वज्ञ विद्या का हिरण्य गर्भादिक शाश्वत नाम निरन्तर प्रजाओं का अर्थों का अर्थात् वेदों का यथावत् उपदेश किया है उस परमे की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये इतना संक्षेप से संहिता और ब्राह्मणोंके मन्त्रों से शब्द प्रमाण लिख दिया सो जान लेना पूर्वपक्ष परमेश्वर रागीहै वा विरक्त वा उदासीन जो रागी होगा तो दुःखी वा असमर्थ होगा सदा जो विरक्त होगा तो कुछ भी न करेगा और संसार का धारणभी न होगा और जो उदासीन होगा तो अपने स्वरूपस्थ साक्षीवत् रहेगा अर्थात् बद्ध जो ईश्वर होगा तो कभी रच सकेगा नहीं मुक्त होगा तो जगत् को ही रचेगा नहीं इस्से ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती उत्तर परमेश्वर रागी नहीं क्यों कि अपने से उत्तम कोई पदार्थ नहीं है कि जिसमें राग करै अपने स्वरूप में अपना राग कभी नहीं बनता सर्वव्यापी के होने से अप्राप्त पदार्थ ईश्वर को कोई नहीं तथा सर्वशक्तिमान् के होने से भी राग ईश्वर में नहीं बन सकता विरक्त भी ईश्वर नहीं क्योंकि पहिले जो बद्ध होता है सोई बन्धन के छूटने से विरक्त कहाताहै सो ईश्वर को बन्धन

तीनों कालमें भी नहीं भया फिर उसको विरक्त कैसे कहें सर्क उदासीन भी वह होता है कि पहिले बन्धनमें होय पीछे ज्ञान के होने से उदासीन होजाय ऐसाईश्वर नहीं ईश्वर की अचिन्त्य शक्ति है कि सबमें रहै और किसी का भी लेशमात्र संग दोष न लगे इस्से ऐसी शंका जीव के बीच में घट सकती है ईश्वर में नहीं पूर्व पक्ष जितने पदार्थ हैं वे सब सन्देह युक्त ही हैं निश्चय यथावत् एक का भी नहीं होता उत्तर आपने यह बात कही सो निश्चित है वा नहीं जो कहो कि निश्चित है तो सब पदार्थ सन्देह युक्त नहींभये आपकी बात निश्चित होने से और जो आप कहैं कि यह मेरी बात भी निश्चित नहीं तो आप की बात का प्रमाण ही नहीं हुआ क्यों कि लक्षणप्रमाणाभ्यां पदार्थसिद्धिः। लक्षण और प्रमाणों के बिना किसी पदार्थ की निश्चित सिद्धि नहीं होती आपने सब पदार्थों में सन्देह सिद्ध कहा सो किस प्रमाण से उसकी सिद्धि होती है किसी प्रमाण से सन्देह को आप सिद्ध किया चाहोगे तो उस प्रमाण में भी आपका निश्चय नहीं होगा क्यों कि आप सब पदार्थों को सन्देह युक्त कह चुके हैं इससे आपका सन्देह ही सन्देह नष्ट हो गया फिर आप किसी व्यवहार में प्रवर्त्त न हो सकोगे जैसे कि गमन भोजन, छादन, देखना सुनना इत्यादि कभी सन्देह युक्त होने से प्रवृत्ति भी इनमें न होनी चाहिये प्रवृत्ति तो आप करते ही हैं इससे आपने जो कहा कि सब व्यवहार और सब पदार्थ सन्देह युक्त ही हैं यह बात आप की मिथ्या हो गई इससे क्या आया कि लक्षण

और प्रमाणों से जो निश्चित पदार्थ होता है उसको निश्चित ही मानना चाहिये इसमें सन्देह करना व्यर्थ ही है सो प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से ईश्वर की यथावत् सिद्धि होती ही है उस को मानना चाहिये प्रश्न पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, इन चारों के मिलने से चेतन भी उसमें होता है जब वे पृथक् २ हो जाते हैं तब सब कला बिगड़ जाती हैं फिर उसमें कुछ नहीं रहता इससे जगत् का रचने वाला कोई नही आप से आपही जगत् और जीव होता है उत्तर आप भी इन चारों को मिला के जीव और जीव के जितने गुण उनको देखला देवैं सो कभी नहीं देख पड़ेंगे क्योंकि पहिले ही से सब स्थूल भूतों में सब सूक्ष्म भूत मिले रहे हैं फिर उनमें ज्ञानादिक गुण क्यों नहीं देख पड़ते इससे जीव पदार्थ इन भूतों से भिन्न ही है जिसके ये गुण हैं॥ इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गम ॥ यह गौतम मुनि का सूत्र है इसका यह अभिप्राय है कि इच्छा किसी प्रकार का चाहना जिसके गुणों को जानता है उस की प्राप्ति की चाहना करता है जिसमें दोषों को जानता है उसमें द्वेष अर्थात् चाहना नही करता प्रयत्न नाना प्रकार की शिल्पविद्यासे पदार्थोंका रचना शरीर तथा भारका उठाना इसका नाम प्रयत्न है सुख नाम अनुकूलका चाहना और जानना दुःख प्रतिकूल का जानना और छोड़नेकी इच्छा करना ज्ञान जैसा जो पदार्थ है उसका तत्त्व पर्यन्त यथावत् विवेक करना इसकानाम जीव है ये गुण पृथिव्यादिक जड़ोंके नहीं किन्तु जीव ही के है लिंग शरीर बुद्धि जिससे जीव निश्चय करता है बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्य-

मर्थान्तरम् । यह गौतम जी का सूत्र है बुद्धि उपलब्धि और ज्ञान ये तीनों नाम एक ही पदार्थ के हैं मन जिससे एक पदार्थ को विचारके दूसरे का विचार करताहै ॥ युगपज्ज्ञाना नुत्पत्तिर्मनसोलिंगम् । यह गौत० जिस्से एक पदार्थ ही को एक काल में ग्रहण करता है एक को ग्रहण करके दूसरे का दूसरे काल में ग्रहण करता है एक काल में दोनों का नहीं इसका नाम मन चित्त जिस्सेकि जीव पूर्वापरका स्मरण करता है जो कि पहिले देखा और सुना था इसका नाम चित्त है अहङ्कार जिस्से अभिमान जीव करता है ये चार मिल के अन्तःकरण कहाता है इस्से जीव भीतर मनो राज्य करता है ये चारों एक ही हैं परन्तु व्यापार भेद से चार भिन्न २ नाम हैं बाह्यकरण जिस्से किबाहर जीव व्यापार करता श्रोत्र जिस्से शब्द सुनाताहै त्वचा जिस्से स्पर्श जानताहै नेत्र जिस्से रूपको जानताहै जिह्वा जिस्से रस को जानताहै नासिका जिस्से गन्ध को जानता है ये पांच ज्ञान इन्द्रियां हैं इनसेजीव बाह्य पदार्थों को जानता है वाक् जिस्से शब्द बोलता है पाद जिस्से गमन करता है हस्त जिस्से ग्रहण करता है वायु जिस्से मल का त्याग करता है लिंग जिससे मूत्र और विषय भोग करता है येपांच कर्मेन्द्रियहैं इनसे जीवबाह्यकर्म करता है प्राण जिस्से ऊर्द्ध चेष्टा करता है अपान जिस्सेअधोचेष्टा करता है व्यान जिस्से सब सन्धियों में चेष्टा करता है उदान जिस्से जल और अन्न को कण्ठ से भीतर आकर्षण कर लेता है समान जिस्से नाभिद्वार सब रसोंको सब शरीर में प्राप्त कर देता है

ये पांच मुख्य प्राण कहाते हैं नाग जिस्से डकार लेता है कूर्म जिस्से नेत्र को खोलता और मून्दता है कृकल जिस्से छींकता है देवदत्त जिस्से जम्भाई लेता है धनञ्जय जिस्से शरीर की पुष्टि करता है और मरे पीछे शरीर को नहीं छोड़ता जो कि मुरदे को फुलाता है ये पांच उपप्राण हैं ये दश एक ही हैं परन्तु क्रिया भेद से दश नाम भये हैं ये २४ तत्व मिल के लिंग शरीर कहाता है कोई उपप्राण को नहीं मानता उसके मत २६ होते हैं और कोई पांच सूक्ष्म भूत जो कि परमाणु रूप हैं और पूर्वोक्त चार भेद अन्तःकरण के इन नव तत्वों को लिंग शरीर कहाता है इस लिंग शरीर में जो अधिष्ठाता कर्ता और भोक्ता उसको जीव कहते हैं जो कि एक काल में सब बुध्यादिकों के किये कर्मों का अनुभव करता है चेतन स्वरूप है उसका नाम जीव है उसकी अधिक व्याख्या मुक्ति के प्रकरण में किई जायगी सो जीव भिन्न पदार्थ ही है चारों के मिलाने से जीव के गुण और जीव कभी नहीं उत्पन्न होता इससे यह बात कही थी कि चारों के मिलने से जीव भी होता है यह बात खण्डित हो गई प्रश्न ईश्वर सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी है जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है वैसे ही जीव पाप वा पुण्य करेगा फिर जीव को दण्ड क्यों होता है क्योंकि उससे अन्यथा जीव कुछ नहीं कर सकता जो अन्यथा जीव करेगा तो ईश्वर का सर्वज्ञान नष्ट हो जायगा इससे जैसा ईश्वर ने पहिले ही निश्चय कर रक्खा है वैसा जीव करता है ईश्वर जानता भी है फिर आपसे उसको निवृत्त क्यों नहीं कर देता जो निवृत्त

नहीं कर देता तो दण्ड क्यों देता है उत्तर ईश्वर है अत्यन्त दयालु जब जीवों को ईश्वर ने रचा तब विचार करके सबको स्वतन्त्र ही रख दिये क्योंकि परतन्त्र के रखने से किसी को कभी सुख नहीं होता जैसे कि कोई अपनी इच्छा से मरण तक एक स्थान में रहता है तोभी इसमें उसको कुछ दुःख नहीं मालूम होता उसको जो कोई एक घड़ी भर पराधीन बैठाय रक्खै तो बड़ा उसको दुःख होता है इस्से परमेश्वर ने सब जीव स्वतन्त्र रक्खे हैं जो चाहता तो परतन्त्र भी रख सक्ता परन्तु परमेश्वर बड़ा दयालु और कृपासागर है इससेसब स्वतन्त्र रक्खे हैं परन्तु आज्ञा ईश्वर की है कि जो जैसा कर्म करैगा वह वैसा फल भोगेगा सो आज्ञा उसकी सत्य ही है इस्से क्या आया कि कर्मों के करने और पुण्यों के फल भोगने में जीव स्वतन्त्र है और पापों के फल भोगनेमें पराधीन हैं जीव कर्मों के करने वाले और भोगने वाले हैं जैसा जीव कर्म करेगा वैसा ही ईश्वर ने ज्ञान से निश्चय पहिलेही किया है और भोक्ता वही है त्रिकाल ज्ञान में ईश्वर स्वतन्त्र और अपने कर्मों के करने में तथा भोगने में जीव स्वतन्त्र हैं प्रश्न जीवका निज स्वरूपक्या॥ उत्तर विशिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्याम् । यह कपिलमुनि जी का सूत्रहै इसका यह अभिप्राय है कि जैसा अयना मिट्टी से बनता है परन्तु शुद्ध के होने से जो उसके साम्हने पदार्थ होगा सो उसमेंयथावत् देख पड़ेगा अथवा लोहे को अग्नि में रखने से अग्नि के गुण वाला होता है उन दोनों में प्रतिबिम्ब था अग्नि भिन्न है क्योंकि उन

से पृथक् भी वे देख पड़ते हैं और हो भी जाते हैं इस्से दर्पण और लोहे से व्यतिरिक्त हैं अर्थात् जुदे हैं और जो केवल जुदे होते तो इनके गुण दर्पण और लोहे में न होते इस्से उनमें अन्वय भी उन का देख पड़ता है वैसे ही लिंग शरीर जो है उसका अधिष्ठाता है सोई जीव है दर्पण के तुल्य अन्तःकरण शुद्ध है स्थूल देह बाहर का है और जिस में गाढ निद्रा होती है सत्व रजो और तमोगुण मिलके प्रकृति कहाती है जिस का नाम अव्यक्त परम सूक्ष्म भूत और प्रधान भी है वह कारण शरीर कहलाता है सो सब प्राणियों का व्यापक के होने से एक ही दोनों के बीचमें मध्यस्थ लिंग शरीर है चेतन एक जीव और दूसरा परमेश्वर ही है तीसरा कोई नहीं सो परमेश्वर है विभु व्यापक सर्वत्र एक रस जहां २ लिंग शरीर विशिष्ट जीव रहता है वहां २ परमेश्वर ही पूर्ण है सो लिंग शरीर में उसका सामान्य प्रकाश है और विशेष प्रकाश चेतन हो का जीव है जैसे दर्पण मे सूर्य का विशेष प्रकाश होता है सो परमेश्वरका सदा संयोग रहता है वियोग कभी नहीं इस्से परमेश्वर के अन्वय होने से वह चेतन नहीं है वह जीव कहलाता है और लिंग देह से परमेश्वर भिन्न के होने से पृथक् भी है क्यों कि लिंग शरीर से युक्त जीव स्वर्ग नर्क जन्म और मरण इत्यादिकों में भ्रमण करता है परन्तु परमेश्वर निश्चल है उसके साथ भ्रमण नहीं करते हैं और उसके गुण दोषोंके भोग वा संगी कभी नहीं होते हैं कारण शरीर के ज्ञान लोभ और क्रोधादिक गुण भी जीव में आते हैं और स्थूल शरीर के शीतोष्णक्षुधा तृषादिक गुण

भी जीव में आते हैं क्यों कि दोनों शरीर के मध्यस्थवर्ती जीव हैं इस्से दोनों शरीरों के गुण का भी संग जीव करता है इसका स्पष्ट अन्य व्याख्यान मुक्ति और बन्धके विषयमें किया जायगा प्रश्न ईश्वर व्यापक नहीं हो सक्ता क्यों कि जितने परमाण्वादिक पदार्थ हैं वे जहां रहते हैं उतने अवकाश को ग्रहण अवश्य करते हैं फिर उसी अवकाश में दूसरे परमाणु वा ईश्वर की स्थिति कभी नहीं हो सक्ती और उसके बाच में अन्य पदार्थ भी रहैं तो वह परमाणु ही नहीं क्यों कि बहुत पदार्थोंके संयोग से बिना संधिवापोल उसमें नहीं हो सक्ता सब वियोग की अन्तावस्था जो है उस को परमाणु कहते हैं कि फिर जिस का बिभाग हो सके उत्तर ईश्वर व्यापक है क्यों कि परमाणु से भी सूक्ष्म है जैसे त्रिसरेणु के आग संयोग वा वियोग बुद्धि से हम लोग जानते और रहते हैं वैसे ही परमाणु का वियोग भी बुद्धि से कर सक्ते हैं और ईश्वर की बिभुता भी ज्ञान से जान सकते है क्यों कि परमेश्वर बिभु न होते तो परमाणु का रचन संयोग वियोग और धारण भी न कर सकते फिर परमाणु का धारण भी कैसे होता जैसे पुष्प में गन्ध दूध में घृत घृत से स्वाद और गन्ध और उन सब पदार्थों में आकाश नाम पोल ये सब व्यापक हैं उन २ पदार्थोंमें वैसे परमेश्वर भी परमाणु और प्रकृत्यादिक तत्त्वों में व्यापक ही है प्रश्न अच्छा ईश्वर सिद्ध और व्यापक भी हो परन्तु उसकी उपासना प्रार्थना और स्तुति करनी आवश्यक नहीं क्यों कि कोई व्यवहार ईश्वरके सम्बन्धका प्रत्यक्ष नहीं देख पड़ता इस्से ईश्वर अपनी

ईश्वरता में रहे और हम जीव लोग अपनी जीवता में रहैं उत्तर ईश्वर की उपासना प्रार्थना और स्तुति अवश्य सब जीवों को करनी चाहिए जैसे कि कोई किसी का उपकार करै उसका प्रत्युपकार उसको अवश्य करना चाहिए जो प्रत्युपकार नहीं करता सो अवश्य कृतघ्न होता है क्यों कि उसने उसके साथ भलाई किया और उसने उसके साथ बुराईकी जैसा उसने सुख दिया था फिर उसने उसको सुख कुछ नहीं दिया वा उसने विरोध ही करलिया इस्से वह पुरुष कृतघ्न होता है जैसे माता पिता और कोई स्वामी जिसका पालन करते हैं वे केवल अपने उपकार के हेतु कर्ते हैं कि यह भी मेरा पालन समर्थ हो के करेगा जब वह पुत्र वा भृत्य यथावत् पालन नहीं करता संसार में सज्जन लोग उस को कृतघ्न कहते हैं जो माता और पिता अथवा स्वामी उनका पालन करते हैं जिन पदार्थोंसे वे घृत जल पृथिवी और अन्नादिक सब परमेश्वर के रचे हैं जो जिस को रचता है वही उसका माता पिता और मुख्य स्वामी होता है उन पदार्थों से अपना वा पुत्रादिकों का पालन वे करते हैं जैसे किसी ने अपने भृत्य से कहा कि तूं इसकी सेवा कर वा मेरे इस पदार्थ को लेके उसको देओ जब वह सेवा वा पदार्थ को प्राप्ति होवै तब पदार्थ दाता स्वामीके ऊपर वह प्रीति करै वा भृत्यके किन्तु पदार्थदाता स्वामी हीसे प्रीति करेगा भृत्यसे नहीं किन्तु जिसका पदार्थ होवै उसी से प्रीति करना चाहिये जैसे युद्ध में जय वा पराजय राज्य की प्राप्ति अथवा हानि राजा की हानीहै भृत्यों की नहीं वैसेही परमेश्वर का जगत् है जगत्

में जितने पदार्थ हैं उनका स्वामी परमेश्वर ही है इससे परमेश्वर की अत्यन्त प्रीति से स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये अन्य किसी की नहीं सेवा तो माता पिता और विद्या का देने वाला श्रेष्ठ और सुपात्र की भी करनी चाहिये और जो ईश्वर की उपासना न करेगा वह कृतघ्न हो जायगा क्योंकि ईश्वर ने हम लोगों पर अनेक उपकार किये हैं जितने जगत् में पदार्थ रचे हैं वे सब जीवों के सुख के हेतु रचे हैं और जीवों को स्वतन्त्र कर्म करने में रख दिये हैं इसमें यह यजुर्वेद का प्रमाण है ॥ कुर्वन्नेवेहकर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः। एवन्त्वयिनान्यथेतोऽस्तिनकर्मलिप्यतेनरे ॥ इसका यह अभिप्राय है कि जीव स्वतन्त्र आपही आप कर्म करता है सो इस संसार में आपही आप कर्म कर्त्ता हुआ ॥ १०० सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करै परन्तु अधर्म कभी न करै सदा धर्म ही करै जो जीव रहेगा कि मरना मुझको अवश्य है इसमें पाप को न करना चाहिये ऐसे जो जीव विचार से कर्म करेगा सो पापों में लिप्त कभी न होगा। यन्मनसाध्यायतितद्वाचावदतियद्वाचावदतितत्कर्मणाकरोति।यत्कर्मणाकरोतितदभिसंपद्यते ॥ इस श्रुति का अर्थ पहिले कर दिया है परन्तु इसका यही अभिप्राय है कि जो जैसा कर्म करै वह वैसा ही फल पावै ऐसी ईश्वर की आज्ञा है ॥ यथर्तुलिङ्गान्यृतवःस्वयमेवर्तुपर्यये। स्वानिस्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणिदेहिनः॥ यह मनु का श्लोक है इसका यहअभिप्राय है किजैसे वसन्तादिक ऋतुओं के लिंग अर्थात् शीतोष्णादिक ऋतुओंमें प्राप्त होतेहैं वैसेलक

जीव अपने २ किए कर्मों को प्राप्त होते हैं १ ॥ जो पुरुष ईश्वर की उपासना न करेगा वहमहाकृतघ्न होगा इस में कुछ सन्देह नहीं प्रश्न जीव जब विद्यादिक शुद्ध गुण और योगाभ्यास से अणिमादिक सिद्धि वाला होता है उसी को ईश्वर मानना चाहिये उससे भिन्न स्वतन्त्र ईश्वर मानने का कुछ प्रयोजन नहीं वही सिद्ध जगत् की उत्पत्ति स्थिति धारण और प्रलय करेगा। इससे सनातन ईश्वर कोई नहीं किन्तु साधनों से ईश्वर बहुत हो जाते हैं उत्तर इनसे पूछना चाहिये कि जब जाव जीव का शरीर इन्द्रियां और पृथिव्यादिक तत्वों को कोई रचेगा तब तो विद्यादिक गुण और योगाभ्यास से कोई जीव सिद्ध होगा जीव ऐसा कहैं कि जन्म ही से कोई सिद्ध हो जायगा तो उनके कही साधनों से सिद्ध होती है यह बात मिथ्या हो जायगी और विना साधनों के सिद्ध होवै तो सब जीव सिद्ध क्यों नहीं होते इससे यह बात उनकी मिथ्या होगी सदा सनातन सिद्ध सब ऐश्वर्य वाला साधनोंसे बिना स्वतः प्रकाश स्वरूप ईश्वरहै इसमें कुछ सन्देह नहीं प्रश्न जीव कर्म करते हैं और ईश्वर कराताहै क्योंकि ईश्वर की सत्ता के बिना एक पत्ता भी नहीं चलसकता इससे ईश्वर के सहाय से जीव कर्मों को करता है आपसे आप कुछ करने को समर्थ नहीं उत्तर जीव आप ही आप स्वतन्त्र कर्मों को करता है ईश्वर कुछ नहीं कराता क्योंकि जो ईश्वर कराते तो जीव कभी पाप नहीं करता सो जीव पुण्य और पाप करता ही है इससे ईश्वर नहीं करता और जो ईश्वर करता तो जीव से

ईश्वर को अधिक पाप होता जैसे एक मनुष्य चोरी करता है और दूसरा कराता है इसमें करने वालेसे कराने वालेको पाप अधिक होता है क्योंकि यह प्रेरणा उसको नहीं करता तो वह चोरी कभी न करता सो एक प्रेरणा करनेवाला अनेक मनुष्यों को चोर बना देता इससे उसको अधिक पाप होता है इस वास्ते ईश्वर कभी नहीं करता और जो ईश्वर कराता तो जीव काठ की पुतली की नांई होता जैसे उसको नचावे वैसा नाचे फिर भी वही परतन्त्रता में जो दोषगण का सोई आजाता इससे ईश्वर सब जगत् का करने वाला होता है परन्तु जीवों के कर्मों को करने वा कराने वाला नहीं प्रश्न जो ईश्वर जीवों को न रचता तो जीव क्यों पाप करते और दुःख भी क्यों भोगते जैसे किसी ने कूआ खोदा उसमें कोई मनुष्य भी गिर पड़ता है जो वह कूआ न खोदता तो कोई न गिरता वैसे ईश्वर जीवों को न रचता तो जीव क्यों पाप करते उत्तर ऐसा न कहना चाहिये क्योंकि जो कोई राजा भृत्यों को रखता है और पुत्रों को मनुष्य उत्पादन करता है वा गुरु शिष्यों को शिक्षा करता है सो सब इसी वास्ते करते हैं कि सब धर्म की रक्षा और धर्माचरण करैं पाप करने का अभिप्राय इनका नहीं और जैसे बालक वा भृत्यके हाथ में लकड़ी शिक्षा वा शस्त्र देते है सो अपने शरीरकी और स्वामी की आज्ञा तथा धर्म की रक्षा के वास्ते देते हैं ऐसा अभिप्राय उनका नहीं है कि उनसे आप आपने ही को मार के मर जाय वैसे ही परमेश्वर ने

जीव रचे हैं सो केवल धर्माचरण और मुक्त्यादिक सुख के वास्ते रचे हैं और जो जीव पाप करता है सो अपनी मूर्खता ही से करता है वैसा ही दुःख भोगता है हस्तादिक जीवों के वास्ते इन्द्रिय रची हैं सो केवल जीवों के व्यवहार सिद्ध होवें और उनसे सब सुख कार्यों को करें इनमें से कोई अपने हाथसे अपनी आंख निकाल लेता है वा अपना गला काट देता है सो केवल अपनी मूढ़ता से करता है माता पितादिकोंका वैसा अभिप्राय नहीं इस्से यह प्रश्न अच्छा नहीं प्रश्न ईश्वर सर्व शक्तिमान्है वा नहीं उत्तर सर्वशक्तिमान्है प्रश्न जो सर्वशक्तिमान् होय तो अपना नाश भी ईश्वर कर सक्ता है वा नहीं उत्तर ईश्वर अविनाशी पदार्थ है अत्यन्त सूक्ष्म जिसका किसी प्रकार वा शस्त्र से नाश नही हो सक्ता क्यों कि जिस पदार्थ का रूप और स्पर्श होवे उसी का अग्नि, जल, वायु अथवा शस्त्रों से नाश हो सक्ता है अन्यथा नहीं नाश शब्द का यह अर्थ है कि अदर्शन अथवा कारण में मिल जाना सो परमेश्वर कोई इन्द्रिय से दृश्य नहीं कि फिर अदर्शन उसका होय और इसका कोई कारण भी नही जिसमें ईश्वर मिल जाय इस्से ईश्वर के नाश की शंका करनी भी अनुचित है और ईश्वर सर्वशक्तिमान् है परन्तु उसकी शक्ति न्याय युक्त ही है अन्याय युक्त नहीं इस्से ईश्वर सदा न्याय ही करता है कि अविनाशी पदार्थ को अविनाशी जानता है और उसके नाश की इच्छा नहीं करता और जो विनाश वाला पदार्थ है उसका नाश न होवे ऐसे भी इच्छा नहीं करता क्यों कि ईश्वर का

ज्ञान निर्भ्रम है जो जैसा पदार्थ है उसको वैसा जानता और वैसा ही करता है प्रश्न जो ईश्वर दयालु है तो न्यायकारी नहीं और जो न्यायकारी है तो दयालु नहीं क्यों कि न्याय उसको नामहै कि धर्म करना औरपक्षपातका छोड़ना इस्से क्या आया कि दण्ड देने के योग्य को दण्ड देना और अदण्ड को कभी दण्ड न देना सो जो दयालु होगा सो तो कभी दण्ड न दे सकेगा क्यों कि दया नाम है करुणा और कृपा का सो सदा अन्य के सुख और उपकार में रहेगा इस्से ईश्वर को दयालु मानो तो न्यायकारी मत मानो उत्तर न्यायकारी को तो बहुत स्थानों में अर्थ करदिया है और दयालु को भी परन्तु न्याय और दयालु इन दोनों का थोड़ा सा भेद है दण्ड को जो देना और जीवों को स्वतन्त्रता रखना और सब पदार्थ बुद्ध्यादिकों का देना सर्वज्ञ सब पदार्थ को जिसमें यथार्थ पदार्थ विद्या है उस वेद शास्त्र का प्रकाश करना यह बड़ी ईश्वर की दया है कि जो जैसा कर्म करै वह वैसा फल पावै अर्थात् यथावत् जो दण्ड का देना है सो उसके और इस्से भिन्न सब जीवों के ऊपर ईश्वर दया करताहै कि कोई न पाप करै और न दुःखपावै जैसे राज दण्ड है सोकेवल सबमनुष्योंके ऊपर दया का प्रकाश हो है क्यों कि राजा का यह अभिप्राय होता है कि कोई अनर्थ में प्रवृत्त न होवै जो हम दण्ड न देंगे तो सब मनुष्य अधर्म में प्रवृत्त हो जांयगे इस्से अपराधी पुरुष के ऊपर अत्यन्त कठिन दण्ड देताहै कि सब मनुष्य भय मान होने से अधर्म में प्रवृत्त न होवैं वैसा ही ईश्वरकी

सब जीवों के ऊपर दया है कि एक को दुःखी देख के अन्य पुरुष पाप में प्रवृत्त न होवैं और फिर जीव को यहां तक अधिकार दिया है कि अणिमादिक सिद्धित्रिकाल दर्शन और आप जीव ईश्वर संयोग से अनन्त सुख को पा सक्ता है कि कभी जिसको फिर दुःख न होवै इस्से ईश्वर न्यायकारी और दयालु है इसमें कुछ विरोध नहीं प्रश्न ईश्वर सर्व शक्तिमान् और न्यायकारी किस प्रकार से है उत्तर देखना चाहिये कि जितने जीव हैं उनको तुल्य पदार्थ दिये हैं पक्षपात किसीका भी नहीं किया और जैसी व्यवस्था न्याय से यथायोग्य क-र्त्ती चाहिए वैसी ही किया है इस्से ईश्वर न्यायकारी है जगत्मेंसूर्य्य, चन्द्र पृथिव्यादिक भूत वृक्षादिक, स्थावर और मनुष्यादिक चर इनका रचन हम लोग देखके तथा धारण और प्रलय को देखके आश्चर्य अनन्त ईश्वर की शक्ति को नि-श्चित जानते हैं क्योंकि सर्व शक्तिमान जो न होता तो सब प्रकार का विचित्र जगत् न रच सक्ता इस्से हम लोग जा-नते हैं कि ईश्वर सर्व शक्तिमान है इसमें कुछ सन्देह नहीं प्रश्न ईश्वर विद्यावान है वा नहीं उत्तर ईश्वर में अनन्त विद्या है क्योंकि जो विद्या न होती तो यथा-योग्य जगत् की रचना को न जानता जगत् की रचना यथा योग्य करने से पूर्ण विद्या ईश्वर मेंहै प्रश्न ईश्वर का जन्म होता है वा नहीं उत्तर उसका जन्म कभी नहीं होता क्योंकि जन्म लेनेका प्रयोजन कुछ नहीं समर्थ नहीं होता सोई दूसरे

का सहाय लेता है जो सर्वशक्तिमान् है उसको किसी के सहाय से कुछ प्रयोजन नहीं आपही सब कार्यको कर सकता है
प्रश्न राम, कृष्णादिक अवतार ईश्वर के भए हैं यसूमसीह ईश्वर का पुत्र और महम्मद आदि पुरुषों को उपदेश करनेके वास्ते भेजा यह बात संसारमें प्रसिद्ध है अपने भक्तोंके वास्ते शरीर धारण करके दर्शन दिया और नाना विधि लीला किई कि जिसको गा के भक्त लोग तर जाते हैं फिर आप कैसे कहते हो कि जन्म ईश्वर का नहीं होता उत्तर यह बात युक्ति से विरुद्ध और शास्त्र प्रमाण से भी क्यों कि ईश्वर अनन्त है जिसका देश काल और वस्तु से भेद नहीं है एक रस है जिसका खण्ड कभी नहीं होता और आकाशादिक बड़े स्थूल पदार्थ भी परमेश्वर के सामने एक परमाणुके योग्य भी नहीं और शरीर जो होता है सो शरीर से स्थूल होता है जैसे घर में रहने वालों से घर बड़ा होता है सो ईश्वर का शरीर किस पदार्थसे बन सकता है कि जिसमें ईश्वर निवास करै और जो किसी में निवास करेगा तो अनन्त न रहेगा क्यों कि शरीर से शरीर छोटा ही होता है जब शरीर के सहाय से रावण वा कंसादिकों को मारै तथा उपदेश भी करै विना शरीर से न कर सके तो ईश्वर सर्वशक्तिमान् ही नहीं और जो रावणादिकों को मारा चाहे और उपदेश करा चाहै तो सर्व व्यापी और अन्तर्यामी होने से एक क्षण में सब जगत् को मार डालै और उपदेश भी कर देवै तथा अपने

भक्तों को प्रसन्न भी कर देवै इस्से ईश्वर की ईश्वरता यही है कि बिना सहाय से सब कुछ कर सकता है जो सहाय के बिना न कर सके तो उसका सर्वशक्तित्व ही नष्ट हो जाय इस्से ईश्वर का कभी जन्म और किसी का सहाय लेता है ऐसी शंका करनी व्यर्थ है प्रश्न जैसे सब जगत् की उत्पत्ति होती है ईश्वर से वैसे ईश्वर की भी उत्पत्ति किसी से होती होगी उत्तर ईश्वर से कौन बड़ा पदार्थ है कि जिस्से ईश्वर उत्पन्न होवे पहिले ही प्रश्न के उत्तर से इसका उत्तर हो गया और जो उत्पन्न होता है उसको ईश्वर हम लोग नहीं मानते किन्तु जिसकी उत्पत्ति कभी न होवै और सब संसार की जिस्से उत्पत्ति होवै उसी को वेदादिक सत्यशास्त्र और सज्जन लोग ईश्वर मानते हैं और को नहीं जो कोई ईश्वर की भी उत्पत्ति मानता है उसके मत में अनवस्था दोष आवेगा कि जैसे उसने ईश्वर की उत्पत्तिमानी फिर ईश्वर के पिता की भी उत्पत्तिमानना चाहिए और ईश्वर के पिता के पिता की भी उत्पत्ति माननी चाहिए ऐसे ही आगे २ मानने से अनवस्था आजायगी अथवा जिसकी वह उत्पत्ति न मानेगा उसी को हम लोग ईश्वर कहते हैं अन्य को नहीं प्रश्न ईश्वर साकार है वा निराकार उत्तर ईश्वर निराकार है क्यों कि जो निराकार न होता तो सर्वशक्तिमान सर्वव्यापक सबका धारने वाला और सर्वान्तर्यामी और नित्य कभी न होता इस्से ईश्वर निराकार ही है प्रश्न ईश्वर चेतन है अथवा जड़ उत्तर जो जड़ होता तो सब जगत् की रचना

और ज्ञानादिक अनन्त गुण वाला कभी न होता इस्से ईश्वर चेतन ही है यह थोड़ा सा ईश्वरके विषयमें लिख दिया इस्से आगे वेद विषयमें लिखा जायगा ॥ उसी ईश्वरने सर्वज्ञ सर्व विद्या युक्त और सत्य २ विचार सहित कृपा करके वेद शास्त्र सब जीवों के ज्ञानादिक उपकार के वास्ते रचा है प्रश्न ईश्वर निराकार है उसका मुख नही फिर वेद का उच्चारण और रचना कैसे किया उत्तर यह शंका असमर्थों में होती है कि बिना मुख मुखका काम न कर सकैं ईश्वर बिना मुख से मुख का काम कर सक्ता है क्यों कि वह सर्वशक्तिमान् है और जो ऐसा न मानेगा उसके मत में यह दोष आवैगा कि हाथ, पांव आंख, शरीर और कान बिना जगत् कैसे रचा जैसे बिना हाथ आदिक के सब जगत् को रचा तो वेद के रचने में कुछ शंका नही प्रश्न ओष्ठादिक स्थानों का जिह्वा से वायु की प्रेरणा होने से अक्षर उच्चारण हो सक्ते हैं अन्यथा नहीं उत्तर फिर भी वही दोष आवेगा कि ईश्वर सर्वशक्तिमान न होगा क्यों कि ओष्ठादिक के स्पर्श और प्राण बिना ईश्वर उच्चारण नही कर सक्ता तो ईश्वर पराधीन ही हुआ और हाथादिकों के बिना ईश्वर ने जगत् भी न रचा होगा जैसा कि ओष्ठादिक स्थान और प्राण बिना उच्चारण नही कर सक्ता ऐसी शंका जीव में घट सक्ती है ईश्वरमें नही प्रश्न लेखनीमसी इनसे ककारादिक अक्षर बनते हैं बिना इनके नहीं फिर ईश्वर ने कहां से कागदलेखनीमसीछुरिकाचाकू और पट्टिया यह सामग्री पाई जिस्से सब अक्षर रचे उत्तर यह बड़ी शंका आपने

किया ईश्वर को अनीश्वर ही बना दिया अच्छा मैं आप से पूंछता हूं कि नासिका, आंख, ओष्ठ, कान, नख, लोम, नाड़ी और उनका सन्धान तथा आकार विना सामग्री और साधन शरीर तथा अक्षर भी रच लिए प्रश्न फिर यह लिखी लिखाई पुस्तक संसार में कैसे आई और किसने पाया आकाश से गिरी वा पाताल से आगई उत्तर आपका शरीर वृक्ष, पर्वत और इतनी बड़ी पृथिवी अन्तरिक्ष में कैसे आगए जैसे ये आगए वैसे पुस्तक भी आगई इसमें क्या आश्चर्य कुछ भी नही अग्नि, वायु और आदित्य सृष्टि के आदि में भये थे उन्ने वेद पाये उनसे ब्रह्माने पढ़ ब्रह्मासे विराट्ने विराट्से मनुने मनुसे दश प्रजापतियों ने पढ़े और उनसे प्रजामें फैलगए प्रश्न अग्न्यादिकों ने ईश्वर से वेदों को कैसे पढ़े उत्तर इसमें दो बात हैं ईश्वरने उनको आकाशवाणी की नाईं सब शब्द सब मन्त्र उनके स्वर अर्थ और सम्बन्ध भी सुना दिए इससे वेदों का नाम श्रुति रक्खा है अथवा उनके हृदय में ईश्वर अन्तर्यामी है उसने उसी हृदय में वेदों का प्रकाश कर दिया फिर उनों ने अन्यों से पर प्रकाश कर दिए ॥ योब्रह्मणंविदधातिपूर्वं योवैवेदांश्च प्रहिणोतितस्मै तहदेवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहंप्रपद्ये यह वेद का प्रमाण है इस का यह अभिप्राय है कि जो ईश्वर ब्रह्मादिकदेव और सब जगतका रचन कर्ता भया इससे पहिले ही वेदों को रचके ब्रह्माको अग्न्यादि देव नाम हिरण्य गर्भादि द्वारा जना दिये क्यों कि विद्या के विना सब जीव अन्धे होते हैं कुछ नही जान सकें जैसे पशु इससे परमेश्वर ने वेद का

प्रकाश कर दिया सब मनुष्यों को सब पदार्थ विद्या जानने के हेतु प्रश्न ईश्वर ने उन देव अर्थात विद्वानों के हृदय में प्रकाश वेदों का किया सो लोगों ने बात बना लिया है कि परमेश्वर ने वेद बनाए हैं ऐसा हम लोग कहेंगे तो वेदों में सब लोग श्रद्धा करेंगे और उनका प्रमाण भी करेंगे परन्तु अनुमान से यह निश्चित जाना जाता है कि उन अग्न्यादिक देव विद्वानों ने ही वेद बना लिए हैं उत्तर परमेश्वर ने आकाश से ले के क्षुद्र, घास, पर्यन्त जगत् को रचके प्रकाश कर दिया और सर्वोत्कृष्ट सब पदार्थों का जिस्से निश्चय होता है उस विद्या को प्रकाश न करै तो यह परमेश्वर में दोष आता है कि परमेश्वर दयालु नही और छली भी है क्यों कि ऐसा अनुमान से जाना जायगा अपनी विद्या का प्रकाश इस वास्ते नही किया कि सब जीव विद्या पढ़नें मे ज्ञानी और सुखी होजांयगे फिर मुझ को जान के अनन्त आनन्द युक्त भी हो जांयगे यह दोष परमेश्वर मे आवेगा जैसे कोई आजीविका विद्या से करता होय सो परिडत न हो वह ऐसी इच्छा करता है जो कोई पण्डित होगा तो मेरी प्रतिष्ठा और आजीविका न्यून हो जायगी ऐसा क्षुद्र बुद्धि से वह मनुष्य चाहता है और जो सज्जन लोग हैं वे तो सदा विद्यादिक गुणों का प्रकाश किया करते हैं सो परमेश्वर अपनी अनन्त विद्या का प्रकाश क्या न करेगा किन्तु अवश्य ही करेगा क्योंकि एक ओर सब जगत और एक ओर विद्या इन दोनों मेसे भी विद्या अत्यन्त उत्तम है सो ईश्वर क्या आजीविकाधीन और प्रतिष्ठा के लोभ से

विद्या का प्रकाश न करेगा किन्तु अवश्य ही करेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं और जो कोई ऐसा कहै कि पण्डितों ने वेद विद्या रच लिया है उनसे पूछा जाता है कि वे बिना शास्त्र के पढ़ने से पण्डित कैसे भए और जो वे कहैं कि अपनी बुद्धि और विचार से हो गये तो आज काल भी बुद्धि और विचार से हो जांय सो बिना विद्या के पढ़ने से कोई पण्डित नहीं होता क्योंकि जब सृष्टि रची गई उस समय कोई मनुष्य नहीं था बिना परमेश्वर के फिर वह अनुमान से जाना जाता है वह अनुमान भी यथार्थ कभी न हो सकेगा आज तक बहुत बुद्धिमान पदार्थों का विचार करते हैं सो किसी पदार्थ में गुण वा दोष जानते हैं परन्तु इतने इसमें गुण हैं वा इतने दोष हैं ऐसा निश्चय उन का नहीं होता जितनी अपनी बुद्धि उतना जानते हैं अधिक नहीं और परमेश्वर सब पदार्थों को यथावत् जानता है सो अपना ज्ञान और विद्या क्या परमेश्वर गुप्त रक्खेगा ऐसा ईर्ष्यावान परमेश्वर हो गया कि सर्वज्ञ अपनी विद्या का प्रकाश न करे किन्तु दयालु के होने से और ईर्ष्या, कपट, छलादि दोष रहित होने से अवश्य विद्या का प्रकाश करैगा इसमें कुछ सन्देह नहीं प्रश्न वेद की आप परमेश्वर से उत्पत्ति मानते हो जैसे जगत् की सो जैसा जगत् अनित्य है वैसा वेद भी अनित्य होगा उत्तर वेद के पुस्तक और पठन पाठन जब तक जगत् रहैगा तब तक वेद की पुस्तक और पठन पाठन भी रहैंगे जब जगत् नष्ट होगा उसके साथ येतोन भी नष्ट होंगे परन्तु वेद नष्ट न होंगे क्योंकि वह विद्या परमेश्वर की है जैसे परमेश्वर

नित्य हैं वैसे विद्यादिक गुण भी परमेश्वर के नित्य हैं प्रश्न वेद की रचना कोई बुद्धिमान हो सो रच सकता है क्योंकि॥ घृतशुद्धंसनातनंविज्ञानीहि घृतहत्वा देवानां देवऋषीणामृषिमुनीनाम्मुनिः। ऐसे और हत्वा शब्द के रचने से वेद की जैसी संस्कृत वैसी मनुष्य पण्डित भी रच सक्ता है जैसी कि यह संस्कृत हमने रच लिया है फिर आप कैसे वेद के रचने का असम्भव मानते हैं कि परमेश्वर बिना वेद की कोई नहीं रच सक्ता उत्तर हम लोग संस्कृत मात्र से वेद का निश्चय नहीं करते कि परमेश्वर ने रचा है क्योंकि संस्कृत तो जैसी तैसी पण्डित रच सक्ता है परन्तुपरमेश्वर के गुण उन संस्कृत मेंनही देख पड़ते जो मनुष्य होगा सो अवश्य पक्षपात किसी स्थान में करैगा और परमेश्वर पक्षपात किसीप्रकार से कभी न करैगा क्योंकि परमेश्वर पूर्णानन्द और पूर्ण काम है सो वेद में किसी प्रकार से एक अक्षर में भी पक्षपात देखनेमें नहीं आता फिर देहधारी सब विद्याओं में यथावत् पूर्ण कभी नहीं होता सो जब कोई पुस्तक रचेगा तब जिस विद्या में निपुण होगा उस विद्याकी बात अच्छी प्रकारसे लिखेगा परन्तु जिस विद्या को नही जानता उसका विषय जब कुछ आवेगा तब कुछ न लिख सकेगा जो लिखेगा तो अन्यथा लिखेगा और परमेश्वर सब विद्याओं के विषयों को यथावत् लिखेगा सो वेदों में सब विद्या यथावत् लिखी हैं मनुष्य जब ग्रन्थ रचेगा उसमें कोई बुद्धिमान होगा तो भी सूक्ष्म दोष आवेंगे कि धर्म का किसी प्रकार से खण्डन और अधर्मका मण्डन थोड़ा भी अवश्य

आ जायगा परमेश्वर के लिखने में धर्म का खण्डन वा अधर्म का मण्डन किसी प्रकार से लेशमात्र भी न आवेगा सो वेद में ऐसा ही है मनुष्य शब्द अर्थ औरसम्बन्ध इनको जितनी बुद्धि उतना ही जानेगा अधिक नहीं सो वैसे ही शब्द अपने ग्रन्थमें लिखेगा जिस्से एक, दो, तीन, चारवा पांच प्रयोजन जैसे तैसे निकल सकें और परमेश्वर सर्वज्ञ के होने से शब्द अर्थ और सम्बन्ध ऐसे रक्खेंगे कि जिनसे असंख्यात प्रयोजन और सब विद्या यथावत् आजांय सो परमेश्वर का ऐसा सामर्थ्य है अन्य का नहीं सो वैसे वेद ही हैं कि जिनसे असंख्यात प्रयोजन और सब विद्या निकलती हैं क्यों कि परमेश्वर ने सब विद्यायुक्त वेदों को रचे हैं इस्से सब कार्य वेदों से सिद्ध होते हैं और वेदों के नाम लिख के गोपाल तापिनी, रामतापिनी कृष्णतापिनी और अल्लोपनिषदादिक मनुष्यों ने बहुत ग्रन्थ रच लिए हैं परन्तु विद्वान् यथावत् विचार कर के देखें तो उन ग्रन्थों में जैसी मनुष्यों की क्षुद्र बुद्धि वैसी ही क्षुद्रता देख पड़ती है सो परमेश्वर और उनके वचनों में दिन और रात का जैसा भेद है वैसा भेद देख पड़ता है प्रश्न वेद पौरुषेय है अथवा अपौरुषेय अर्थात ईश्वर का रचा है वा किसी देहधारी का उत्तर वेद देहधारी का रचा कभी नहीं है किन्तु परमेश्वरही ने रचा है परन्तु वेद अपौरुषेय और पौरुषेय भी है क्यों कि पुरुष देहधारी जीवका नाम है और पूर्ण के होने से परमेश्वर का भी अपौरुषेय तो इस्से है कि कोई देहधारी जीवका रचा नहीं और पौरुषेय

इस वास्ते है कि पूर्ण पुरुष जो परमेश्वर उसने रचा है इस्से पौरुषेय भी है और परमेश्वर की विद्या सनातन है सोई वेद है इस्से भी वेद अपौरुषेय है क्यों कि परमेश्वर की विद्या जो वेद उसकी उत्पत्ति वा नाश कभी नही होती परन्तु पुस्तक पठन और पाठन इन तीनों का जगत् के प्रलय में प्रलय हो जाता है वेद ईश्वर में नित्य रहते हैं इस्से वेद का नाश कभी नही होता प्रश्न जैसे वेद ईश्वर से उत्पन्न होता है वैसा जगत् भी ईश्वर से उत्पन्न होता है जैसा जगत् विनश्वर है वैसा वेद भी विनश्वर है और जो वेद नित्य होगा तो जगत् भी नित्य होगा उत्तर जगत् जो है सो प्रकृति परमाणु और उनके परस्पर मिलाने से परमेश्वर से उत्पन्न भया है सो कभी कारण जो परमेश्वर उसमें कार्य रूप जगत् नष्ट हो जायगा परन्तु वेद जगत् जैसा कार्य है वैसा नहीं क्यों कि वेद तो परमेश्वर की विद्या है सो जो नाश हो जाय तो परमेश्वर विद्या हीन होने से अविद्वान् हो जाय सो परमेश्वर अविद्वान् कभी नही होता सदा पूर्ण ज्ञान और विद्यावान रहता है सो जैसा क्रम परमेश्वर की विद्यामें है वैसा ही क्रम शब्द अर्थ सबन्ध मन्त्र और संहिता अर्थात् पूर्वा पर मन्त्रोंका सम्बन्धजो मन्त्र जिस्से पूर्व वा पीछे लिखना चाहिए सो सब परमेश्वर हीनें रक्खे हैं इस्से कुछ सन्देह नहीं जैसा जगत् का संयोग वा वियोग होता है वैसा वेद विद्याका संयोग वा बियोग कभी नही होता क्यों कि परमेश्वर और परमेश्वरके बिद्यादिक सब गुण भी नित्य हैं इस्से वेद विद्या नित्य ही है जो ऐसा न मानेगा उस

के मन में अनवस्था दोष आवेगा कि कोई विद्या पुस्तक स्वयंभू और ईश्वर का रचा न मानेगा तो सब पुस्तकों के सत्य वा असत्यका निश्चय कैसे करैगा क्यों कि एक पुस्तक स्वतः प्रमाण रहेगा और उसके प्रमाण से वा अप्रमाण से सत्य वा मिथ्या पुस्तक का निश्चय हो सक्ता है और जो कोई पुस्तक स्वतः प्रमाण हीन होगा तो कोई पुस्तक का निश्चय नहीं हो सकेगा क्यों कि एक मनुष्यने अपनी बुद्धिकी कल्पना से पुस्तक रचा दूसरे ने उसका अपनी बुद्धि से खण्डन कर दिया दूसरे का तीसरे ने तीसरे का चौथे ने ऐसे ही किसी पुस्तक का प्रमाण न होगा फिर अनवस्था भ्रम के होने से सदा रहैगा इससे वेद पुस्तक स्वतः प्रमाण होने से परमेश्वर ही का रचा है अन्यथा नहीं क्यों कि ऐसी सुगम संस्कृत ललित पद सत्यार्थ युक्त अनेक प्रयोजन और अनेक विद्या सहित स्वल्प अक्षर सुगम वेद ही की पुस्तक है अन्य नहीं और जगत् के किसी पदार्थ का कुछ निश्चय मनुष्य अपनी बुद्धि से कर सक्ता है परन्तु ईश्वर स्वरूप और उनके न्यायकारित्वादिक अनन्त गुण वेद पुस्तक में जैसे लिखे हैं वैसा लेख कोई संस्कृत वा भाषा पुस्तक में नहीं है क्यों कि किसी की वैसी बुद्धि नहीं हो सक्ती कि परमेश्वर का स्वरूप और यथावत् गुण लिख सके सो ऐसा ही जानना चाहिए कि हम लोगों पर अत्यन्त कृपा से परमेश्वर ने अपना स्वरूप और अपने सत्य गुण वेद पुस्तकमें प्रकाश कर दिए हैं जिस्से कि हम लोग भी परमेश्वरका स्वरूप और गुण वेद पुस्तक से जान के अत्यन्त आनन्द युक्त होते हैं

सो पक्षपातको छोड़के यथावत विद्यायुक्त पुरुष अत्यन्त वेदार्थ का विचार करैगा सोई अनन्त सुखको पावेगा अन्यथा नहीं प्रश्नऐसे ही सब मनुष्य एक २ पुस्तकको परमेश्वरकी मानते हैं जैसे कि बाविल, इञ्जील और कुरान वैसे आप लोगों को भी वेद में आग्रह है जिससे कि अत्यन्त स्तुति करते हैं जो वेद परमेश्वर का रचा होगा तो वे पुस्तक परमेश्वर के रचे क्यों नहीं इसमें क्या प्रमाण है कि वेद ही ईश्वर का रचा है और अन्य पुस्तक नहीं उत्तर सब मनुष्यों का प्रमाण नही होसक्ता क्योंकि सब मनुष्य पूर्ण विद्या वाले आप्त और पक्षपात रहित नहीं होते जिस्से कि सब मनुष्यों के कहने का प्रमाण हो जाय जो आप्त और पक्षपात रहित होवैं उन्हीं का प्रमाण करना योग्य है अन्य का नहीं क्योंकि जो मूर्खों का हम लोग प्रमाण करैं तो बड़ा भारी दोष आजायगा वे अन्यथा भाषण करते हैं और अन्यथा कर्म भी करते हैं इस्से आप्त लोगों का प्रमाण करना चाहिये और वेद के सामने इञ्जील और कुरानादि की कुछ गणना ही नहीं हो सक्ती किन्तु उनमें विद्या की बात तो कुछ नही है। जैसी कि कहानी होय वैसे वे पुस्तक हैं प्रश्न आप्त का निश्चय कैसे होसक्ता है वेद वाले कहते हैं कि हमारी बात सत्य है अन्य लोग कहते हैं कि हम लोगोंकी बात सत्य है इसमें क्या प्रमाण है कि यही बात सत्य है अन्य नहीं उत्तर इसका समाधान तृतिय समुल्लास में कर दिया है कि ऐसा लक्षण वाला आप्त होता है और प्रत्यक्षादिक प्रमाणों

से सत्य वा असत्य का यथावत् निश्चय भी होता है उन में निश्चय करके सत्य को मानना चाहिये असत्य को नहीं प्रश्न वेद किसी देश विशेष और भिन्न देश में रहने वाले मनुष्यों के हेतु हैं वा सब मनुष्यों के हेतु हैं उत्तर वेद सब मनुष्यों के वास्ते हैं क्यों कि जो विद्या और सत्य बात होती है सो सबके हेतु होतीहै और वेदमें कहीं नहीं लिखा कि इस देश वा उन मनुष्योंकेहेतु वेद बनाया गया और अधिकार भी इनकाहै और इनका नहीं जैसे कि बाबिल, मूसा और इसराईल कुलादिकों के वास्ते पुस्तक आई और मुहम्मदादिकों के हेतु कुरान यह बात मनुष्यों की होती है अपने देश वाले के ऊपर प्रीति और अन्यके ऊपर नहीं जो ईश्वरका वचन सो तो सर्वज्ञ और सब जगत् का स्वामी है इससे तुल्य कृपा और तुल्य दृष्टि ही रक्खैगा अन्यथा नहीं ऐसी पुस्तक वेद ही की है अन्य नहीं क्यों कि अन्य पुस्तकों में ऐसी विद्या नहीं और कहानी की नांई उनमें कथा है और पक्षपात बहुत से हैं इससे वेद पुस्तक ही ईश्वरकृत है अन्य नहीं इसमें किसी को जो सन्देह होय तो पक्षपात को छोड़ के तीनों पुस्तकों का विद्या प्रीति और सज्जनता से विचार करैं तब यही निश्चय होगा कि वेद पुस्तक ही ईश्वरकृत अन्य नहीं प्रश्न वेदों का सब मनुष्यों को पढ़ने और पढ़ाने का अधिकार है वा नहीं उत्तर इसका विचार तृतीय समुल्लास में वर्णव्यवस्था के कथन में किया गया है वही जान लेना इस प्रकार से वहां लिखा है कि जो मूर्ख है वह शूद्र है उसका पढ़ना वा उसको पढ़ाना

व्यर्थ है क्योंकि उसको बुद्धि न होने से कुछ विद्या न आवेगी अन्य व्यवस्था चतुर्थसमुल्लास में देख लेना प्रश्न शूद्रादिकों का वेद सुनने का अधिकार है वा नहीं उत्तर जिसको कान इन्द्रिय है और उसके समीप जो शब्द होगा उसको अवश्य सुनेगा सो वेद का शब्द अथवा अन्य शब्द होवे वह सब को सुनेगा परन्तु शूद्र मूर्ख होने से सुनके भी कुछ न कर सकेगा इस हेतु जहां तहां निषेध लिखा है कि शूद्र को वेद न पढ़ना चाहिये कि उसको कुछ आता नहीं प्रश्न वेदव्यास जी ने वेद रचे हैं इस्से उनका नाम वेदव्यास पड़ा है यह बात भागवत्में लिखी है फिर आप कैसी बात कहते हैं कि वेद ईश्वर ने रचे हैं उत्तर यह बात अत्यन्त मिथ्या है क्यों कि व्यास जी ने भी वेद पढ़े थे और अपने पुत्र शुकदेवादिकों को पढ़ाये थे और उनका पिता पाराशर उसका पितामह शक्ति और प्रपितामह वशिष्ट ब्रह्मा और बृहस्पत्यादिकोंने भी पढ़े थे जो व्यासके बनाये वेद होते तो वे कैसे पढ़ते क्यों कि व्यास जी तो बहुत पीछे भये हैं और जो उनका नाम वेद व्यास पड़ा है सो इस रीति से पड़ा है कि ॥ वेदेषुव्यासोविस्तारोनामविस्तृताबुद्धिर्यस्या-सवेदव्यासः॥ व्यास जोने वेदों को पढ़ के और पढ़ाये हैं जिस्से सब जगत् में वेद का पठन और पाठन फैल गया और उन की बुद्धि वेदों में बिशाल थी कि यथावत् शब्द अर्थ और सम्बन्ध से वेदों को जानते थे इस्से इनका नाम वेदव्यास रक्खा गया पहिले इन का नाम जन्म का कृष्णद्वैपायन था वेदव्यास नाम विद्या के गुण से

भया है इस्से भागवतमे जो बात लिखी है सो वेदों की निन्दा के हेतु लिखी है उसका यह अभिप्राय था वेदों की निन्दा में कि जिसनें वेद रचे हैं उसी ने भागवत भी रचा और वेदों के पढ़ने से व्यास जी को शान्ति भी न भई किन्तु भागवत के रचने से उनकी शान्ति भई और भागवत वेदों का फल हैं अर्थात वेदों से भी उत्तम है सो यह बात दुर्बुद्धि जी बोपदास उस की कही है क्यों कि व्यास जी के नाम से उसने सब भागवत रचा है इस हेतु कि व्यास जी के नाम लिखनेसे सब लोग प्रमाण करैं और वेदों की निन्दासे मेरे ग्रन्थ की प्रवृत्ति के होनेसे सम्प्रदाय की वृद्धि और धन का लाभ होय इस्से सज्जन लोग इस बात को मिथ्या ही मानैं प्रश्न वेद ईश्वर ने संस्कृत भाषा में क्यों रचे क्या ईश्वर की भाषा संस्कृत ही है जो देश भाषा में रचते तो सब मनुष्य परिश्रम के बिना वेदों को समझ लेते और संस्कृत जानने के हेतु व्याकरणादिक सामग्री पढ़नी चाहिए इसके बिना वेदोंका अर्थ कभी मालूम न होगा उत्तर संस्कृत में इस हेतु वेद रचे गये हैं कि छोटे पुस्तकमें सब बिद्या आ जांय और जो भाषामें रचते तो बड़े २ ग्रन्थ हो जाते और एक देश ही का उपकार होता सब देशों का नहीं और जितनी देश भाषा हैं उन में रचते तब तो पुस्तकों का पारावार ही नहीं होता इस्से ईश्वर ने सर्वज्ञ भाषा में वेद रचे हैं कि किसी देश की भाषा न रहे और सब भाषा जिस्से निकलें क्योंकि संस्कृत किसी देश की भाषा नहीं जैसे ईश्वर किसी देश का नहीं किन्तु सब देशों का स्वामी

है वैसे ही संस्कृत भाषा है कि किसी एक देश की नहीं प्रश्न देव लोग और आर्यावर्त्त देशकी प्रथम भाषा संस्कृतथी इसी को मुसलमान लोग जिन्न भाषा कहते हैं क्यों कि जैसी प्रवृत्ति संस्कृत की पहिले आर्यावर्त्त में थी वैसी किसी देश में न थी जिस देश में कुछ प्रवृत्ति भई होगी सो आर्यावर्त्त ही से भई होगी अब भी आर्यावर्त्त में अन्य देशों से संस्कृत की अधिक प्रवृत्ति है इस्से यह निश्चय होता है कि संस्कृत भाषा आर्या-वर्त्त की मुख्य भाषा थी उत्तर यह देवलोग की भाषा नही क्यों कि वृहस्पतिः प्रवक्ताऽइन्द्रश्चाध्येता । यह महा भाष्य का वचन है इन्द्र ने वृहस्पति से संस्कृत पढ़ा और वृहस्पति ने अङ्गिरा प्रजापति से, उन्ने मनु से. मनु ने विराट से, विराट् ने ब्रह्मा से ब्रह्मा ने हिरण्यगर्भादिक देवों से, उन्ने ईश्वर से, जो देवलोग की भाषा होती तो वे क्यों पढ़ने और पढ़ाते क्यों कि देश भाषा तो व्यवहार से परस्पर आजाती है इस्से देव लोग की संस्कृत भाषा नही और जब ब्रह्मादिकों की भाषा नहीं तो आर्य्यावर्त्त देश वालों की कैसे होगी कभी नहीं पर-न्तु ऐसा जाना जाता है कि आर्यावर्त्त देश में पहिले प्रवृत्ति अधिक थी सब ऋषि मुनि और राजा लोग आर्यावर्त्त देश वासी लोगों ने परम्परा से संस्कृत पढ़ा और पढ़ाया है इस्से आर्यावर्त्त देश की भी संस्कृत भाषा नहीं और जो मुसल्मान लोग इसको जिन्न भाषा कहते हैं सो तो केवल ईर्ष्यासे कहते हैं जैसे कि आर्यावर्त्त देशवासियों का नाम हिन्दू रख दिया सो यह संस्कृत जिन्न भाषा भी नहीं क्यों जिन्न तो भूत प्रेत

पिशाचोंही का नाम है भूत प्रेत और पिशाच होते ही नहीं और जो होते होंगे तो लोक लोकान्तर में होते होंगे यहां नहीं फिर उनकी भाषा यहां कैसे आसकेगी इससे यह बात अत्यन्त मिथ्या है क्यों कि उनको ऐसी पदार्थ विद्या और धर्माधर्म विवेक की बुद्धिही नहीं फिर ये संस्कृत विद्यासर्वोत्तमको कैसे कह सकें वा रच सकें हैं और रचते होते तो अन्य देशों में भी रच लेते तथा किसी पुरुष से अब भी कहते इससे ऐसी बात सज्जन लोगोंको न मानना चाहिये प्रश्न देश भाषा भिन्न २ सब कैसे बन गई और किससे बनी उत्तर सब देश भाषाओं का मूल संस्कृत है क्यों कि संस्कृत जब बिगड़ती है तब अपभ्रंश कहाता है फिर अपभ्रंश से देश भाषा से होती है जैसे कि घट शब्द से घड़ा घृत शब्द से घी दुग्ध शब्द से दूध नवीत शब्द से नैनू अक्षि शब्द से आंख कर्ण शब्द से कान नासिका शब्द से नाक जिह्वा शब्द से जीभ मातर शब्द से मादर यूयं शब्द से यू त्वयं शब्द से त्वी गूढशब्दकागोड़ इत्यादिक जान लेना और एक पदार्थ के बहुत नाम हैं जैसे किगौः नाम गाय, गमा, ज्मा, क्ष्मा, क्षा, क्षमा, क्षोणी, क्षिति, अवनी, उर्वी, पृथ्वी, मही, रिपः, अदितिः, इडा-निर्ऋतिःभूःभूमिः पूषा, गातुः, गोत्रा, ए २१ नाम पृथिवी के नाम हैं सो भिन्न २ देशों में भिन्न २, २१ नामों मेंसे भिन्न २ का अपभ्रंश होनेसे भिन्न २ भाषा बन जाती है और एक नाम बहुत अर्थों का होता है जैसे कि सिंह, वानर, घोड़ा, सूर्य, मनुष्य, देव और चोर इत्यादिक का नाम हरि है इससे भी

भिन्न २ देशमें भिन्न २ भाषा होती है क्योंकि किसी देशमें सिंह नाम से उस पशु का व्यवहार किया किसी देशमें हरिशब्द से बानरका ग्रहण किया किसी देशमें हरि शब्दसे घोड़े को लिया किसी देश में हरि शब्द से सूर्य्य को लिया किसी देश में हरिशब्दसे को चोर लिया इस हेतु देश भाषा भिन्न २ हो गई और मनुष्यों का उच्चारण भेद से भिन्न २ भाषा हो जाती है जैसे कि ज्ञ यह दोनों अकारमें मिलने से अक्षर यह ज्ञ होता है सो आज काल इसका लख ऐसा होगया है कइस एक अक्षर के अन्यथा उच्चारण से तीन भेद हो गये हैं गुजराती लोग गकारऔर नकार का उच्चारण करते हैं महाराष्ट्रादिक दाक्षिणात्यलोगद् और नकार का उच्चारण करते हैं और अन्य लोग गकार और यकारका उच्चारण करतेहैं तथातालव्यश मूर्द्धन्यष और दन्त्य स इन तीनों के स्थान में बंगाली लोग तालव्य शकार का उच्चारण करते हैं मध्य औरपश्चिम देश वाले तीनों के स्थान में दन्त्य सकार का उच्चारण करते हैं तथा किसी की जीभ कठिन होती है वह प्राय: शब्दों को अन्यथा उच्चारण कर्ता है और जिस देश में विद्या का लेश भी न होय उस देश में सङ्केत व्यवहार करने के हेतु शब्दों का कर लेते हैं कि इस शब्द से इसको जानना और इस शब्द से इसको जानना जैसे दाक्षिणात्य लोगों ने घी का नाम नूपरख लिया और उत्तर देशपर्वत वासियों ने घी का नाम चोखा रख लिया और गुजरातियों ने चावल का नाम चोखा रख लिया इससे भी देश देशान्तर की भाषा भिन्न २ हो गई है इसी प्रकार के

अन्य कारणों को भी विचार लेना प्रश्न वेद में अश्वमेधादिक यज्ञोंकी क्रिया जो लिखी है सोजैसी बालकों की बात होय कुछ बुद्धिमान पने की नही दीखती क्योंकि घोड़े को सब जगह फिराते हैं उसको कोई जोबांध ले उस्से फिर युद्ध कर्ते हैं सो व्यर्थ युद्ध बना लेते हैं मित्र से भी ऐसी बात से वैर हो जाता है इत्यादिक ऐसी २ बुरी बात जिसमें लिखी हैं वह वेद ईश्वर का बनाया कभी न होगा उत्तर ये सब बात मिथ्या हैं वेद में एक भी नही लिखी हैं किन्तु लोगों ने कहानी बना लिया है प्रश्न ईश्वर ने ऐसा क्योंनही किया किविना पढने और सुनने से सब मनुष्यों को यथावत् आजाते तब तो ईश्वर की दयालु ता जान पड़ती अन्यथा क्या दयालुता किबड़े परिश्रम से वेद के अर्थों को मनुष्य लोग जानते हैं उत्तर फिर भी स्वतन्त्रता हानि दोष आ जाता क्योंकि परमेश्वर के प्रेरणा से वेद उनको आ जांय अपने परिश्रम औरस्वतन्त्रतासेनही और जो परीश्रम बिना पदार्थ मिलता है उसमें प्रसन्नता भी नहीं होती बिना परीश्रम कुछ भी काम नहीं होता जैसे की खाना पीना उठना बैठना कहना सुनना आना और जाना इत्यादिक परीश्रम ही से होते हैं अन्यथा नही परीश्रम के बिना कुछ नहीं होता और इतनी बड़ी जो पदार्थ विद्या सो कैसे होगी जीव को कान आदिक इन्द्रिय बुद्धि औरप्राण कहने औरसुनने का सामर्थ्य भी दिया है और विद्या का प्रकाश भी कर दिया है इस्से ईश्वर दयारहितकभी नहीहोते और जीव को जोस्वतन्त्र रख

दिया है यही बड़ी दया ईश्वर को है और कोई भी नहीं शंका करै उसका समाधान बुद्धिमान लोगविचार करके देखेंगे ईश्वर और वेद के विषय में संक्षेप से कुछ थोड़ा सा लिख दिया और जो विस्तार से देखा चाहै सो वेदादिक सत्यशास्त्रों में देख लेवैं इसके आगे जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के विषय लिखा जायगा ॥

इति श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थ प्रकाशे सुभाषा विरचिते सप्तम समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ७ ॥

अथ जगदुत्पत्ति प्रलयविषयान्व्याख्यास्यामः ब्रह्मविदाप्नोति परं तदेषाभ्युक्ता सत्यंज्ञानमनंतं ब्रह्मयोवेदनिहितंगुहायांपरमेव्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान्ब्रह्मणासहविपश्चिते तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशःसंभूतः आकाशाद्वायुःवायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्योन्नं अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः सवाएषपुरुषोन्नरसमयः ४ तैत्तिरीय शाखा की श्रुती है सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयंतदैक्षत बहुस्यांप्रजायेयेतियहछांदोग्य उपनिषद की श्रुती है नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजोनव्योमापरोयत् किमावरीवः कुहकस्यशर्मन्नम्भः किमासीद्गहनंगभीरं यह ऋग्वेद की श्रुति है आत्मावाइदमग्रआसीन्नान्यत् किंचन्मिषत् सईक्षत-

लोकान्नुसृजा इतियह ऐतरेयब्राह्मणकी श्रुति है इत्यादिक वेदादि की श्रुतियों से यह निश्चित जाना जाता है कि एक अद्वितीय सच्चिदानन्दरूप परमेश्वर हो सनातन था और जगत् लेशमात्र भी नहीं था उसने सब जगत् को रचा सो इन मन्त्रों में जितने नाम हैं वे सब परमेश्वरके ही हैं इनका अर्थ प्रथम समुल्लास में कर दिया है वहां देख लेना उस परब्रह्म को जो मनुष्य जानता है उस अनन्त पंडित परमेश्वर के साथ मिल के उसके सब काम पूर्ण हो जाते हैं वह परमेश्वर एक अद्वितीय था दूसरा कोई नहीं था उसने जगदुत्पत्ति की इच्छा किई कि बहुत प्रकार की प्रजा को मैं उत्पन्न करूं उसी क्षण में नाना प्रकार की प्रजा उत्पन्न होगई सोइस क्रम में पहिले आकाश को उत्पन्न किया कि जो सब जगत का निवास करने का स्थान सो आकाश अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है जो कि अनुमान से भी कठिनता से समझने में आता है उससे स्थूल द्विगुण वायु उत्पन्न भया उससे अग्नि त्रिगुण भया त्रिगुण अग्नि से चतुर्गुण जल भया और जलसे पंचगुणभूमि भई भूमि से औषधि औषधियों से वीर्य वीर्य से शरीर इस प्रकार आकाशसे लेके तृणपर्यन्त परमेश्वरने सृष्टि रच लिई सो शब्द और संख्यादिक गुण वालाआकाश रचा फिर वायु आदिक चारों के परमाणु रचे परमाणु साठ मिलाके एक अणु रचा दो अणु से एक द्व्यणुक और तीन द्व्यणुक से एक त्रसरेणु और अनेक त्रसरेणु को मिला के यह जो देख पड़ता है सब जगत इसको रच दिया प्रश्न परमेश्वर का क्या प्रयो-

जन था कि जगत् को रचा उत्तर इस्से पूंछना चाहिये कि प्रयोजन क्या कहाता है यमर्थमधिकृत्यप्रवर्त्तते तत्प्रयोजनम् यह गोतम मुनि जी का सूत्र है इसका यह अभिप्राय है कि जिस पदार्थ को अधिकमान के जीव प्रवृत्त होवै उसको कहना प्रयोजन सो परमेश्वर पूर्णकाम है उसको कोई प्रयोजन अधिक नहीं है क्यों कि उस्से कोई पदार्थ उत्तम वा अप्राप्त नहीं फिर प्रयोजन का प्रश्न करना सो अयुक्त है प्रश्न जगत् के रचने की इच्छा किई सो बिना प्रयोजन से इच्छा नहीं हो सकती उत्तर इच्छा के जगत् में तीन कारण देख पड़ते हैं पदार्थ की अप्राप्ति और वह उत्तम होवै तथा अपने से भिन्न होवै परमेश्वर में तीनों में से एक भी नहीं क्यों कि सर्वशक्तिमान् के होने से कोई पदार्थ की अप्राप्ति कभी नहीं होती तब परमेश्वर से कोई पदार्थ उत्तम भी नहीं और सर्वव्यापक के होने से अत्यन्त भिन्न कोई पदार्थ नहीं इस्से इच्छा की घटना ईश्वर में नहीं हो सकती प्रश्न जगत् रचने की प्रवृत्ति बिना प्रयोजन वा इच्छाके कभी नहीं हो सकती उत्तर अच्छा इच्छा तो नहीं बन सक्ती तथा प्रयोजन भी नहीं बन सक्ता परन्तु इच्छा और प्रयोजन मानो तोजगत् का होना वही इच्छा और प्रयोजन मानलेओ इस्से भिन्न इच्छा वा प्रयोजन कोई नहीं क्यों कि जो ऐसा मानैं कि अपने आनन्द के वास्ते जगत् को रचा उस्से हम लोग पूछते हैं कि जब तक जगत नहीं रचाथा तब परमेश्वर क्या दुःखी था जो कि आनन्द के वास्ते जगत को रचा सो दुःख का परमेश्वरमें लेशमात्र भी सम्बन्धनहीं जो

आप ऐसे पूछने में आग्रह करें कि जगत के रचने में और भी कुछ प्रयोजन होगा तो आप से मैं पूछता हूं कि जगत के नही रचने में क्या प्रयोजन है जो आप कहें कि जगत के रचने में जगतकी लीला देखनेसे आनन्द होता होगा और जगतके जीव भक्ति करें तो जब तक जगतकी लीला नही देखीथी और जगत् के जीव भक्ति भी नही कर्ते थे तब परमेश्वर अवश्य दुःखी होगा इससे ऐसा प्रश्न व्यर्थ होता है इसमें आग्रह नही करना चाहिये रचना से ईश्वर के सामर्थ्य का सफल होना ही रचना प्रयोजन है प्रश्न ईश्वर ने जगत रचा सो जगत रचने की सामग्री थी अथवा आप में से ही जगत रचा वा आपही सब जगत रूप बनगया उत्तर इसका विचार अवश्य करना चाहिये कि बिना सामग्री से कोई पदार्थ नही बन सक्ता क्यों कि कारण के बिना किसी कार्य की उत्पत्ति हम लोग नही देखते सो कारण तीन प्रकार का होता है एक उपादान दूसरा निमित्त और तीसरा साधारण सो उपादान यह कहाता है कि किसी से कुछ ले के कोई पदार्थ बनाना सो कार्य और कारण का इसमें कुछ भेद नही होता दोनो एक ही रूप होते हैं जैसे मट्टीको लेके घड़े को बना लेते हैं कपासको ले के वस्त्र सोनेको ले के गहना लोहे को लेके शस्त्र और काष्ठ को ले के किवाड़ आदिक सो घड़ादिक जितने हैं वे मृत्तिकादिकों से भिन्न वस्तु नहीं हैं किन्तु वही वस्तु है इस प्रकार का उपादान कारण जानना दूसरा निमित्त कारण जो कि उन कुलीलादिक शिल्पी लोग नाना प्रकार के पदार्थों को रचने वाले निमित्त कारण में

जानना क्यों कि मृत्तिकादिकों का ग्रहण करके अनेक पदार्थों को रचते हैं किन्तु अपने शरीर से पदार्थ लेके नहीं रचते इस से ऐसा निमित्त कारण होता है कि जो पदार्थ बनावे उस्से भिन्न सदा रहै और उस पदार्थ को रचले तीसरा साधारण कारण होता है जैसा कि प्राण काल देश चक्र और सूत्रादिक क्योंकि ये सब कर्त्ताके आधीन और हेतु रहते हैं इस्से अवश्य विचार करना चाहिये परमेश्वर इस जगत् का तीनों कारणों में से कौन कारण है अर्थात् तीनों कारन हैं जो उपादान कारण होवै तो क्षुधा तृषा शीतोष्ण भ्रम जन्म और मरणादिक दोष ईश्वर में आजांयगे क्यों कि उपादान से उपादेय भिन्न नहीं होता अर्थात् ईश्वर से जगत भिन्न नहीं होगा इस्से उक्त दोष अवश्य ही आवेंगे इसमें जो कोई ऐसा कहै कि जैसे स्वप्नावस्था में मिथ्या पदार्थ अनेक देख पड़ते हैं और रज्जु में सर्प बुद्धि होता है इत्यादिक सब कल्पित भ्रान्त पदार्थ हैं उनसे वस्तु में कुछ दोष नहीं आसक्ता स्वप्नसे जीवको कुछ हानि नहीं होती और सर्प से रज्जु को उन से पूंछना चाहिये सर्प की भ्रान्ति रज्जु में और स्वप्नमें हर्ष शोकादिक दुःख किसको भये जो वह कहे कि ब्रह्मको ही भये फिर वह ब्रह्म शुद्ध नहीं रहा तथा ज्ञान स्वरूप नहीं रहा क्योंकि भ्रमजो होताहै सो अज्ञानसे हीहोताहै बिना अज्ञानसे नहीं फिर वेदोंमें सर्वज्ञ सदा भ्रान्ति रहित ब्रह्मको लिखा है उसकी क्यागति होगी तथा बन्धमोक्षाकि दोष भी ब्रह्म में आ जांयगे जो वह कहे कि भ्रम से बन्ध और मोक्ष है वस्तु से नहीं फिर भी नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव परमेश्वर को

वेद में लिखा है सो बात झूठी हो जायगी यह बड़ा दोष होगा और जो बद्ध होगा सो जगत रचने को कैसे रच सकेगा और जो मुक्त होगा सो जगत रचने की इच्छा ही न करेगा फिर परमेश्वर से जगत कैसे बनेगा और जो कोई केवल निमित्त कारण मानै तो जगत का साक्षात कर्ता नहीं होगा किन्तु शिल्पी वत् होगा अथवा उस को महाशिल्पी कहो और उसके पास सामग्री भी अवश्य माननी चाहिये फिर जो सामग्री मानेंगे तो जगत भी नित्य होगा क्यों कि जिस्से जगत बना है वह सामग्री ईश्वर के पास सदा रहती ही है फिर एक अद्वितीय जगत की उत्पत्ति के पहिले परमेश्वर था जगत लेश मात्र भी नहीं था यह वेदादिक शास्त्रोंका प्रमाणोंसे कहना वह व्यर्थ होगा इस्से उन निमित्त कारण मानने से भी वह दोष आवेगा और जो साधारण कारण मानें तो भी जडपराधित रचनेमें असमर्थ ईश्वर होगा जैसे कुलालादिक के विना घटादि कार्य्य पराधीन होते हैं क्यों कि जैसे चक्रादिक के विना कुलालादिक घटादिक नहीं रच सकते हैं फिर वह ईश्वर पराधीन होने से सर्वशक्तिमान नहीं रहेगा क्यों कि कोई का सहाय किसी काममें न ले और अपनी शक्ति से सब कुछ करै उसको कहते हैं सर्वशक्तिमान् सो साधारण कारण जब माना जायगा तो सर्वशक्तिमान् ईश्वर कभी न रहेगा इस्से तीनों प्रकार में दोष आते हैं। इस वास्ते अत्यन्त विचार करना चाहिये जिसमें कि कोई दोष न आवै इसमें यह विचार है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है जो सर्व शक्तिमान होता है उसमें अनन्त सामर्थ्य सामग्री

होती है सो वह सामग्री स्वाभाविक है जैसा कि स्वाभाविक गुण गुणी का सम्बन्ध होता है वह दूसरा पदार्थ नहीं है और एक भी नहीं उस सामग्रीसे सब जगत्को परमेश्वर ने बनाया प्रश्न जो गुण की नांई स्वाभाविक सामग्री है सो गुणी से भिन्न कभी नहीं होती क्योंकि स्वाभाविक जोगुण है सो गुणी से भिन्न कभी नहीं होता इस्से क्या आया कि सामग्री सहित परमेश्वर जगत् रूप बन गया उत्तर ऐसा न कहना चाहिये क्योंकि जो जिसका पदार्थ होताहै वह उसी का कहाता है सो परमेश्वर का अनन्त सामर्थ्य स्वाभाविक ही है अन्य से नही लिया वह सामर्थ्य अत्यन्त सूक्ष्म है और स्वाभाविक के होने से परमेश्वर का विरोध भी नहीं किन्तु उसीमें वह सामर्थ्य रहता है उस्से सब जगत्को ईश्वर ने रचा है इससे क्या आया कि भिन्न पदार्थ न लेके जगत् के रचने से उपादान कारण जगत् का परमेश्वर ही हुआ क्योंकि अपनेसे भिन्न दूसरा कोई पदार्थ नही है कि जिसे लेके जगत् को रचे सो अपने स्वाभाविक सामर्थ्य गुण रूपसे जगत्को रचा इससे सब जगत् का उपादान कारण परमेश्वर ही है परन्तु आप जगत रूप नही बना तथा अपनी शक्ति से नाना प्रकार के जगत रचने से दूसरे के सहाय बिना इस्से जगत का निमित्त कारण ईश्वर ही है अन्य कोई नहीं तथा साधारण कारणभी जगत का ईश्वर है क्यों- कि किसी अन्य पदार्थ के सहाय से जगत को ईश्वर ने नही रचा किन्तु अपनी सामर्थ्य से जगत को रचा है इस्से साधा- रण कारण भी जगत का ईश्वर है अन्य कोई नहीं

और जो अन्य कोई होता तो विरुद्ध कार्य जगतमें देख पड़ते विरुद्ध कार्यों को हम लोग जगत मे नही देखते हैं इससे जगत् के तीनों कारण परमेश्वर ही हैं अन्य कोई नही प्रश्न परमेश्वर निराकर और व्यापक है अथवा नही उत्तर परमेश्वर निराकार और व्यापक ही है क्योंकि निराकार होता तो एक देश में रहता और कहीं देख भी पड़ता सो एक देश में नही है और कहीं देख भी नहीं पड़ता इससे निराकार ही ईश्वर को जानना चाहिए और जो निराकार न होता तो सर्वव्यापक न होता तो सर्वात्मा और सब जगत् का अन्तर्यामी न होता सो सब जगत् का आत्मासर्वान्तिर्यामी के होने से व्यापक ही ईश्वर है अन्यथा नहीं प्रश्न सब जगत् का रचन और धारण ईश्वर किस प्रकार से करता है उत्तर जैसा जगत् में हम लोग देखते हैं वैसा ही ईश्वर ने जगत रचा है परन्तु इसमें यह प्रकार है कि आकाश तो परमाणु से भी सूक्ष्म है और वायु के परिमाणु का यह स्वाभाव देखने में आता है कि नीचे ऊंचे और समदेश में गमन करने वाले परमाणु हैं क्योंकि जो त्वचा इन्द्रिय से प्रत्यक्ष स्थूल वायु को हम लोग वैसा ही स्वभाव वाला देखतेहैं कभी ऊद्ध्र्व कभी नीचे औरकभी तिरछा चलता है इससे हम लोग परमाणु का अनुमान कर्ते हैं इसमें अन्य भी बहुत कारण हैं क्योंकि वायु में अनेक तत्व मिले हैं परन्तु हम लोग मुख्य को गणना से इस बात को लिखते हैं तथा अग्नि का ऊद्ध्र्व जल के तथा नीचे और पृथिवी का समता अनेक विधि गति को देख के परम सूक्ष्म परमाणु रूप जो तत्त्व उनका

भी अनुमान कर्ते हैं कि वे भी इसी प्रकार के हैं सो परमेश्वर ने पृथिवी में अनेक तत्वों का मेलन किया है क्योंकि जो मेलन होता तो तत्वों के स्वाभाविक गुण पृथिवीमें न देख पड़ते जैसे कि वायु न होता तो पृथिवी में स्पर्श भी न होता तथा अग्नि, जल और आकाश न होते तो रूप रस और पोल भी न देख पड़ते इस्से क्या जाना जाता है कि सबमें सब तत्व मिले हैं सो पृथिवी और वायु जल के परमाणु अधोगामी स्वभाव से हैं अग्नि ऊर्ध्व गमन और वायु तिर्छे गमन करने वाला है उन सबके परमाणु भी वा अधिक न्यून मिलने से स्थिरता वा गमन पदार्थोंके होते हैं जैसे कि पृथिवी और जल नीचे जाते हैं और अग्नि तथा वायु ऊपर औरअनेक विधि चल कर्ते हैं फिर मिला भया पदार्थ कहीं नहीं जा सक्ता वा अधिक न्यूनता तत्वों के मिलाने से जितनी जिसकी गति परमेश्वर ने रची है उतनी होती है अन्यथा नहीं और सब में बलवान वायू है वायू के आधार से सब लोगों को हम लोग देखते हैं जैसे कि इस पृथिवी के चारो ओर वायु अधिक है तथा वायुमें अन्य तत्व भी मिले हुए देख पड़ते हैं और यह वायु ४९ व ५० कोस तक अधिक है उसके ऊपर थोड़ा है सो ज्योतिष विद्याकी गणना से प्रत्यक्ष है उस वायु का आधार आकाश और आकाशादिक सब पदार्थों का आधार परमेश्वर है सो जो सर्व व्यापक न होता तो आकाशादिकों का सब जगत् में धारण कैसे कर्ता इस्से परमेश्वर व्यापक है व्यापक के होने से सब का धारण बनता है अन्यथा नहीं और जो साकार एक देशस्थ परमेश्वर

को मानेगा उसके मन में धारण सब जगत् का न होवैगा इत्यादिक बहुत दोष आवेंगे फिर दो प्रकार का व्यवहार हम लोग देखते हैं कि एक तो लघुवेग और गुरुत्वादिक गुण और आकर्षण भी पदार्थों में है क्यों कि जो हलका पदार्थ होता है सो ऊपर ही चलता है और गुरु नीचे को चलता है जैसे कि जल के पात्र में तेल की धारा जब देते हैं सो लघु के होने से तैल जल के ऊपर ही आ जाता है कभी नीचे नही रहता इस का यह कारण है कि जिस में छिद्र अधिक होगा उसमें पोल और वायु अधिक होगा वह लघु होगा और जिसमें पोल और वायु थोड़ा होगा वह गुरु होगा जो कि समीपर अत्यन्त जुट जायगा वही गुरु होगा और जो मिलेगा परन्तु उसके भीतर कुछ अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र रहेंगे जैसे कि लोहा और काठ दोनों का भार तो तुल्य होता है परन्तु जल में दोनों को डारने से काठ तो ऊपर रहेगा और लोहा नीचे चला जायगा तथा वस्त्र भीगने से नीचे चला जाता है उसका यह कारण है कि उसके छिद्रों से जल ऊपर चला जाता है सो ऊपर से जल का भार और सूतका अधिक बढ़ना और पृथिवी के आकर्षण से नीचे चला जाता है तथा कोई काष्ठ भी अत्यन्त भीगने और त्रसरेण्वादिक के अत्यन्त मिलने से वह नीचे चला जाता है और वेग भी पदार्थों में देख पड़ता है जैसे मनुष्य, घोड़ा हरिण वायु अग्न्यादिक में हैं तथा अग्नि और सूर्य्य पदार्थोंके अवयवों को भिन्न २ कर देते हैं और जल तथा पृथिवी ये पदार्थों से मिलने और मिलाने वाले हैं सो जहां जिसका अधिक बल होगा वहां

उसका कार्य्य होगा जैसे कि वायु सूक्ष्म और लघु हो के ऊपर जाता है तब चारों ओर की पृथिवी जल, त्रसरेणु युक्त जिस स्थान से वायु ऊपर चढ़ा उस स्थान में चारों ओर से गुरु वायु गिरता है वही अधिक चलने और आंधी का कारण है और वही वृष्टिका जल के ऊपर आकर्षण के होने से कारण है क्यों कि सूर्य्य और अग्नि सब रसों का भेद करते हैं फिर जलादिक रस सब ऊपर चढ़ते हैं परन्तु उनमें अग्नि वायु और पृथिवी के भी परमाणु मिले हैं और जल के परमाणु अधिक हैं फिर जब अधिक ऊपर जलादिकों के परमाणु चढ़ते हैं तब गुरु होते हैं अर्थात अधिक भार होता है फिर वायु धारण उन को नहीकरसक्ता वहांका वायु जलके संयोगसे शीतल चलता है उस्से जलादिकों के परमाणु मिलके बादल हो जाते हैं जब वे वायु से बीच में परस्पर चलते हैं वायु बन्द होनेसे उष्णता होती है फिर वे परस्पर भिड़ते हैं और घिसते हैं इस्से गर्जन और बीजली उत्पन्न होती है फिर उष्णता और बिजलीके होने से जल पृथिवी के ऊपर गिरता है तथा वायु के वेग और ठोकरसे बिजली नीचे गिरती है और अग्निका ऊपर वेग तथा जलका नीचे होता है सो जल को पात्र में रखके ऊपर रखने और अग्नि को नीचे रखने से जब उस जलमें अग्नि प्रविष्ट होता है तब उसमें वेग और बल होता है यही रेल आदिक पदार्थों का कारण है तथा बिजली अङ्क विद्या और नाना प्रकारके यन्त्रोंसे तार विद्या भी होती है ऐसेही विद्यासे अनेक प्रकार की पदार्थ विद्या बन सक्ती है ग्रन्थ अधिक हो जाय

इस हेतु हम अधिक नहीं लिखते हैं क्योंकि शास्त्रों में लिखा है सो बुद्धिमान् लोग विचार लेंगे जो थोड़ी २ विद्या से मनुष्य लोग अनेक प्रकार के पदार्थ रच लेते हैं फिर सर्वशक्तिमान् अनन्त विद्या वाला जो ईश्वर अनेक प्रकार के पदार्थों को रचे इसमें क्या आश्चर्य है इस प्रकार से जगत् को रचता है ईश्वर की अपनी नित्य शक्ति और गुण उनसे आकाश अव्यक्त अव्याकृत प्रकृति और प्रधान ए सब एक ही के नाम हैं इनको रचता है आकाश से वायु आदि के परमाणु बनाता है उन साठ परमाणु से एक अणु बनता है दो अणु से एक द्व्यणुक बनता है सो वायु द्व्यणुक है इससे प्रत्यक्ष रूप नहीं देख पड़ता वायु से त्रिगुण स्थूल अग्नि रचा है इससे अग्नि में रूप देख पड़ता है उससे चतुर्गुण जल और जल से पंचगुण पृथिवी रची है तथा उस परमाणु के मेलन से वृक्ष, घास और वनस्पत्यादिकों के बीज रचे हैं उनमें परमाणु के संयोग इस प्रकार के रक्खे हैं कि जिनसे विलक्षण २ स्वादु पुष्प, पत्र फल और काष्ठादिक होते हैं सो प्रसिद्ध जगत् के पदार्थों को देखने से हम लोग परमेश्वर की रचना का अनुमान करते हैं और साधारण सब जगत् में व्यापक होने से सब जगत् का धारण करते हैं तथा एक के आधार दूसरा और परस्पर आकर्षण से भी जगत् का धारण होता है परन्तु सब आकर्षणों का आकर्षण और धारण करने वालों का धारण करने वाला परमेश्वर ही है अन्य कोई नहीं प्रश्न इसी लोक में इस प्रकार की सृष्टि है वा सब लोकों में ऐसी सृष्टि है उत्तर सब लोकों में सृष्टि अनेक प्रकार की है जैसी

कि इस लोक में क्यों कि इस लोक में हम लोग पृथिव्यादिक पदार्थ प्रयोजन के हेतु रचे हुये देखते हैं इनमें एक पदार्थ भी व्यर्थ नहीं देखते इससे हम लोग अनुमान करतेहैं कि कोई लोक परमेश्वर ने व्यर्थ नहीं रचा है किन्तु सब लोकों में अनेक विधि मनुष्यादिक सृष्टि रची है क्यों कि परमेश्वर का व्यर्थ कार्य कभी नहीं होता प्रश्न कितने लोक परमेश्वर ने रचे हैं उत्तर सूर्य्य, चन्द्र और जितने तारे देख पड़तेहैं तथा बहुत भी नहीं देख पड़ते ये सब लोक ही हैं सो असंख्यात हैं प्रश्न ये सब लोक स्थिर हैं वा चलते हैं उत्तर सब लोक अपनी २ परिधि और अपने २ वेग से चलते हैं सो अनेक विधि गति हैं स्थिर तो एक परमेश्वर ही है और कोई नहीं प्रश्न जब परमेश्वर ने पहिले सृष्टि रची तब एक २ दो २ मनुष्यादिक जाति में रचे अथवा अनेक रचे थे उत्तर एक २ जाति में परमेश्वर ने अनेक २ रचेहैं एक २ वा दो २ नहीं क्यों कि त्रिवट्टी आदिक जाति एक द्वीप में एक २ दो २ रचते तो द्वीपान्तर में वे कैसे जा सकते इत्यादिक और भी विचार आप लोग कर लेना प्रश्न परमेश्वर ने सब पदार्थ शुद्ध २ रचे हैं या कोई पदार्थ अशुद्ध भी रचा है उत्तर परमेश्वर सब पदार्थ अपने २ स्थान में शुद्ध ही रचे हैं अशुद्ध कोई नहीं परन्तु विरुद्ध गुण वाले परस्पर मिलने वा मिलाने वाले अशुद्ध कहते हैं अपने २ प्रतिकूल के होने से जैसे कि दूध और मांस जब मिलते हैं तब वे दोनों नष्ट गुण हो जाते हैं क्यों कि दोनों का स्वाद बिगड़ जाता है परन्तु उन्हीं दोनोंका पदार्थ विष्ट का युक्त से तृतीय

पदार्थ कोई रच ले फिर भी वह उत्तम हो सक्ता है जैसे सर्प मक्खी वे भी अपने स्थान में शुद्ध हैं क्यों कि वैद्यक शास्त्रकी युक्ति से इनकी भी बहुत औषधियां बनती हैं अनुकूल पदार्थों मे मिलानेसे परन्तु वेमनुष्य वा किसी को काटें अथवा भोजन में खा लेने से दोष करने वाले हो जाते हैं ऐसे ही अन्य पदार्थों का विचार कर लेना प्रश्न जब इस जगत् का प्रलय होता है तो किस प्रकारसे होताहै उत्तर जिस प्रकारसे सूक्ष्म पदार्थों से रचना स्थूल की होती है उसी प्रकार से प्रलय भी जगत्काहोताहै जिस्सेजोउत्पन्न होताहै वहसूक्ष्म होके अपने कारण में मिलता है जैसे कि पृथिवी के परमाणु और जलादिकों के परमाणु से यह स्थूल पृथिवी बनी है इन परमाणु का जब वियोग होता है तब स्थूल पृथिवी नष्ट हो जाती है वैसे ही सब पदार्थों का प्रलय जानना आकाश से पृथिवी पञ्चगुणी है जब एक गुणी घटेगी तब जल रूपहो जायगी जल और पृथिवी जब एक २ गुण घटेंगे तब अग्निरूप हो जांयगे जब वे तीनों एक २ गुण घटेंगे तब वायु रूप हो जांयगे तब वे भिन्न १ हो जांयगे तब सब परमाणु रूप हो जांयगे परमाणु की जब सूक्ष्म अवस्था होगी तब सब आकाश रूप हो जांयगे और जब आकाश की भी सूक्ष्म अवस्था होगी तब प्रकृति रूप हो जायगा जब प्रकृति लय होती है तब एक परमेश्वर और सब जगत्का कारण जोपरमेश्वर का सामर्थ्य औरगुणपरमेश्वरकेअनन्त सत्यसामर्थ्य वाला एक अद्वितीय परमेश्वर ही रहेगा और कोईनही तो यह सब आका-

शादिक जगत् परमेश्वरके सामने कैसा है कि जैसा आकाशके सामने एक अणु भी नहीं इससे किसी प्रकार का दोष उत्पत्ति स्थिति औरप्रलय से परमेश्वर में नहींआता इस्से सब सज्जन लोगों को ऐसा ही मानना उचित है प्रश्न जन्म और मरणा-दिक किस प्रकारसे होते हैं उत्तर लिंग शरीर और स्थूल शरीर का संयोग से प्रकट का जो होना उसका नाम जन्म है और लिंग शरीर का तथा स्थूल शरीर के वियोग होने से अप्रकट का जो होना उसका नाम मरण है सो इस प्रकार से होता है कि जीव अपने कर्मों के संस्कारों से घूमता हुआ जल वा कोई ओषधि में अथवा वायु में मिलता है फिर जैसा जिसके कर्मों का संस्कार अर्थात सुख व दुःख जितना जिसको होना अवश्य है परमेश्वरकी आज्ञाके अनुकूल वैसे स्थान और वैसेही शरीर में मिल के गर्भ में प्रविष्ट होताहै फिरजिस में वह मिला उसके अवयवों का आकर्षण से शरीर बनता है जैसी की परमेश्वर ने युक्ति रचीहै जिसके शरीर कावीर्य्य होगा उस वीर्य्य में उसके सब अङ्गों से सूक्ष्म अवयव आते हैं क्योंकि सबशरीर के अव-यवों से वीर्य्यकी उत्पत्ति होता है फिर उस वीर्य्यके अवयवों में उस शरीर के अवयव मिलते जाते हैं उन से शिर, नेत्र, नासिका, हस्त, पादादिक, अवयव बढ़ते चले जाते हैं जब वह शरीर, नख और सिखा पर्यन्त पूर्ण बन जाता हैं तब वह जीव शरीर में सब अवयवों से चेष्टा करता भया शरीर सहित प्रकट होता है फिर भी अन्न पानादिक बाहर के पदार्थों के भोजन करने से शरीर के अवयवों की वृद्धि होती है सो इः

विकार वाला शरीर है अस्ति नाम शरीर है १ जायते नाम जन्म का होना २ वर्द्धते नाम बढ़ना ३ विपरिणमते नाम स्थूल का होना ४ अपक्षीयते नाम क्षीण होना ५ विनश्यते नाम नष्ट का होना नाम मृत्यु का होना ६ ए छः विकार शरीर के हैं फिर जब मरण होता है तब स्थूल और लिंग शरीर का वियोग होता है सो स्थूल शरीर से लिंग शरीर निकल के बाहर का जो वायु उसमें मिलता है फिर वायु के साथ जहां तहां घूमता है कभी सूर्य के किरणों के साथ ऊंचे और चन्द्र को किरणों के साथ नीचे आ जाता है अथवा वायु के साथ नीचे ऊपर और मध्य में रहता है फिर उक्त प्रकार से शरीर धारण कर लेता है प्रश्न स्वर्ग और नरक लोक हैं वा नहीं उत्तर सब कुछ हैं क्योंकि परमेश्वर के रचे असंख्यात लोक हैं उनमें से जिन लोकों में सुख अधिक है और दुःख थोड़ा उनको स्वर्ग कहते हैं तथा जिन लोकों में दुःख अधिक और सुख थोड़ा है उनको नरक कहते हैं और जिन लोकोंमें सुख और दुःख तुल्य हैं उनको मर्त्यलोक कहते हैं इस प्रकार के स्वर्ग, मर्त्य और नर्क लोक बहुत हैं उनमें भी अनेक प्रकार के स्थान और पदार्थ हैं कि जिनमें सुख वा दुःख अधिक वा न्यून है सो इसी हेतु परमेश्वर ने सब प्रकार के स्थान और पदार्थ रचे हैं कि पापी पुण्यात्मा और मध्यस्थ जीवों को यथावत् फल मिले अन्यथा न होय जैसे कि राजा के उत्तम मध्यम और नीच स्थान होते हैं जिनसे उत्तम मध्यम और नीचों की यथावत् व्यवहार की व्यवस्था होती है परमेश्वर का यथावत् अभिव्याप्त संपूर्ण जगत में राज्य है और यथावत

न्याय से जिसकी व्यवस्था है फिर परमेश्वर के राज्य में स्वर्ग नर्क और मर्त्यलोकादिकों की व्यवस्था कैसे न होगी किन्तु अवश्य ही होगी प्रश्न मरण समय में यमराज के दूत आते हैं उस जीव को जाल में बांध लेते हैं बांध के मारते २ यमराज के पास ले जाते हैं और यमराज यथावत् न्याय से दण्ड देते हैं यह बात सत्य है या मिथ्या है उत्तर यह बात मिथ्या है क्यों कि जीव अत्यन्त सूक्ष्म है जाल से बांधने में कभी नहीं आता और गरुड़ पुराणादिकों में लिखा है कि पिंड देने से जीव का शरीर बन जाता है और वैतरणी नदी के तरने के हेतु गोदानादिक करना चाहिये और यमदूतों का कज्जल के पर्वत की नाईं शरीर लिखा है वे नगर के मार्ग और घर के दरवाजे भीतर जीव के पास कैसे आसकेंगे चिवँटी आदिक सूक्ष्म छिद्र में एक काल में अनेक जीव मरते हैं वहां कैसे जायगे तथा वन वा नगरादिकों में अग्नि के लगने और युद्ध में एक पल में बहुत जीवों का मरण होता है एक २ जीवको पकड़ने के हेतु बहुत दूत जाते हैं उतने दूत कहां रहते हैं तथा उनका होना कैसे बन सके सो यह बात अत्यन्त मिथ्या है और जो वेदादिक सत्य शास्त्रों में यमराज, तथा धर्मराज नाम लिखे हैं वे परमेश्वर के हैं और वायु तथा सूर्य्य के भी हैं इससे क्या आया कि जैसी व्यवस्था जीने और मरने में परमेश्वर ने रची है वैसीही होता है सो वायु और सूर्य्य के आधारसे सब जीवोंको जाना और आना होता है तथा यही परमेश्वर की आज्ञा है

कि जैसा जो कर्म करै वह वैसा फल पावै ये जो बात लिखी हैं उनमें ये प्रमाण हैं उत्पत्ति के विषय में तो कुछ श्रुति लिख दिया है परन्तु फिर भी लिखते हैं ॥ यतोवाइमानिभूतानिजायन्ते येनजातानिजीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विजिज्ञासस्वतद्ब्रह्म ॥ १ ॥ यह यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा की श्रुति है ॥ अथातोब्रह्मजिज्ञासा ॥ २ ॥ जन्माद्यस्ययतः ॥ ३ ॥ वेदव्यास जीके सूत्र हैं इनका यह अभिप्राय है कि जिस परमेश्वर से सब भूत अर्थात सब जगत् उत्पन्न होता है उत्पन्न हो के उसी परमेश्वर के धारण और सत्ता से सब जगत् जीता है और प्रलय में उसी परमेश्वर में लीन हो जाता वही ब्रह्म है उस ब्रह्म को जानने की इच्छा है भृगो तूं कर यही दोनों सूत्र का भी अर्थ है। सविताप्रथमेहनि, इत्यादिक मन्त्र यजुर्वेद की संहिता में लिखे हैं इनका यह अभिप्राय है कि जीव जब शरीर छोड़ता है तब सूर्य्य वा वायुमें मिलता है फिर जैसा पूर्व लिखा वैसे ही जाता और आता है सो सब बात यहां लिखी है देखा चाहै सो देखले । अन्नेनसोम्यशुङ्गेनापोमूलमन्विच्छ अद्भिः सोम्यशुङ्गेनतेजोमूलमन्विच्छतेजसासोम्यशुङ्गेनसन्मूलमन्विच्छसन्मूलाः सोम्येमाःप्रजा ॥ इत्यादिक साम वेदकी छान्दोग्य की श्रुती हैं इनका यह अभिप्राय है कि जैसी आकाशादिक क्रम से उत्पत्ति जगत् की होती है वैसे ही क्रम से प्रलय भी होता है शुङ्ग नाम कार्य का पृथिवी का जो कार्य उसका मूल जल है सो जब पृथिवी का प्रलय होता है तब

पृथिवी जल रूप कारणमें लय होती है तथा जल,अग्निमें अग्नि वायुमें वायु आकाशमें और आकाश परमेश्वर में सो जिस प्रकार से प्रलयको लिखा उसी प्रकारसे होना है और हिरण्य-गर्भः समवर्त्तताग्रेइति यह मन्त्र पहिले लिखा है और इसका अर्थ भी लिख दिया है सो परमेश्वर ही सब जगत्का धारण कर्ता है अन्य कोई नहीं इस्से ऐसा सिद्ध भया उत्पत्ति धारण और प्रलय परमेश्वर ही के आधीन हैं यह संक्षेप से जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयके विषयमें लिखा और जो विस्तार देखा चाहै सो वेदादिक सत्य शास्त्रों में देख लेवै इसके आगे विद्या, अविद्या बन्ध और मोक्ष के विषयमें लिखा जायगा॥

इति श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थ प्रकाशे सुभाषा विरचिते अष्टमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ८ ॥

अथविद्याऽविद्याबन्धमोक्षान् व्याख्यास्यामः। वेत्तिअन-यायथार्थान्पदार्थान्साविद्या विद्या इसका नाम है कि जो जैसा पदार्थ है उस को वैसाही जानना नवेत्तिअनयायथार्थान् पदार्थान्साअविद्या जैसा पदार्थ है उसको वैसा न जानना उसका नाम अविद्या है ज्ञानविवेक और विज्ञान इत्यादिक विद्या के नाम हैं अज्ञान भ्रम और अविवेक इत्यादिक सब अविद्या के नाम हैं। अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचि-

सुखात्मख्यातिरविद्या ॥ १ ॥ यह पतञ्जलि मुनिका योगशास्त्र में सूत्र है इसका यह अभिप्राय है कि अनित्य अशुचि दुःख और अनात्माये जैसे हैं वैसे न जानना किन्तु इनमें नित्य शुचि सुख और आत्मा की बुद्धि होनी है जैसेकि, अमरानिर्जरादेवा इत्यादिक वचनों से नित्य निश्चय का जो करना कि स्वर्गादि लोक और ब्रह्मादिक देव नित्य हैं ऐसा अज्ञान बहुत मनुष्यों को है परन्तु वे विचार कर के देखें कि जिनकी उत्पत्ति होती है वे नित्य कैसे होंगे कभी नहीं क्योंकि बहुत पदार्थों के संयोग से जो पदार्थ होता है सो उन पदार्थों के वियोग से वह जो संयोग से बना था सो अवश्य नष्ट हो जायगा ब्रह्मादिकों के शरीर और स्वर्गादिक सब लोक संयोगसे बनेहैं उनका वियोगसे अवश्य नाश होनाही है फिर जो इन अनित्य पदार्थों में नित्य निश्चय होना और नित्य जो परमेश्वर तथा परमेश्वर के नित्य गुण धर्म और विद्या उनको नित्य न जानना कभी उनके जानने में इच्छा भी न होनी यह अविद्या का प्रथम भाग है और अनित्य पदार्थों को अनित्य जानना तथा नित्य पदार्थों को नित्य जानना यह विद्या का प्रथम भाग है अशुचि अपवित्र नाम अशुद्ध पदार्थों में शुद्ध का निश्चय होना और शुचि जो पवित्र अर्थात् शुद्ध पदार्थमें अशुद्धका निश्चय होना जैसेकि यह शरीर इसमें सब मार्गों से मल ही निकलता है कान, आंख, नाक, मुख तथा नीचे के छिद्र और लोमों के छिद्रोंसे भी दुर्गन्ध ही निकलता है परन्तु जिनकी बुद्धि विपरीतमति होतीहै वह शुद्ध बुद्धि

ही उसमें करता है तथा स्त्री भी पुरुष के शरीर में शुद्ध बुद्धि करती है ऊपर के चाम को देख के मोहित हो जाते हैं फिर अपना बल, बुद्धि, पराक्रम, तेज, विद्या, और धन उसके हेतु नाश कर देते हैं जो उनकी उसमें प्रवृत्त बुद्धि न होती तो ऐसे काममें प्रवृत्त न होनेसे बड़े२ राजाओंरबड़े२धनाढ्य और महात्मा लोग तथा विद्या विरक्त लोग जोहैं ये इस काममें नष्टहो जाते हैं कभी उनके हृदयमें इस बातका विचार भी नही होता जैसे अग्नि में पतङ्ग गिर के नष्ट हो जातेहैं वैसे वे भी ऐश्वर्य सहित नष्ट हो जाते हैं और पवित्र जो परमेश्वर विद्या और धर्म इनमें उनकी बुद्धि कभी नहीआती यह अविद्या का दूसरा भाग है और जो शुद्ध को शुद्ध जानना और अशुद्ध को यथावत् अशुद्ध जानना यह विद्याका दूसरा भाग है दुःख में सुख बुद्धि का करना और सुख में दुःख बुद्धि का होना जैसे कि काम क्रोध, लोभ, मोह, भय शोक औरविषयों की सेवा इनमें जीवको शान्ति कभी नहीं आती जैसे कि अग्नि में घी डालने से अग्नि बढ़ता जाता है वैसे उनकी भी तृष्णा बढ़ती जाती है परन्तु उस दुःख में बहुत जीवों की सुख बुद्धि देखने में आती है क्योंकि उस दुःख में सुख बुद्धि न होती तो वे इसमें फसते नहीं यह अविद्या का तीसरा भाग है और जो पुरुषार्थ सत्य धर्म का अनुष्ठान सत्य विद्या का ग्रहण जितेन्द्रियता का करना तथा सत्संग सद्विद्या और परमेश्वर की प्राप्ति का उपाय अर्थात् मोक्ष का चाहना इनमें इनकी बुद्धि लेशमात्र भी नहीं आती इनके विना जीव को कभी सुख नहीं

होता परन्तु विपरीत बुद्धि के होने से दुःख ही में फसे रहते हैं सुख में कभी नहीं आते यह अविद्या का तीसरा भाग है सुख में सुख बुद्धि का होना और दुःख में दुःख बुद्धि का होना सो विद्या का तीसरा भाग है तथा अनात्मा में आत्म बुद्धि और आत्मामें अनात्म बुद्धि का होना जैसे कि शरीरादिक सब अनात्मपदार्थ हैं इनमें आत्मा की नाई बहुत मनुष्यों की बुद्धि है जब देहादिकों में दुःख होता है तब इनकी बुद्धि में यही होता है कि मैं मरा और मैं बड़ा दुःखी हूँ मैं दुबला होगया मैं पुष्ट हूँ मैं रूपवान हूं मैं कुरूप हूं इत्यादिक निश्चय लोक में देख पड़ता है और जो आत्मा और परमाणवादिक जिनसे कि शरीर बना है और परमेश्वर इन नित्य पदार्थों में इनकी बुद्धि भी नहीं आती नित्य सुख जो मोक्ष इसकी इच्छा कभी नहीं होती इससे जन्म, मरण, क्षुधा, तृषा, शीत उष्ण हर्ष और शोक इस दुःख सागर से कभी नहीं निकलते यह अविद्या का चौथा भाग है और आत्मा को आत्मा जानना अनात्मा को अनात्माजानना यह विद्याका चौथा भाग है इससे क्या आया कि अनित्याशुचिदुःखानात्मस्वनित्याशुचिदुःखानात्मबुद्धिः तथा नित्यशुचिसुखात्मसुनित्यशुचिसुखात्मबुद्धिर्विद्या। अर्थान्यथा-त्वाविद्येतिविज्ञातव्या अन्यथा नाम मिथ्याजो ज्ञान कि जैसे को तैसा न जानना इसका नाम अविद्या है और निर्भ्रम यथार्थ ज्ञान का होना सो विद्या कहातीहै विद्या अविद्या की उत्पत्ति विषयासक्त्यादि दोषों से होतीहै जब यह जीव विद्या हीन होके बाहर के पदार्थों को सुख के हेतु चाहता है तब

मन को बाहर की ओर प्रेरता है फिर वह मन इन्द्रियों को बाहर के पदार्थों में लगा के प्रवृत्त कर देता है सो जैसे कोई पुरुष निशाने में तीर वा गोली लगाया चाहता है तब वह भीतर से बाहर की ओर ध्यान करता है सो नेत्र को बन्दूक के मुख से लगा के निशाने में लगा देता है वैसे ही जो २ व्यवहार जीव किया चाहता है तबउसी प्रकार का व्यवहार जीव में भी होताहै फिर बाहर औरभीतर के पदार्थों को यथावत् न जानने से जीव भ्रम युक्त होके अन्यथा जान लेता है उस्से फिरदृढ़ संस्कार अन्यन्था होने से अविद्या कहाती है सो न अपने स्वरूप का कभी ध्यान करता है न परमेश्वर का तथा न विद्या का किन्तु जैसे वे मिथ्या संस्कार उसके हैं उसी में गिरा रहता है क्योंकि जैसा जिसका अभ्यास करेगा वैसा ही उस जीव को भासता रहैगा फिर जब तक यह अविद्या जीव में रहैगी तब तक उसकीविद्या कभीनहीं होती परन्तु जबकभी अच्छा संग और सद्विद्या का अभ्यास तथा बिचार और धर्म का अनुष्ठान तथा अधर्म का त्याग कभी नहीं वह जीव कर सक्ता और यथार्थ तत्व ज्ञान पदार्थों का उसको कभी नहीं होता जब तक यह अविद्या जीव को रहती है तब तक विद्या का साधन और बिद्या प्राप्त नहींहोती क्योंकि जब जीव सुविचार करता है तब उसको कुछ २ विवेक उत्पन्न होता है किसत्यकोसत्यऔरअसत्य को असत्य जाननाफिरअविद्याकेगुण और उनके कार्य उनमें वैराग्य होता है अर्थात् उनको छोड़ता है और बिद्यादिक जो सत्यार्थ उनमें प्रीति करताहै इनमें यह

कारण है कि जब तक पदार्थों का दोष नही जानता तब तक उनके त्याग करने की बुद्धि जीव को कभी नहीं होती क्योंकि त्याग का हेतु दोषों का यथावत् देखना होहै तथा पदार्थों के गुण का जो ज्ञान होना सोई प्रीति का हेतु है फिर वह जीव धर्माधर्म का यथावत् निश्चय करके अधर्म का त्याग और धर्म का ग्रहण करेगा फिर उसका मन शान्त होगा कि विद्या धर्म, सत्सग, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास, जितेन्द्रियता, सत्पुरुषों का आचार, मोक्ष और परमेश्वर इन्होंमें मन प्रीति युक्त होके स्थिर हो जायगा इनसे विरुद्ध अविद्या अधर्म कुसंग कि कुपुरुषों का संग विषयों का अत्यन्त अभ्यास अ-जितेन्द्रियता दुष्ट पुरुषों का आचार जिसमें बन्ध होय और परमेश्वर को छोड़ के उपासना प्रार्थना औरस्तुति का करना इनसे उसका मन हट जायगा इसका नाम शम है फिर सब इन्द्रियां स्थिर हो जांयगी इसका नाम दम है फिर अविद्या-दिक जितने दुष्ट व्यवहार उनसे उनका नाम पृथकहो जायगा अर्थात् उनमें कभी न फसेगा उसका नाम उपरति है फिर शीत, उष्ण, सुख, दुःख, हर्ष, वा शोक और क्षुधा, तृषादिक इनकासहन अर्थात् इनमें हर्ष वा शोक न करेगा इसका नाम तितिक्षा है फिर विद्यादिक उक्त गुणों में अत्यन्त श्रद्धा अ-र्थात् प्रीति जीव की होती है अविद्यादिक दोषों में सदा अप्री-ति इसका नाम है श्रद्धा फिरमन बुद्धि चित्त, अहंकार, इन्द्रि-य और प्राण पसब उसके वशीभूत हो जांयगे उनको जहां स्थिर करेगा वहां सब स्थिररहैंगे और अविद्यादिक अनर्थ में

कभी न जांयगे इसका नाम समाधान है ए छः गुण जीव में उत्पन्न होगें फिर जैसे क्षुधातुर पुरुष की इच्छा अन्न ही में रहती है वैसे उसका मन मुक्ति ही में रहेगा कि मेरी मुक्ति कब होगी इससे भिन्नव्यवहारोंमें उसका मन लगे होगा नहीं इसका नाम मुमुक्षुत्व है ये नवविवेकादिक गुण जब जीव में होते हैं तब वह ब्रह्म विद्या का अधिकारी होता है फिर वह सब सत्य शास्त्रों का जो सत्य २ पदार्थविद्यारूप विषय उसको यथावत् जानेगा फिर शास्त्र जिन पदार्थों के प्रतिपादन करते हैं उन पदार्थों के साथ शास्त्रों का प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध को यह जीव यथावत् जान लेगा इसका नाम सम्बन्ध है फिर वह यथावत् विद्याओं का श्रवण करेगा श्रवणकर के ज्ञान नेत्र से उनका यथावत् विचार करेगा इसका नाम मनन है और फिर उन पदार्थोंकोयथावत् प्रत्यक्ष जाननेकेहेतु योगाभ्यास अर्थात् पातञ्जल दर्शन की रीतिसे करेगा इसकानाम निदिध्यासन है फिर पृथिवी सेलेके परमेश्वर पर्यन्त सबपदार्थों का ज्ञान नेत्र से प्रत्यक्ष ज्ञान करेगा उसी समय इसका जो प्रयोजन कि सब दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द परमेश्वर की जो प्राप्ति इसका नाम प्रयोजन है सो जब यह विद्या होगी तब अविद्यादिक सब दोष नष्ट हो जांयगे जैसे सूर्य्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है विद्या और अविद्या यह दोनों अन्धकार और प्रकाशकी नाईं परस्पर विरोधी पदार्थ हैं इनका फलितार्थ यह है कि जो विद्यावान् होगा सो अधर्मादिक दोषों को कभी न करेगा और जो अविद्यावानुगा उसकी

निश्चित बुद्धि धर्मादिक के अनुष्ठान में कभी न लगेगी प्रश्न विद्या की पुस्तक कोई सनातन है वा सब पीछे रची गई हैं उत्तर चार वेदों को छोड़ के रची गई हैं प्रश्न जैसे अन्य सब शास्त्र रचे गए हैं वैसे वेद भी रचा गया होगा उत्तर ऐसा मत कहो जो ऐसा कहोगे तो आप के मत में अनवस्था दोष आजायगा क्यों कि कोई पुस्तक सनातन न ठहरने से किसी पदार्थ अथवा पुस्तक का सत्य वा असत्य निश्चय कभी न हो सकेगा जो कोई पुस्तक रचेगा उसका प्रमाण कैसे होगा क्यों कि जो सनातन पुस्तक होतो तो उस पुस्तकसे औरों का सत्यासत्य जीव लोग जान सकें फिर उसका खण्डन करके दूसरा कोई ग्रन्थ रच लेगा ऐसे दूसरे का करके तीसरा ऐसे ही अनवस्था आजायगी प्रश्न जैसे अन्य पुस्तकका प्रमाण वेद से होताहै वैसे वेदका प्रमाण किस पुस्तकसे होगा उत्तर ऐसा कहने से भी अनवस्था दोष आजायगा क्यों कि वेद के प्रमाण के हेतु कोई अन्य पुस्तक रक्खी जाय तो फिर उस पुस्तकके प्रमाण के हेतु कोई तीसरी भी मानी जायगी ऐसेही २ आगे२ अनवस्था आजायगी इस्से अवश्य एक पुस्तक सनातन मानना चाहिए जिस्से कि अन्य पुस्तकों की व्यवस्था सत्य २ रहै सो वेद के सनातन होने में पहिले लिख दिया है वहीं विचार लेना प्रश्न छः दर्शनों में बड़े २ विरोध हैं कि पूर्व मीमांसा वाला धर्माधर्म और कर्म ही पदार्थ हैं इनसे जगत् की उत्पत्ति मानता है तथा वैशेषिक दर्शन और न्याय दर्शन में परमाणु से जगत् की उत्पत्ति मानी है और पातंजल दर्शन

तथा सांख्य दर्शन में प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति मानी है और वेदान्त दर्शन में परमेश्वर से सब जगत् की उत्पत्ति मानी है यह बड़ा परस्पर विरोध है सब शास्त्रों में इसका क्या उत्तर है उत्तर वेदान्त में प्रथम सृष्टि का व्याख्यान है कि उस्से पहिले जगत् था ही नहीं और जब अत्यन्त सबका प्रलय होगा तब परमेश्वर ही में लय होगा अन्य में नहीं सो यह आदिसृष्टि है क्योंकि पहिले नहीं थी और फिर उत्पन्न भई इस्से इस सृष्टि के आदि होने से सादि कहाती है और मीमांसादिक शास्त्रोंमें अनादि सृष्टिका व्याख्यान है क्योंकि प्रकृति परमाणु और धर्मधर्मी इनका नाश प्रलय में भी नहीं होता इसका नाम महाप्रलय है इनमें प्रकृति परमाण्वादिकों के मिलने से जितना स्थूल जगत् होता है वह सब परमाण्वादिकों के वियोग से सब नष्ट हो जाता है परन्तु प्रकृति और परमाण्वादिक बने रहते हैं फिर भी जब ईश्वर उनको मिलाके जगत् को रचता है तब यह स्थूल सब हो जाता है फिर उनसे स्थूल जगत् उत्पन्न होता है फिर जब नष्ट होता है तब प्रकृति और परमाणु रूप होताहै फिर उनसे स्थूल जगत् उत्पन्न होता है ऐसे ही अनेक बार उत्पत्ति और अनेक बार जगत् की प्रलय होता है परन्तु प्रकृति और परमाणु इस स्थूल का जो कारण सो नष्ट नहीं इस्से महाप्रलय में आदि इस जगत् की नहीं देख पड़ती क्यों कि इसका कारण प्रकृति और परमाणु सदा बने रहते हैं इस्से जगत् आदि कहाता है कभी कारण रूप हो जाता है कभी कारण से स्थूल जगत उत्पन्न होता है

ऐसे ही प्रवाह रूप उत्पत्ति और प्रलय के होने से अनादि जगत कहाता है सो यह जगत कब उत्पन्न भया ऐसा कोई नहीं कह सक्ता इस्से यह आया कि पांच शास्त्रों में महाप्रलय की व्याख्या है इसमें भी अनेक भेद हैं कि त्रसरेणु तक जब प्रलय होता है तब धर्म और धर्मी कुछ २ प्रसिद्ध रहता है इस प्रलय की व्याख्यामीमांसा में है और जब अणुपर्यन्त का नाश होता है तब परमाणु मात्र जगत् रहता है सो भी महा-प्रलय भेद है यह व्याख्या वैशेषिक दर्शन और न्याय दर्शनमें है और जब परमाणु की भी सूक्ष्मावस्था होती है तब अत्यन्त सूक्ष्म जो प्रकृति सो रह जाती है और परमाणु का भी लय हो जाता है क्यों कि शब्दादिक तन्मात्राओं को भी सां-ख्य शास्त्र में उत्पत्ति लिखी है और प्रकृति की नहीं इस्से यह अनुमान से जाना जाता है कि प्रकृति परमाणु से भी सूक्ष्म है सो यह व्याख्यान पातंजल दर्शन और सांख्य दर्शनमें किया है और वेदान्त में प्रकृत्यादिकों की उत्पत्ति लिखी हैं और प्रकृ-तिका लय भी परमेश्वर में होता है इस्से उत्पत्ति के विषय में भिन्न २ पदार्थों के व्याख्यान होने से कुछ विरोध परस्पर इन में नहीं है प्रश्न पूर्व मीमांसा और सांख्य में ईश्वर को नहीं माना है और अन्य शास्त्रों में माना है इस्से विरोध आता है उत्तर इनमें भी कुछ विरोध नहीं क्यों कि मीमांसा में धर्म और धर्मी दो पदार्थ माने हैं इस्से ही ईश्वर धर्मी और ईश्वर के सर्वज्ञादिक धर्म्म अवश्य मान लिया है इसमें कुछ सन्देह नहीं और वेद को जैमिनीजी नित्य मानते हैं सो वेद शब्दज्ञान

रूप के होने से गुण है सो गुणी के विना गुण किसमें रहेगा इससे ईश्वर को उसने अवश्य माना है और सांख्य में ईश्वरा सिद्धेः ॥ १ ॥ प्रमाणाभावन्नतत्सिद्धिः ॥ २ ॥ सम्बन्धाभावा-न्नानुमानम् ॥ ३ ॥ उभयथाप्यसत्करत्वम् ॥ ४ ॥ मुक्तात्मनः प्रशंसोपासासिद्धस्यवा ॥ ५ ॥ एसेसांख्य शास्त्र में कपिल जी के किए सूत्र हैं यही अनीश्वर वाद का कारण है इन को यथावत् न जानके चार्वाक और बौद्धादिक बहुत अनीश्वर वादी होगए हैं इनके अभिप्राय नही जानने से इनका यह अभि-प्राय है कि ईश्वर की सिद्धि नही होती किन्तु एक पुरुष और प्रकृति दोनों नित्य हैं अन्य नही ॥ १ ॥ क्यों कि प्रत्यक्ष प्रमाण न होने से ईश्वर सिद्ध नहीं होता प्रत्यक्ष प्रमाण से जो सिद्ध होता सो ईश्वर माना जाता अन्यथा नहीं ॥ २ ॥ लिंग और लिंगी अर्थात चिन्ह और चिन्ह वाले का नित्य सम्बन्ध होता है सो लिंग के देखने से लिंगी का अनुमान होता है फिर ईश्वर का लिंग नाम चिन्ह कोई जगत्में देख नही पड़ता इससे ईश्वर में अनुमान भी नहीं बनता ॥ ३ ॥ ईश्वर जो मोहित होगा तो असमर्थ के होने से जगत् को कर्त्ता नही रच सकेगा और जो मुक्त होगा तो उदासीन के होने से जगत् के रचने में ईश्वर की इच्छा भी नही होगी इससे ईश्वर में शब्द प्रमाण भी नहीं बनता ॥ ४ ॥ फिर वेदमें सईश्वर इत्यादिक श्रुति ईश्वरके व्या-ख्यान में लिखी हैं उनकी क्या गति होगी वे सब श्रुति विद्या और योगाभ्यास और धर्म से सिद्ध जो जीव होता है कि

अणिमादिक ऐश्वर्य वाला उसको प्रशंसा और उपासना की वाचक है इस्से ईश्वर की सिद्धि किसी प्रकार से नही होती ऐसे अर्थ को विपरीत जानके मनुष्यों की बुद्धि भ्रम युक्त हो गई हैं परन्तु कपिलजी का यह अभिप्राय है कि पुरुष ही ईश्वर है और वही चेतन है सर्वज्ञादिक गुण भी पुरुषके हैं उस पुरुष चेतन से भिन्न कोई ईश्वर नही है पुरुष का नाम ही ईश्वर है इससे यह आया कि पुरुषही को ईश्वर मानना चाहिए दूसरा कोई नहीं इस्से जो कोई कहता है कि जैमिनी और कपिल जी निरीश्वर वादी थे यह उनका कहना मिथ्या जानना वेदादिक जितने पुस्तक हैं उनका पठन पाठन विद्या का साधन है और विद्या तथा अविद्या की परीक्षा उनके पढ़ने और पढ़ाने के बिना कभी नहीं होती विद्या पढ़ने वाले तथा नहीं पढ़ने वाले इनमें से पढ़ने वालों का जो आचरण और ज्ञानादिक व्यवहार अच्छा ही देखने में आता इस्से ग्रन्थोंका जो पढ़ना सो विद्या की प्राप्ति करने वाला होता है अन्यथा नहीं परन्तु विद्वान वही है कि जो सर्वथा अधर्मका त्याग करें और धर्मका ग्रहण करें अन्यथा पढ़ना और पढ़ाना व्यर्थ ही है । अन्धन्तमःप्रविशन्ति- येऽविद्यामुपासते ततोभूयइवतेतमोयउ विद्यायारताः ॥ १ ॥ विद्यांचाविद्यांचयस्तद्वेदोभयसह अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्यया मृतमश्नुते ॥ २ ॥ अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया: इति शुश्रमधीराणांयेनस्तद्विचचक्षिरे ॥ ३ ॥ ये यजुर्वेद की संहिता के मन्त्र हैं इन का यह अभिप्राय है कि जो पुरुष अविद्या में फसे हैं वे अत्यन्त अन्धकार अर्थात जन्म, मरण, हर्ष, और

शोकादिक दुःख सागर में प्रविष्ट रहते हैं इससे पृथक् नहीं हो सक्ते और विद्या अर्थात् नाना प्रकार के कर्म्मों से विषय भोगों की चाहना करना तथा योगाभ्यास, तप और संयमसे अणिमादिक सिद्धियों में फसके प्रतिष्ठा संसार में और अभिमानादिक दोषों से युक्त होना इसमें जो रत रहते हैं वे उन कर्मी लोगों से भी अत्यन्त अन्धकार में फस जाते हैं फिर उन का निकलना उससे बहुत कठिन होता है ॥ १ ॥ परन्तु विद्या और अविद्या को एक साथ गिन लेना क्योंकि बन्धको करने वाली दोनों हैं इससे दोनों का नाम अविद्या है जो कर्म धर्म्म युक्त और योगाभ्यास जो उपासना इनके अनुष्ठान से मृत्यु जो मोह और भ्रमतादिक दोष उनसे पृथक्मन और जीव होके शुद्ध हो जाते हैं फिर यथार्थ पदार्थों का ज्ञान और परमेश्वर की जो प्राप्ति इस विद्या से अमृत जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है फिर दुःख सागर में कभी नहीं गिरता ॥ २ ॥ इससे विद्या जो निर्भ्रम ज्ञान इसका फल भिन्न है अर्थात मोक्ष है और जो पूर्वोक्त अविद्या जो कि भ्रमात्मक ज्ञान उसका भी फल अन्य है नाम बन्ध है सो विद्या और अविद्या का फल भिन्न २ है एक नहीं ऐसा हमने ज्ञानियों के मुख से सुना है जो कि यथार्थ वक्ता उनने हमारे साम्हने यथावत व्याख्या करदी है इससे हमको इन में भ्रम नहीं है ॥ ३ ॥ सो सब मनुष्योंको यह उचितहै कि सब पुरुषार्थसे विद्याकी इच्छा करें और अत्यन्त प्रयत्न से अविद्या को छोड़ें क्यों कि इस संसार में विद्या के तुल्य कोई पदार्थ नहीं तथा विद्या के बिना इस

लोक वा परलोक में कुछ सुख नहीं होता और अनेक जन्म धारण करता है उनमें अत्यन्त पीड़ा होती है कभी परमेश्वरकी प्राप्ति नहीं होती इस कीप्राप्तिके उपाय ब्रह्मचर्यादिक पूर्व सब लिख दिये हैं उनकी नाम मात्र यहांगणना थोड़ीसी करतेहैं प्रथम सब उपायोंका मूल ब्रह्मचर्याश्रम जब तक पूर्णविद्या न होय तब तक जितेन्द्रिय होके यथावत विद्या ग्रहण करैं और सब व्यवहारोंको यथावत् जानैं फिर विवाह करैं परन्तु विद्याभ्यास को न छोड़ैं और नित्य गुण ग्रहण की इच्छा रक्खैं अत्यन्त पुरुषार्थ और नम्रता पूर्वक सब सज्जनों से मिलैं मिलके उनकी सेवा पूर्वक गुण ग्रहण करैं और जो जितनी बुद्धि उतना नित्य २ विचार करैं उसमें पक्षपात रहित होके सत्य को ग्रहण करैं और असत्य को छोड़ैं एकान्त सेवन से अपनी इन्द्रियां,मन और शरीर सदाधर्मानुष्ठान में निश्चिन्त रक्खैं अधर्म में कभी नहीं । यथाखनन्खनित्रेणनरोवार्य्यधिगच्छति तथागुरुगतांविद्यांशुश्रूषुरधिगच्छति ॥ यह मनु का श्लोक है इसका यह अभिप्राय है कि जो पुरुष अभिमानादिक दोष रहित और नम्रतादिक गुण युक्त होके सेवा से दूसरेका चित्त प्रसन्न कर देता है सोई श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होता है अन्य नहीं इसमें यह दृष्टान्त यह है कि जैसे भूमि को खोदता २ कुदाली से नीचे चला जाय फिर वह जल को प्राप्त होता है वैसे ही शुश्रूषु अर्थात कपटादिक दोष रहित और दूसरे पुरुष की परीक्षा जानता होय कि इसमें गुण हैं या नहीं

फिर यथावत् गुणों का बुद्धि से निश्चय करले कि इसमें ए सत्य गुण हैं पीछे जिस प्रकार से वे गुण मिलैं उन सेवादिक प्रकारों से गुणों को अवश्य ग्रहण करैं ग्रहण करके गुणों को प्रकाश करदे और जो कोई उन गुणों को ग्रहण किया चाहै उसको प्रीति से निष्कपट होके यथावत् गुणों को देदे क्यों कि गुणों को गुप्त करना कोई मनुष्य को उचित नहीं और जो गुणों को गुप्त रखता है वह बड़ा मूर्ख पुरुष है और धर्म तथा परमेश्वर का अत्यन्त विरोधी है वह कभी सुख न पावैगा इत्यादिक विद्या की प्राप्ति के हेतु हैं और यही अविद्या नाशके हेतु हैं अन्य भी अनेक प्रकार के हेतु हैं उनको विचार लेना और इसके आगे बन्ध और मुक्ति का व्याख्यान किया जाता है

पराञ्चिखानिव्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यतिनान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरःप्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ यह कठवल्लीकी श्रुति है इसका यह अभिप्राय है कि पराञ्चिखानि अर्थात बहिर्मुख इन्द्रिय जिसकी होती हैं वह जीव बाहर के पदार्थोंहीको देखता रहता है और भीतरके पदार्थोंको वा अपने स्वरूपको कभी नहीं विचारता अथवा परम सूक्ष्म जो परमेश्वर उसके विचार में कभी जीव का चित्त नही जाता इससे जीव को पदार्थों का यथार्थ ज्ञान तो नही होता किन्तु अत्यन्त दृढ़ भ्रम होता है उससे आपसे आपही बद्ध होता है फिर ऐसा मोह उसको होता है कि जिस का छूटना बहुत कठिन है उससे फिर मिथ्या ज्ञान होता है कि स्त्री पुत्र धन, राज्यादिकोंही में सुख मान लेता है फिर उनके सुधरने

में अत्यन्तहर्षित होता है और विगड़ने से शोक युक्त होता है इस जाल में गिर के अनेक जन्म मरण जीव के होते हैं और अत्यन्त दुःख पाता है प्रश्न जन्म एक होता है अथवा अनेक उत्तर अनेक जन्म होते हैं प्रश्न जो अनेक जन्म होते हैं तो पूर्व जन्मों का हमको स्मरण क्यों नहीं होता उत्तर पूर्व जन्मों का स्मरण नहीं हो सकता क्योंकि पूर्व जन्म ज्ञान के जो निमित्त है वे सब नष्ट हो जाते हैं इससे पूर्व जन्म का स्मरण नहीं हो सक्ता प्रश्न कौन वे निमित्त हैं और निमित्त किसको कहते हैं उत्तर निमित्त इसका नाम है कि जो दूसरे के संयोग से उत्पन्न होता है जैसे कि जल शीतल है और अग्नि उष्ण है जब अग्नि का संयोग जल में होता है तब जल उष्ण हो जाता है परन्तु जब अग्नि से जल पृथक् किया जाता है तब फिर भी वह शीतल हो जाताहै इसका नाम नैमित्तिक गुणहै जो कि जब तक उसका निमित्त रहता है तब तक वह रहता है और जब निमित्त नहीं रहता तब उसका निमित्त से उत्पन्न भया जो कि गुण सो भी नष्ट हो जाताहै जैसे सूर्य्य और नेत्रसे रूपका ग्रहण होता है जब सूर्य और नेत्र नहीं रहते तब रूपका भी ग्रहण नहीं होता क्योंकि निमित्तके विना नैमित्तिक गुणनहीं होता इससे क्या आया कि पूर्व जन्म जिस देश जिस कालमें और जोशरीर तथा उस शरीरके सम्बन्धी सब पदार्थ नष्ट अर्थात् उनका वियोग होने से वहां का जो उनको ज्ञानथा सो भी नष्ट होजाताहै और इसी जन्म में जो २ बाल्यावस्था में व्यवहार किया था उससे सुख वा दुःख पाया था उस का भी यथावत स्मरण वृद्धावस्था में

नहीं रहता और जिस समय किसी से किसी की बात होती है तब उस बात में अनेक अक्षर, पद, वाक्य, सम्बन्ध कहे और सुने जाते हैं परन्तु उसके उत्तर काल में स्मरण कहना वा सुनना यथावत् नहीं बनता और कोई बात कण्ठस्थ कर लेता है फिर कालान्तर में उसको भी भूल जाता है एक बात में जब जीवका चित्त होता तब दूसरे में नहीं जाता दूसरे में जब जाता है तब पहिले को भूल जाता है जब ऐसी बात है तो जन्मान्तर के स्मरण में शंका जो करते हैं उनकी शंका व्यर्थ ही है प्रश्न जीव और बुद्धि आदिक पदार्थ तो वे ही हैं फिर पूर्व जन्म का ज्ञान क्यों नहीं होता क्योंकि जो कुछ देखता वा सुनता है सो बुद्धि ही से ग्रहण करता है फिर उनका ज्ञान अवश्य होना चाहिये सो नहीं होता इस्से पूर्व जन्म नहीं है उत्तर इसका उत्तर तो पूर्व प्रश्नके उत्तर ही से हो गया क्योंकि इस बाल्यावस्थासे लेके वृद्धावस्था तक वही जीव और बुद्ध्यादिक हैं फिर कहे वा सुने व्यवहारों में अक्षर, पद, और उनके अर्थादिकों का यथावत् स्मरण क्यों नहीं होता इस व्यवहार को हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं कि जब हम लोग परस्पर बात कहते और सुनते हैं तब कुछ कालके पीछे बहुतर बातोंके सुनने वा कहने में आनुपूर्वी से यथावत स्मरण नहीं रहता फिर जन्मान्तर के स्मरण में शंका करनी व्यर्थ ही है और देखना चाहिये कि जागृतावस्था में वे ही जीव और बुद्ध्यादिक व्यवहार करते हैं यह मेरा घर द्वार, पिता, पुत्र, बन्धु शत्रु, और मित्रादिक हैं ऐसा उस जीव को यथावत स्मरण है और

फिर जब स्वप्नावस्था होती है तब इनका उसी समय विस्मरण होजाता फिर है जब सुषुप्ति होता है तब दोनोंका व्यवहार विस्मृत होजाता है वे ही जीव और बुद्ध्यादिक हैं परन्तु किञ्चित २ देश और कालके भेद होनेसे पूर्वका व्यवहार विस्मृत होजाता है फिर पूर्व जन्म देश काल और शरीरादिक पदार्थ सब छूट जाते हैं फिर उनके स्मरण की शंका जो कर्ते हैं सो विचारवान नहीं हैं प्रश्न यह जन्म जो होता है सो एक बारही होता है दूसरी बार नहीं क्योंकि यह दूसरा जीव है सो नया २ उत्पन्न हो जाता है और शरीर धारण करता है जो कि पहिले शरीर धारण किया था सो जीव फिर नहीं आता उत्तर यह बात मिथ्या है क्योंकि जो दूसरा जीव होता तो उसको पूर्व के संस्कार नहीं देख पड़ते जैसे कि जिस पदार्थ का साक्षात अनुभव बुद्धि में अवश्य आता है फिर संस्कार से स्मृति उत्पन्न होती है और स्मृति से प्रवृत्ति वा निवृत्ति होती है जैसे कि कोई संस्कृत को पढ़े और कोई अंगरेजीको जो जिसको पढ़ता है उसको उसका अक्षरादि क्रमसे बुद्धि में सब संस्कार होते हैं साक्षात देखने और सुनने से अन्य का नहीं फिर कालान्तर में कोई व्यवहार अथवा पुस्तक को देखता है सो पूर्व दृष्टवा श्रुत के संस्कार से स्मृति होती है कि यह प्रकार वाक्यकार है और इसका यह अर्थ है क्यों कि मैंने पूर्व इसका अर्थ ऐसा पढ़ाथा सुना था विना संस्कार के स्मृति कभी नहीं होती और विना स्मृतिसे यह ऐसा ही है वा नहीं ऐसी प्रवृत्ति वा निवृत्ति कभी नहीं होती सो एक ही जन्म होता तो जन्म समय से ले के बालकों के अनेक प्रकार के व्यवहार देखने में

आते हैं जैसे क्षुधा का ज्ञान और दुग्धादिकों से क्षुधा की निवृत्ति के हेतु इच्छा फिर दुग्ध पीने की युक्ति और तृप्ति होने से दूध पीने की निवृत्ति तथा मल मूत्रादिकों के त्याग की युक्ति और कोई उसको कुछ मारै अथवा डरावै फिर उससे रोदनादिक की प्रवृत्ति और प्रीति वाला उनसे हास और प्रसन्नता की प्रवृत्ति इत्यादिक प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप व्यवहार विना पूर्व जन्म के संस्कार से कभी नहीं हो सकता इस्से पूर्व जन्म अवश्य मानना चाहिये प्रश्न ये सब व्यवहार स्वभाव से होते हैं जैसे कि अग्नि ऊपर चलता है और जल नीचे को वैसे ही ये सब जीव को ज्ञान स्वरूप के होने से होते हैं उत्तर जो स्वभाव से मानोगे तो पूर्व कहे अनुभव संस्कार और स्मृति तथा प्रवृत्ति वा निवृत्ति इनको छोड़ देओ और जो छोड़ोगे तो कोई व्यवहार आप लोगों का सिद्ध न होगा फिर पढ़ना पढ़ाना बुरी बातों के छोड़ने का उपदेश तथा अच्छी बातों का उपदेश क्यों करते और कराते हो और जो स्वभाव से मानोगे तो उसकी निवृत्ति कभी नहीं होगी जैसे कि अग्नि और जल के स्वभाव की निवृत्ति नहीं होती वैसे प्रवृत्ति को स्वभाव से मानोगे तो निवृत्ति कभी नहीं होगी जो निवृत्ति को स्वभाव से मानोगे तो प्रवृत्ति कभी नहीं होगी और जो दोनों को मानोगे तो क्षण भङ्ग और अनवस्था होगी फिर आप लोगों में उन्मत्तता दोष आ जायगा क्यों कि अग्नि की नीचे चलने में प्रवृत्ति कभी नहीं होती तथा जल की स्थूल के होने से ऊपर को प्रवृत्ति कभी नहीं होती वैसे ही स्वभाव सब जानो

प्रश्न ईश्वर ने जैसा जिस का स्वभाव रचा है वैसा ही होता है इसर यह बात भी ठीक नहीं जो ईश्वर कारण होता है इन व्यवहारों में तो ईश्वर के दयालु होने से सब ओषधियों का ज्ञान और परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का बोध तथा धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म से निवृत्ति ईश्वर ने सब जीवों में स्वभाव से क्यों नहीं रक्खी और ईश्वर अन्यायकारी भी हो जायगा क्यों कि किसी को राजा और धनाढ्य के घर में जन्म और किसी को असमर्थ और दरिद्र के घर में जन्म तथा एक को बुद्धि बहुत अच्छी और दूसरे को जड़ बुद्धि देना है तथा एक रूपवान और एककुरूप तथा एक बलवान् और दूसरा निर्बल एक पण्डित और दूसरा मूर्ख होना है सो बिना अच्छे कर्मों से उत्तम पदार्थों का देना और बिना अपराध से भ्रष्ट पदार्थों का देना इस्से ईश्वर में पक्षपात आवेगा पक्षपात के आने से ईश्वर अन्यायकारी हो जायगा और कृतहानिरकृताभ्यागमश्च ए दो दोष आजायंगे क्यों कि अब जो कुछ किया जाताहै उस की हानि हो जायगी फिर जन्म के नहीं होने से जो शरीर, इन्द्रियां, प्राण, और मन के नही होने से पाप पुण्यों का फल कभी नहीं भोग सकता और जो पूर्व जन्म न मानगे तोबिना किये सुख और दुःखकी प्राप्ति कैसे होगी वैषम्य और नैर्घृण्य, एदो दोष ईश्वर में आजायंगे कि बिना कारण से किसी को सुख देवे और किसी को दुःख यह विषमता ईश्वर में आवेगी और जीवों को दुःखी देख के जिस को घृणा नाम दया नहीं

आती इससे ईश्वर का दया जो गुण सो नष्ट हो जायगा और जो पूर्व तथा उत्तर जन्म होगा तो ईश्वरमें कोई दोष नही आवेगा क्योंकि जैसा जिसका पुण्य वा पाप वैसा उसको सुख दुःख होगा इससे ईश्वर न्याय-कारी और दयालु भी यथावत् रहेगा इससे पूर्व और पर जन्म अवश्य मानना चाहिये सो पूर्व जन्मों की संख्या नहीं हैं क्यों कि जब से सृष्टि उत्पन्न भई है तब से अनेक जन्म धारण करते २ चले आते हैं और जब तक मुक्ति नहीं होगी तब तक स्थूल शरीर अवश्य धारण करेंगे प्रश्न सुख वा दुःख राजा और दरिद्र को तुल्य ही देख पड़ता है क्यों कि जो राजा को सुख वा दुःख हैं वे दरिद्रों को भी हैं विचार करके देखैं तो सुख वा दुःख सब को तुल्य ही देख पड़ता है उत्तर ऐसा कहना योग्य नहीं क्यों कि इच्छा के अनुकूल पदार्थों की प्राप्ति का होना सुख कहाता है और इच्छा के प्रतिकूल पदार्थोंकी प्राप्ति का होना दुःख कहाता है सो हर्ष और प्रसन्नता सुखके पर्याय हैं और शोक तथा अप्रसन्नता दुःखके पर्याय हैं जब राजादिक धनाढ्यों के गर्भवास में जीव आता है उसी दिन से अनुकूल पदार्थों का सेवन होता है फिर जन्म जब होता है तब अनेक औषधादिक व्यवहारों की प्राप्ति होती है और बिना इच्छा के भी अनेक पदार्थ अनुकूल प्राप्त होते हैं वह जब दूध पीने की इच्छा करता है तब बिना इच्छासे भी मिश्री और सुगन्धादिक से युक्त दूध यथेष्ट मिलता है और जब वह कुछ अप्रसन्न वा रोने लगता है तब अनेक सेवक परिचारक लोग मधुर वचन

और खिलौने से शीघ्र ही प्रसन्न कर देते हैं और फिर जब वह बड़ा होता है तब जिसके ऊपर दृष्टि करता है वह हाथ जोड़ के अनुकूल वचन तथा अनुकूल व्यवहार करता है सदा प्रसन्न उसको सब लोग रखते हैं और वह रहता है फिर जब कभी दुःखी भी होता है तब अनुकूल वचन और औषधादिकों से उसको प्रसन्न कर देते हैं और जो विद्यावानों के गर्भवास में आता है उसको भी अधिक सुख होता है परन्तु कोई कभी उनमें से नष्ट बुद्धि के होने से दुःखी हो जाता है सो पूर्व जन्म के पापों से और इस जन्म के दुष्ट व्यवहारों से पीड़ित होता है और जो मूर्ख वा दरिद्र के गर्भवास में जीव आता है उसी समय से उसको दुःख होने लगते हैं जब वह स्त्री घास वा लकड़ी को काटने लगती है तब गर्भ में प्रहार के होने से जीव पीड़ित होता है और कभी क्षुधातुर रहती है कभी बहुत कुत्सित अन्न को खा लेती है उससे भी उस जीव को अत्यन्त पीड़ा होती है फिर जब जन्म होता है तब कोई प्रकार का औषध वा सुनियम तथा कोई परिचारक उस समय नहीं रहता किन्तु मार्ग वन वा खेत में प्रायः पाषाण की नाईं गर्भ से बालक गिर पड़ता है फिर वही स्त्री उसको पोंछपांछ के वस्त्र में बांध के पीठ में बांध लेती है फिर कभी उस स्त्री को घास वा लकड़ी बेचने की शीघ्रता होती है उस समय बालक दूध पीने के हेतु रोता है सो दूध भी उसको नहीं मिलता परन्तु वह स्त्री उस बालक को थपेड़ा मारती है फिर अधिक २ जब रोता है तब अधिक २ मारती है फिर रोता रहता है परन्तु

दूध नहीं पिलाती फिर वह जब कुछ बड़ा होता है तब उसको यथावत् खाने को भी समय के ऊपर नहीं रहता फिर वह मजूरी करता है तो भी उसको यथावत् इच्छाके अनुकूल नहीं मिलता और सदा उसको सुख की तथा उत्तम पदार्थों के प्राप्ति की इच्छा होती है परन्तु प्राप्ति के नहीं होने से सदा दुःखी रहता है जो ऐसा कहता है कि सुख वा दुःख सबको तुल्य है सो पुरुष विचारवान् नहीं है क्यों कि सुख वा दुःख प्रत्यक्ष ही अधिक वा न्यून देख पड़ते हैं प्रश्न जब पहिले २ ही सृष्टि भई थी तब उस्से पूर्व जन्म तो किसी का नहीं था फिरसउसमय अधिक वा न्यून राजा अथवा दरिद्रादिक क्यों भए थे इस्से जाना जाता है कि जैसे पहिले जन्म में भये थे इस्से आज काल पहिला ही जन्म है सो अधिक न्यून बन आओ परन्तु एक २ जन्म ही विचार में आता है बहुत जन्म नहीं उत्तर आदि सृष्टि में सब मनुष्य उत्पन्न भए थे न कोई राजा न कोई प्रजा न मूर्ख न पण्डित इत्यादिक भेद नहीं थे इस्से आदिसृष्टि में दोष नहीं आया प्रश्न जैसे आदिसृष्टि में दुग्ध पानादिक व्यवहार सुख और दुःख आदिक प्रवृत्तिवा-निवृत्तिभई थी वैसे आजकाल भी होता है फिर वह जो आपने कहा कि अनुभवादिकों से बिना प्रवृत्ति वा निवृत्ति नहीं होती सो बात विरुद्ध हो गई उत्तर विरुद्ध नहीं होती क्यों कि आदिसृष्टि में गर्भवास से उत्पत्ति नहीं भई थी और किसी की बाल्यावस्था भी न थी किन्तु सबस्त्री और पुरुषों की युवा-वस्था ही ईश्वरने रची थी फिर वे उस समय अच्छा वा बुरा

कुछ नही जानते थे जहाँ जिसका नेत्र था अथवा बुद्ध्यादिक जिस बाह्यपदार्थ में युक्त भए उसको टक २ देखते थे परन्तु यह अच्छा वा बुरी ऐसा नहीं जानते थे परन्तु प्राण, शरीर अथवा इन्द्रिय इन में चेष्टा गुण था ऐसा नहीं जानते थे कि ऐसी चेष्टा करनी वा न करनी फिर चेष्टा होने लगी बाह्य-पदार्थों के साथ स्पर्शादिक व्यवहार होने लगे उनमें से किसी ने कुछ पत्ता व फूल वा घास स्पर्श किया वा जीभ के ऊपर रक्खा तथा दांतों से चबाने लगे उसमें से कुछ भीतर चला गया कुछ बाहर गिर पड़ा उसको देखके दूसरा भी ऐसा करने लगा फिर करते २ व्यवहार बढ़ता चला तथा संस्कार भी हो चले होते २ मैथुनादिक व्यवहार भी होने लगे सो पांच वर्ष तक उस समय किसी को पाप वा पुण्य नही लगता था वैसे ही आजकाल भी पांच वर्ष तक बालकों को पाप पुण्य नहीं लगता फिर व्यवहार करते २ अच्छा बुरा भी कुछ २ जानने लगे फिर परस्पर उपदेश भी करने लगे कि यह अच्छा है यह बुरा है और परमेश्वर ने भी उक्त पुरुषों के द्वारा वेदविद्या का प्रकाश किया वे वेद द्वारा मनुष्योंको उपदेश भी करने लगे उनके उपदेश को किसी ने सुना और किसी ने न सुना सुनके भी किसी ने विचारा और किसी ने न विचारा परन्तु बहुत मनुष्य कुछ २ अच्छा बुरा जानने लगे फिर आगे २ मैथुनि सृष्टि होने लगी फिर उन बालकों को भी उपदेश और संस्कार होने लगे सो आज तक अनेक प्रकार के पाप पुण्यों से व्यवहार भिन्न २ होते आए हैं सो हम लोग प्रत्यक्ष

देखते हैं इससे आगे के संस्कारों का अनुमान कर लेते हैं और पीछे जो २ संस्कारों से व्यवहार होंगे उनका भी अनुमान हम लोग करते हैं इस मध्यस्थ व्यवहार को प्रत्यक्ष देखने से प्रश्न परमेश्वरमें विषमता दोष तो आता है क्यों कि आदि सृष्टि में बहुत जीवों को मनुष्य शरीर दिये बहुतों को पश्वादिक के शरीर दिए सो मनुष्यों का शरीर तो उत्तम है और पश्वादिकों का नीच और आदि सृष्टि में मनुष्यों ने एक कर्म क्यों नहीं किया भिन्न २ कर्म करने से भी यह जाना जाता है कि जैसे प्रथम शरीरों करने और कर्मों के करने में विषमता भई थी वैसे आज काल भी होती है इससे ईश्वर पक्षपाती नहीं होता और ईश्वर के ऊपर कोई नहीं है इससे जैसी उसकी इच्छा वैसा करता है और जो वह करता है सो अच्छा ही करता है परन्तु हमारी बुद्धि छोटी है इससे समझने में नहीं आता उत्तर अपनेर स्थानमें सब शरीर अच्छे हैं कोई पदार्थ परमेश्वर ने बुरा नहीं रचा परन्तु उनके परस्पर मिलनेसे कहीं गुण होजाता है कहीं दोष होता है सो जिस समय आदिसृष्टि भई थी उस समय मनुष्यों और पश्वादिकों में कुछ विशेष नहीं था विशेषता पीछे से भया है सो जितने शरीर रचे हैं वे सब जीवों के कर्म भोग करने के हेतु रचे हैं सो ईश्वर न रचता तो वे शरीर कैसे होते इससे प्रथम ही ईश्वर ने सब व्यवस्था कर रक्खी है कि जैसा जो कर्म करै सो वैसा ही जन्म सुख वा दुःख को प्राप्त होवै और एक २ बार बिना संस्कारों से भी मनुष्य का शरीर मिलेगा क्यों कि सब शरीरों से मनुष्य का शरीर

उत्तम है और मनुष्य ही के शरीर में पाप और पुण्य लगता है अन्य शरीर में नहीं और जो यह मनुष्य का शरीर है सब जीवों के लिए है क्यों कि सब को प्राप्त होता है वैसे ही सब कीट पतंगादिकों के शरीर भी हैं जब मनुष्य शरीर में जीव अधिक पाप करता है और पुण्य थोड़ा तब नरकादिक लोक और पश्वादिकों के शरीरों को प्राप्त होता है जब उसका पाप और पुण्य तुल्य होते हैं तब मनुष्य का शरीर प्राप्त होता है और जब पुण्य अधिक करता है और पाप थोड़ा तब देवलोक और देवादिकोंका शरीर उस जीवको मिलता है उसमें जितना अधिक पुण्य उसका फल जो सुख उस को भोग के जब पाप पुण्य तुल्य रह जाते हैं तब फिर मनुष्य का शरीर धारण करता है इन कर्मों में तीन भेद हैं एक मन से दूसरा वाणी से और तीसरा शरीर से कर्म करता है इन तीनों में से एक २ के तीन भेद हैं सत्वरज और तमोगुण के भेद से सो जब मन से सत्व गुण कि शान्त्यादिक गुणों से युक्त हो के उत्तम कर्म करता है तब देव मनुष्य और पश्वादिकों में यह जीव रहता है परन्तु मन में प्रसन्नता ही उसको रहती है और रजो गुण से युक्तहो के मन से जब पुण्य वा पाप करता है तब देव मनुष्य पश्वादिकों में मध्यम ही वह होता है उत्तम नहीं किन्तु उत्तम तो सत्व गुण वाला होता है क्यों कि रजोगुण के कार्य लोभ द्वेषादिक होते हैं तमोगुण प्रधान जिस पुरुष को होता है उसको मोह, आलस्य, प्रमाद, क्रोध और विषादादिक दोष होतेहैं वह प्रायः पाप वा पुण्य अधमही करेगा इस्से देव-

मनुष्य और पश्वादिकों में नीच शरीर में प्राप्त होगा और जो वचन से पाप करेगा तो मृगादिक योनि को प्राप्त हो जायगा फिर सदा यह शब्दों से त्रासित ही रहेगा क्योंकि जो जिस्से पाप करता वह उसी से भोग करता है जब शरीर से जीव पाप करते हैं वे वृक्षादिक स्थावर शरीर को प्राप्त होते हैं इसमें मनु भगवान के श्लोक लिखते हैं सो जान लेना ॥ मानसंमनसै-वायमुपभुंक्ते शुभाशुभम्। वाचावाचाकृतंकर्म कायेनैवचका-यिकम् ॥ १ ॥ भ० यह जीव मनवाणी और शरीर से शुभ नाम पुण्य अशुभ नाम पाप करता है सो जिस्से करता है उसीसे भोग भी करता है ॥ १ ॥ शरीरजैःकर्मदोषैर्याति स्थावरता-न्नरः। वाचिकैःपक्षिमृगतांमानसैरन्त्यजातिताम् ॥ २ ॥ भ० जब शरीर से पाप करता है तब वृक्षादिक स्थावर शरीर को प्राप्त होता है वचन से किए पापों से पक्षि और मृगादिक योनिको प्राप्त होता है और मनसे किये पापोंसे नीच चाण्डा-लादिक योनिको प्राप्त होता है॥२॥ योयदैषांगुणोदेहे साकल्येना-तिरिच्यते। सतदातद्गुणप्रायं तंकरोतिशरीरिणम् ॥३॥ भ० जो गुण जिसके शरीर में प्रधान होता है उस्से युक्त हो के जीव उस गुणके योग्य कर्मको करता है और गुण भी उसको कराता है ॥३॥सत्वंज्ञानं तमोज्ञानं रागद्वेषौरजःस्मृतम्। एतद्व्याप्तिम-देतेषां सर्वभूताश्रितंवपुः ॥ ४ ॥ भ० सत्व गुणका कार्य ज्ञान है तमोगुण का कार्य अज्ञान और रजोगुण का कार्य राग और द्वेष है ये तीन गुण और इनके तीन कार्य सब भूतों में व्याप्त हैं क्यों कि इसी का नाम प्रकृति और कारण शरीर है ॥ ४ ॥

तत्रयत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनिलक्षयेत् । प्रशान्तमिवशुद्धाभं सत्वंतदुपधारयेत् ॥ ५ ॥ भ० जिस पुरुष का चित्त जब प्रसन्नता युक्त रहै तथा प्रशान्तकी नाईं और शुद्धकी नाईं तब उस को सत्व गुण और सत्व प्रधान पुरुष को जानना ॥ ५ ॥ यत्तु-दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः । तद्रजोऽप्रतिघंविद्यात्सततं हारिदेहिनाम् ॥ ६ ॥ भ० जिसका चित्त दुःख युक्त रहै हृदय में प्रसन्नता भी न होवै सदा चित्त चंचल होय विषयों के ओर दौड़ने लगे और वशीभूत न हो वह रजोगुण प्रधान पुरुष होता है ॥ ६ ॥ यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ ७ ॥ भ० जो चित्त मोह संयुक्त रहै हृदयमें कुछ विचार भी सत्यासत्यका न होय विषय की सेवा में फसा रहै ऊहापोह जिसमें न होय और जैसा अन्धकार में पदार्थ वैसा कुछ जानने में भी न आवै उस जीव को तमोगुण प्रधान और तमोगुण जानना ॥ ७ ॥ त्रयाणामपि-चैतेषां गुणानांयःफलोदयः । अग्र्यो मध्योजघन्यश्चतंप्रवक्ष्या-म्यशेषतः । ८ । भ० इन तीन गुणों का उत्तम मध्यम और नीच जो फलोदय उसके आगे कहते हैं यथावत् ॥ ८ ॥ वेदा-भ्यासस्तपोज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः धर्मक्रियात्मचिन्ताच सात्विकंगुणलक्षणम् ॥ ९ ॥ भ० वेदाभ्यास, तपनामयोगा-भ्यास, ज्ञान, सत्यासत्य विचार, जितेन्द्रियता, धर्मका अनुष्ठान, आत्मा का विचार तथा परमेश्वर का भजन जिस में गुण होवैं उत्तम सात्विक पुरुष और सत्व गुण का लक्षण है । ९ । आरम्भरुचिताधैर्यं मसत्कार्यपरिग्रहः । विषयोपसेवाचाजस्रं

राजसंगुणलक्षणम्। १०। भ० कार्यों के आरम्भ में अत्यन्त रुचि अधैर्य असत्य कार्यों का स्वीकार और निरन्तर विषय सेवा में फसा रहै यह रजोगुण अधिक पुरुष वाले का लक्षण है॥ १०॥ लोभः स्वप्नोधृतिःक्रौर्यं नास्तिक्यंभिन्नवृत्तिता। याचिष्णुताप्रमादश्च तामसंगुणलक्षणम्॥ ११॥ भ० अत्यन्त लोभ अत्यन्त निद्रा धैर्य का लेश नहीं क्रूरता नाम दया रहित नास्तिक्य नाम विद्या धर्म और ईश्वर को नहीं मानना भिन्न वृत्तिता नाम छिन्न भिन्न जिसकी बुद्धि नित्य दान दक्षिणा और भिक्षा ग्रहण में प्रीति और प्रमाद नाम नाना प्रकार उपद्रव करना यह तमोगुण और तमोगुण पुरुष वाले का लक्षण है और संक्षेपसे आगे नानां गुणांके लक्षण कहे जाते हैं॥ ११॥ यत्कर्मकृत्वाकुर्वंश्चकरिष्यंश्चैवलज्जति। तज्ज्ञेयंविदुषासर्वं तामसंगुणलक्षणम्॥ १२॥ भ० जिस कर्मको करके करता भया और करने की इच्छा में लज्जा और भय होताहै वह पुरुष और कर्म तमोगुणीहै क्योंकि पापहीमें रहैगा॥ १२॥ येनास्मिन्कर्मणालोके ख्यातिमिच्छतिपुष्कलाम्। नचशोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयन्तुराजसम्॥ १३॥ भ० लोक में कीर्त्ति के हेतु इच्छासे भाट आदिक पुरुषों को पदार्थ देना और ऐसा काम मैं करूं जिस्सेकि मेरी इस लोक में प्रशंसा होयसो मिथ्या प्रशंसाका चाहना अन्याय से और उसमें धन तथा पदार्थ के नाश होने में कुछ सोच विचार न करना यह रजोगुणी पुरुष है यह घोर दुःख में सदा पड़ा रहता है॥ १३॥ यत्सर्वेणेच्छतिज्ञातुं यन्नलज्जतिचाचरन्। येनतुष्यतिचात्मास्यतत्सत्वगुणलक्षणम्॥ १४॥

भ० जो पुरुष सब प्रकारों से और उत्तम पुरुषों से जानने को चाहता है तथा धर्म के आचरण में कोई हानि वा निन्दा होय तो भी जिसको लज्जा वा भय न होय और जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न होय अर्थात धर्माचरण से उसको कभी न छोड़ै यह सात्विक पुरुष का लक्षण है ॥ १४ ॥ तमसोलक्षणंकामो रजसस्त्वर्थ उच्यते । सत्त्वस्यलक्षणंधर्मःश्रैष्ठ्य-मेषांयथोत्तरम् ॥ १५ ॥ भ० जो काम में फंसा रहता है वह तमोगुणी पुरुष है तथा धनादिक अर्थही को परम पदार्थ मानता है वह रजोगुणी है और जो धार्मिक अर्थात् धर्म ही में जिसकी निष्ठा है वह सत्वगुणी पुरुष है तमोगुणी से रजोगुणी रजोगुणी से सत्वगुण वाला पुरुष श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ इनमें सत्वगुण वाला धार्मिक होके पुण्य ही करेगा रजोगुण वाला पाप पुण्य दोनों करेगा तथा तमोगुण वाला पाप ही करेगा इनको जैसे २ जन्म और सुख वा दुःख होते हैं सो लिखा जाता है देवत्वंसात्विकायान्ति मनुष्यत्वंचराजसाः । तिर्य-क्त्वंतामसानित्य मित्येषात्रिविधागतिः ॥१६॥ भ० जो सात्विक पुरुष होते हैं वे देव भाग को प्राप्त होते हैं अर्थात विद्वान धार्मिक और बुद्धिमान होते हैं तथा उत्तम पदार्थ और उत्तम लोकों को ही प्राप्त होते हैं तथा जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम लोक मनुष्यत्व तथा बुद्ध्यादिक पदार्थों को प्राप्त होके मध्यम रहते हैं उत्तम नहीं और जो तमोगुणी होते हैं वे नीचता पश्वादिक शरीर तथा बुद्ध्यादिक में भी नीच भाव रहता है इन तीनों के तीन गुणों से उत्तम मध्यम और नीचता से एक

२ गुण का तीन २ भेद होते हैं और वैसेही उनको फल मिलते हैं सो आगे २ लिखा जाता है ॥ १६ ॥ स्थावराःकृमिकीटाश्च मत्स्याःसर्पाश्चकच्छपाः । पशवश्चमृगाश्चैवजघन्यातामसीगतिः ॥ १७ ॥ भा० स्थावर, वृक्षादिक कृमि, कीट, मत्स्य, तथा कच्छपादिक, जलजन्तु गायआदिक पशु तथा मृगादिक बन के पशु जिसको अत्यन्त तमोगुण होता है वह ऐसे शरीरोंको प्राप्त होता है ॥१७। हस्तिनश्चतुरगाश्च शूद्राम्लेक्षाश्चगर्हिताः । सिंहाव्याघ्रावराहाश्च मध्यमातामसीगतिः ॥ १८ ॥ भा० हाथी घोड़े शूद्र जो मूर्ख म्लेक्ष नाम कसाई आदिक गर्हित नाम जो निन्दित कर्म करने वाले सिंह उनसे कुछ जो नीच होते हैं वे व्याघ्रवराह नाम सूवर जो पुरुष मध्य तमोगुण वाला होता है वह ऐसे जन्मों को पाता है ॥ १८ ॥ चारणाश्चसुपर्णाश्च पुरुषाश्चैवदांभिकाः । रक्षांसिचपिशाचाश्चतामसीषूत्तमागतिः ॥ १९ ॥ भा० चारण नाम दूत दूती और गाने वाले जो कि वेश्याओं के पास रहते हैं सुपर्ण जो हंसादिक अच्छे उत्तम पक्षी दांभिक पुरुष अर्थात सम्प्रदाय वाले मिथ्या उपदेश करने वाले तथा अहंकार अभिमानादिक गुणयुक्त राक्षस नाम छल, कपट करने वाले पिशाच नाम सदा मलिन रहैं ऐसे जन्मों को प्राप्त होते हैं तिनमें कि थोड़ा तमोगुण रहता है ॥ १९ ॥ झल्लामल्लानटाश्चैपुरुषाशस्त्रवृत्तयः । द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्याराजसीगतिः ॥ २० ॥ भा० झल्ला नाम तड़ाग कूप आदिक खोदने वाले मल्ला नाम मल्लाह और कृशन करने वाले शस्त्र वृत्ति पुरुष जो कि शस्त्रों को

बनाने और सुधारने वाले जुआरी लोग और भांग, गांजा, अफीम तथा मद्य पीने में जो फसे रहते हैं जिनको अत्यन्त रजोगुण है वे इस प्रकार के होते हैं ॥ २० ॥ राजानःक्षत्रियाश्चैवराज्ञांचैवपुरोहिताः। वादयुद्धप्रधानाश्चमध्यमाराजसीगतिः ॥२१॥ भा० जिन पुरुषोंमें मध्य रजोगुण होता है वे राजा होते हैं तथा क्षत्रिय होते हैं अर्थात शूरवीरादिक गुण वाले होते हैं राजाओंके पुरोहितवादमें प्रधान जोकि नाना प्रकार वाद विवाद करते हैं वकील आदिक युद्ध में प्रधान जोकि सिपाही होतेहैं यह रजोगुणियोंकी मध्यम गति है २१। गन्धर्वागुह्यकायक्षाविबुधानुचराश्चये। तथैवाप्सरसःसर्वाराजसीषूत्तमागतिः । २२ । भा० गन्धर्व जो कि गान विद्यामें कुशल गुह्यक जो कि सितार और वादित्रोंको बजानेमें चतुर यक्ष नामबड़े धनाढ्य तथा विद्वानोंके उक्त देवोंके गण अर्थात मेनका और अप्सरा अर्थात् रूपादिक गुण और चतुरस्त्री जिनमें बहुतथोड़ा रजोगुण होताहै उनको ऐसे जन्म मिलते हैं ॥२२॥ तापसायतयोविप्रा येचवैमानिकागणाः। नक्षत्राणिचदैत्याश्च प्रथमासात्विकीगतिः २३ ॥ भा० तापस नाम कपट छलादिक दोषों के बिना कृच्छ्चान्द्रायणादिक व्रत और योगाभ्यास करने वाले यति नाम यत्न और विचार करने में प्रवीण विप्र नाम वेद का पाठ अर्थ और तदुक्त कर्मों के जानने और करने वाले वैमानिक गण जो कि आकाश में यानों को चलाने वाले और रचने वाले नक्षत्र जो कि गणित विद्या जानने वाले और नक्षत्र लोक तथा नक्षत्र लोक में रहने ..और दैत्य जो कि विद्या शान्ति और शूरवीरादिक गुण

युक्त जो थोड़े सात्विक गुण युक्त होवें उनमें ऐसे गुण होते हैं ॥ २३ ॥ यज्वानऋषयोदेवा वेदाज्योतींषिवत्सराः । पितरश्चैवसाध्याश्च द्वितीयासात्विकीगतिः ॥ २४ म० यज्ञ करने में जिनकी अत्यन्त प्रीति ऋषि नाम यथार्थ मन्त्रों के अभिप्राय जानने वाले देव नाम महादेव औरइन्द्रादिक दिव्य गुण वाले चारों वेद ज्योतिष शास्त्र और चन्द्रादिक ज्योति लोक वत्सर काल और सूर्य्य लोक पितर जो पिता की नांई सब मनुष्यों के हित करने वाले और पितृ लोक में रहने वाले साध्य जो अभिमान हठादिक दोष रहित होके धर्म और विद्यादिक गुणों को सिद्ध करने वाले तथा नारायण औरविष्णु आदिक देव जो वैकुण्ठादिक में रहते थे जो मध्य सत्वगुण से ऐसे कर्म करते हैं उनकी ऐसी गति होतीहै ॥ २४ ॥ ब्रह्माविश्वसृजोधर्मो महानव्यक्तमेवच । उत्तमांसात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥२५॥ म० ब्रह्मा ब्रह्म ज्ञान पर्यन्त विद्याका जानने वाला अथवा ब्रह्मलोक का अधिष्ठाता और उस लोक को प्राप्त होने वाले प्रजापति और विश्वसृज जो कि धर्म और विद्या से सबके पालन करने वाले वा सिद्ध जो कि परमाणु के संयोग वा वियोग करने वाले और उस विद्या वाले अथवा प्रजापति लोक के अधिष्ठाता वा उनको प्राप्त होने वाले धर्ममहान बुद्धि अव्यक्त नाम प्रकृति यह सत्व गुण की उत्तम गति है यहां से आगे कर्म और उपासनाका कोई फल भोग नहीहै सिवाय परमेश्वर के ॥ २५ ॥ इन्द्रियाणांप्रसंगेन धर्मस्यासेवनेनच । पापान्संयान्तिसंसारानविद्वांसोनराधमाः ॥ २६ ॥ म० इन्द्रियों का प्रसंग

अर्थात अत्यन्त विषय सेवा में फसने और धर्म के त्याग से जो जीव अधम और विद्याहीन हैं अत्यन्त दुःखों को पाते हैं दुष्ट २ शरीरों को प्राप्त होते भये इन प्रकारों से दुष्ट वा श्रेष्ठ कर्मों के करने से सुख वा दुःख जीवों को होते हैं यही ईश्वर की आज्ञा है कि जो जैसा कर्म करै वहवैसा भोगै इस्से ईश्वर में कुछ पक्षपात दोष नहीं आता क्योंकि जैसा जो कर्म करता है उसको वैसा ही फल मिलताहै और ईश्वर न्यायकारीहै सो सदा न्याय ही करता है अन्याय कभी नहीं इस्से जैसा चाहै ऐसा करना नहीं आता ईश्वर में क्योंकि वह सत्य संकल्प है और निर्भ्रम उसका ज्ञान है इस्से जैसी व्यवस्था न्याय से करनी उचित थी वैसे ही किया है अन्यथा नहीं ए दोष सब जीवों में हैं कि पहिले कुछ और व्यवस्था करैं पीछे और क्योंकि जीवोंमें भ्रमादिक दोष होतेहैं और कोई व्यवहार में निर्भ्रमभी होतेहैं सर्वत्र नहीं औरसर्वत्र निर्भ्रम तब जीवहोता है कि जब परब्रह्म का साक्षात् विज्ञान होता है और उसी का नित्य योग अन्यथा नहीं सर्वत्र निर्भ्रम तोसनातन एक ईश्वर हीहै इस्से क्या आया कि एक जीव अनेक जन्म धारण करता है यह सिद्ध भया प्रश्न ईश्वर एक जीवको अनेक जन्मकी व्यवस्था क्यों करता है क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान है नित्य नए २ जीवों को उत्पन्न क्या नहीं कर सकता उत्तर ईश्वर अवश्य सर्वशक्तिमान है परन्तु अन्याय कभी नहीं करता जो जीव दूसरा शरीर धारण नहीं करेगा तो एक जन्म में किए पाप वा पुण्य इनका भोग नहीं हो सके-

गा फिर उसका न्याय भी नहीं होगा कि पाप करने वाले को दुःख और पुण्य करने वाले को सुख होना चाहिये सो बिना शरीर से भोग ही नहीं हो सकता इससे अनेक जन्म अवश्य मानना चाहिये प्रश्न पाप वा पुण्य का भोग बिना शरीर से भी हो सकता है पश्चात्ताप करने से सोऽजीव मन से जितने पाप किए होंगे उनका भोग मन से शोक करके भोग कर लेगा उत्तर ऐसा न कहना चाहिए क्यों कि पश्चात्ताप जो होता है सो भविष्यत्पापों का निवर्त्तक होता है कि पूर्व पापों का नहीं जैसे कोई पुरुष नित्य कूप को दौड़ २ के डांक जाय फिर कभी कूप के पारके किनारे पर नहीं पहुंचे किन्तु कूप में गिर जाय उसमें उसका हाथ वा गोड़ टूट जाय फिर उसको कोई बाहर निकाल ले फिर वह बहुत शोच करे कि मैं ऐसा काम न करता तो मेरी यह बुरी दशा क्यों होती सो मैं बड़ा मूर्ख हूं इससे क्या आता है कि आगे को वह ऐसा कर्म न करेगा परन्तु जो कर चुका उसकी निवृत्ति कभी नहीं होगी सो पश्चात्ताप जो होताहै सो कृत पाप का निवर्त्तक नहीं होता और जैसे कोई मनुष्य आंख से अन्धा और कान से बहिरा होय उसके पास सर्प वा व्याघ्र आजाय अथवा कोई गाली दे वा उसकी निन्दा करे तो भी उसको कुछ दुःख नहीं होता है ऐसे ही बिना शरीर धारण से जीव सुख वा दुःख नहीं भोग सक्ता क्यों कि जब मूर्तिमान् पदार्थ होता है तब वह शीतउष्णादिक व्यवहारों को भोग कर सक्ता है अन्यथा नहीं इससे क्या आया कि

पश्चात्ताप से कृत पापों की निवृत्ति नही हो सक्ती प्रश्न जीव जिन कर्मों से सुख होवै वैसा कर्म क्यों नहीं करता उत्तर विना विद्यादिक गुणों से कुछ नहीं यथावत् जान सक्ता विद्यादिकगुण बिना परिश्रमसे नहीं होते एक व्यवहार ऐसा है कि जिसमें प्रथम सुख होय और पीछे दुःख सो विषयोंमें फस केजीव दुःखित होताहै क्योंकि अत्यन्त विषयसेवासे बलबुद्धि और धनादिक नष्ट होते हैं और ज्वरादिक अनेक रोगोंसे युक्त होके फिर दुःख ही पाता है दूसरा ऐसा व्यवहार है कि प्रथम तो दुःख होय और पीछे सुख सो व्यवहार यहहैकि जितेन्द्रियता, ब्रह्मचर्याश्रम, विद्या की प्राप्ति, सत्पुरुषों का संग, और धर्मका अनुष्ठान, इत्यादिक जान लेना इनकी प्राप्ति के साधनों में प्रथम दुःख होता है जब ए प्राप्त होजाते हैं तब अत्यन्त उसको सुख होता है तीसरा व्यवहार ऐसा होता है कि जिसमें सदा दुःख ही रहै सो मोह है जो धन पुत्र और स्त्री आदिक अनित्य पदार्थों में फस के विद्यादिक श्रेष्ठ गुणों का त्याग करता है वह सदा दुःखी रहता है चौथा यह व्यवहार है कि जिसमें सदा सुख ही रहता है दुःख कभी नहीं सो मुक्ति है विद्यादिक गुणों के नही होने से सुख के कर्मों को जानता ही नहीं फिर कैसे कर सकेगा कभी न कर सकेगा और ईश्वर का करना सब अच्छा ही है क्यों कि ईश्वर न्यायकारीत्यादि गुण युक्त रहता है यह हमको दृढ़ निश्चय है कि ईश्वर अन्याय कभीनही करता इतना हम लोग बुद्धि से यथावत् जानते हैं ईश्वर जैसा चाहै वैसा नहीं करता जो करता

है सो न्याय युक्त ही करता है अन्यथा नहीं सो इस्से यह सिद्ध भया कि अनेक जन्म होते हैं सो जीव अविद्यादिक दोषों से युक्त होके विषय में फसा रहता है इस्से जीव को विवेकादिक गुण नहीं होने से बन्धन भी इसका नष्ट नहीं होता जब यथावत् परमेश्वर पर्यन्त पदार्थ विद्या होती है तब यह सब दुःखों से छूट के मुक्ति को प्राप्त होता है प्रश्न प्रथम आप कह चुके हैं कि बिना शरीर से सुख वा दुःख भोग नहीं हो सकता सो मुक्ति में भी जीव का शरीर रहता होगा और जो कहें कि नहीं रहता तो मुक्ति का भोग कैसे कर सकेगा और जो कर सकता है तो हमने कहा था कि मन में पश्चात्ताप से पाप का फल भोग लेता है यह बात मेरी सत्य होयगी उत्तर जीव ही मुक्ति में रहता है और शरीर नहीं क्यों कि पहिले जो लिंग शरीर कहा था वही जीव के साथ रहता है सो अत्यन्त सूक्ष्म है और सब पदार्थों से उत्तम और निर्मल है जैसे अग्नि से लोहा तप्त होता है उसमें अग्नि से भी अधिक दाह होता है वैसे ही एक अद्वितीय चेतन परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है उसकी सत्ता से युक्त जीव चेतन सदा रहता है क्यों कि व्यापकसे व्याप्यका वियोग कभीनहीं होता जैसे आकाश में सब स्थूल पदार्थों का वियोग कभी नहीं मनुष्य और वायु- आदिक जहां २ चलते फिरते हैं वहां २ आकाश का संयोग पूर्ण होहैवैसे आकाशादिक पदार्थभी परमेश्वरमें व्याप्य हैं और परमेश्वर सबमें व्यापक है परमाणु और प्रकृति जो कि सूक्ष्म पदार्थों की अवधि है इनसे सूक्ष्म आगे संसार के पदार्थ कोई

नहीं हैं परन्तु परमेश्वर उनमेंभी अत्यन्त सूक्ष्म और अनन्त है जैसे आकाश किसी पदार्थ के साथ चलता फिरता नहीं वैसे परमेश्वर भी पूर्ण के होने से जीवों के साथ चलता फिरता नहीं किन्तु जीव सब अपने २ कर्मानुसार चलते फिरते हैं परमेश्वर की सत्ता से धारित चेतन हैं ॥ दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानाना-मुत्तरोत्तरापायेतदनन्तरापायादपवर्गः । यह गोतम मुनि का सूत्र है मिथ्या ज्ञान जो कि मोह से अनेक प्रकार का होता है यथावत् विद्या के होने से जब नष्ट होजाता है तब । अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाःपञ्चक्लेशाः॥ यह पतञ्जलि मुनिका सूत्र है इसका यह अभिप्राय है कि अविद्या तो पहिले प्रतिपादन करदिया है सोई सब दोषों का मूल है द्रष्टा जो जीव दर्शन जो बुद्धि इन दोनों की एक स्वरूपता होना कि मैं बुद्धि हूं ऐसा अभिमान का होना सो अस्मिता दोष कहाता है । सुखानुशयीरागः । ३ । प० जिस सुख का पहिले अनुभव साक्षात् किया होय उस में अत्यन्त सतृष्णा नाम लोभ कि यह मुझको अवश्य मिलना चाहिए यह दूसरा दोष है क्यों कि अनित्य पदार्थों में अत्यन्त प्रीति के होने से नित्य पदार्थ में जीव की इच्छा कभी नहीं होती। दुःखानुशयीद्वेषः ॥ ४ ॥ प० जिस दुःखका पहिले अनुभव किया होय उसकी स्मृति के होने से उसके हनन की इच्छा और उससे जो क्रोध वह द्वेष कहाता है यह तीसरा दोष है । स्वरसवाहीविदुषोपितथारूढोऽभिनिवेशः ॥ ५ ॥ प० सब प्राणियों को यह आशा नित्य बनी रहती है कि मैं सदा रहूं और मेरे ये पदार्थ सदा बने रहैं नाश कभी न होवैं सो क्रमि

मेले के सब प्राणियों को और विद्वानों को भी यह आशा नित्य बनी रहती है यह चौथा अभिनिवेश दोष कहाता है और अविद्या तो प्रथम दोष है ए पांच दोष और इनसे उत्पन्न भये असंख्यात दोष जीवों में रहते हैं इस्से जीवों की मुक्ति भी नहीं हो सक्ती परन्तु विवेकादि गुणों से जब मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाता है तब अविद्यादिक दोष भी नष्ट हो जाते हैं। प्रवृत्ति र्वाग्बुद्धिशरीरारम्भइति ६॥ गोतम॰ वचन बुद्धि और शरीर इन्ही से जीव आरम्भ करता है सो प्रवृत्ति कहाती है परन्तु जिसके अविद्यादिक दोष नष्ट हो जाते हैं वह उनमें प्रवृत्त नहीं होता किन्तु विद्यादिक गुणों में प्रवृत्त होता है इससे उसकी मिथ्या प्रवृत्ति कि परमेश्वर से भिन्न पदार्थ की जो इच्छा सो नष्ट हो जाती है फिर वह योगाभ्यास विचार और पुरुषार्थ से युक्त अत्यन्त होता है उस्से अनेक परमाणु पर्यन्त सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान नत्र से यथावत साक्षात्कार होता है फिर अत्यन्त जब विचार और योगाभ्यास करता है तब परमानन्द सर्वव्यापक सर्वाधार जो परमेश्वर उसको अपने ही में ध्यान देखता है फिर उसको स्थूल शरीर धारण करने का आवश्यक नहीं किन्तु एक परमाणु को भी शरीर बनाके रह सकता है तब इस का जन्म मरणादिक कारण जो अविद्यादिक दोष उनसे किए गए थे जो कर्म के भोग सब नष्ट हो जाते हैं और आगे जो कर्म किए जाते हैं एसब ज्ञान ही के वास्ते करता है सो अधर्म कभी नहीं करता किन्तु धर्म ही करता है उस्से ज्ञान फल ही वह चाहता है अन्य नहीं फिर उसके जन्म मरण का जो मूल

अविद्या सो ज्ञान से नष्ट हो जाती है फिर वह जन्म धारण नहीं करता और उसकी बुद्धि, मन, चित्त, अहङ्कार, प्राण और इन्द्रिय ए सब दिव्य शुद्ध पदार्थ जीव के सामर्थ्य रूप रह जाते हैं और दिव्य ज्ञानादिक गुण नित्य उसमें रहते हैं और आपदिव्य शुद्ध निर्विकार रह जाता है। बाधनालक्षणंदुःखम्॥७॥ गोत्तम० जितनी बाधना अर्थात् इच्छाभिघात वह सब दुःख कहाता है ॥ ७ ॥ तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः ॥ ८ ॥ गोत्तम० दुःखों की अत्यन्त जो निवृत्ति उसको मोक्ष कहते हैं कि सब दुःखों से छूट जाना और सदा आनन्द परमेश्वर को प्राप्त होके रहना फिर लेशमात्र भी दुःख का सम्बन्ध कभी नहीं होता सो केवल एक परमेश्वर के आधार में वह जीव रहता है और किसी का सम्बन्ध उसको नहीं सो परमेश्वर के योग से उस जीव में सर्वज्ञ तृकाल ज्ञान सब पदार्थों का गुण और दोष इनका सत्य २ बोध भी सदा रहता है इससे जिस दुःख सागर संसार से बड़े भाग्यसे छूटके परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त भया है सो यथावत् जानता है कि परमेश्वर के योग से अन्यत्र दुःख ही है सुख कभी नहीं फिर वह इस दुःख में कभी नहीं गिरता जैसे चिवटी अत्यन्त चंचल होती है फिर वह नाना प्रकारके कणोंको ले २ के अपने बील में संचय करती जाती है उसको स्थिरता वा सन्तोष कभी नहीं होता वह कभी भाग्य और पुरुषार्थ से मिश्री के डले को प्राप्त होय उसका स्वाद लेके आनन्दित हो जाती है फिर वह अपने घर और संचय को छोड़ के उसीमें निवास करती है उसको

खींचनेका सामर्थ्य नहीं सदा उसको छोड़ भी नहीं सकती उत्तम पदार्थ के होने से वैसे जीव भी परमेश्वर से भिन्न पदार्थों में सदा भ्रमण करता है तृष्णा के बस होके परन्तु जब परमेश्वर का उसको योग होता है तब सब तृष्णादिक दोष उस के नष्ट हो जाते हैं फिर पूर्ण काम और स्थिर हो के परमेश्वर ही मे रहता है सो मुक्ति में परमेश्वर का आधार उसको होने से सदा परमानन्द मुक्ति के सुख को भोगता है और निराधार से विषय सुख वा दुःख और मुक्ति का आनन्द भी नहीं भोग सकता इस्से क्या आया कि बिना स्थूल शरीर धारण से पाप वा पुण्य संसारमें फल कभी नहीं भोग सकता और परमेश्वर के आधार के बिना मुक्ति सुख भी नहीं भोग सकता सो जो कहता है कि मन ही से पाप वा पुण्य भोगता है वा एक ही जन्म होता है यह बात उसकी मिथ्या जाननी प्रश्न यह मुक्ति प्राप्त जीव सदा बना रहता है वा कभी वह भी नष्ट हो जाता है उत्तर इसका यह विचार है कि परमेश्वर ने जब सृष्टि रची है कि जब संसार का अत्यन्त प्रलय न होगा तब भी वे मुक्त जीव आनन्द में रहेंगे और जब अत्यन्त प्रलय होगा तब कोई न रहेगा ब्रह्म का सामर्थ्य रूप और एक परमेश्वर के बिना सो अत्यन्त प्रलय तब होगा कि जब सब जीव मुक्त हो जायंगे बीच में नहीं सो अत्यन्त प्रलय बहुत दूर है संभव मात्र होता है कि अत्यन्त प्रलय भी होगा बीच में अनेक बार महा प्रलय होगा और उत्पत्ति भी होगी इस्से सब सज्जनों को अत्यन्त मुक्ति की इच्छा करनी

चाहिए क्योंकि अन्यथा कुछ सुख नहीं होगा जबतक मुक्ति जीव को नहीं होता तबतक जन्म मरणादिक दुःख सागर में डूबा ही रहेगा और जो जल्दी मुक्ति कर लेगा सो अतुल आनन्द को पावेगा प्रश्न मुक्ति एक जन्म में होती है वा अनेक जन्म में उत्तर इसका नियम नहीं क्योंकि जब मुक्ति होने का कर्म करता है तभी उसको मुक्तिहोती है अन्यथा नहीं प्रथम सृष्टि में भी कोई जीव पहिले ही जन्म में मुक्त हो गया होय इसमें कुछ आश्चर्य नहीं उसके पीछे जो कोई मुक्त गया होगा वा होता है और होवेगा सो बहुत जन्महीमें होगा मुक्त सो मोक्ष अत्यन्त पुरुषार्थसे होता है अन्यथा नहीं । भिद्यतेहृदयग्रन्थि-श्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिनदृष्टेपरा-वरे ॥ यह मुण्डककी श्रुति है इसका यह अभिप्रायहै कि हृदय ग्रन्थि नाम अविद्यादिक दोष जब जिस जीवके नष्ट होजाते हैं तब विज्ञानके होने से सब संशय नष्ट हो जाते हैं और जब संशय नष्ट हो जाते हैं तब कर्म भी जीव के नष्ट हो जाते हैं कि जीव को फिर कर्तव्य कुछ नहीं रहता मुक्ति होने के पीछे सो कर्म तीन प्रकार का होता है एक क्रियमाण जो कि नित्य किया जाता है दूसरा सञ्चित जो कि बुद्धि में संस्कार रूप सूक्ष्म रहता है तीसरा प्रारब्ध जो नित्य भोग किया जाता है इसके तीन भेद हैं । सतिमूलेतद्विपाकोजात्यायुर्भोगाः ॥ ८ ॥ पा० इस का यह अभिप्राय है कि कर्मों के फल तीन होते हैं जन्म आयु और भोग परन्तु जब तक कर्मों का मूल अविद्यादिक रहते हैं तब तक कर्म फल भोग भी रहता है सो भी जैसा कर्म वैसा

जन्म आयु और भोग उनके अनुसार होते हैं जब जीव पुरु-षार्थ से विद्या धर्म और पातञ्जल शास्त्र की रीतिसे योगाभ्यास करता है तब उसको यथोक्त विज्ञान होता है तब मूल सहित कर्म छूट जाता है क्यों कि उसने मुक्ति के वास्ते सब कर्म किये थे जब मुक्ति होती है तब उसको फिर कर्तव्य कुछ नहीं रहता प्रश्न मुक्ति समय में जीव परमेश्वर में मिल जाता है जैसे जल में जलवा नहीं उत्तर जो जीव मिल जाता तो उसको मुक्ति का सुख कुछ नहीं होता और मुक्ति के वास्ते जितने साधन किए जाते हैं वे सब निष्फल होजायगे और मुक्ति क्याभई किन्तु उसका नाश ही हो गया इससे यह बात मिथ्या है कि जीव ब्रह्म में मिल जाता है वह ब्रह्म अर्थात् सब से जो परे है और जो कि अपने स्वरूप में व्याप्त है जितना उसको यथावत साक्षात् जानने से सब दुःखों से छूट जाता है जो मानों प्रारब्ध और दैव के अधीन रहता है और आलस्य से कुछ कर्म अच्छा नहीं करता वही जीव नष्ट है और जो अत्यन्त पुरुषार्थ के ऊपर निश्चय करके उद्यम करता है सोई जीव भाग्यशाली है क्योंकि पुरुषा-र्थ ही से मुक्ति होती है और यथावत विवेक के होने से हानि वा लाभ में शोक वा हर्ष रहित होता है वह पुरुषार्थी सर्वत्र सुखी रहता है क्योंकि वह विद्या से सब पदार्थों को यथावत जानता है सो सब सज्जनोंको यही उचितहै कि सदा पुरुषार्थ ही करना आलस्य कभी नहीं पुरुषार्थ इसका नाम है कि जितेन्द्रियता, धर्म युक्त व्यवहार, विद्या, और

मुक्ति जिस्से होय और अन्य पुरुषार्थ नहीं क्योंकि पुरुष के अर्थ जो करता है सोई पुरुषार्थ कहाता है और जो अन्याय युक्त व्यवहार करते हैं उसका नाम पुरुषार्थ नहीं और परमेश्वर अत्यन्त दयालु है जो जीव उसकी प्राप्तिके हेतु तन, मन और धन से श्रद्धापूर्वक पुरुषार्थ करता है उसको शीघ्र ही प्राप्त होता है कृपा से विद्यादिक पदार्थों का उसके पुरुषार्थ के अनुसार प्रकाश होता है फिर सदा आनन्दित मुक्तिमें रहते हैं सो सब पुरुषार्थों का फल मुक्तिहै इससे मुक्ति की चाहना उक्त प्रकार से अवश्य सबको करनी चाहिये यह विद्या अविद्या बन्ध और मुक्ति के विषयमें संक्षेप से लिखा और जो विस्तार से देखा चाहै सो वेदादिक सत्य शास्त्रों में देख लेवें इस के आगे आचार अनाचार भक्ष्य और अभक्ष्य के विषय में लिखा जायगा ॥

इति श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थ प्रकाशे सुभाषा विरचिते नवमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ९ ॥
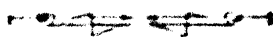
अथ आचारानाचारभक्ष्याभक्ष्यविषयंव्याख्यास्यामः ॥

श्रुतिस्मृत्युदितंसम्यक् निबद्धंस्वेषुकर्मसु । धर्ममूलंनिषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥ १ ॥ म० श्रुति जो वेद स्मृति जो छः

शास्त्रादिक सत्यशास्त्र और मनु स्मृति उनमें जो सदाचार उसको सदा सेवन करें और जितना अपना अचार सो सब युक्ति पूर्वक करें सत्पुरुषों के आचरण से विरुद्ध नहीं सो सत्य भाषणादिक आचार धर्मका मूल है इसको सदाचार प्रमाणोंसे निश्चय करके सदा सेवन करें सब पदार्थ शुद्ध रक्खैं अशुद्ध एक भी नहीं जितने श्रेष्ठ गुण उनके ग्रहण का सदा आचार रक्खैं सत्पुरुषों के संग में सदा प्रीति उनसे विनयादिक व्यवहारों को ग्रहण करें जितेन्द्रियता सदा रक्खैं इनसे विपरीत जो अनाचार उसको छोड़ दें जिससे ज्ञान वा धर्म तथा विद्या प्राप्त होय उसको सदा मानें उक्तप्रकार से उसको प्रसन्न रक्खें और अधर्मी पाखण्डी उनको कभी न मानैं और जितनी सत्क्रिया उनको यथावत् करैं सब प्रयत्नों से ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या ग्रहण करैं बाल्यावस्था में विवाह कभी न करें और नाना प्रकार के यन्त्र और पदार्थ गुणों से रसायन विद्या द्वीप द्वीपान्तर में भ्रमण उन मनुष्यों के अच्छे बुरे आचरणों की परीक्षा और अच्छे आचरणों का ग्रहण करें और बुरे का नहीं प्रश्न आर्यावर्त्त बासी लोग इस देश को छोड़ के अन्य देश में जाने से पाप गिनते हैं और कहते हैं कि पतित हो जाते हैं उत्तर यह बात मिथ्या ही है क्योंकि मनुस्मृति में जहां जिसके ऊपर राजा का कर लिखा है सो जो समुद्र पार द्वीप द्वीपान्तर में न जाते होते तो क्यों लिखते। समुद्रेनास्ति लक्षणम्। इत्यादिक वचन मनुस्मृति में लिखे हैं सो महा समुद्र में जब जहाज जाय तब कुछ करका नियम

नहीं किन्तु द्वीपद्वीपान्तर में जाके व्यापार कर के पदार्थों को बेच के और वहां से पदार्थों को लेके इस देश में आके बेचे फिर उनको जितना लाभ होवे उसमें से ५० वां हिस्सा राजा ले और राजा भी तीन प्रकार के मार्गकी शुद्धि करै एक स्थल, जल, और वन उसमें जल के मार्ग के व्याख्यान में जहाजों के ऊपर चढ़के द्वीपद्वीपान्तरमें जावैं और समुद्र ही में जहाजों पर बैठ के युद्ध करैं यह क्यों लिखा और महाभारत में लिखा है कि श्री कृष्ण और अर्ज्जुन जहाज में बैठ केसमुद्र में चले गये वहां उद्दालक ऋषि मिले ऋषि को यज्ञ में ले आये और राजसूय तथा अश्वमेध में सब द्वीप द्वीपान्तर के राजाओं को यज्ञ में ले आए थे सो बिना जहाज से द्वीपद्वीपान्तर में कैसे जा सकते और सगर राजा सब ठिकाने भ्रमण करता था बिना जहाजों से समुद्र पार कैसे जासका तथा अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, और कर्ण सब द्वीप द्वीपान्तर में भ्रमण करते थे बिना जहाजोंसे कैसे कर सके तथा इक्ष्वाकु से लेके दशरथ पर्यन्त द्वीपद्वीपान्तरमें भ्रमण करते थे सो जहाजों ही से करते थे और राम भी समुद्र पार लंकामें गये थे सो भी तो एक द्वीप है इत्यादिक मनु स्मृति और महाभारतादिक इतिहासों में लिखा है और युक्ति से विचार करके देखें तो यही आता है कि देश देशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में जाना अच्छा है क्यों कि अनेक प्रकार के पदार्थ प्राप्त होंगे अनेक प्रकार के मनुष्यों से समागम होगा उनका व्यवहार

भाषा गुण और दोष विदित होते हैं और उत्तम २ पदार्थों को उस देश में ले जाने और ले आने से बहुत लाभ होता है तथा निर्भय और शूर, वीर पुरुष होने लगते हैं यह तो बड़ा एक अच्छा आचार है और जो अपने ही देश में रहते हैं और देश में जाने से उनका स्पर्श करनेमें छूत मानते हैं वे विचार रहित पुरुष हैं देखना चाहिये कि मुसलमान् वा अंगरेज से छूने में दोष मानते हैं और मुसलमानों वा अंगरेजके देशकी स्त्रीसे संग करते हैं और अपने पास घर में रख लेते हैं उससे कुछ भेद नहीं रहता यह बड़े अन्धकार की बात है कि मुसलमान और अंगरेज जो भले आदमी उनमें तो छूत गिनना और वेश्यादि-कों से नहीं छूत मानना यह केवल युक्तिशून्य बात है और जो उनसे छूत ही मानते हैं कि इनसे शरीर न लगे न वस्त्र स्पर्श होय इसी बात से तो आर्यावर्त्त देश का नाश भया है क्योंकि एतद् आर्यावर्त्त वासी उनके छूतके डर से दूर २ भागते रहते हैं और वे सुख से राज्य सब लेलेते हैं और हृदय से सदा द्वेष होने से अन्यथा बुद्धि रखते हैं इससे परस्पर सब दुःख पाते हैं यह सब अनाचार है आचार इसका नाम है कि राग द्वेषादिक दोषों का हृदय से छोड़ देना और सज्जनता प्रीत्या-दिकों का धारण कर लेना यही आचार पहिले मनुष्योंका था कि अमरिका की कन्या अर्जुनसे विवाही गई थी जो कि नाग कन्या करके लिखी है फिर ऐसी बात जो कहते हैं कि द्वीप-द्वीपान्तर में जाने से जाति पतित और धर्म नष्ट हो जाय यह बात मिथ्या है क्योंकि छूत और देशदेशान्तरमें न जाना यह

बात आर्यावर्त में जैनों के राज्य से चली है पहिले न थी क्योंकि जैन बड़े भीरु होते हैं और छोटे २ जीवों के ऊपर दया रखते हैं इसी से मुखके ऊपर कपड़ा बांध लेते हैं सो चलने फिरनेमें भी दोष गिनते हैं फिर जहाजोंमें बैठके द्वीपद्वीपान्तर में जाना इसमेंहिंसा क्यों नहीं गिनेंगे और ब्राह्मण तथा सम्प्रदायी लोग इन्हों ने अपने मतलब के हेतु सब जाल फैला रक्खे हैं क्यों कि अपना चेला वा यजमान द्वीपद्वीपान्तर में जायगा तो जीविका की हानि हो जायगी देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में जाने से कोई बुद्धिमान का अवश्य समागम होगा उससे सत्य असत्य का उसको बोध भी होगा फिर उसके सामने हमारा जाल नहीं चलेगा और नित्य शनैश्चरादि ग्रह के नाम से तथा भूतप्रेतादिक नाम से तथा मन्दिरादिकों में अनेक प्रतिमा ठाकुर नारायण दुर्गादि के नाम सुनाने से उनको इनके लाभ होने का यत्न, कपट से मिथ्या क्रिया करते हैं सो यह द्वीपद्वीपान्तर में चला जायगा बहुत काल में आना होगा तब तक उनकी आजीविका मन्द हो जाती है क्योंकि वह उनके सामने ही नहीं रहेगा फिर उससे कोई क्या लेगा फिर भी एक प्रायश्चित्तका डर लगा दिया है जो कोई जाके आवे उसके ऊपर बड़ेखर्चेके लगा देते हैं क्योंकि उसको दुर्दशा देखके कोई जाने की इच्छा करते हाय वह भी डरके न जाय इस हेतु कि हमारी आजीविका सदा बनी रहै यह केवल उनकी मूर्खता है क्योंकि वह धनाढ्य था राजा हो दरिद्र बन जायगा ऐसे भारे २ सब दरिद्र और मूर्ख बन जायंगे फिर उनसे आजीविका भी किसी

की न होगी परन्तु ऐसा विचार नहींकरते क्योंकिअपने मतलब में फंस हैं और विद्या भी नहीं इस्से कुछ नहीं जान सक्ते परन्तु सज्जन लोग इस बात को मिथ्या ही जानें और कभी देश देशान्तर वा द्वीप द्वीपान्तर के जाने में भ्रम न करें क्योंकि जब मनुष्य मिथ्या भाषणादिक अनाचार करेगा तब सर्वत्र अनाचारी होगा और जोसत्य भाषणादिक आचार करेगा वह कभी किसी देश में अनाचारी नहीं होता औरजो ऐसा जानते हैं कि बहुत नहाना और हाथों को मलना आचार जानते हैं यह भी बात अयुक्त है क्योंकि उतनाही शौच करना उचित है कि जितनेसे हस्त, पाद, शरीर और वस्त्र दुर्गन्ध युक्त न रहें इस्से अधिक करना सो अनाचार है किन्तु जिस्से सब पदार्थ गृहपात्र और अन्नादिक शुद्ध रहैं उतना शौच करना सबको उचित है अधिक नहीं अधिक आचारसद्गुण ग्रहण में सदा रक्खें और विद्या के प्रचार का आचार सदा रक्खैं इसका नाम आचार हैं सोई मनु स्मृत्यादिकोंमें लिखा है और भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार के होते हैं एक तो वैद्यक शास्त्र की रीति से और दूसरा धर्मशास्त्रकी रीतिसे सोवैद्यक शास्त्रकी रीति से देश, काल, वस्तु और अपने शरीर की प्रकृति उनसे अनुकूल विचार करके भक्षण करना चाहिए अन्यथा नहीं जिस्से बल, बुद्धि, पराक्रम और शरीर में नैरोग्य बढ़े वैसापदार्थ भक्ष्य है सोई उक्त वैद्यक सुश्रुत शास्त्र में लिखा है। और अभक्ष्योग्राम्यशूकरोऽभक्ष्योग्राम्यकुक्कुटः। इत्यादिक धर्मशास्त्रसे अभक्ष्य का निर्णय करना क्योंकि सूअर गांव का और मुर्गाप्रायः मल

ही खाता है उसका परिणाम मांसहोगा उसके खाने से दुर्गन्ध शरीर में होगा उससे रोगोत्पत्ति का संभव है और चित्त भी अप्रसन्न हो जायगा वैसा ही धर्म शास्त्रकी रीति से मद्यअभक्ष्य तथा जितने मनुष्यों के उपकारक पशु उनका मांस अभक्ष्य तथा विना होम से अन्न और मांस भी अभक्ष्य है प्रश्न एक जीवको मारके अग्निमें जलाना और फिर खाना यह कुछ अच्छी बात नहीं और जीव को पीड़ा देना किसी को अच्छा नहीं उत्तर इसमें क्या कुछ पाप होता है प्रश्न पाप ही होता है क्योंकि जीवों को पीड़ा देके अपना पेट भरना यह धर्मात्माओं की रीति नहीं उत्तर अच्छा एक जीव को मारने में पीड़ा होती है सो सब व्यवहारों को छोड़ देना चाहिये क्यों कि नेत्र की चेष्टा से भी सूक्ष्म देह वाले जीवों को पीड़ा अवश्य होती है और तुम्हारे घर में कोई मनुष्य चोरी करे तो तुम लोग भी अवश्य उसको पीड़ा देओगे और मक्खीआदिक भोजन के ऊपर से उड़ा देते हो इससभी उसको पीड़ा होती है और जो कुछ तुम खाते पीते चलते फिरते और बैठते हो इस व्यवहार से भी बहुत जीवों को पीड़ा होती है इससे तुम्हारा कहना व्यर्थ है कि किसी जीव को पीड़ा न देना प्रश्न जिसमें प्रत्यक्ष पीड़ा होती है हम लोग उसमें पाप गिनते हैं अप्रत्यक्ष में कभी नहीं क्योंकि अप्रत्यक्ष में पाप गिनें तो हमारा व्यवहार न बनें उत्तर ऐसे ही आप लोग जानें कि जहां अपना मतलब होय वहां तो पाप नहीं गिनते हो यह युक्ति से बिरुद्ध है और कोई भी मांस न खाय तो जानवर,पक्षी, मत्स्य और जल जन्तु इतने हैं उनसे

शत सहस्र गुने हो जांय फिर मनुष्यों को मारने लगें और खेतों में धान्य ही न होने पावे फिर सब मनुष्यों को आजीविका नष्ट होने से सब मनुष्य नष्ट हो जांय और व्याघ्रादिक मांसाहारी जीव भी उन मृगादिकों का भक्षण करते हैं और गाय आदिकों को भी परन्तु मनुष्य लोगों को यह चाहिये कि गाय बैल, भैंसी, छेड़ी; भेड़ और ऊंट आदिक पशुओंको कभी न मारैं क्योंकि इन्हीं से सब मनुष्यों को आजीविका चलती है जितने दुग्धादिक पदार्थ होते हैं वे सब उत्तमही होते है और एक पशुसे बहुत आजीविका मनुष्योंकी होती है मारने से जहां सौ मनुष्य तृप्त होते हैं उस गाय आदिक पशुओंके बीचमें से एक गाय की रक्षा से दस हजार मनुष्यों की रक्षा हो सकती है इससे इन पशुओं को कभी न मारना चाहिये प्रश्न इन पशुओं के नहीं मारने से इनके बहुत होने से सब पृथिवी भर जायगी फिर भी तो मनुष्योंकी हानि होने लगेगी उत्तर ऐसा न कहना चाहिए क्यों कि व्याघ्रादिक जीव उनको मारेंगे और कितने रोगों से मरेंगे इससे अत्यन्त नहीं होने पावैंगे और मनुष्यों के मारने से घृतादिक पदार्थ और पशुओं की उत्पत्ति भी नष्ट हो जाती है इससे जहां २ गोमेधादिक लिखे हैं वहां २ पशुओं में नरों का मारना लिखा है इससे इस अभिप्राय से नरमेध लिखा है मनुष्य नर को मारना कहीं नहीं क्यों कि जैसी पुष्टि बैलादिक नरों में हैं वैसी स्त्रियों में नहीं है और एक बैल से हजारहां गैया गर्भवती होती हैं इससे हानि भी नहीं होती सोई लिखा है ॥ गौरनुबन्ध्योऽग्नीषोमीयः। यह ब्राह्मण की श्रुति है इस

में पुंल्लिङ्गनिर्देश से यह जाना जाता है कि बैल आदिक को मारना गया को नहीं सो भी गोमेधादिक यज्ञों में अन्यत्र नहीं क्यों कि बैल आदि से भी मनुष्यों का बहुत उपकार होता है इससे इनकी भी रक्षा करनी चाहिये और जो बन्ध्या गाय होती हैं उसको भी गोमेध में मारना लिखा है ॥ स्थूल-पृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत् । यह ब्राह्मण की श्रुति है इसमें स्त्रीलिंग और स्थूल पृषती विशेषण से बन्ध्या गाय ली जाती है क्यों कि बन्ध्यासे दुग्ध और बत्स्यादिकों की उत्पत्ति होती नहीं और जो मांस न खाय सो दुग्धादिकों से निर्वाह करै क्यों कि घृत दुग्धादिकों से भी बहुत पुष्टि होती है सो जो मांस खाय अथवा घृतादिकों से निर्वाह करै वे भी सब अग्नि में होम के बिना न खाय क्यों कि जीव मारने के समय पीड़ा होती है उससे कुछ पाप भी होता है फिर जब अग्नि में वे होम करेंगे तब परमाणु से उक्त प्रकार सब जीवों को सुख पहुँचेगा एक जीव की पीड़ा से पाप भया था सो भी थोड़ा सा गिना जायगा अन्यथा नहीं प्रश्न सखरी निखरी अर्थात कच्चा पक्का अन्न और इसके हाथ का भोजन करना इसके हाथ का खाना और इसके हाथ का न खाना यह बात कैसी है उत्तर इसका यह विचार है अशुचारसे बनावैं अ-न्यादिकों का यथावत् संस्कार न जानै तथा विधि न जानै उसका भक्षण न करना चाहिये क्यों कि उससे रोग होते हैं और बुद्धि भी मलिन हो जाती है सखरी और निखरी यह मनुष्यों का मिथ्या कल्पना है क्यों कि जो अग्नि से पकाया

जाता है यह सब पक्का ही गिना जाता है और शूद्र ही पाक करने वाला होना चाहिये परन्तु वह शूद्र आर्य जिस द्विज के घर में रहे उसी के घर के अन्न और उसी के घर के पात्रों से पवित्र होके बनावे उसके हाथ से बने हुए को सब खांय तो भी कुछ दोष नहीं ॥ नित्यंशुद्धःकारुहस्तःपण्यार्थमुपक्षः । एतेषामेववर्णानांशुश्रूषामनुसूयया । इत्यादिकमनुस्मृतिमें लिखा है सेवा में बड़ी सेवा रसोई का बनाना है क्योंकि रसोई के बनाने में बड़ा परिश्रम होता है और काल भी बहुत जाता है इससे रसोई आदिक सेवा का शूद्र ही को अधिकार है जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यहैं वे तो विद्यादिक प्रचार प्रजा का धर्म से रक्षण व्यापार और नाना प्रकार के शिल्प इनकी उन्नति ही में पुरुषार्थ करें क्यों कि जो बुद्धि और विद्या युक्त हैं उनको सेवा करना उचित नहीं रसोई आदिक जो सेवा सो मूर्ख पुरुष जो शूद्र उसी का अधिकार है क्यों कि अग्नि के सामने बैठना लपनांमांजनाअन्न को शुद्धि करना नाना प्रकार के पदार्थ बनाना इसमें बड़ा परिश्रम और काल जाता है इस काम के करने से विद्वान की विद्या नष्ट हो जाय इससे यह काम शूद्र ही का है सो महाभारत में लिखा है कि जब राजसूय और अश्वमेध युधिष्ठिरादिक राजा लोगों के यज्ञ भये थे उनमें सब द्वीपद्वीपान्तर और देशदेशान्तरों के ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र राजा और प्रजा आये थे उन की एक ही पंक्ति होती थी और शूद्र नाम शूद्र ही पाक करने वाले और परोसने वाले थे एक पंक्ति में सब के साथ सब भोजन

करते थे तथा कुरुक्षेत्र के युद्ध में जूते, वस्त्र, शस्त्र, और रथ के ऊपर बैठे भए भोजन करते थे और युद्ध भी करते जाते थे कुछ शंका उनको न थी तभी उनका विजय होता था और आनन्द से राज्य करते थे और जो भोजन में बड़े बखेड़े करते हैं वे भूख के मारे मर जांयगे युद्ध क्या कर सकेंगे अब भी जयपुरादिकों के क्षत्रिय लोग नापितादिकों के हाथ का भोजन करते हैं सो बात सनातन है और बहुत अच्छी है तथा सारस्वत और खत्री लोगों का एक ही भोजन है सो अच्छी बात है और गौड़ तथा अगरवाले बनियों का भी एक भोजन प्रायः है सो भी अच्छी बात है और गुजराती, महाराष्ट्र तैलंग, द्राविड़, तथा करनाटक इनमें भोजन के बड़े बखेड़े हैं इन पांचों में से गुजराती लोगों के भोजन का बड़ा पाखण्ड है क्यों कि महाराष्ट्रादिक चारों द्राविड़ों का तो एक भोजन है और गुजराती लोगों का आपस में बड़ा भेद है सबसे भोजन में पाखण्ड कान्यकुब्ज का अधिक है क्योंकि वे जल भी पीते हैं तो जूते उतार के हाथ, पैर धोके पीते हैं तब चौका देके चना चबाते हैं सो बड़े दुःख पाते हैं और चौका बरतन ही हाथ में रह गये और कुछ नहीं और सर्जूपारी में भी बहुत भोजन में पाखण्ड हैं यह केवल मिथ्या पाखण्ड बाहर से रच लाते हैं और सब से पाखण्ड भोजन चक्रांकितादिक वैरागियों का अत्यन्त है ऐसा कोई का नहीं क्योंकि जब जगन्नाथ के दर्शन को जाते हैं तब चाण्डालादिकों का जूठ खा लेते हैं फिर अपनी पंक्ति में मिल जाते हैं उनका मिथ्या पाखण्ड भी नहीं रहा

और हलवाई के दुकान का दूध दही और मिष्ठान्नादिक खाते हैं वह सबका उच्छिष्ट जानो और मलिन क्रिया से भी होते हैं तथा घोसी लोग मुसल्मान और अभीरादिक होते हैं वे अपने घड़े का जूठा जल मिलाते हैं फिर उसको सब खाते पीते हैं और जानते भी हैं सो सत्य बात ही का निर्वाह होता है झूंठ का कभी नहीं राजादिक धनाढ्य वैश्यादिकों को घर में रख लेते हैं उनमें कुछ भेद नहीं रहता उनको कोई नहीं कहता क्योंकि कहैं तब जब कि वे निर्दोष होंय सो परस्पर दोषों को छिपाते जाते हैं और गुणों को छोड़ते जाते हैं यह सब अनाचार है और सत्य भाषणादिकों का आचरण करना उसी का नाम अचार युधिष्ठिर के साथ बहुत ऋषि, मुनि, ब्राह्मण लोग थे वे सब सूद नाम शूद्र पाक करते थे और द्रौपद्यादिक परोसते थे वे सब खाते थे सो खाने पीने से किसी का धर्म भ्रष्ट नहीं होता है और न कोई पतित होता है क्योंकि खाना पीना और धर्म का कुछ सम्बन्ध नहीं धर्म जो अहिंसादिक लक्षण सो बुद्धिस्थ है खाना पीना व्यवहार सबबाह्य है परन्तु शुद्धपदार्थ का खाना पीना चाहिये कि जिससे शरीर में रोगादिक न होंय और जगत का अनुपकार भी न होय मद्य, भांग, गांजा, अफीम, और जितने नसे हैं वे सब अभक्ष्य हैं क्योंकि जितने नशे हैं वे सब बुद्ध्यादिकों के नाश करने वाले हैं इससे इनका ग्रहण कभी न करना चाहिये क्योंकि जितने नशे होते हैं वे बिना गरमी से नहीं होते फिर गर्मी से सब धातु और प्राण नष्ट हो जाते हैं और विषम उनके संग से बुद्धि नष्ट और विषम हो जाती है

इस्से नशा का करना सबको वर्जित है परन्तु औषध के हेतु कि रोग निवृत्ति होता होय तो चौगुणा जल औरएक गुण मद्य ग्रहण लिखाहै सुश्रुतादिक वैद्यक शास्त्रमें क्योंकि रोगनिवृत्ति के हेतु अभक्ष्य भी भक्ष्य हो जाताहै औरजिन पशुओं के बछड़े को दूध नहीं देते और सब आपने ही दुह लेते हैं यह भी अनाचार है क्योंकि पशु पुष्ट कभी नहीं होते फिर पुष्टि के विना दुग्धादिक थोड़े होते हैं और पशु भी बलहीन होते हैं सो एक मास भर जितना वह पीए उतना देना चाहिये फिर एक स्तन का दूध दुह ले और सब बछड़ा पीए फिर दो मास के पीछे जब वह बछिया घास पात खाने लगे तब आधा दूध सब दिन छोड दे और आधा दुहले तो पशु भी पुष्ट होवें और दुग्धादिकभी बहुत होवें फिर उन दुग्धादिकों से मनुष्यादिकों की पुष्टि भी हुआ करै इस्से खाने और पीने में धर्म मानते हैं वा धर्म का नाश वे बुद्धिहीन मनुष्य हैं ऐसा तो है कि सत्य धर्म व्यवहार से पदार्थों का प्राप्त होय उनसे खाना पीना करै तो पुन्य है और चोरी तथा छलकपट व्यवहारसे खाना पीनाकरै तो अवश्य पाप होता है सो खाने पीने में जितने भेद हैं वे विरोध दुःख और मूर्खता के कारण हैं इन बखेड़ोंसे आर्यावर्त्त में पुरुष और स्त्री लोग विद्या, धन, बुद्धि, पराक्रमहीन होगये हैं प्रथम देशदेशान्तरोंमें सबवर्णों में विवाह शादीहोती थीपूर्वोक्त वर्णानुक्रमसे फिर भोजनमें कैसेभेद होगा। यह भेद थोड़े दिनसे चला है कि जबसे नानाप्रकारके मतमतान्तर चले और मनुष्य की बुद्धि में परस्पर विरोध होने से प्रीति नष्ट होगई वैर हो गया इस्से कोई किसीके उपकार में चित्त नहीं देता और आपने

देश के मनुष्यों के उपकार के हेतु कोई प्रवृत्त नहीं होता किंतु अपने २ मतलब में रहते हैं सो सबका नाश हो जाता है यह बड़ा अनाचार है और तथा विचार से शुद्ध पात्र के होने से किसी का परलोक वा धर्म बिगड़ना नहीं परन्तु विद्या और विचार के नहीं होने से इन बखेड़े में मनुष्य लोग पड़ के सदा दुःखी रहते हैं और जो परस्पर गुण ग्रहण करें तो सुखी हो जांय और देखना चाहिए कि समय के ऊपर भोजन नहीं प्राप्त होता है भोजन के पात्रों को उठाके लादे फिरते हैं बैलों की नाई दरिद्र लोग और धनाढ्य लोग बहुत रसोईदार आदिक साथ में रहते हैं उससे मिथ्या धन बहुत खर्च हो जाता है इत्यादिक सब व्यवहार बुद्धिमान लोग विचार के युक्त २ व्यवहार करें अयुक्त कभी नहीं एकादशसमुल्लास शिक्षा के विषय में लिखे इसके आगे आर्यावर्त्त वासी मनुष्य जैन मुसल्मान और अंग्रेजों के आचार अनाचार सत्यासत्य मतमतान्तर के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखेंगे इनमें से प्रथम समुल्लास में आर्यावर्तवासी मनुष्यों के मतमतान्तर के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जायगा दूसरे समुल्लास में जैन मत के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जायगा तीसरे में मुसल्मानों के मत के विषय में खण्डन और मण्डन लिखेंगे और चौथे में अङ्गरेजों के मत में खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जायगा सो जो देखा चाहे खण्डन और मण्डन की युक्ति उन चारों समुल्लासों में देखले इस समुल्लास तक खण्डन वा मण्डन नहीं लिखा क्यों कि जब तक

बुद्धि मनुष्यों की सत्यासत्य विवेक युक्त नहीं होती तब तक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग करने में समर्थ नहीं होते इस हेतु ग्रन्थ के पूर्व भाग में सत्य २ मनुष्योंके हित के हेतु शिक्षा लिखी और इस ग्रन्थ के उत्तर भाग में सत्य मत का मण्डन और असत्य मत का खण्डन लिखेंगे संस्कृतमें रचना करते तो सब मनुष्यों के समझमें नहीं आता इस हेतु भाषा में किया गया इस ग्रन्थ को दुराग्रह हठ और ईर्ष्या को छोड़ के यथावत् विचारेगा उसको सत्य २ पदार्थोंके प्रकाश से अत्यन्त आनन्द होगा और अन्यथा इस ग्रन्थ का अभिप्राय भी मालूम नहीं होगा इस हेतु सज्जन लोगों को यह उचित है कि इसका यथावत अभिप्राय विचार के भूषण वा दूषण करें अन्यथा नहीं और मूर्ख तथा दुराग्रही पुरुष के कहे दूषण मानने के योग्य नहीं ॥

इति श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृतेसत्यार्थ प्रकाशे सुभाषा विरचिते दशमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ १० ॥

सत्यार्थ प्रकाशस्य प्रथमभागः समाप्तः ॥

अथार्य्यावर्तवासिमतखंडनमंडनेविधास्यामः ॥ सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तंदेवनिर्मितदेशमार्य्यावर्त्तंप्रचक्षते ॥ १ ॥ म० सरस्वती जो कि गुजरात और पंजाब के पश्चिम भाग में नदी है उस्से लेके बंगाल के पूर्व भाग की नदीसे लेके समुद्र तक इन दोनों के बीच में जो देश है सो आर्यावर्त देश है और वे देव नदी कहाती हैं अर्थात दिव्यदेश के प्रांत भाग में होने से देव नदी इसका नाम है सो देश देवनिर्मित है अर्थात दिव्य गुणों से रचित है क्यों कि भूगोल के बीच में ऐसा श्रेष्ठ देश कोई नहीं जिस देश में सब श्रेष्ठ पदार्थ होते हैं और छः ऋतु यथावत् वर्त्तमान होते हैं और केवल सुवर्ण रत्न पैदा होते हैं इस देश में जिसका राज्य होता है वह दरिद्र होय तो भी धन से पूर्ण हो जाता है इसी हेतु इसका नाम आर्यावर्त्त है आर्य्य नाम श्रेष्ठ मनुष्य और श्रेष्ठ पदार्थ इनसे युक्त अर्थात आवर्त्त है इस हेतु इस देश का नाम आर्यावर्त कहते हैं ॥ १ ॥ एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वंचरित्रंशिक्षेरन् पृथिव्यांसर्वमानवाः ॥ २ ॥ म० इस देश में अग्रजन्मानाम सब श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न जो पुरुष उत्पन्न होवे उस्से सब भूगोल की पृथिवी के मनुष्य शिक्षा अर्थात विद्या तथा संसार के सब व्यवहारों का यथावत विज्ञान करैं इस्से क्या जाना जाता है कि प्रथम इसमें मनुष्यों की सृष्टि भई थी पीछे सब द्वीप द्वीपान्तर में सब मनुष्य फैल गए क्यों कि पृथिवी में जितने मनुष्य हैं वे इस देश वालों से

विद्यादिक शिक्षा ग्रहण करें और सब देश भाषाओं का मूल जो संस्कृत सो आर्य्यावर्त्त ही में सदा से चला आता है आज काल भी कुछ २ देखने में आता है परन्तु फिर भी सब देशों से संस्कृत का प्रचार अधिक है जर्मनी और विलायत आदिक देशों में संस्कृत के पुस्तक इतने नहीं मिलते जितने कि आर्य्यावर्त्त देश में मिलते हैं और जो किसी देश में संस्कृत के बहुत पुस्तक होंगे सो आर्य्यावर्त्त ही से लिए होंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं सो इस देश से मिश्र देश वालों ने पहिले विद्या ग्रहण की थी उससे यूनान देश उससे रूम फिर रूम से फिरंगिस्थान आदि में विद्या फैली है परन्तु संस्कृत के बिगड़ने से गिरीशलाटीन अङ्गरेज और अरब देश वालों की भाषा बन गई है सो इसमें अधिक लिखना कुछ आवश्यक नहीं क्यों कि इतिहासों के पढ़ने वाले सब जानते हैं और पता भी ऐसा ही मिलता है एक गोलडुष्टकर साहेब ने पहिले ऐसा ही निश्चय किया है कि जितनी विद्या वा मत फैले हैं भूगोल में वे सब आर्य्यावर्त्त ही से लिए हैं और काशी में बालेण्टैन साहेब ने यही निश्चय किया है कि संस्कृत सब भाषाओं की माता है तथा दाराशिकोह बादशाह ने भी यह निश्चय किया है कि जो विद्या है सो संस्कृत ही है क्यों कि मैंने सब देशों की भाषाओं की पुस्तक देखा तो भी मुझको बहुत सन्देह रह गए परन्तु जब मैंने संस्कृत देखा तब मेरे सब सन्देह निवृत्त हो गए और अत्यन्त प्रसन्नता मुझको भई और काशी में मान मन्दिर जो

रचा है उसमें महाराज सवाई मानसिंह जी ने खगोल के कला और यन्त्र ऐसे रचे थे कि जिसमें खगोल का सब हाल देख पड़ता था परन्तु आजकल उसकी मरम्मत न होने से बहुत कलायन्त्र बिगड़ गए हैं तो भी कुछ२ देख पड़ता है फिर आज काल महाराज सवाई रामसिंह जी ने कुछ मरम्मत स्थान की कराई है जो उस यन्त्र की भी करावेंगे तो कुछ रोज़ बना रहेगा। अन्यथा नहीं जब से महाभारत युद्ध भया उस दिन से आर्यावर्त्त की बुरी दशा आई है सो नित्य बुरी ही दशा होती जाती है क्यों कि उस युद्ध में अच्छे २ विद्यावान राजा और ब्राह्मण लोग प्रायः मारे गए फिर कोई राजा पूर्ण विद्या वाला इस देश में नहीं भया जब राजा विद्वान और धर्मात्मा नहीं भया तब विद्या का प्रचार भी नष्ट होता चला। फिर कुछ दिन के पीछे आपस में लड़ने लगे क्यों कि जब विद्या नहीं होती तब ऐसे ही बहुत प्रमाद होते हैं जो कोई प्रबल भया उसने निर्बल का राज छीन के उसको मारा फिर प्रजा में भी गदर होने लगा कि जहां जिसने जितना पाया उसका वह राजा वा जमींदार बन बैठा फिर ब्राह्मण लोगों ने भी विद्या का परीश्रम छोड़ दिया पढ़ना पढ़ाना भी नष्ट होता चला जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन होते चले तब क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी विद्याहीन होते चले केवल दम्भ, कपट और छल ही से व्यवहार करने लगे फिर जितने अच्छे काम होते थे वे सब बन्ध होते चले वेदादिक विद्या का प्रचार भी बहुत थोड़ा होता चला फिर ब्राह्मण लोगों ने

बिचार किया कि आजीविका की रीति निकालनी चाहिए सो सम्मति करके यही बिचार किया कि ब्राह्मण वर्ण में जो उत्पन्न होता है सोई देव है सबको पूज्य है क्योंकि पूर्ण विद्या से ब्राह्मण वर्ण होता है यह वर्णाश्रम की सनातन रीति है सोई ऋषि मुनियों के पुस्तकों में भी लिखी है सो विद्यादिक गुणों से तो वर्ण व्यवस्था नहीं रक्खी किन्तु कुल में जन्म होने से वर्ण व्यवस्था प्रसिद्ध कर दिया है फिर जन्म ही से ब्राह्मणादिक वर्णों का अभिमान करने लगे फिर विद्यादिक गुणों में पुरुषार्थ सब का छूटा उस के छूटने से प्रायः राजा और प्रजा में मूर्खता अधिक २ होने लगी फिर उन्हसे ब्राह्मण लोग अपने चरण और शरीर की पूजा कराने लगे जब पूजा होने लगी तब अत्यन्त अभिमान उन में होने लगा उन विद्याहीन राजाओं को प्रजास्थ पुरुषों को वशीभूत ब्राह्मणों ने कर लिए यहां तक कि सोना, उठना और कोस दो कोस तक जाना वह भी ब्राह्मणों की आज्ञा के बिना नहीं करना और जो कोई करेगा सो पापी हो जायगा फिर शनैश्चरादिक ग्रह और नाना प्रकार के भूत प्रेतादिकों का जाल उनके ऊपर फैलाने लगे और वे मूर्खता के होने से मानने भी लगे फिर राजा लोगों को ऐसा निश्चय सब लोगों ने मिल के कराया कि ब्राह्मण लोग कुछ भी करें परन्तु इनको दण्ड न देना चाहिए जब दण्ड नहीं होने लगा तब ब्राह्मण लोग अत्यन्त प्रमाद करने लगे और क्षत्रियादिक भी फिर बड़े २ ऋषि मुनि और ब्रह्मादिक के नामों से श्लोक और ग्रन्थ रचने लगे उन में

प्रायः यही बात लिखी कि ब्राह्मण सबका पूज्य और सदा अदण्ड्य है फिर अत्यन्त प्रमाद और विषयासक्ति से विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम और शूर वीरता नष्ट हो गई और परस्पर ईर्ष्या अत्यन्त हो गई किसी को कोई देख न सकै और कोई २ के सहायकारी न रहे परस्पर लड़ने लगे यह हाल चीन आदिक देशोंमें रहने वाले जैनोंने सुनी और व्यापारादिक करने के हेतु इस देश में आते थे सो प्रत्यक्ष भी देखी फिर जैनों ने विचार किया कि इस समय आर्यावर्त्त देश में राज्य सुगमता से हो सक्ता है फिर वे आए और राज्य भी आर्यावर्त्त में करने लगे फिर धीरे २ बोध गया में राज्य जमा के और देश देशान्तर में फैलानेलगे सोवेदादिक संस्कृत पुस्तकों की निन्दा करने लगे औरअपने पुस्तकोंके पठन पाठन का प्रचार तथा अपने मत का उपदेश भी करने लगे सो इस देश में विद्या के नहीं होने से बहुत मनुष्यों ने उनके मत का स्वीकार कर लिया परन्तुकनौज काशी पर्य्यंत दक्षिण और पश्चिम देश के पुरुषों ने स्वीकार नहीं किया था परन्तु वे बहुत थोड़े ही थे वे ही वेदादिक पुस्तकों का पठन और पाठन करते और कराते थे फिर इनोंने वर्णाश्रम व्यवस्था और वैदोक्त कर्मों को मिथ्या २ दोष लगा के अश्रद्धा और अप्रवृत्ति बहुत करा दिया फिर यज्ञोपवीतादिक कर्म भी प्रायः नष्ट होगया और जोर वेदादिकों की पुस्तक पाया और पूर्वके इतिहासों का उनका प्रायः नाश कर दिया जिस्से कि इनका पूर्व अवस्था का स्मरण भी न रहे फिर जैनों का राज्य इस देश में

अत्यन्त जम गया तब जैन भी बड़े अभिमान में हो गए और कुकर्म, अन्याय भी करने लगे क्यों कि सब राजा और प्रजा उनके मतमें हीं होगए फिर उनको डर वा शंका किसी की न रही अपनें मतवालों को अच्छे २ अधिकार और प्रतिष्ठा करने लगे और वेदादिकों को पढ़ैं तथा उनमें कहे कर्मों को करैं उन की अप्रतिष्ठा करने लगे अन्याय से भी उनके ऊपर जाल स्थापन करने लगे अपने मतका पण्डित वा साधु उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करने लगे सो आज तक भी ऐसा ही कर्ते हैं और बहुत स्थान२में बड़े२ मन्दिर रच लिए और उनमें अपने आचार्यों को मूर्त्ति स्थापन कर दिया तथा उनको पूजा भी अत्यन्त करने लगे सो जैनोंके राज्यही से मूर्त्ति पूजन चली इसके आगे न थी क्योंकि जितने ऋषि मुनियोंके किए प्राचीन ग्रन्थहैं महाभारत युद्ध के पहिलें जो कि रचे गए हैं उनमें मूर्त्ति पूजन का लेशमात्र भी कथन नहीं है इस्से दृढ़ निश्चय से जाना जाता है कि इस आर्य्यावर्त्त देश में मूर्त्ति पूजन नहीं थी किन्तु जैनों के राज्य ही से चला है एक द्रविड़ देश के ब्राह्मण काशी में आ के एक गौड़ पद पण्डित थे उनके पास व्याकरण पूर्वक वेद पर्यन्त विद्या पढ़ी थी जिसका नाम शङ्कराचार्य्य था वे बड़े पण्डित भए थे उनने विचार किया कि यह बड़ा अनर्थ भया नास्तिकों का मत आर्य्यावर्त्त देश में फैल गया है और वेदादिक संस्कृत विद्याका प्रायः नाशही होगया है सो नास्तिक मत का खण्डन और वेदादिक सत्य संस्कृत विद्या का विचार वे अपने मन से ऐसा विचार करके सुधन्वा नाम राजा था

उसके पास चले गए क्योंकि बिना राजाओं के सहाय से यह बात नही होसकेगीसो सुधन्वाराजाभी संस्कृतमें पण्डितथाऔर जैनोंकेभी संस्कृत सब ग्रन्थ पढ़ाथा सुधन्वा जैनके मतमें था परन्तु बुद्धि और बिद्याके होने से अत्यन्त विश्वास नहीं था क्योंकि वहसंस्कृत भीपढ़ाथा और उसके पास जैन मतकेपण्डित भी बहुत थे फिर शंकराचार्य ने राजा से कहा कि आप सभा करावैं और उनसे मेराशास्त्रार्थ होय और आपसुनैं फिर जोसत्य होय उसको मानना चाहिये उसने स्वीकार किया और सभा भी कराई उसमें अपने पास जैन मत केपण्डित थे और भी दूर २ से पण्डित जैन मत के बोलाये फिर सभा भई उसमें यह प्रतिज्ञा होगई कि हम वेद और वेद मतका स्थापन करेंगे और आपके मत का खण्डन तथा उन पण्डितों ने ऐसी प्र-तिज्ञा किया कि वेद और वेद मत का हम खण्डन करेंगे और अपने मत का मण्डन सो उनका परस्पर शास्त्रार्थ होने लगा उस शास्त्रार्थ में शङ्कराचार्य का बिजय भया और जैन मत वाले पण्डितों का पराजय होगया फिर कोई युक्ति जैनों की नहीं चली किन्तु शङ्कराचार्य की बात प्रमाणों से सिद्ध भई उसी समय सुधन्वा राजा बुद्धिमान था उसकी जैन मत में अश्रद्धा होगई और वेद मत में श्रद्धा होगई फिर सभा उठ गई राजा और शङ्कराचार्य जी का एकान्त में विचार भया कि आर्यावर्त्त में बड़ा अनर्थ होगया है इस्से वेदादिकों का प्रचार और इन कर्मों का प्रचार होना चाहिये तथा जैनों का खण्डन सो शङ्कराचार्य ने कहा कि जैनों का आज काल बड़ा

क्योंकि जैनों का खण्डन तो हो गया परन्तु विद्या प्रचार यथावत् नहीं भया इससे मनुष्यों को यथावत् कर्तव्य और अकर्तव्य का निश्चय नहीं होने से मनमें संदेह ही रहा कुछ तो जैनों के मत का संस्कार हृदय में रहा और कुछ वेदादिक शास्त्रों का भी यह बात एकईस वा बाइस सै बरस की है इसके पीछे २०० वा ३०० बरस तक साधारण पढ़ना और पढ़ाना रहा फिर उज्जयनमें विक्रमादित्य राजा कुछ अच्छा भया उसने राज्य धर्म कुछ २ प्रकाश किया और बहुत कार्य न्याय से होने लगे थे उसके राज्य में प्रजा को सुख भी भया था क्योंकि विक्रमादित्य तेजस्वी बुद्धिमान और शूरवीर तथा धर्मात्मा इससे कोई और अन्याय नहीं करने पाता था परन्तु वेदादिक विद्या का प्रचार उसके राज्य में भी यथावत् नहीं भया था उसके पीछे ऐसा राजा नहींभया किन्तु साधारण होते गये फिर विक्रमादित्य से ५०० वर्ष के पीछे राजा भोज भये उसने संस्कृत का प्रचार किया सो नवीन ग्रन्थों को रचना और प्रचार किया था वेदादिकों का नहीं परन्तु कुछ २ संस्कृत का प्रचार भोज राजा ने ऐसा कराया कि चाण्डाल और हल जोतने वाले भी कुछ २ लिखना पढ़ना और संस्कृत बोलते भीथे देखना चाहिये किकालिदास गडरिया था परन्तु श्लोकादिक रच लेता था और राजा भोज भी नए २ श्लोक रचने में कुशल था कोई एक श्लोक कभी रच के ले जाता था उनके पास उसका प्रसन्नता से सत्कार करते थे और जो कोई ग्रन्थ बनाता था तोउसका बड़ाभारी सत्कारकर्ते थे फिर लोभ

से बहुत संसार में मनुष्य लोग नए ग्रन्थ रचने लगे उससे वेदादिक सनातन पुस्तकों की अप्रवृत्ति प्रायः हो गई और संजीवनी नाम राजा भोज ने इतिहास ग्रन्थ बनाया है उसमें बहुत पण्डितों की सम्मति है और यह बात उसमें लिखी है कि तीन ब्राह्मणों ने ब्रह्मवैवर्त्तादिक तीन पुराण पण्डितों ने रचे थे उनसे राजा भोज ने कहा कि और के नाम से तुमको ग्रन्थ रचना उचित नहीं था और महाभारत की बात लिखी है कि कितने हजार श्लोक २० बरसके बीचमें व्यासजी का नाम कर के लोगोंने मिलादिये हैं ऐसेही पुस्तक बढ़ेगा तो एक ऊंट का भार हो जायगा औरऐसेही लोग दूसरे के नाम से ग्रन्थ रचेंगे तो बहुत भ्रम लोगों को हो जायगा सो उस संजीवनी ग्रन्थ में राजा भोज ने अनेक प्रकार की बातें पुस्तकों के विषय और देश के वर्त्तमान के विषय में इतिहास लिखे हैं सो वह संजीवनी ग्रन्थ बटेश्वर के पास होलीपुरा एक गांव है उस में चौबे लोग रहते हैं वे जानते हैं जिस के पास वह ग्रन्थ है परन्तु लिखने वा देखने को वह पण्डित किसी को नहीं देता क्यों कि उसमें सत्य २ बात लिखी है उसके प्रसिद्ध होनेसे पण्डितों की आजीविका नष्ट हो जाती है इस भय से वह उस ग्रन्थ को प्रसिद्ध नहीं करता ऐसे:ही आर्यावर्त्त वासी मनुष्यों की बुद्धि क्षुद्र हो गई है कि अच्छा पुस्तक वा कोई इतिहास उसको छिपाते चले जाते हैं यह इनकी बड़ी मूर्खता है क्योंकि अच्छी बात जो लोगों के उपकार की उसको कभी न छिपाना चाहिये फिर राजा भोज के पीछे कोई अच्छा राजा नहीं भया उस

समय में जैन लोगों ने जहां तहां मूर्ति मन्दिरों में प्रसिद्ध किया और वे कुछ २ प्रसिद्ध भी होने लगे तब ब्राह्मणों ने विचार किया कि इनके मन्दिरों में नहीं जाना चाहिए किन्तु ऐसी युक्ति रचें कि हम लोगों की आजीविका जिस्सेहोय फिर उनने ऐसा प्रपञ्च रचा कि हमको स्वप्ना आया है उसमें महादेव, नारायण, पार्वती, लक्ष्मी, गणेश, हनूमान, राम, कृष्ण, नृसिंह, इनों ने स्वप्न में कहाहै कि हमारी मूर्ति स्थापन करके पूजा करें तो पुत्र, धन नैरोग्यादिक पदार्थों की प्राप्ति होगी जिस २ पदार्थ की इच्छा करेगा उस २ पदार्थकी प्राप्ति उसको होगी फिर बहुत मूर्खों ने मान लिया और मूर्त्ति स्थापन करने कोई २ लगा फिर पूजा और आजीविका भी उनकी होने लगी एक की आजीविका देख के दूसरा भी ऐसा करने लगा और कोई महाधूर्त्त ने ऐसा किया कि मूर्त्ति को जमीन में गाड़ के प्रातःकाल उठ के कहा मुझको स्वप्न भया है फिर उनसे बहुत लोग पूछने लगे कि कैसा स्वप्न भया है तब उनसे उसने कहा कि देव कहताहै मैं जमीनमें गड़ाहूं और दुःख पाताहूं मुझको निकाल के मन्दिरमेंस्थापन करे और तूंही पुजारी मेरा होतो मैं सब काम सब मनुष्योंका सिद्ध करूंगा फिर वे विद्याहीन मनुष्य उससे पूछते भए कि वह मूर्त्ति कहां है जो तुम्हारा सत्य स्वप्न होगा तो तुम दिखलाओ तब जहां उसने मूर्त्ति गाड़ी थी वहां सब को ले जाके खोद के उस को निकाली सब देख के बड़ा आश्चर्य किया और सबने उससे कहा कि तूं बड़ा भाग्यवान् है और तेरे पर देवता की बड़ी कृपा है सो हम लोग धन देते हैं

इस्से मन्दिर बनाओ इस मूर्त्ति का उसमें स्थापन रोक तुम इसका पुजारी बनो और हम लोग नित्य दर्शन करेंगे तब तो वह प्रसन्न हो के वैसा ही किया और उसकी आजीविका भी अत्यन्त होने लगी उसकी आजीविका को देख के अन्य पुरुष भी ऐसी धूर्त्तता करने लगे और विद्याहीन पुरुष उसको मानता करने लगे फिर प्रायः मूर्त्ति पूजन आर्य्यावर्त्त में फैला एक महम्मूदगजनवी इस देश में आया और बहुत सी मूर्त्तियां सोने और चांदियों की लूट लिया बहुत पुजारी और पण्डितों को पकड़ लिए और रात को पिसान पिसावै और दिनमें जाजरूर आदि को सफा करावैं और जहां कोई पुस्तक पाया उस को नष्ट भ्रष्ट कर दिया ऐसे वह आर्य्यावर्त्त में बारह दफे आया और बहुत लूट मार अत्यन्त अन्याय उसने किया इस देश की बड़ी दुर्दशा उसने किया यहां तक कि शिरच्छेदन बहुतों का कर दिया बिना अपराधों से स्त्री, कन्या और बालक को भी पकड़ के दुःख दिया और बहुतोंको मार डाला ऐसा उसने बड़ा अन्याय किया सो जिस देश में ईश्वर की उपासना को छोड़के काष्ठ पाषाण, वृक्ष, घास, कुत्ते, गधे, और मिट्टी आदिकी पूजा से ऐसा ही फल होगा उत्तम कहां से होगा फिर चार ब्राह्मणों ने एक लोहे की पोला मूर्त्ति रचवाई और उसको गुप्त कहीं रख दिया फिर चारों ने कहा हमको महादेव ने स्वप्न दिया है कि हमारा आप लोग मन्दिर रचैं तो कैलाश को छोड़ के आर्य्यावर्त्त देशमें मैं वास करूं और सबको दर्शन देऊं ऐसा सब देशों में प्रसिद्ध कर दिया फिर मन्दिर सब लोगों ने मिल के

रचवाया उस में नीचे ऊपर और चारों ओर भीत में चुंबक पत्थर रक्खे जब मन्दिर पूरा भया तब सब देशों में प्रसिद्ध कर दिया कि उस दिन मध्य रात्रि में कैलाश से महादेव मन्दिर में आवेंगे जो दर्शन करेगा उसका बड़ा भाग्य और मरने के पीछे कैलाश को वह चला जायगा फिर उस समय में राजा, बाबू, स्त्री, पुरुष और लड़के बाले उस स्थान में जुटे फिर उन चारों धूर्त्तों ने मूर्त्ति मन्दिर में कहीं गुप्त रख दिई थी और मेलामें ऐसा प्रसिद्ध कर दिया कि महादेव देव हैं से भूमि को पग से स्पर्श न करेंगे किन्तु आकाश ही में खड़े रहेंगे ऐसा हम को स्वप्न में कहा है सो जब उस दिन पहर रात्रि गई तब सब को मन्दिर के बाहर निकाल दिए और किवाड़ बन्द करके वे चारों भीतर रहे फिर उस मूर्त्ति को उठाके मन्दिरमें लेगए और बीच में चुम्बक पाषाण के आकर्षणों से अधर आकाश में वह मूर्त्ति खड़ी रही और उन्हो ने खूब मन्दिर में दीप जोड़ दिए फिर घंटा, झल्लरी, शंख, रणसिंघा और नगारा बजाए तब तो बड़ा मेला में उत्साह भया और उनने दरवाजे खोल दिए फिर मनुष्यों के ऊपर मनुष्य गिरे और मूर्त्ति को आकाशमें अधरखड़ी देखके बड़े आश्चर्य युक्त भए और लाखहां रुपैयों की पूजा चढ़ी अनेक पदार्थ पूजा में आए फिर वे चारों धूर्त्त ब्राह्मण बड़े मस्त होगए और महन्त हो गए फिर नित्य मेला होने लगा करोड़हां रुपैयों का माल हो गया सो वह मन्दिर द्वारका के पास प्रभासक्षेत्र स्थान में था और उस मूर्त्ति का नाम सोमनाथ रक्खा था फिर महमूदगजनवीने सुना

कि उस मन्दिरमें बड़ा माल है ऐसा सुनके अपने देश से सेना ले के चढ़ा सो जब पंजाब में आया तब हल्ला होगया और सोमनाथ की ओर चला तब लोगों ने जाना कि सोमनाथ के मन्दिरको तोड़ेगा और लूटेगा ऐसा सुनके बहुत से राजा पंडित और पुजारी सेना ले २ के सोमनाथ की रक्षा के हेतु इकट्ठे भए सोमनाथ के पास जब वह डेढ़सै दोसै कोस दूर रहा तब पण्डितोंसे राजाओंने पूछा कि मुहूर्त्त देखना चाहिए हम लोग आगे जाके उन से लड़ें फिर पण्डित लोग इकट्ठे हो के मुहूर्त्त देखा परन्तु मुहूर्त्त बना नहीं फिर नित्य मुहूर्त्तही देखते रहे परन्तु कोई दिन चन्द्र कोई दिन और ग्रह नहीं बने कोई दिन दिक्शूल सन्मुख आया कोई दिन योगिनी और कोई दिन काल नहीं बना सो पण्डितों की बुद्धि को कालादिकों के भ्रमों ने खा लिया और राजा लोग बिना पण्डितों की आज्ञा से कुछ कर्ते नहीं थे सो प्रायः पण्डित और राजा लोग मूर्ख ही थे जो मूर्ख न होते तो पाषाणादिक मूर्त्ति क्यों पूजते औरमुहूर्त्ता-दिकों के भ्रमों से नष्ट क्यों होते ऐसे वे विचार कर्ते ही रहे उसकी सेना दूसरी मंजल पर पहुंची तब राजा लोगों ने पण्डितों से कहा कि अब तो जल्दी मुहूर्त्त देखो तब पण्डितो ने कहा कि आज मुहूर्त्त अच्छा नहीं है जो यात्रा करोगे तो तुमारा पराजय ही हो जायगा तब वे ब्राह्मणों से डरके बैठे रहे तब महमूद गाजनवी धीरे २ पांच छः कोश के ऊपर आके ठहरा और दूतों से सब खबर मंगवाई कि वे क्या कर्ते हैं दूतों ने कहा कि आपस में मुहूर्त्त विचार कर्ते हैं महमूद

गज़नवी के पास ३० हज़ार सेना थी अधिक नहीं और उनके पास दो. तीन लाख फौज थी फिर उसके दूसरे दिन प्रातःकाल राजा पण्डित पुजारी मिल के मुहूर्त्त विचारने लगे सो सबपण्डितोंने कहाकि आज चन्द्रमा अच्छा नहीं और भी ग्रह क्रूर हैं पुजारी लोग और पण्डित मूर्त्तिके आगे जाके गिर पड़े और अत्यन्त रोदन किया हे महाराज इस दुष्ट को खालेओ और अपने सेवकों का सहाय करो परन्तु वह लोहा क्या कर सक्ता है और सब से कहने लगे कि आप लोग कुछ चिन्ता मत करो महादेव उस दुष्ट को ऐसे ही मार डालेंगे वा वह महादेव के भय से वहां ही से भाग जायगा उसका क्या सामर्थ्य है कि साक्षात् महादेव के पास आसके और सन्मुख दृष्टि कर सके ऐसे सब परस्पर बक रहे थे फिर कुछ लड़ाई भई और मुसल्मान भीड़ के कि विजय होगा या पराजय उस समय में और पुस्तक खोल २ के बहुत से मन्त्रों का जप और पाठ कर्ते थे और कहते थे कि अब देवता और मन्त्र हमारा पाठ सिद्ध होता है सो वह वहां ही अन्धा हो जायगा सो वही मण्डली की मण्डली जप पाठ और पूजा कर रही थी और मूर्त्ति के साम्हने औंधे गिरके पुकारते थे एक सभा लग रही थी राजा और पण्डित विचारते थे कि मुहूर्त्त को उस समय में उसके निकट एक पर्वत था और महमूद गज़नवी ने एक तोप लगाई और सभा के बीच में गोला मारा उस समय कोई दांत धावन करता था कोई सोता था और कोई स्नान करता था इत्यादिक व्यवहारोंसे गाफिल

थे सो उस गोले से सब पंडित लोग पोथी पत्रा छोड़ के भागे और राजा लोग भी भाग उठे तथा सेना भी अपने २ स्थानों से भाग उठी और वह महमूद गजनवी सेना सहित धावा करके उस स्थान पर झट पहुंचा उसको देख के सब भाग उठे भागे भए पंडित पुजारी सिपाही तथा राजाओं को उसने पकड़ लिया और बांध लिया और बहुतसी मार पड़ी उनके ऊपर तथा मार भी डाला किसी को और बहुत भाग गए क्यों कि उन पंडितों के उपदेश से सोला पहिर के बैठे थे और कथा सुनी थी कि मुसल्मानों के स्पर्श नहीं करना और उनके दर्शन से धर्म जाता है ऐसी मिथ्या बात सुनके भाग उठे फिर मन्दिर के चारों ओर महमूद गजनवी की सेना हो गई और आप मन्दिर के पास पहुंचा तब मंदिर के महन्त और पुजारी हाथ जोड़ के खड़े भए उनसे पुजारियों ने कहा कि आप जितना चाहें उतना धन ले लिजिए परन्तु मन्दिर और मूर्त्ति को न तोड़िए क्योंकि इससे हम लोगों की बड़ी आजीविका है ऐसा सुनके महमूद गजनवी बोला कि हम बुत वेचने वाले नहीं किन्तु उनको तोड़ने वाले हैं तब तो वे डरे और कहा कि एक करोड़ रुपैया आप ले लिजिए परन्तु इस- को मत तोड़िये ऐसे कहते सुनते तीन करोड़ तक कहा परन्तु महमूद गजनवी ने नहीं माना और उनकी मुसक चढ़ा लिया फिर उनको लेके मन्दिरमें गया और उनसे पूछा कि खजाना कहां है सो कुछ तो उसने बतला दिया फिर भी उसको लोभ आया कि और भी कुछ होगा फिर उनकोमारा पीटा तब उनने

सब खजाना बतला दिया फिर मन्दिरमें आके सब लीला देखी फिर महन्त और पुजारियों से कहा कि तुमने दुनिया को ऐसी धूर्त्तता करके ठग लिया क्योंकि लोहे की तो मूर्त्ति बनाई है इसके चारों ओर चुम्बक पाषाण रखनेसे आकाश में अधर खड़ा है इसका नाम रख दिया है महादेव यह तुमने बड़ी धूर्त्तता किया है फिर उस मन्दिर का शिखर उनने तोड़वा दिया जब वह चुम्बक पाषाण अलग होगया तब मूर्त्ति जमीन में चुम्बक पाषाणमें लग गई फिर सब भीतें तोड़वा डाली सब चुम्बक के निकलने से मूर्त्ति जमीन में गिर पड़ी फिर उस मूर्त्ति को महमूदगजनवीने अपने हाथ से लोहे के घनको पकड़ के मूर्त्ति के पेट में मारा उस्से मूर्त्ति फट गई उस्से बहुत जवाहिरात निकला क्यों कि हीरा आदिक अच्छे २ रत्न वे पाते थे तब मूर्त्ति ही में रख देते थे फिर उन महंत और पुजारियों को खूब नङ्ग किया और फुसलाया भी फिर उनने भय से सब बतला दिया उन से कहा कि जो तुम सच २ बतला देओगे तो तुम को हम छोड़ देंगे तब उनने सोना चांदी के पात्रों को भी बतला दिए जो कुछ था और उसने सब ले लिया सो अठारह करोड़ का माल उस मन्दिर से उन ने पाया फिर बहुत सी गाड़ी ऊंट और मजूर उसके पास थें और भी वहां से पकड़ लिए उन के ऊपर सब माल को लाद के अपने देश को ओर चला सो थोड़े से थोड़े पण्डित महंत और पुजारी तथा क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण और शूद्र तथा स्त्री बालक दश हजार तक पकड़के संग ले लिए थें

उनका यज्ञोपवीत तोड़ डाला मुख में थूक दिया और थोड़े २ सूखे चने नित्य खानेको देताथा और जाजरूर सफा करवावै पिसवावै घास छिलवावै और घोड़ोंकी लीद उठवावै और मुसलमानों के जूठे बरतन मजवावै और सब प्रकार की नीच सेवा उन से ले ऐसे कराता २ जब मक्का के पास पहुंचा तब अन्य मुसल्मानों ने कहा कि इन काफरों का यहां रखना उचित नहीं फिर उन को बुरी दशा से मार डाला क्यों कि उन के कुरान्में लिखा है कि काफरों को लूट ले उन की स्त्री छीनलें झूठ फरेब से उन का सब माल ले २ और उन को मार डालै तो भी कुछ दोष नहीं किन्तु उस मुसल्मान को बिहिस्त अर्थात उस को स्वर्गवास मिलताहै वह खुदा के घरमें बड़ा मान्य होताहै फिर काफर वह कहाता है जो कि मुहम्मद के कलमा को नपढ़ै और कुरान के ऊपर विश्वास न ले आवै उसको बिगाड़ने और मारने में कुछ दोष नहीं ऐसा मुसल्मानों के मत में लिखा है इस्से उसको अन्याय करने में कुछ भय नहीं होता और जो कुछ पाप होता है सो तोबा शब्द से छूट जाता है इस्से वे पाप करने में भय क्यों करेंगे ऐसे ही बारह दफै वह आया है और दो तीन बार मथुरा की भी दुर्दशा ऐसी किई थी और जहां २ वह गया था वहां २ ऐसी ही उस देश की दुर्दशा किई थी और डांकू की नांई वह आता था मार के जो कुछ पाता था सो अपने देशमें ले जाता था उस दिन से मुसलमान लोग दरिद्र से धनाढ्य हो गये हैं सो आर्यावर्त प्रताप से आज तक भी धन चला आता है और आर्यावर्त देश अपनेहीं

दोषों से नष्ट होता जाता है सो हमको बड़ा अफशोच है कि ऐसा जो देश और इस प्रकारका धन जिस देश में है सो देश बाल्यावस्था में बिवाह विद्या का त्याग मूर्त्ति पूजनादिक पाखण्डों की प्रवृत्ति नाना प्रकार के मिथ्या मजहबोंका प्रचार विषयासक्ति और वेद विद्या का लोप जब तक ए दोष रहेंगे तब तक आर्य्यावर्त्त देशवालों की अधिक अधिक दुर्दशा ही होगी और जो सत्य विद्याभ्यास तथा सुनियम, धर्म और एक परमेश्वर की उपासना इत्यादिक गुणों को ग्रहण करैं तो सब दुःख नष्ट हो जांय और अत्यन्त आनन्द में रहैं फिर चार ब्राह्मणोंने बिचार किया कि कोई क्षत्रिय राजा इस देशमें अच्छा नहीं है इस का कुछ उपाय करना चाहिए वे ब्राह्मण चारों अच्छे थे क्यों कि सब मनुष्योंके ऊपर कृपा करके अच्छी बात विचारी यह अच्छे पुरुषों का काम है नीच का नहीं फिर उनने क्षत्रियों के बालकों में से चार अच्छे बालक छांट लिए और उन क्षत्रियों से कहाकि तुम लोग खाने पीने का प्रबन्ध बालकों का रखना उनने स्वीकार किया और सेवक भी साथ रख दिए वे सब आबूराज पर्वत के ऊपर जाके रहे और उन बालकोंको अक्षराभ्यास और श्रेष्ठ व्यवहारों की शिक्षा करने लगे फिर उन का यथाबिधि संस्कार भी उनने किया सन्ध्योपासन और अग्निहोत्रादिक वेदोक्त कर्मों की शिक्षा उनने किया फिर व्याकरण छः दर्शन काव्यालङ्कार सूत्र और सनातन काश यथावत् पदार्थ विद्या उन को पढ़ाई फिर वैद्यकशास्त्र तथा गान बिद्या, शिल्प बिद्या, और धनुर्बिद्या अर्थात् युद्ध

बिद्या, भी उनको अच्छी प्रकारसे पढ़ाई फिर राजधर्म जैसा कि प्रजा से बर्तमान करना और न्याय करना दुष्टों को दण्ड देना श्रेष्ठोंका पालन करना यह भी सब पढ़ाया। ऐसे पचीच-वा २६ बरस की उमर उनकी भई और उन पण्डितोंके स्त्रियों ने ऐसे ही चार कन्या रूप गुण सम्पन्न उनको अपने पास रखके व्याकरण, धर्मशास्त्र, बैद्यक, गान बिद्या, तथा नाना प्रकार के शिल्प कर्म उनको पढ़ाये और व्यवहारकी शिक्षा भी किया तथा युद्ध बिद्या की शिक्षा गर्भ में बालकोंका पालन और पति सेवाका उपदेश भी यथावत् किया फिर उन पुरुषों को परस्पर चारों का युद्ध करना और कराने का यथावत् अभ्यास कराया। ऐसे चालीस २ बर्ष के वे पुरुष भये बीस २ बर्ष की वे कन्या भई तब उनकी प्रसन्नता और गुण परीक्षासे एक से एक का बिवाह कराया। जब तक बिबाह नहीं भया था तब तक उन पुरुषों की और कन्याओं की यथावत् रक्षा किई गई थी इससे उनको बिद्या बल, बुद्धि, तथा पराक्रमादिक गुण भी उनके शरीर में यथावत् भए थे फिर उनसे ब्राह्मणों ने कहा कि तुम लोग हमारी आज्ञा करो तब उन सबों ने कहा कि जो आपकी आज्ञा होगी सोई हम करेंगे तब उनने उनसे कहा कि हमने तुम्हारेऊपर परीश्रम किया है सो केवल जगत् के उपकार के हेतु किया है सो आप लोग देखो कि आर्य्यावर्त्त में गदर मच रहा है सो मुस-लमान लोग इस देश में आके बड़ा दुर्दशा करते हैं और धना-दिक लूट के ले जाते हैं सो इस देश की नित्य दुर्दशा

होता जाता है सो आप लोग यथावत् राज धर्म से पालन करो और दुष्टों को यथावत् दण्ड देओ परन्तु एक उपदेश सदा हृदय में रखना कि जब तक वीर्य की रक्षा और जितेन्द्रिय रहोगे तब तक तुमारा सब कार्य सिद्ध होताजायगा और हमको तुम्हारा बिवाह अब जो करायाहै सो केवल परम्पर रक्षा के हेतु किया है कि तुम और तुमारी स्त्रियां संगर रहोगे तो बिगड़ोगे नहीं और केवल सन्तानोत्पत्ति मात्र बिवाह का प्रयोजन जानना और मन से भी पर पुरुष वा पर स्त्री का चिन्तन भी नहीं करना और बिद्या तथा परमेश्वर की उपासना और सत्य धर्ममें सदा स्थित रहना जब तक तुमारा राज्यन जमें तब तक स्त्री पुरुष दोनों ब्रह्मचर्याश्रम में रहो क्यों कि जो कामासक्त होगे तो बलादिक तुम्हारे शरीर से न्यून हो जायगे तो युद्धा- दिकों में उत्साह भी न्यून हो जायगा और हम भी एक २ के साथ एक २ रहेंगे सो हम और आप लोग चलें और चल के यथावत् राज्यका प्रबन्ध करें फिर वे वहां से चले वे चार इन नामों से प्रख्यात थे चौहान पवांर सोलंकी इत्यादिक उनने दिल्ली आदिक में राज्य किया था कुछ २ प्रबन्ध भी भया था जब राज्य करने लगे कुछ काल के पीछे सहाबुद्दीन गोरी एक मुसल्मान था सो भी उसी प्रकार इस देशमें आया था कनोज आदिक में उस समय कनोज का बड़ा भारी राज था सो इस के भय के मारे अपने हीं जाके उनको मिला और युद्ध कुछभी नहीं किया फिर अन्यत्र वह युद्ध जहां तहां किया सो उस का बिजय भया और आर्यावर्त वालोंका पराजय भया फिर दिल्ली

घालोंसे कोई वक्त उसका युद्ध भया उस युद्धमें पृथिराज मारा गया और उसने अपना सेनाध्यक्ष दिल्ली में रक्षा के हेतु रख दिया उसका नाम कुतुबुद्दीन था वह जब वहां रहा तब कुछ दिनके पीछे उन राजाओं को निकालके आप राजा भया उस दिनसे मुसल्मान लोग यहां राज्य करने लगे और सबने कुछ२ जुलुम किया परन्तु उनके बीच में से अकबर बादशाह अच्छा भया और न्याय भी संसार में होने लगा सो अपनी बहादुरी से और बुद्धि से सब गदर मिटा दिया उस समय राजा और और प्रजा सब सुखी थे परन्तु आर्यावर्त्त के राजा और धनाढ्य लोग विक्रमादित्य के पीछे सब विषय सुख में फस रहेथे उससे उनके शरीरमें बल, बुद्धि, पराक्रम और शूरवीरता प्रायः नष्ट हो गई थीं क्योंकि सदा स्त्रियों का संग गाना बजाना, नृत्य देखना, सोना अच्छे कपड़े और आभूषण को धारण करना नाना प्रकार के अतर और अञ्जन नेत्र में लगाना इससे उनके शरीर बड़े कोमल हो गए थे कि थोड़े से ताप वा शीत अथवा वायु का सहन नहीं हो सका था फिर वे युद्ध क्या कर सकेंगे क्योंकि जो नित्य स्त्रियों के संग करेंगे और विषय भोग उनका भी शरीर प्रायः स्त्रियों की नाई हो जाता है वेकभी युद्ध नहीं कर सकते क्योंकि जिनके शरीर दृढ़ रोग रहित बल; बुद्धि और पराक्रम तथा वीर्य की रक्षा और विषय भोग में नही फसना नाना प्रकार की विद्या का पढ़ना इत्यादिक के होने से सब कार्य सिद्ध हो सकतेहैं अन्यथा नही फिरदिल्ली में औरंगजेब

एक बादशाह भया था उसने मथुरा, काशी अयोध्या और अन्य स्थान में भी जा २ के मन्दिर और मूर्त्तियों को तोड़ डाला और जहां २ बड़े २ मन्दिर थे उस २ स्थान पर अपनी मसजिद् बना दिया जब वह काशी में मन्दिर तोड़ने को आया तब विश्वनाथ कुएमें गिर पड़े और माधव एक ब्राह्मण के घरमें भाग गये ऐसा बहुत मनुष्य कहतेहैं परन्तु हमको यह बात झूठ मालूम पड़ती है क्यों कि वह पाषाण वा धातु जड़ पदार्थ कैसे भाग सक्ता है कभी नहीं सो ऐसा भया कि जब औरंगज़ेब आया तब पुजारियों ने भय से मूर्ति उठा के और कुये में डाल दिया और माधव की मूर्ति उठा के दूसरे के घर में छिपा दिया कि वह न तोड़ सके सो आज तक उस कुंए का बड़ा दुर्गन्ध जल उसको पीते हैं और उसी ब्राह्मण के घर में माधव की मूर्त्ति की आज तक पूजा करते हैं देखना चाहिये कि पहिले लोसोना, चांदी की मूर्त्तियां बनाते थे तथा हीरा और माणिक की आंख बनाते थे सो मुसलमानों के भय से और दरिद्रतासे पाषाण, मिट्टी, पीतल, लोहा, और काष्ठादिकों की मूर्त्तियां बनाते हैं सो अब तक भी इन सत्यानाश करने वाले कर्मको नहीं छोड़ देते क्यों कि छोड़ें तो तब जो इन की अच्छी दशा आवै इन की तो इन कर्मों से दुर्दशा ही होने वाली है जब तक कि इनको नहीं छोड़ते और महाभारत युद्धके पहिले आर्यावर्त्त देशमें अच्छे २ राजा होते थे उन की बुद्धि विद्या, बल पराक्रम तथा धर्म निष्ठा और शूरवीरादिक गुण अच्छेर थे इस्से उनका राज्य यथावत् होता था सो इक्ष्वाकु,

सगर,रघु, दिलीपआदिक चक्रवर्ती हुयेथे और किसी प्रकारका पाखण्ड उनमें नहीं था सदा विद्याकी उन्नति और अच्छे २ कर्म आप करते थे तथा प्रजा से कराते थे और कभी उन का पराजय नहीं होता था तथा अधर्म से कभी नहीं युद्ध कर्ते थे और युद्ध से निवृत्त नहीं होते थे उस समयसे लेके जैन राज्य के पहिले तक इसी देश के राजा होते थे अन्य देशके नहीं सो जैनों ने और मुसलमानों ने इस देश को बहुत बिगाड़ा है सो आज तक बिगड़ता ही जाता है सो आज काल अंगरेज के राज्य होने से उन राजाओं के राज्य से सुख भया है क्योंकि अंगरेज लोग मत मतान्तर की बात में हाथ नहीं डालते और जो पुस्तक अच्छा पाते हैं उसको अच्छी प्रकार रक्षा कर्ते हैं और जिस पुस्तक के सौ रुपए लगते थे उस पुस्तक का छापा होने से पांच रुपयों पर मिलता है परन्तु अङ्गरेजों में भी एक काम अच्छा नहीं हुआ जो कि चित्रकूट परवत महराज अमृत राय जी का पुस्तकालय को जला दिया उसमें करोड़हां रुपैए के लाखहां अच्छे २ पुस्तक नष्ट कर दिये जो आर्यावर्त्त बासी लोग इस समय सुधर जांय तो सुधर सक्ते हैं और जो पाखण्ड ही में रहेंगे तो अधिक २ ही नाश होगा इनका इसमें कुछ सन्देह नहीं क्योंकि बड़े २ आर्यावर्त देशके राजा और धनाढ्य लोग ब्रह्मचर्याश्रम बिद्या का प्रचार धर्म से सब व्यवहारों का करना और वेश्या तथा परस्त्री गमनादिकों का त्याग करैं तो देश के सुख की उन्नति होसकतीहै परन्तु जब तक पाषाणादिक मूर्त्ति पूजन वैरागी, पुरोहित भट्टाचार्य और कथा कहने

वालों के जालों से छूटें तब उनका अच्छा हो सकता है अन्यथा नहीं प्रश्न मूर्त्ति पूजनादिक सनातनसे चले आये हैं उनका खण्डन क्यों करते हो उत्तर यह मूर्त्ति पूजन सनातन से नहीं किन्तु जैनों के राज्य ही से आर्य्यावर्त्त में चला है जैनों ने परशनाथ, महावीर, जैनेन्द्र, ऋषभदेव, गोतम० कपिल आदिक मूर्त्तियों के नाम रक्खे थें उनके बहुत २ चेले भये थें और उनमें उनकी अत्यन्त प्रीति भी थी इससे उन चेलों ने अपने गुरुओं की मूर्त्ति बना के पूजने लगे मन्दिर बना के फिर जब उनको शंकराचार्यने पराजयकर दिया इसके पीछे उक्त प्रकार से ब्राह्मणों ने मूर्त्तियाँ रचीं और उन का नाम महादेव आदिक रख दिए उन मूर्त्तियों से कुछ विलक्षण बनाने लगे और पुजारी लोग जैन तथा मुसलमानों के मन्दिरों की निन्दा करने लगे। नवदेद्यावनीभाषांप्राणैःकण्ठगतैरपि। हस्तिनाताड्यमानोपि नगच्छेज्जैनमन्दिरम् ॥ १ ॥ इत्यादिक श्लोक बनाए हैं कि मुसलमानों की भाषा बोलनी और सुननी भी नहीं चाहिए और मत्तहस्ती अर्थात् पागलपाड़े मारनेको दौड़े सो जैनके मन्दिरमें जानेसे बचसका भी होय तो भी जैन के मन्दिर में न जांय किन्तु हाथी के सम्मुख मर जाना उस्से अच्छा ऐसी २ निन्दा के श्लोक बनाए हैं सो पुजारी पण्डित और सम्प्रदायी लोगों ने चाहा कि इनके खण्डन के बिना हमारी आजीविका न बनेगी यह केवल उन का मिथ्याचार है कि मुसल्मान की भाषा पढ़ने में अथवा कोई देश की भाषा पढ़नेमें कुछ दोष नहीं होता किन्तु कुछ गुण ही होता है

अप शब्द ज्ञान पूर्वक शब्द ज्ञानेधर्मः। यह व्याकरण महाभाष्य का बचन है इसका यह अभिप्राय है कि अप शब्द ज्ञान अवश्य करना चाहिए अर्थात् सब देश देशान्तरकी भाषाको पढ़ना चाहिए क्योंकि उनके पढ़नेसे बहुत व्यवहारोंका उपकार होता है और संस्कृत शब्दके ज्ञानका भी उनको यथावत् बोध होता है जितनी देशों की भाषा जानैं उतना ही पुरुष को अधिक ज्ञान होता है क्यों कि संस्कृत के शब्द बिगड़ के देश भाषा सब होती है इससे इनके ज्ञानों से परस्पर संस्कृत और भाषा के ज्ञान में उपकार ही होता है इसी हेतु महाभाष्य में लिखा कि अप शब्द ज्ञानपूर्वक शब्द ज्ञान में धर्म होता है अन्यथा नहीं क्यों कि जिस पदार्थ का संस्कृत शब्द जानेगा और उसके भाषा शब्द को न जानेगा तो उसके यथावत् पदार्थ का बोध और व्यवहार भी नहीं चल सकेगा तथा महाभारतमें लिखाहै कि युधिष्ठिर और विदुरादिक अरबी आदिक देश भाषाको जानतेथे सोई जब युधिष्ठिरादिक लाक्षागृह की ओर चले तब विदुर जीने युधिष्ठिरजीको अरबी भाषामें समझाया और युधिष्ठिरजी ने अरबी भाषासे प्रत्युत्तर दिया यथावत् उसको समझ लिया तथा राजसूय और अश्वमेध यज्ञ में देशदेशान्तर तथा द्वीपद्वीपान्तर के राजा और प्रजास्थ आए थे उनका परस्पर देशभाषाओं में व्यवहार होता था तथा द्वीपद्वीपान्तर में यहां के लोग जाते थे और वे इस देश में आते थे फिर जो देशदेशान्तर की भाषा न जानते तो उनका व्यवहार सिद्ध कैसे होता इस्से क्या आया कि देशदेशा-

न्तर की भाषा के पढ़नें और जानने में कुछ दोष नहीं किन्तु बड़ा उपकार ही होता है और जितने पाषाण मूर्त्तिके मन्दिर हैं वे सब जैनों हीं के हैं सो किसी मन्दिर में किसी को जाना उचित नहीं क्यों कि सब में एक ही लीला है जैसा जैन मन्दिरों में पाषाणादिक मूर्त्तियां हैं वैसी आर्यावर्त्त वासिओं क मन्दिरों में भी जड़ मूर्त्तियां हैं कुछ नाम बिलक्षण २ इन लोगों ने रख लिए हैं और कुछ बिशेष नहीं केवल पक्षपात ही से ऐसा कहते हैं कि जैन मन्दिरों में न जाना और अपनें मन्दिरों में जाना यह सब लोगों ने अपना २ मतलब सिद्ध बना लिया है आजीविका के हेतु प्रश्न वेद शास्त्रों में मूर्त्ति पूजन लिखा है और वेदमान्त्रोंसे प्राणप्रतिष्ठा होती है उसमें देवशक्ति भी आजाती है फिर आप खण्डन क्यों करते हैं उत्तर वेदशास्त्र में मूर्त्ति पूजन कहीं नही लिखा और न प्राण प्रतिष्ठा और न कुछ उसमें शक्ति आती है प्रश्न सहस्रशीर्षा पुरुषः उद्बुध्यस्वाग्ने प्राणदाअपानदा ॥ इत्यादिक मन्त्रों से षोड़शोपचार पूजा और प्राणप्रतिष्ठा भी होतीहै तथा प्रतिष्ठा मयुखग्रन्थ और तन्त्र ग्रथों में आत्मेहागच्छतु सुखंचिरंन्तिष्ठतुस्वाहा, ॥ प्राणाइहागच्छन्तुसुखंचिरन्तिष्ठन्तु स्वाहा ॥ इन्द्रियाणिइहागच्छन्तु सुखंचिरन्तिष्ठन्तुस्वाहा ॥ अन्तः-करणमिहागच्छतुसुखंचिरन्तिष्ठन्तुस्वाहा ॥ इत्यादिक लिखे हैं फिर कैसे खण्डन हो सक्ता है उत्तर इन मन्त्रों के अर्थ नहीं जानने से आप लोगों को भ्रम होता क्यों कि पुरुष नाम पूर्ण ईश्वर का है सहस्रशीर्षा इत्यादिक पुरुष के

विशेषण हैं सो पुरुष के निराकार होनेसे शिरादिक अवयव कभी नहीं हो सके और जो साकार बनता तो व्यापक नहीं बन सका। तथाहिपूर्णत्वात्पुरुषः। इत्यादिक निरुक्त में अर्थ किया है सो उसका सहस्रशीर्षा इत्यादिक विशेषण हैं उसका अर्थ इस प्रकार का होता है। सहस्राणिशिरांसि-सहस्राणियक्षीणितथासहस्राणिपादाः असंख्याताः यस्मिन् पूर्णपुरुषेसःसहस्रशीर्षासहस्राक्षः सहस्रपात्पुरुषः ॥ जितने शिर, जितनी आंख, और जितने पग, असंख्यात वे सब पूर्ण जो परमेश्वर उसी में वास करते हैं क्यों कि सब जगत् का अधिकरण परमेश्वर ही है और बहुव्रीहि समास ही अन्य पदार्थ के होने से होता है तथा सहस्रपात् शब्द के होने से बहुव्रीहि निश्चित होता है व्याकरण की रीति से सोई अर्थ मन्त्र के उत्तरार्द्धमें स्पष्टहै सभूमिंॅ सर्वतःस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् । पुरुषएवेदॅं सर्वंॅ वेदाहमेतम्पुरुषम् ॥ इत्यादिक उत्तर मन्त्रों से यही अर्थ निश्चित होता है और सब जगत् की उत्पत्ति भी पुरुष से लिखी है बिना परमेश्वर के किसीमें नहीं घट सकती इस्से जो कोई कहे कि इन मन्त्रों से षोड़शोपचार पूजा होती है उस की बात मिथ्या जाननी और प्राण प्रतिष्ठा शब्द का यह अर्थ है कि प्राण की स्थिति और स्थापन का होना जो मूर्त्ति में प्राण आते तो मूर्त्ति चेतन ही हो जाती सो जैसी पहिले जड़ थी वैसी ही सदा रहती है क्यों कि चलना, फिरना, खाना,पीना, बैठना, देखना और सुनना इत्यादिक व्यवहार वह मूर्त्ति नहीं करती इस्से जो कोई कहे कि प्राण

प्रतिष्ठा होती है यह बात उसको मिथ्या जाननी और मूर्त्ति ठस होती है उसमें प्राणके जाने आनेका छिद्र अवकाशही नहीं फिर प्राण उस में कैसे घुस सकेगा और जो कहें कि हम प्राण प्रतिष्ठा कर्त्ते हैं उन से कहना चाहिए कि आप लोग मुरदे के शरीर में क्यों नहीं प्राण प्रतिष्ठा कर्त्ते हैं किसी राजा, बाबू और सब जगत् के मनुष्यों को मुरदे में प्राण प्रतिष्ठा कर के जिला दिया करो तो तुम लोगों को बहुत धन मिलेगा और बड़ी प्रतिष्ठा होगी फिर क्यों नहीं ऐसी बात कर्त्ते हो जो वे कहैं कि जैसा परमेश्वर ने नियम कर दिया है वैसा ही मरने जीने का होता है उसको मरे पीछे कोई नहीं जिला सक्ता तो उनसे हम लोग पूछते हैं कि जिन पदार्थोंको परमेश्वर ने प्राण और चेतनतारहित जड़ बनाए हैं उनको तुम चेतन और प्राण सहित कैसे बना सकोगे कभी नहीं और जो कहैं कि देव और सिद्ध पुरुष मृतक को जिला देते हैं उन से पूछा जाता है कि वे देव और सिद्ध क्यों मरजाते हैं इससे प्राण प्रतिष्ठा की सब बात झूठी है प्राणदा अपानदा इनका अर्थ पूर्वार्द्ध में कर दिया है वहीं देख लेना और उद्बुध्यस्वाग्ने इसका भी अभिप्राय वहीं देख लेना । आत्मेहागच्छन्तुचिरंसुखंतिष्ठन्तुस्वाहा । इत्यादि संस्कृत मिथ्या ही लोगों ने रच लिया कोई सत्य शास्त्र में नहीं है देखना चाहिए कि । शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तुपी-तयेशंयोरभिस्रवन्तुनः ॥ १ ॥ अग्निर्मूर्द्धा० उद्बुध्यस्वाग्ने० इत्यादिक मन्त्रों में कहां शनैश्चर, मंगल और बुधादिक ग्रहों का नाम भी नहीं है परन्तु विद्याहीन होने से आजीविका के

लोभ से ब्राह्मणों ने जाल रच रक्खा है कि पग्रहको कांड़ी है सो किसीने ऐसा विचारा कि ग्रहों का मन्त्र पृथक् निकालना चाहिए सो मन्त्रों का अर्थ तो नहीं जानता किन्तु अटकल से उसने युक्ति रची कि शनैश्चर शब्द के आदि में तालव्य शकार है। और शन्नोदेवी इस मन्त्र के आदि में भी तालव्य शकार है इससे यही शनैश्चरका मन्त्र है तथा पृथिव्याश्रयम्। इससे परमेश्वरका ग्रहण होता है इस शब्दसे मङ्गलको लिया और उद्बु-ध्यस्वक्रिया से बुध को लिया देखना चाहिए कि शंहै सुख का नाम उद्बुध्यस्वबुधअवगमने धातुकी क्रिया है इससे बुधको लिया इत्यादिक भ्रम से ग्रहों को ग्रहण किया है सो यह कथा केवल लाल बुझक्कड़ की नाईं है जैसे कि किसी गांव में एक मूर्ख पुरुष रहता था उसका नाम लालबुझक्कड़ था कभी किसी राजा का हाथी उस गांव के पास से चला गया था और किसी ने देखा नहीं था फिर जब प्रातःकाल लोग उठ के बाहर चले तब खेत और मार्ग में हाथी के पगके चिन्ह देखके बड़े आश्चर्य भए और लालबुझक्कड़ को बुला के पूछा कि यह क्या है तब वह बड़ा रोने लगा फिर रो के हसा तब सबने उससे पूछा कि तुम रो के क्यों हसे तब उसने उनसे कहा कि जब मैं मर जाऊंगा तब ऐसी २ बातों का उत्तर कौन देगा इस हेतु मैं रोया और हसा इस हेतु कि इसका उत्तर बड़ा सुगम है तोभी तुमने नहीं जाना इस हेतु मैं हसा तब उससे पूछाकि इसका तो उत्तर दे तब वह बोलाकि लालबु-झक्कड़ बुझिया और न बूझा कोइ। पगमें चक्की बांधकेहिरणा

कूदा होइ ॥ हिरना अपने पगमें चक्कीके पाट बांधके कूदता २ चलागया है उसके पग के ए चिन्ह हैं तब तो वे सुन के बड़े प्रसन्न भए और सबनेकहा कि लालबुझक्कड़ बड़े पण्डित और बुद्धिमान् हैं वैसे ही पाषाण मूर्त्तिके पूजन विषय और वेद मन्त्रों के विषय में इन पण्डित लोगों ने मिथ्या कोलाहल कर रक्खा है इस्से वेद की निन्दा और अप्रतिष्ठा कर रक्खी है वेदों में ऐसी २ झूठ बात होती तो वेद ही सच्चे न हो सक्ते इस्से यही निश्चय करना कि अपने २ मतलब के हेतु मिथ्या २ कल्पना लोगों ने कर दिया है और वेद में सच्च बात होहै इन बातों का लेश भी नहीं है प्रश्न वेद अनन्त हैं क्यों कि यजुर्वेद की शाखा १०१ साम वेद की १००० ऋग्वेद की २१ और अथर्व वेद की ६ शाखा हैं सो बहुत शाखा गुप्त होगईहैं उनमें पाषाण पूजनादिक लिखा होगा तुम क्या जानते हो । अनन्ता वैवेदाः यह ब्राह्मण की श्रुति है इसका यह अभिप्रायहै कि वेद अनन्त हैं अर्थात् अनन्त शाखा हैं उत्तर शाखा जो होती है सो स्वजातीय होती हैं क्यों कि जिस वृक्ष की शाखा होती है उस वृक्ष के तुल्य पत्र, पुष्प, फल, मूल और स्वाद तथा रूप ऐसी ही जो २ शाखा प्रसिद्ध हैं उन २ शाखाओंकी लुप्त शाखा भी अवश्य होगी कि जैसा इनमें सत्य २ अर्थ प्रतिपादित हैं वैसा उनमें भी होगा इस्से जाना जाता है कि इन प्रसिद्ध शाखाओं में मूर्त्ति पूजन का लेश नहीं है तो लुप्त शाखाओं में भी नहीं होगा ऐसा जो कोई कहे कि आपने क्या वेशाखा देखी हैं फिर आप लोग क्यों कहते हो

कि उन लुप्त शाखाओं में लिखा होगा और आप लोग अनुमान भी नहीं कर सकते क्यों कि उन शाखाओं में थोड़ा सा भी प्रतिपादन होता तो उन शाखाओं मे भी अनुमान हो सकता अन्यथा नहीं और जो हठ से मिथ्या कल्पना करते हो तो हम भी कर सकते हैं कि उन शाखाओंमें चोरी, मिथ्याभाषण, विश्वासघातक, कन्या माता भगिनी, इन से समागम करना वेश्यागमन पर स्त्री गमन करना और वर्णाश्रम व्यवस्था न होगी इत्यादिक अनुमान मिथ्या कर सकते हैं और फिर तुमने भी वे शाखा देखी नहीं वा कोई नहीं देख सकता फिर कैसे निश्चयहोगा कभी न होगा क्योंकि कभीभ्रमकी निवृत्ति न होगी न जाने उन शाखाओं में ब्राह्मण का नाम चांडाल होय और चांडाल का नाम ब्राह्मण होय इससे ऐसा आप लोग मिथ्या अनुमान न करें और इन शाखाओं का मूल भी तो कोई होगा और जो मूल न होगा तो शाखा कैसी इससे जो वेद पुस्तक हैं वेई सब शाखाओं के मूल हैं औरशाखा व्याख्यानों की नांई ब्रह्मादिक ऋषि मुनि के किए हैं। जैसे मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य: । ऐसा पाठ शुक्ल यजुर्वेद में हैं और तैत्तिरीय शाखा में। मनोज्योतिर्जुषतामाज्यस्य । ऐसा पाठ है । जूति जोमन का विशेषणथासोज्योतिः । शब्द से स्पष्टार्थ होगया सो सर्वत्र विशेषण का यथायोग्य भेद है जो विशेष्य का भेद होगा तो परस्पर विरोध के होने से मिथ्यात्व आजायगा इससे विशेष्य का भेद कभी नहीं होता

विशेष्य भेद से पूर्वा पर विरोध हो जायगा फिर किस को सत्य मानैं किसको मिथ्या इस्से वेदों में ऐसा दोष कहीं नहीं इस्से ऐसा भ्रम कभी नहीं करना चाहिये और जो वेद अनन्त होंगे तो कोई पुरुष सबको पढ़ना वा देख भी न सकेगा और पूर्ण विद्वान भी कोई न हो सकेगा फिर भी भ्रम ही रहेगा भ्रम के रहने से किसी पदार्थ का दृढ़ निश्चय न होगा और उत्साह भङ्ग भी हो जायगा कि वेदका अन्त तो नहीं है हम लोग कैसे पढ़ सकेंगे इस्से सब लोगों को भ्रम ही बना रहेगा इस्से वेद शब्द का यह अर्थ है जिस्से जाना जाय पदार्थ उसका नाम वेद है और वेत्तिसोयंवेदः । जो जानने वाला है उसका नाम भी वेद है सो अनन्त नाम असंख्यात जीव हैं वे ही जानने वालेके होने से उसका नाम वेद है और विदन्तियै-स्तेवेदाः । जिनसे पदार्थ जाना जाय उनका नाम वेद है सो सर्व-शक्तिमत्व और सब जगत् का रचनादिक परमेश्वर के अनन्त गुण हैं वे परमेश्वर के जानने वाले हैं इस्से उनका नाम वेद है इस्से अनन्ता वैवेदाः । ऐसा ब्राह्मण श्रुति में अभिप्राय ज्ञापन किया है प्रश्न पाषाणादिक मूर्त्ति पूजन वेदादिकों में नहीं है फिर कैसे यह परंपरा चली आई और इतनी बड़ी प्रवृत्ति भई आज तक किसी ने नहीं खण्डन किया जैसे कि आप खण्डन करते हैं उत्तर आप लोग सर्वज्ञ नहीं है वा त्रिकालदर्शी जो कि परंपरा का ठीक २ निश्चय करें देखना चाहिए कि सत्यनारा-यण शीघ्रबोध, कौमुद्यादिक नए २ स्तोत्रनवीन २ तीर्थ तथा मन्दिर आदिक होते ही आते हैं और इनको परंपरा मान लेते

हैं और वे अबके बने हैं सब और अपना पिता जैसा कर्म करता है वैसा ही उसका पुत्र परम्परा मान लेता है फिर कोई चोर्यादिक अन्याय में प्रवृत्त हो जाता है और कोई कुछ अन्याय से डरता भी है सो लोक की परम्परा आप लोग मानेंगे तो बहुत दोष आजायगे और कभी न हो सकेंगे क्यों कि किसी का पिता दरिद्र होवै और उसके कुल में पुत्रादिक धनाढ्य होते हैं फिर परम्परा से जो दरिद्रता उसको क्यों छोड़ते हैं किसी का पिता अन्धा होय उसका पुत्र आंख को क्यों नही निकाल डालता है और जिसका पिता मूर्ख होता है वा पण्डित उसका पुत्र मूर्ख वा पण्डित नियम से क्यों नही होता किसी का पिता चोरी करता होय और जहलखाने को जाय उस का पुत्र चोरी वा जहलखाने को क्यों नहीं जाय जिस दिन उसका पिता मरे उसी दिन अपने भी क्यों नहीं मर जाय प्रथम अङ्गरेजी इस देशमें पढ़ाई नहीं जाती थी अब क्यों पढ़ी जाती है रेल पर पहिले चढ़ना नहीं होता था और तार पर खबर नही आती जाती थी फिर रेल पर चढ़ते और तारपर खबर भेजते भेजाते क्यों हैं इत्यादिक बहुत दोष आते हैं ऐसा मानने में और परंपरा का निश्चय तो प्रत्यक्षादिक प्रमाण और वेद सत्य शास्त्रों ही से होता है अन्यथा कभी नहीं यह पाषाणादिक पूजन की मिथ्या प्रवृत्ति बड़ी भई है सो केवल विद्या, धर्म, विचार ब्रह्मचर्याश्रम, सत्सङ्ग और श्रेष्ठ राजाओं के नहीं होने से भई है क्यों कि सत्य विद्या जब मनु-

थों में नहीं होती तब अनेक भ्रमों में बुद्धि नष्ट होती है तब बहुत मूर्ख, अधर्मी, पाखण्डी तथा मतवालों के उपदेश लोक मानने लगते हैं फिर बड़े भ्रमजाल में पड़के वे धूर्त्त जैसा उपदेश करते हैं वैसा ही मान लेते हैं और लोगों की बुद्धि बिपरीत हो जाती है फिर बड़ा अन्धकार हो जाता है। उनको बुद्धि से कुछ नहीं सूझता गतानुगतिकालोकानलोकाःपारमार्थिकाः। बालुका पिंडदानेन गतंमेताम्रभाजनम् ॥ इस में यह दृष्टान्त है कि एक कोई पंडित ताम्बे का अर्घा ले के तर्पण और स्नान के हेतु गया उस घाटमें अन्य पुरुष भी बहुत जाते और आते थे उस पंडित को शौच की इच्छा भई तब ताम्बे का अर्घा बालू में गाड़ दिया और उसके ऊपर गीली बालूका पिण्ड धर के निशान के हेतु शौच को फिर चला गया अन्य स्नान करने वालोंने यहचरित्र देखा देखके पण्डित से तोकिसी ने नहीं पूछा किन्तु जैसापण्डितने पिण्ड बना केरक्खाथा वैसा पिण्डसैकड़ों आदमी ने बना के रखदिया उसके पास २ उन के हृदय में ऐसा विचार आया कि पण्डितने जो यह काम किया है सो पुण्य के वास्ते ही किया होगा इस हेतु हम भी ऐसा ही करैं तब तक पण्डित भी शौच हो के आया और उनने देखा कि बहुत पिंड वैसे धरे हैं और बहुत मनुष्य पिण्ड बना २ के रखते भी जाते थे सो पण्डित ने उनसे पूछा कि आप यह काम क्यों करते हैं तब उनने पंडित से कहा कि आप को देखके हम लोग भी करते हैं तब पंडितने पूछा कि इसके करने का क्या प्रयोजन है तब उनने कहा कि जो आप का प्रयोजन

होगा सो हमारा भी है पण्डितने बिचारा कि मेरा तो पात्र ही नष्ट होगया तब पण्डितने कहा कि अपना२ पिण्ड सब बिगार डारो नहीं तो तुम को बड़ा पाप होगा तब उनने पण्डित से कहा कि आप को भी पिण्ड बनाने से पाप भया होगा तब पण्डित ने कहा कि तुम अपना २ पिण्ड बिगाड़ डारो तब मैं भी अपना बिगाड़ डालूंगा तब तो सब अपने २ पिण्ड तोड़ डाले तब पण्डित का पिण्ड रह गया पंडितने जाके पिण्ड तोड़ा और नीचे से अर्घा निकाल लिया और उन से कहा कि मैंने इस हेतु निशान धरा था तुमने पूछा भी नहीं और पिण्डधरने लग गए तब उनने कहा कि आपका काम देख के हम भी करने लगे वैसे ही पाषाणादिक मूर्त्ति पूजन एक को देख के दूसरे भी करने लगे ऐसे भेड़ों के प्रवाह की नांई लोग गतानुगतिक होते हैं जैसे एक भेड़ आगे चले उसके पीछे सब भेड़ चलने लगती हैं और जैसे एक सियार वा एक कुत्ता बोलने वा भूकने लगे उसका शब्द सुन के अन्य सियार वा कुत्ते बहुत बोलने वा भूकने लगते हैं वैसी ही विद्याहीन मनुष्यों की अन्ध परम्परा चलती है उसमें बड़े २ आग्रह करके नष्ट होते चले जाते हैं और परमार्थ बिचार सत्य २ कोईनहीं कर्ता इस्से हमलोग भी मिथ्या व्यवहार का खण्डन कर्तेहैं पक्षपात छोड़के क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से और वेदादिक सत्यशास्त्रों से दृढ़ निश्चय करके जाना गया है कि मुक्ति के हेतु वा सब व्यवहार सुख के हेतु परमेश्वर ही की दृढ़ उपासना करनी योग्यहै पाषाणादिक

जड़ मूर्त्तियों की क्या नहीं प्रश्न आज तक बहुत पण्डित पहिले भए और बहुत पण्डित भी हैं फिर खंडन नहीं कोई करता और मूर्त्तियों का पूजन नहीं कर्ते हैं सो आप एक बड़े पण्डित आये जो खंडन कर्तेहैं सो आपका कहना कौन मानता है उत्तर प्रथम मैं आपसे पूछताहूं कि पण्डित कौन होताहै जो आप कहैं कि पञ्चाङ्ग, शीघ्रबोध, मुहूर्त्त चिन्तामणि, आदिक सारस्वत चन्द्रिका, कौमुद्यादिक, तर्कसंग्रह, मुक्तावल्यादिक भागवतादिक, पुराणमन्त्र, महोदध्यादिक, तंत्रग्रन्थ और तुलसीकृत रामायणादिक भाषा पढ़नेसे क्या पंडित होता है किन्तु अविवेकी ही बन जाता है क्योंकि सदसद्विवेककी बुद्धिः पण्डा पण्डा संजाताऽस्येति स पण्डितः॥ जो बुद्ध सदसद्विवेक करने वाली होय उसका नाम पण्डा है और पण्डा नाम विवेक युक्त बुद्धि जिसकी होय वही पण्डित होता है सो आप लोग विचार के देखें कि यथावत् धर्म और अधर्म तथा सत्य और असत्य का विवेक इन पंडितों कोहै वा नहीं जिनको आप पंडित कहते हो और जो मूर्ख हैं वे तो आज काल कोई २ अधर्म से डरते भी हैं किन्तु पण्डित लोग प्रायः नहीं डरते किन्तु कोई पण्डित सैकड़ों में एक अच्छा भी है परन्तु उस एक को वे धूर्त्त लोग बात ही चलने नहीं देते और वह सच्च जानता भी है तो मनही में सत्य बात रखताहै क्योंकि वह सत्य कहे तो सब मिल के उसकी दुर्दशा कर देते हैं इस भयका मारा वहभी मौन कर लेताहै परन्तु उन सत्य पण्डितों को मौन वा भय करना उचित नहीं क्योंकि मौन और भय के

रहने से देश का अकल्याण धर्मका नाश और अधर्मकी वृद्धि, और इनधूर्त्तों की बन पड़ेगी इससे कभी मौन वा भय सत्य करने वा कहने में नही करना चाहिये क्योंकि जोअच्छे पंडित और बुद्धिमान भय वा मौन करेंगे तो उस देश का नाश ही हो जायगा और वेद विद्यादिक नहीं पढ़ने से बहुतों को सत्य २ निश्चय भी नहीं है इस्से वे खण्डन नही कर्तेहैं लोक के भय के मारे कि हमारी आजीविका नष्ट हो जायगी जो हम खण्डन करेंगे तो हमारी निन्दा होगी और आजीविकाभी नष्ट होजायगी इस्से ऐसा कहना वा करना न चाहियें जिस्से कि संसार में विरोध हो जाय परन्तु मैं कहता हूं कि भय तो श्रेष्ठ पुरुषों को एक परमेश्वर और अधर्मके आचरण होने करना चाहिये और जो मैं खडन कर्ता हूं सो प्रत्यक्षादिक प्रमाण और वेदादिक सत्यशास्त्रों ही से कर्ताहूं सो आजतक किसी ने वेदोक्त प्रमाण न ठीक २ युक्ति नही दिया क्योंकि प्रमाण और युक्ति तो सत्य बात में हो सकती है असत्य में कभी नहीं और इसमें प्रमाण वा युक्ति कोई दे भीनहीं सकेगा इस्मेंकुछ सन्देह नहीं प्रश्न अनेक संन्यासी, उदासी बैरागी औरगोसाईं आदिक खण्डननहीं कर्ते हैं और पूजा कर्ते हैं उत्तर वे भी वैसी ही संसार की निन्दा और आजीविकासे डरते हैं इस्से वे खण्डननहीं करते वा पूजा नहीं छोड़ते। प्रश्न उनको क्या आजीविका का भय है और संसार का जिस्से कि वे डरते हैं क्योंकि उनको विवाह करने में कोदशार करना हो नहीं जिस्में धनकी चाहना हो और माता पिता स्त्री, पुत्रादिक, कुटुम्ब और घर को छोड़ के स्थानक है

इस्से उनको भय नहीं है परन्तु वे भी खंडन नहीं करते और पूजा करते हैं फिर आपही बड़े विरक्त आ गए कि इन बातों का खण्डन करते हैं। उत्तर यह बात तो सत्य है कि उनको सत्य भाषाणादिकका छोड़ना और पाषाणादिक मूर्त्ति का पूजन करना उचित नहीं परन्तु वे भी सैकड़ों में कोई एक धर्मात्मा और पण्डित है अन्य जैसे गृहाश्रम में थे वैसे ही बने रहते हैं और कितनेक गृहस्थों से भी नीच कर्म करते हैं क्यों कि उनने केवल खाने पीने और विषय भोग के हेतु विरक्त का वेष धारण कर लिया है परन्तु विरक्तता उन में कुछ नहीं मालूम पड़ता क्यों कि धर्म की रक्षा और मुक्ति करनेके हेतु विरक्त नहीं होते हैं किन्तु अपने शरीर और इन्द्रिय भोग के हेतु विरक्तोंकी नांई बन गए हैं कोई धर्मात्मा राजा होय और इनकी यथावत् परीक्षा करै तो हजारों में एक विरक्तता के योग्य निकले।। बहुत मजूरी और हल ग्रहण करने के योग्य निकलेंगे क्यों कि जब पूर्ण विद्या, जितेन्द्रियता छल कपटादिक दोषरहित होवें सत्य २ उपदेश तथा सबके ऊपर कृपा करके वैराग्य, ज्ञान, और परमेश्वर का ध्यान करें तथा काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक दोषों को छोड़ें और सत्य धर्म, सत्य विद्या, सत्य उपदेश की सदा निष्ठा होने से विरक्त होता है अन्यथा नहीं देखना चाहिये कि गोकुलस्थ गोसांई आदिक कैसे धूर्त्तता से धन हरण करके धनाढ्य बन गए हैं बहुत से चेले और चेलियां बना लेते हैं उन से समर्पण करा लेते हैं कितने नाम शरीर, धन और मन गोसांई

जी के अर्पण करो सो बड़े २ मन्दिर उनोंने बनाए हैं और नाना प्रकार की मूर्त्तियां रख लिया है और नाना प्रकार के कलाबत्तू, सच्चे झूठे आभूषणों से ऐसा जाल रचा है कि देखते ही मोहित होके उसमें फस जाते हैं प्रायः स्त्री लोग उस मन्दिर में बहुत जाती हैं जितनी व्यभिचारिणी स्त्री और व्यभिचारी पुरुष बहुधा मन्दिर में जाते हैं क्यों कि वहां परस्पर स्त्री पुरुषों का दर्शन होता है और जिस्से जो चाहे उस्से समागम बिना परीश्रमसे करले उसमें शयनआर्ती और मङ्गलार्ती बहुत व्यभिचार के मूल हैं क्यों कि उस समय प्रायः रात्री ही रहती है इस्से आनन्द पूर्वक निर्भय हो के क्रीड़ा करते हैं परस्पर मिलके और उसमें पाप भी नहीं गिनते क्यों कि एक श्लोक बना रक्खा है ॥ अहंकृष्णस्त्वंराधाहावयोरस्तु संगमः ॥ पर स्त्री और पर पुरुष जब परस्पर गमन करा चाहें तो इसको पढ़लें तो कुछ पर स्त्री गमन वा परपुरुष गमन में कुछ पाप नही होता है जब वे परस्पर सन्मुख होवें तब पुरुष कहें कि मैं कृष्ण हूं तूं राधा है तब स्त्री बोली कि मैं राधा हूं आप कृष्ण हैं ऐसा कहके कुकर्म करने को लग जाते हैं उनके दो मन्त्र हैं श्रीकृष्णः शरणंमम यह उनोंने मिथ्या संस्कृत बना लिया है इसका यह अभिप्राय है कि जो कृष्ण सोई मेरा शरण अर्थात् इष्ट है फिर भागवत की कथा में रास मंडल की लीला सुन के ऐसा निश्चय कर्ते हैं कि हम लोगो के इष्ट ने जैसी लीला किया है वैसी हम भी करैं कुछ दोष नहीं और इसका ऐसा भी अर्थ बन

सक्ता है कि जो श्री कृष्ण है सो मेरी शरण को प्राप्त हो अर्थात् मेरा सेवक श्री कृष्ण बन जाय ऐसा अनर्थ भी अशुद्ध संस्कृत से हो सक्ता है सो यह मन्त्र गोसांई लोग दरिद्र, कङ्गाल और साधारण पुरुषों को देते हैं और जो बड़ा आदमी है उसके हेतु दूसरा मन्त्र बनाया है वही समर्पण का मन्त्र है ॥ क्लीं कृष्णायगोपीजनवल्लभायस्वाहा ॥ इस मन्त्रको उसको देते हैं कि जो शरीर, मन, और धन गोसांईजी के अर्पण करदे और गोसांई लोग अपनेको कृष्ण मानते हैं और अपनी चेलियां वा जगत् की सब स्त्रियां राधा है सो जिस स्त्री से चाहे उस स्त्री से समागम करलें उनको पाप नहीं लगता और उनके समर्पणी जो चेले होते हैं वे अपनी प्रसन्नता से गोसांईजी की प्रसादी करा लेते हैं अर्थात् स्त्री वा पुत्रकी स्त्री तथा कन्या उनको गोसांईजीकी खास सेवामें एकान्तमें भेजते हैं जब गोसांई जी एक बार अपनी सेवा में प्रथम रख लेते हैं तब वह स्त्री पवित्र हो जाती है और वह स्त्री अपने को धन्य मानती है तथा उनके सेवक भी अपने को धन्य मानते हैं जिन का गुरू इस प्रकारका व्यभिचारी होगा उनका शिष्य वर्ग व्यभिचारी क्यों नहीं होगा सो बड़े२ अनर्थ होते हैं अब के सम्प्रदायमें सो कहने योग्य नहीं वे पान बीड़ा खाके पात्रमें पीक डाल देते हैं सो उसको उनके चेले बड़ी प्रसन्नता से खाते हैं और अपने को बड़ा धन्य मान लेते हैं कि हम को गोसांई जी महाराज की प्रसादी मिल गई जब कोई धनाढ्य उनको अपने घरमें ले जाता है उसका नाम पधरावनी कहते हैं जब से वहां

जाते हैं तब बड़ा एक पात्र ताम्बे वा लोहे का रख लेते हैं उस के बीच में स्नान के हेतु एक चौकी रख देते हैं फिर गोसाईं जी एक धोती सहित उस पात्र के बीच में चौकी पै बैठ जाते हैं फिर अनेक सुगन्ध केसरादिक पदार्थों से उनके शरीर को स्त्री और पुरुष मलते हैं फिर अच्छे २ शुद्ध २ जल से उन को स्नान कराते हैं फिर जब स्नान हो जाता है तब सूखा पीताम्बर को धार लेते हैं और गीली धोती उस कड़ाही के जलमें छोड़ देते हैं फिर गोस्वाईं जी निकल आते हैं तब उनके सेवक लोग उस जल को पीते हैं और अपने को धन्य मानते हैं फिर गोस्वाईं जी, बहुजी, बेटीजी, लालजी, ठाकुरजी, पुजारी, गवैया, इन सात जालों से उस गृहस्थ का बहुत धन हर लेते हैं इससे उनके पास बहुत धन होगया है उससे रात दिन विषय सेवा और प्रमाद में रहते हैं उनके चेले जानते हैं कि हम मुक्ति को प्राप्त होंगे परन्तु इन कर्मों से मुक्ति तो नहीं होती किन्तु नरक ही होता क्यों कि इन प्रमादोंमें जिनका धन जाता है उनका भला कभी न होगा और उन गुरूओं का भी और उन्होंने एक कथा रच रक्खी है कि लक्ष्मणभट्ट एक ब्राह्मण तैलंग था उसने काशी में आके सन्यास लेने चाहा तब उससे पूछा कि आपके माता पिता वा बिवाहित स्त्री तो घरमें नहीं है तब उनने कहा मिथ्या कि मेरे घर में कोई नहीं है मुझ को संन्यास दे दीजिये फिर उनने संन्यास दे दिया कुछ दिन के पीछे उनकी स्त्री काशी में खोजती २ आई और वह कहीं मर गई

में मिला सो उसके पीछे २ चली गई वह अपने गुरु के पास जाके बैठे स्त्री भी बैठी और उसके गुरु से स्त्री ने कहा कि महाराज मुझको भी आप संन्यास दे दीजिए क्योंकि मेरे पति को तो आपने संन्यास दे दिया अब मैं क्या करूंगी तब तो उस संन्यासी ने बहुत क्रोध करके उसका दण्ड और काषाय वस्त्र ले लिए और उससे कहा कि तूं झूठ क्यों बोला तैंने बड़ा अनर्थ किया अब तुम यज्ञोपवीत पहर लेओ और अपनी स्त्री के साथ रहो और उनके गुरु ने आशिर्वाद दिया कि तुम्हारा पुत्र बड़ा श्रेष्ठ होगा सो उनके भाषा ग्रन्थमें ऐसी बात लिखी है सो मुझ को अनुमान से मालूम पड़ता है कि जब उसने काशी में संन्यास लिया फिर खूब खाने पीने लगे तब कामातुर होके किसी स्त्री से फस गए फिर जब काशीमें निन्दा होने लगी तब काशी छोड़ के दक्षिण देश में चले गए परन्तु कोई उनके स्वजाति ब्राह्मणने पंक्ति में नही लिया सो आज तक तैलंग ब्राह्मणों की और गोकुलस्थों की एक पंक्ति वा एक विवाह नही होता जो कोई तैलंग. ब्राह्मण, गोसांईजी को कन्या देता है वह भी जाति बाह्य हो जाता है फिर वे दोनो जहां तहां घूमने लगे और उनका एक पुत्र भया उसका नाम वल्लभ रक्खा इस विषयमें वे लोग ऐसा कहते हैं कि जन्म समय मे ही उस बालक को बन में छोड़ के चले गए सो उस बालक की चारों ओर अग्नि जलता रहता था । इस्से उस बालक को कोई जानवर नहीं मार सका जब वे पांच वर्ष के भए तब दिग्विजय करने लगे और सब पृथिवी के पण्डितों को

उनने जीत लिया पांच बरष की उमर में सो यह बात हमको झूठ मालुम देती है क्यों कि वे वनमें बालक को कभी नहीं छोडेंगे तथा अग्नि रक्षा भी न करेंगा और पांच बर्ष की उमर में बिद्या कभी नहीं हो सक्ती फिर वे क्या पराजय करेंगे यह बात अपने संप्रदाय की प्रतिष्ठा के हेतु मिथ्या रच्च लिई है क्यों कि सुबोधिनी तथा विद्वन्मंडन संस्कृत में ग्रन्थ उन के बनाये देखने में आते हैं उनमें उनका साधारण पाण्डित्य ही देखने मे आता है इस्से वे क्या पण्डितों का पराजय कर सकेंगे फिर वे ऐसा कहते हैं कि श्रीकृष्णने बल्लभ जी से कहा कि हमारे जितने दैवी जीव है उनका तुम उद्धार करो फिर बल्लभ जी फिरते घूमते मथुरा में आके रहे और वहां संप्रदाय का जाल फैलाया कितनेक पुरुष उनके चेले भए और उनने विवाह किया उस्से सात पुत्र भए सो आज तक गोकुलस्थों की सात गद्दी बजती है फिर ऐसी २ कथा प्रसिद्ध करने लगे कि जो कोई गोस्वांई जी का चेला होगा वही वैष्णव और दैवीजीव है,और जो कोई उनका चेला नहीं होता वह-आसुर नाम दैत्य और राक्षस संज्ञक जीव है ऐसी प्रसिद्ध होने से बहुत लोग चेले हो गये और बहुत व्यभिचार तथा विषय भोग के हेतु चेले होते हैं यहां तक उनने मिथ्या कथा रची है कि जब मथुरा में रहते थे तब बल्लभ जी ने एक चेले से कहाकि तूं दही मेरेलिए बाजारसे ले आ वहचेला दही लेनेके हेतु बाजार मे गया वहां एक दही लेके बूढी स्त्री बैठी थी उससे उसने कहा की इस दही का क्या तू मुल्य लेगी तब

बुढ़िया ने जाना कि यह वल्लभ जी का चेला है उससे बोली कि मैं इस दही के बदले मुक्ति लेऊंगी तब उसने दही ले लिया और बुढ़िया से कहा कि तुझ को मैंने मुक्ति दे दी सो उस बुढ़िया की मुक्ति हो हो गई और वल्लभ जी का नाम रक्खा है महाप्रभु सो ऐसी २ झूठ कथा बना के जगत् को ठग लेते हैं एक पाषाण की कंठी बना देते हैं उसका नाम रक्खा है पवित्रा और रोली की दो रेखा श्रृङ्ग के तुल्य ललाट में बनवा देते हैं फिर कहते हैं कि तुम गोसाईं जी के समर्पण हो जाओ और इससे तुम्हारा सब पाप छूट जायगा तुम लोग दैवी जीव और वैष्णव कहाओगे इस लोक में आनन्द से भोग करो और मरने के पीछे तुम लोग गोलोक स्वर्ग में जाओगे जहां राधादिक सखी और श्रीकृष्ण नित्य रासमंडल और आनन्द भोग करते हैं वैसे तुम भी अनेक स्त्रियों के साथ आनन्द भोग करोगे ऐसी कथा को सुनके स्त्री और पुरुष मोहित होके चेले हो जाते हैं फिर एक ऐसी मिथ्या कथा रची है कि विट्ठल साक्षात् श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है और हम लोग साक्षात् कृष्ण के स्वरूप हैं सो बहुत २ धन दे २ के धनाढ्य लोग आते एक रात्रि गोसाईं जी की सेवा में रह आती है तब उसके चेले और चेलियां उस स्त्री से कहती हैं कि तू बड़ी सौभाग्यवती है कि गोसाईं जी ने तुझ को अंग में लगा लिया क्यों कि समर्पण का यही प्रयोजन है कि गोसाईं जी शरीर धन और उनके मन को चाहें सो करें उन चेले और चेलियों का जब मरण होता है तब उनका धन सब गोसाईं जी ले

लेते हैं क्यों कि पहिले ही समर्पण किया गया था बड़े आनन्द का संप्रदाय उनका है कि चेले चेली नौकर चाकर सब विषय भोग आनन्द के समुद्र में डूबके मग्न हो जाते हैं और गोसाईं लोग खूब शृङ्गार से बने ठने सदा रहते हैं जिसे देख के स्त्री लोग मोहित हो जाय सो रात दिन स्त्री लोग घर के रहती हैं और स्त्रीयों के अर्थात् चेलियों के झुण्ड के झुण्ड २ क्रीड़ा करते रहते हैं क्योंकि गोसाईं लोग अपने को कृष्ण मानते हैं और उनकी चेलियां अपने को राधा रूप सखी मानती हैं खूब स्त्री लोग धन देती हैं और अपनी इच्छापूर्वक क्रीड़ा करती हैं केवल वे बड़े पामर हो जाते हैं इस्से पशु की नांई अर्थात् लालमुखके बांदर जैसे क्रीड़ा करते हैं वैसे वे भी पशु हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं जितने मन्दिर धारी वैरागी हैं उनका भी प्रायः ऐसा ही व्यवहार है एकचक्रांकित लोग जो कि आचार्य कहाते हैं उनका ऐसा मत है कि। तापःपुंड्रं तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च। अमीहिपञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः॥ यह उनका श्लोक है शंख, चक्र गदा और पद्म लोहे चांदी वा सोने के चार चिन्ह बना रखते हैं जो कोई उनका चेला वा चेली होता है जब वे स्नान करके आते हैं तब बराबर पंक्ति उनकी बैठ जाती है और उन चिन्हों को अग्नि में तपा के उनके हाथ के मूल में तत २ लगा देते हैं उस समय जिस अग्नि में तपाया जाता है उसका नाम वेदी रक्खा है जब उनके हाथ में तत २ वे लगाते हैं तब बड़ा दुःख उनको होता है क्यों कि चमड़े, लोम और मांस के

जलने से उनको बड़ी पीड़ा होती है और दुर्गन्ध भी उठता है फिर उनके हाथ में लगा के चमड़ा, मांस, उसमें कुछ २ लग रहता है और एक पात्र में जल वा दूध रख देते हैं उसमें उन चिन्हों को बुझा देते हैं फिर कोई २ उस जल वा दूध को पी लेते हैं देखना चाहिये यह बात कौन धर्म और किस युक्तिकी होगी केवल मिथ्या ही जानना क्यों कि जीते शरीरको जलाने से एक प्रथम संस्कार मानते हैं और जितने संप्रदाय वाले हैं वे उर्द्ध पुंड्रवात्रिपुण्ड्रका संस्कार सब मानते हैं उनसे हरिशैव, वैष्णवादिक अपने हृदयमें अभिमान करते हैं उर्द्धपुंड्रवाले नारायणके पगकी आकृति तिलकको मानते हैं तथा शैवशाक्तादिक महादेवकेललाटमें जो चन्द्र है उसकी आकृति मानते हैं फिर चक्रां-कितादिक बाहु में रेखा करते हैं उसका नाम श्री रख लिया है इसमें विचारना चाहिए कि जिनके ललाट में हरिके पग का चिन्हलक्ष्मी और चन्द्रमा काचिन्ह होवै तो वे दरिद्रदुःखी और ज्वरादिक रोग उनको क्यों होवें फिर वे कहते हैं कि बिना तिलक से चाण्डाल के तुल्य वह मनुष्य होता है उनसे पूछना चाहिए कि चाण्डाल जो तुम्हारा तिलक लगाले तो तुम्हारे तुल्य हो सक्ता है वा नहीं जो वे कहें कि हां सकता है तो गधा वा कुत्ते के ललाटमें तिलक लगाने से वह मनुष्य भी होजाता है वा नहीं सो तिलक का ऐसा सामर्थ्य नहीं देख पड़ता है कि और का और होजाय और लक्ष्मीचन्द्र इनके ललाटमें विराजमान तो भी उदर का पालन होना कठिन देख पड़ता है इससे ऐसा निश्चय होता है कि यह लक्ष्मी और चन्द्रमा नहीं है

किन्तु दरिद्रता और उन्मत्तता जाननी चाहिए फिर वे तिलक के विषय में एक दृष्टान्त कहते हैं कि कोई मनुष्य एक वृक्ष के नीचे सोता था बड़ा रोगी सो मरण समय उस का आगया वृक्ष के ऊपर एक कौआ बैठा था उसने विष्ठा किया सो गिरी उसके ललाट के ऊपर सो तिलक की नाईं चिन्ह हो गया फिर यमराज के दूत उसको लेने को आए तब तक नारायण ने अपने भी दूत भेज दिये यमराज के दूतोंने कहा कि यह बड़ा पापी है सो अपने स्वामी की आज्ञा से हम इस को नरकमें डालेंगे तब नारायणके दूत बोलेकि हमारे स्वामी की आज्ञाहै कि इसको बैकुण्ठ में ले आओ देखो तुम अन्धे होगये इसके ललाट में तिलक है तुम कैसे ले जा सकोगे सो यमराज के दूतों की बात नहीं चली और उसको बैकुण्ठ में ले गये नारायण ने बड़ी प्रीति से प्रतिष्ठा किया और उससे कहा तूं आनन्द कर बैकुण्ठ में ऐसे २ प्रमाणों से तिलकको सिद्ध करते हैं और लोग मानते हैं यह बड़ा आश्चर्य है क्यों कि ऐसी मिथ्या कथा को लोग मानलेते हैं गोकुलस्थ लोग केवल हरि पदाकृत ही को तिलक मानते हैं निम्बार्क सम्प्रदाय के एक काला बिन्दु तिलक के बीच में देदेते हैं उसको जैसे मन्दिरमें श्रीकृष्ण बैठा होय ऐसा मानते हैं तथामाधवार्क सम्प्रदायवालेएककालीरेखाखड़ी ललाटमेंकरते हैं उसको भी ऐसा मानते हैं तथा चैतन्य संप्रदायमें जो हैं वे कटारके ऐसा चिन्ह को हरिपदाकृति मानते हैं और राधाबल्लभी भी बिन्दु को राधावत् मानते हैं कबीर के सम्प्रदाय

वाले दीपकी शिखावत् तिलकको मानते हैं और पण्डित लोग पिप्पल के पत्ते की नाईं कोई २ तिलक करते हैं सो केवल मिथ्या कल्पना लोगों ने बनाई है जो तिलक के विना चांडाल होना हो तो वे भी चांडाल हो जांय क्यों कि जब स्नान और मुख प्रक्षालन करते हैं तब तो उनके भी ललाटमें तिलक नहीं रहने पाता फिर वे चांडाल क्यों न बन जांय और जो फिर तिलक के करने से उत्तम बन जांय तो चण्डाल उत्तम बनने में क्या देर परन्तु चक्रांकितों के ग्रन्थ मन्त्रार्थ दिव्य सूर्य्य, रत्न, प्रभा और नाभाने बनाई भक्तमालादिकों में यह प्रसिद्ध लिखा है कि जो चक्रांकितों का मूल आचार्यपठ कोपसांसो कंजर और डाबूडाक कुलमें उत्पन्न भए थे सोई उन ग्रंथोंमें लिखा है कि विक्रार्यशूर्पाचन्त्राचरयोगी । यह वचन है इसका इससे यह अभिप्राय है कि सूप का बेच के योगी जो पठकोपसो विचरने भये इससे क्या आया कि वह सूप बनाने वाले के कुलमें उत्पन्न भया था उनहीं ने चक्रांकित संप्रदायका प्रारम्भ किया इससे उसको शाठ चक्रांकित आज तक पूजते हैं उनके पीछे दूसरा उनका आचार्य मुनि वाहन भया उसकी ऐसी कथा उन ग्रंथों में है कि दक्षिण में एक तोताद्री और रङ्ग जी दो स्थान हैं उनमें बहुत से उनके संप्रदायके साधू आज तक रहते हैं वहां एक चण्डाल था उसको ऐसी इच्छा थी कि मैं भी कुछ ठाकुरजीकी परिचर्य्या करूं परन्तु मन्दिर में झाड़ू बहारू देने के हेतु पुजारी लोग उसको नहीं आने देते

थे सो जब प्रातः काल कुछ रात्रि रहे तब पुजारी लोग स्नान को दरवाज़ा खोल के चले जांय तब वह चांडाल छिप के मन्दिरमें झाड़ू देके निकल जाय कोई उसको देखे नहीं परन्तु पुजारियों ने विचार किया कि झाड़ू कौन दे जाता है रातमें छिपके दो चार पुजारी बैठे रहे कि उसको पकड़ना चाहिये जब प्रातः काल और पुजारी स्नान को चले गये तब वह चांडाल मन्दिर में घुस के झाड़ू देने लगा जब उनने देखा तब पकड़ के ऐसा मारा कि मूर्छित हो गया तब उन वैरागियों ने पकड़ के मन्दिर के बाहर उसको डाल दिया जब वे स्नान करके पुजारी लोग आके ठाकुर का किवाड़ खोलने लगे सो न खुला क्या कि ठाकुर जी ने उसको मारने से बड़ा क्रोध किया तब बड़े आश्चर्य गये सबके किवाड़ क्यों नहीं खुलते हैं फिर एक वैरागी को ठाकुर जी ने स्वप्न दिया कि किवाड़ो तब खुलेंगे और सब लोग उस चांडालको पालकी में बैठा के अपने कंधे पर सब नगर में उसको फिराओ और पालकी सहित मन्दिर की परिक्रमा करो फिर उसको मंदिर में ले आओ वही मेरी पूजा करे और इस मन्दिर का अधिष्ठाता और सब का गुरु बने जब वह किवाड़ को आके स्पर्श करेगा तब किवाड़ खुलेगा अन्यथा नहीं ऐसा ही उनने किया और सब बात हो गई उसका नाम उस दिन से मुनिवाहन रक्खा गया क्यों कि मुनि जो वैरागी उनने वाहननाम पालकी उठाई इससे उसका नाम मुनि वाहन पड़ा उनका चेला एक मुसल-

मान भया उनका नाम यावनाचार्य इसको अब चक्रांकितोंने-तिकयामुनुचाय्य नाम रक्खा है उनके चेला रामानुज भये वह ब्राह्मण थे रामानुज के विषय में ये लोग कहते हैं कि शेष जीका अवतार है शंकराचार्य शिव का निबार्कमाधव रामा-नन्द और नित्यानन्द ये चारों सनकादिक के अवतार हैं नानक जनक जी का अवतार है कबीर ब्रह्म का यह बात सब उनकी मिथ्या है क्यों कि अपने २ संप्रदाय के हेतु मिथ्या कथा लोगों ने रच लिई हैं तीसरा संस्कार माला धारण कर-ना उसमें रुद्राक्ष तुलसी व्रास कमल गट्टे इत्यादिक जान लेना इस विषय में संप्रदायी लोग कहते हैं कि विना माला कण्ठी और रुद्राक्ष के धारण से जल पिये और भोजन करैं सो मद्यपान और गोमांसके तुल्य है इनसे पूछना चाहिये कि नशा क्यों नहीं होता है और मांस का स्वाद क्यों नहीं आता इस्से यह बात केवल मिथ्या आजीविका के हेतु लोगों ने रच लिई हैं इनमें श्लोक भी बना रक्खे हैं यस्यांगेनास्तिरुद्राक्ष-एकोपि बहुपुण्यदः ॥ तस्यजन्मनिरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितंयदि इत्यादिक श्लोक शिवपुराण और देवीभागवतादिक ग्रन्थों में शैव और शाक्तों में अपने संप्रदायों के बढ़ने के हेतु लिखे हैं और वैष्णवादिकों के खंडन के हेतु व्यासादिकों के नाम से बहुत श्लोक रच रक्खे हैं काष्ठमालाधरश्चैवसद्यश्चांडाल उच्यते ऊर्द्ध्वं पुण्ड्रधरश्चैव विनाशंयातिध्रुवम् इनके विरुद्ध इत्यादिक वैष्णवों ने बनाया है रुद्राक्षधारणान्नैवनरकंप्राप्नुया-द्ध्रुवम् शालग्रामस्यहृद्ग्राणांशिवलिंगशतस्यच द्वादशकोटि

विप्राणांनतफलं श्वपच रैणावै॥ विप्राद्विषड्गुण युतादरविंदनाभ पादारविंदविमुखाच्छ्वपचं । वरिष्ठम् अभाग्य तस्य देशस्यतुल- सीयत्र नास्तिवै ॥ अभाग्यंतच्छरीरस्य तुलसीयत्रनास्तिहि ॥ दोनों के विरोधी वाममार्ग आपप्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वेवर्णाः द्विजातयः । निवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वेवर्णाः पृथक् पृथक् ॥ मद्यमांसञ्चमीनंचमुद्रामैथुनमेव च । एतेपञ्चम- काराश्चमोक्षदाहियुगेयुगे । पीत्वा पीत्वापुनः पीत्वा यावत्पता- ताभूतले । उत्थायचपुनः पीत्वापुनर्जन्मनविद्यते । सहस्रभग- दर्शनान्मुक्तिर्नात्रकार्याविचारणा । मातृयोनिंपरित्यज्यविहरेत्सर्व योनिषु काश्यांहिमरणान्मुक्ति नात्रकार्या विचारणा । काश्यां मरणान्मुक्ति. यह श्रुति शैवों ने बना लिई है सहस्रभगदर्शा- नान्मुक्ति यह शाक्तोंने श्रुतिबना लिई है गंगागंगेतियो ब्रूयाद्यो जनानांशतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्योविष्णुलोकंसगच्छति ॥ अश्वमेधसहस्राणांवाजपेयशतस्यच । कलाकोटिसहस्राणांफ- लंप्राप्नोतिमानवः ॥ यह एकादशी आदिक व्रतोंका माहात्म्य बन लिया है ऐसे ही शालिग्रामनर्मदेश्वर आदि का माहात्म्य बना लिया है सो इस प्रकार के मिथ्या २ जाल अपने मतलब के हेतु लोगोंने बना लियेहैं और [illegible] को एक इसके जलते नगा अत्यन्त [illegible] और [illegible] निन्दा होता है क्योंकि जो मिथ्या २ कल्पना है [illegible] का एकता कभी नहीं होता जो सत्य बात है सो सबके बीच में एक ही है चक्रांकितादिकोंने अपने संप्रदायके मन्त्र बना लिये हैं । ओं नमो नारायणाय ओम् श्रीमन्नारायण चरणं शरणं प्रपद्ये श्रीमते नारायणाय नमः ये

दोनों चक्रांकितों के मन्त्र हैं ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ओम् कृष्णायनमः ओम् राधाकृष्णाभ्यांनमः ओम् गोविन्दायनमः ओम्राधावल्लभायनमः येनिंबार्कादिकों के मन्त्र हैं ओम्रामायनमः ओम्सीतारामाभ्यांनमः ओम्रामायनमः ये रामोपासकोंके मन्त्रहैं ओम्नृसिंहायनमः ओम् हनुमतेनमः ये खाखोआदिकों के मन्त्र हैं ओम् नमः शिवाय यह शैवोंका मन्त्र है पं ह्रीं क्लींचामुंडायैविच्चे ओम् ह्रां ह्रीं ह्रूं हैं ह्रौं ह्रः बगला मुख्यै फट्स्वाहा इत्यादिक वाम मार्गियों के मन्त्रहैं सत्यनाम जप यही कबीरसंप्रदायका मन्त्रहैदादूराम यह दादू संप्रदाय का मन्त्र है राम रामयह राम सनेही सम्प्रदाय का मन्त्रहै वाहगुरु ॥ एकओंकार सत्य नाम कर्त्ता पुरुष निर्भय निर्वैर अकाल मूर्त्त अयोनी सहभंग गुरुप्रसादजप ॥ यह नानक संप्रदायका मन्त्र है इत्यादिक कहां तक हम जाल गिनावें कि लाखों प्रकार के मिथ्या कल्पना लोगों ने कर लिये हैं ये सब गायत्री जो परमेश्वर का मन्त्र इसके छोड़ने के वास्ते धूर्त्तता लोगोंने सब रची है और जैसे गडेरिया अपने भेड़ और छेरियों को चराता है उनसे जब चाहे तब दूध दुह लेता है अपना मतलब सिद्ध कर लेता है दूध के उन मेंसे एक भेड़ व छेरी कोई लेले अथवा भाग जाय तब उस गडेरिये को बड़ा दुःख होता है से दिनभर चरा के एक स्थान में इकट्ठा कर देता है वह चाहता है इस झुंड मेंसे एक भी पृथक् न हो जाय किन्तु अन्य भेड़ वा छेरी मिलाके बढ़ाया चाहता है क्योंकि उनसे ही उसका आजीविका चलती है वैसे ही आज

काल मूर्ख मनुष्यों को धूर्त गुरु लोग जाल मे बांध के अत्यन्त धनादिक लूटते हैं और बडे २ अनर्थ करते हैं क्योंकि चेले मूर्ख हैं इस्से जैसा वे कह देते हैं वैसा ही मान लेते हैं जो उन गुरुओं को विद्या और बुद्धि होती तो ऐसी अपने वास्ते नरक की सामग्री क्यों करते तथा चेले लोगों को विद्या और बुद्धि होती तो इन धूर्तों के जाल में फस के क्यों नष्ट होते देखना चाहिये कि नानक जी कबीर जी और दादू जी इनके संप्रदाय मे पाषाणादिक मूर्त्तिपूजन तो नहीं है परन्तु उनने भी संसार का धनादिक हरन के वास्ते ग्रन्थ साहब की उस्से भी अधिक पूजा करते है यह भी एक मूर्त्ति पूजन ही है पुस्तक भी जड होता है क्योंकि जैसा पाषाणादिकों की पूजा वैसा पुस्तकों की भी पूजा जानना इसमे कुछ भेद नहीं यह केवल परपदार्थ हरन के वास्ते ही लोगों ने युक्ति रच लिई है अपने २ संप्रदाय मे ऐसा आग्रह है उनका कि वेदादिक सत्य पुस्तकों की ऐसी पूजा वा उनमें प्रीति कभी नहीं करते जैसी कि अपने भाषा पुस्तकों मे प्रीति करते हैं और सन्यासियों ने एक शंकर दिग्विजय रच लिया है उसमें बहुत २ मिथ्या कथा रक्खी है उसमें दण्डी लोग और गिरीपुरी आदिक गोसाई लोग अत्यन्त प्रीति करते हैं अर्थात् रामानुज दिग्विजय निंबार्क दिग्विजय माध्वाचार्य दिग्विजय वल्लभ दिग्विजय कबीर दिग्विजय और नानक दिग्विजयादिक अपनी २ बडाई के वास्ते लोगोने मिथ्या २ जाल रच लिये हैं शंकराचार्य कोई संप्रदाय के पुरुष नहीं थे किन्तु वेदोक्त चार आश्रमों के बीच संन्यासाश्रम में थे परन्त

उनके विषय में लोगोंने संप्रदायकी नांई व्यवहार कर रक्खा है दश नाम लोगों नें पीछे से कल्पित कर लिये हैं जैसे कि किसी का नाम देवदत्त होय इसके अन्तमें दश प्रकार के शब्द रखते हैं कि देवदत्ताश्रम एक १ देवदत्तातीर्थ नाथ २ देवदत्तानन्द सरस्वती और इसी का भेद दूसरा कि देवदत्तेन्द्र सरस्वती ३ देवदत्त गिरी ४ देवदत्तपुरी ५ देवदत्तापर्वत ६ देवदत्तसागर ७ देवदत्तारण्य ८ देवदत्तवन ९ देवदत्तभारती १० ये दश नाम रच लियेहैं फिरइनमें शृंगेरी शारदा भूगोवर्द्धन और ज्योति मठये चार प्रकार के मठ मानते हैं और दण्डियों ने दामोदर नृसिंह नारायण इत्यादिक दण्डों के नाम रख लिये हैं उस में यज्ञोपवीत बांधते हैं उसका नाम शंख मुद्रादिक रक्खा है ऐसी २ बहुत कल्पना दण्डियोंने भी किई है किन्तु जोबाल्यावस्था में नाम रहता था सोई सब आश्रमों में रहता था जैसा कि जैगीषव्य आसुरि पंचशिख और वोध्य ऐसे२ नाम संन्यासियों के महाभारत में लिखे हैं इस्से जाना जाता है कि यह पीछेसे मिथ्या कल्पना दण्डी लोगों ने कर लिया है परन्तु दण्डी लोग सनातन संन्यासाश्रमी हैं क्यों कि मनुस्मृत्यादिक में इनका व्याख्यान देखने में आता है और गोसांई लोगों ने भी दुर्गानाथ इत्यादिक महा शब्द कल्पित कर लिया है जैसे कि बैरागी आदिकों ने नारायणदास इस्से बड़ा भारी बिगाड़ भया कि नीच और उत्तम की परीक्षा ही नहीं होती क्योंकि सब का एकसा ही नाम देख पड़ता है तापः पुंड्र नाम माला और मन्त्र ये पंच संस्कार चक्रांकित

लिक मानते हैं और मोक्ष होना भी इनसे मानते हैं परन्तु इस में विचार करना चाहिए कि संस्कार नाम है पवित्रता का सो पवित्रता दो प्रकार की होती है एक मन की दूसरी बाह्य-पदार्थों की इनमें से मन की पवित्रता होने से बाह्य पवित्रता भी होती है जिनका मन अधर्म करने में रहता है उनकी बाह्य पवित्रता सब व्यर्थ है सो उन संस्कारों में मन की पवित्रता कुछ नहीं हो सकती देखना चाहिए कि गोकुलस्थों के मन्दिरों में रोटी और दाल तक लोग बेचते हैं और बाहर से प्रसिद्ध रखते हैं कि ठाकुर को इतना बड़ा भोग लगता है सो जितने नौकर चाकर मन्दिरों में रहते हैं उनको मासिक धन नहीं देते किन्तु इसके बदले पक्का अन्न रोटी दाल तक देते हैं उनके हाथ गोसांई जी अन्न बेचते हैं और वे प्रजा के हाथ बेचते हैं जैसे हलवाई की दुकान में बेचा जाता है और प्रसाद भी उन के यहां भेजते हैं सब मन्दिर धारी कि जिनसे कुछ प्राप्ति होती हो मन्दिरों में जब दर्शन के हेतु जाते हैं तब जो उनके स्त्री वा पुरुष, सेवक तथा धन देने वाले उनका बड़ा सत्कार करते हैं अन्य का नहीं इन मिथ्या व्यवहारों के होने से देश का बड़ा अनुपकार होता है क्यों कि बाहर से तो महात्मा की नांई बने रहते हैं छल और हृदयमें कपट, काम, क्रोध, लोभा-दिक दोष बढ़ते चले जाते हैं देखना चाहिए कि बड़े २ मन्दिर मठ, गांव, राज्य दुकानदारी करते हैं और नाम रखते हैं वैरागी, आचारी, उदासी, निर्मले गोसाईं जटा जूट बने रहते हैं तिलक, छापा, माला, ऊपर से धारण रखते हैं और उनका

हृदय का व्यवहार हम लोग देखते हैं विद्या का लेश नहीं बात भी यथावत् कहना या सुनना नहीं जानें इस्से सब मनुष्यों को एक सत्य, धर्म विद्यादिक गुण ग्रहण करना चाहिए और इन भ्रष्ट व्यवहारों को छोड़ना चाहिए तभी सब मनुष्यों का परस्पर उपकार हो सकता है अन्यथा नहीं वाममार्गी लोग एक भैर्वी चक्र रचते हैं उसमें एक नङ्गी स्त्री कर के उसके हाथ में छूरी वा तलवार दे देते हैं और बीच में एक आसन के ऊपर बैठा देते हैं फिर उस स्त्री की पूजा करते हैं यहां तक गुप्त अङ्ग की भी फिर उस जल को सब लोग पीते हैं और उस स्त्री को मानते हैं कि यह साक्षात् देवी है और ब्राह्मण से लेके और चमार तक उस स्थान में सब बैठते हैं फिर एक पात्र में मद्य की पूजा करके मद्य रखते हैं उसी एक पात्र से वह स्त्री पीती है फिर उसी जूठे पात्र से सब लोग मद्य पीते हैं और मांस भी खाते जाते हैं रोटी और बड़े खाते जाते हैं फिर जब मद्य पीके मस्त हो जाते हैं तब उसी स्त्री से भोग करते हैं जिसको कि पहिले देवी मानी थी और नमस्कार किया था और मनुष्यका बलिदान भी करते हैं कोई २ उस का भी मांस खाते हैं मुरदे के ऊपर बैठके जप करते हैं और स्त्री के समागम के समय जप करते हैं । योन्यांलिङ्गंसमा स्थाप्यजपेन मन्त्रमतन्द्रितः । और यह भी उनका मन्त्र है कि एक माता को छोड़ के कोई स्त्री अगम्य नहीं फिर उनमें से एक मातङ्गी विद्या वाला है वह ऐसा कहता है कि मातरमपिनत्यजेत् माता को भी नहीं छोड़ना

चाहिए क्योंकि मातङ्गहस्ती का नाम है सो माता को भी नहीं छोड़ता वैसे वे भी मानते हैं ऐसी दश महाविद्या उन लोगों ने बना रक्खी है उनमें से एक चोली मार्ग है उसका ऐसा मत है कि स्त्री और पुरुष सब एक स्थान में रात्रि को इकट्ठे होते हैं एक बड़ा भारा मृत्तिका का घड़ा वहां रखते हैं उसमें सब स्त्री लोग अपने हृदय का वस्त्र अर्थात् जिसका नाम चोली है उसको उस घड़े में डाल देते हैं फिर उन वस्त्रों को घड़े के बीच में मिला देते हैं फिर खूब मद्य पीते हैं और मांस खाते हैं जब वे बड़े उन्मत्त हो जाते हैं फिर उस घड़े में हाथ डालते हैं जिसके हाथ में जिसका वस्त्र आवै वह उसकी स्त्री होती है वह माता, कन्या, भगिनी वा पुत्र की भी हो स्त्रीय ऐसे २ मिथ्या व्यवहार करते हैं और मानते हैं कि मुक्ति होय यह बड़ा आश्चर्य है ऐसे कर्मों से कभी नहीं मुक्ति होती परन्तु बिद्याहीन जो पुरुष हैं वे ऐसे २ जालों में फस जाते हैं और इन लोगों ने अपने २ मत के पुष्टिके हेतु अनेक पाराशर्यादिक स्मृति ब्रह्मवैवर्त्तादिक पुराण तन्त्र उपपुराण परस्पर विरुद्ध ऋषि और मुनियों के नामों से रच लिए हैं एक को दूसरा अपमान कर्ता है अपनी २ पुष्टि के हेतु क्यों कि असत्य बात और भ्रम जो होता है सो परस्पर विरुद्ध से ही होता है जो सत्य बात है सो सब के हेतु एकही है जो सज्जन होते हैं वे सदा श्रेष्ठ कर्म ही कर्ते हैं क्यों कि वे सत्या सत्य बिचार से असत्य को छोड़ते हैं और सत्य को ग्रहण करते हैं और किसी के जाल मे विचारवान् पुरुष

नहीं क्षमता सब के उपकार में ही उसका चित्त रहता है ऐसे जो मनुष्य हैं वे धन्य हैं इस्से क्या आया कि श्रेष्ठ गृहस्थ वा विरक्त जो हैं वे सदा श्रेष्ठ कर्म ही करते हैं अश्रेष्ठ नहीं इस वास्ते वे विरक्त लोग अपने मतलब में फंस के सत्यासत्य नहीं जान सक्ते हैं क्यों कि उनको भ्रम अंधकार में कुछ नहीं सूझता प्रश्न जगन्नाथादिक में बहुत चमत्कार देख पड़ता है तथा नाना प्रकार के तीर्थ जो गंगादिक वे पाप नाशक और और मुक्तिप्रद हैं वा नहीं उत्तर नहीं क्यों कि जगन्नाथ की मूर्त्ति चंदन वा निंबकाष्ठ की बनाते हैं उसकी नाभि में गोल रखते हैं उसमे सोने के संपुट मे एक शालग्राम रखके धर देते हैं उसको ब्रह्मतेज मानते हैं फिर आभूषण वस्त्र पहिरा देते हैं उसमें कुछ चमत्कार नहीं है किन्तु पुजारियों ने आजीविका के वास्ते बात और महात्म्य का पुस्तक बना लिया है वे एक तो यह चमत्कार कहते हैं कि छत्तीस वर्ष में चोला बदलता है सो बात हम को झूठ मालूम देती है क्यों कि ३६ वर्ष में मूर्त्ति पुरानी हो जाती है फिर दूसरी बना के रख देते हैं और कृष्ण तथा बलदेव की मूर्त्ति के बीच में सुभद्रा की मूर्त्ति बना रखी है इसमे विचारना चाहिये कि एक के बाम भाग दूसरे के दहिने भाग में मूर्त्ति रखना धर्मशास्त्र और युक्ति से विरुद्ध है और दूसरा चमत्कार यह कहते हैं कि राजा बढ़ई और पण्डा ये तीनों उसी समय मर जाते हैं यह बात उनकी मिथ्या है क्यों कि अकस्मात् कोई उस दिन मर गया होगा अथवा शत्रु

लोगों ने विषदान दे के कभी मार डाले होंगे सो महात्म्य की ऐसी बात लोगोंने मिथ्या बना लिया है तीसरा चमत्कार यह कहते हैं कि आप से आप ही रथ चलता है यह भी केवल की बात मिथ्या है क्यों कि हजारहां मनुष्य मिलके रथ को खींचते हैं और कारीगर लोगों ने उस रथमें कला बना लिई हैं उनके उलटे घुमाने से वह रथ खड़ा हो जाता होगा और सूध घुमाने से कुछ चलता होगा जैसे कि घड़ी आदिक के यन्त्र चलते हैं ऐसे बहुत पदार्थ विद्या से होते हैं चौथा चमत्कार यह कहते हैं कि एक चुल्हे के ऊपर सात पात्र धर देते हैं उनमें से ऊपर के पात्रों का चावल पहिले चुर जाते हैं यह भी उनकी बात मिथ्या है क्यों कि उन पात्रों में चावल पहिले चुरा लेते हैं फिर उसके पेंदे को मांज देते हैं फिर ऊपर २ पात्र रख देते हैं और नीचे के चूले में थोड़ी सी आंच लगा देते हैं फिर दरवाजा खोल देते हैं और अच्छे २ धनाढ्य तथा राजा लोगों को दूर से कलछुल से निकाल के देखा देते हैं और कहते हैं कि देखिए महाराज कैसा चमत्कार है कि नीचे का अब तक चावल कच्चा है क्यों कि उस पात्र में चावल अग्नि पर पीछे धरे हैं उस को देख के विचार रहित पुरुष मोहित हो के बड़ा आश्चर्य गिनते हैं और हजारहां रुपैया दे देते हैं यह केवल उनमनुष्योंकी धूर्त्तता है और चमत्कारकुछ नहींहैपांचवा चमत्कार यह कहते हैं कि जो पापी होय उसको उस मूर्ति का दर्शन नही होता यह भी उनकी बात मिथ्या है क्यों कि किसी के नेत्रमें दोष होने से आंखके सामने तिमिर आजाते हैं

और वे पुजारी लोग ऐसी युक्ति रखते हैं कि वस्त्र के अन्यथा रूप करके परदे बना रक्खें हैं उनके दोनों ओर पुजारी लोग खड़े रहते हैं और फिरते भी रहते हैं सो किसी प्रकार से उस मूर्त्ति को आड़ कर देते हैं फिर नहीं देख पड़ती उस वक्त ऐसा वे कहते हैं कि तुम लोग पापी हो जब तुमारा पाप कट जायगा तब तुम को दर्श होगा तब वे बुद्धिहीन पुरुष झट २ रुपैये धर देते हैं फिर उन को दर्शन करा देते हैं यह सब मनुष्यों की धूर्त्तता है चमत्कार कुछ नहीं है छठवां यह चमत्कार कहते हैं कि अन्धा वा कुष्ठी हो जाता है जो कि वहां का प्रसाद नहीं खाता यह भी उनकी बात मिथ्या है क्योंकि इस बात से कभी कोई कुष्ठी वा अंधा नहीं हो सक्ता है बिना रोग से और अनेक दिन का सड़ा सड़ाया अन्न तथा पत्रावली और हांडियों के खपरे जिन को कौवे कुत्ते चमार और चांडालादिक स्पर्श करते हैं और धूर भी लग जाती है सबका उच्छिष्ट खाने से कुछ रोग भी हो सक्ता है और परस्पर सबका जूठ सब खाते हैं और फिर अन्यत्र जाके किसी का जल या अन्न नहीं खाते यह देखना चाहिये कि इनका आश्चर्य व्यवहार कि सबका सब जूठ खाते भी हैं फिर कहते हैं कि हम किसी का नहीं खाते यह केवल इनका पाखण्ड चार ही है सो जिनकी यहां आजीविका है वे ऐसी २ मिथ्या बात सदा रचते रहते हैं कलिकत्ता में एक मृत्तिका की मूर्त्ति बना रक्खी है उसका नाम रक्खा है काली वहां भी ऐसी २

मिथ्या२ जाल रच रक्खी हैं कि काली मद्यपीनी है और मांस खाती है सो वह जड़ मूर्त्ति क्या पीयेगी और क्या खावेगी परन्तु उन पुजारिओं को खूब मद्य पीने और मांस खाने में आता है वे लोग स्वाद के हेतु और धन हरणे के हेतु नाना प्रकार की झूठ २ बात बना लेते हैं वहां एक मन्दिर में पाषाण का लिंग स्थापन कर रक्खा है उसका नाम तारकेश्वर रक्खा है इस विषय में उनोने बात बना रक्खी है कि रोगियों को स्वप्नावस्था में महादेव औषध बता जाते हैं उस औषध से उनका रोग छूट जाता है यह बात उनकी मिथ्या है क्यों कि उनका जो पुजारी है वही वैद्य और डाक्तरों की औषधी किया कर्त्ता है और ऐसी औषधि क्यों नही स्वप्नावस्था में महादेव कह देता है कि जिसके खाने से किसी को कभी रोग ही नही हो इससे यह बात झूठ है कि वह पाषाण क्या कह वा सुन सक्ता है कभी नही सेत बन्धरामेश्वर के विषय में ऐसा लोग कहते हैं कि जब गङ्गाजल चढ़ाते हैं तब वह लिंग बढ़ जाता है यह बात मिथ्या है क्यों कि उस मन्दिर में दिवस को भी अंधकार रहता है उसीसे चार कोने में चार दीप सदा जलते रहते हैं उस मन्दिर में किसी को घुसने देते नही उनके हाथ से गंगा जल लेके उस मूर्त्ति के ऊपर जल चढाता है जब वह पुजारी नीचे से ऊपर हाथ करता है तब मूर्त्ति से लेकर हाथ तक गंगा जीकी एक धारा बन जाती है उस धारा में चारों दीप के प्रकाश के पड़ने से जल बिजली की नांई चमकता है तब उन यात्रियों को पुजारी

लोगकहतेहैं कि तुवलांगोंके ऊपर महादेव की बड़ी कृपा है देखो महादेवका लिंग यह गंगाम्मो तुम रुपैये चढ़ाओ ऐसे २ बहका के खूब धन हरण करते हैं और कहते हैं कि राम ने यह मूर्त्ति स्थापन किई है सो यह बात मिथ्या ही है क्यों कि वाल्मीकीय रामायण में उसका नाम भी नहीं है केवल तुलसीदास के झूठ लिखने से लोग कहते हैं क्यों कि तुलसीदास की मिथ्या २ बात विचारना चाहिये नारी नाम स्त्री का कामदेव के स्त्री मोहित नहीं होती फिर सीता के स्वयंवर में लिखा है कि जब स्वयंवर में सीता जी आई तब नर और नारी सब मोहित हो गये सीता जी को देखके यह बात पूर्वापर उसकी विरुद्ध है और अपने ग्रन्थ में उसने लिखा है कि अठारह पद्म यूथप वानर थे सो एक २ का चार २ कोस का शरीर लिखा तथा कुंभकर्ण की मोंछ चार २ कोस का लंबी लिखी है १६ सोलह कोसकी नाक ६४ कोसका हाथ अथवा ६६ कोस का उदर ऐसा जो कुंभकर्ण होता तो लंका में एक भी नहीं समाता और अठारह पद्म वानर पृथिवी भर में नहीं समाते तथा बांदर मनुष्यकी भाषा नहीं बोल सकें फिर सुग्रीवादिक राम से कैसे बोल सकेंगे राज का करना और विवाह पशुओं में कहीं नहीं है सकता ऐसी २ बहुत तुलसी कृत रामायण में झूठ बात लिखी है सो इसके कहने का क्या प्रमाण फिर पाषाण के ऊपर राम नाम लिख दिये इससे पाषाण समुद्र के ऊपर तरे हैं यह बात उसकी मिथ्या है क्यों कि ऐसा होता तो हम लोग भी पाषाण के ऊपर राम नाम

लिख के उसका तरना देखने सो नहीं देखने में आता इस्से झूठ बातको मानना न चाहिये जैसी यह बात झूंठ है उसका वैसा रामेश्वर की लिखो भी झूठ है किसी दक्षिणके धनाढ्य ने मंदिर बनाया है उसका नामहै रामेश्वर उसको चार ४०० बरस भये होंगे और एक दक्षिण में कालियाकंत का मंदिर है इस विषय में लोगों ने ऐसी बात बना लिई है कि वह मूर्त्ति हुक्का पीती है सो झूठ है क्योंकि पाषाण की मूर्ति हुक्का कैसे पीयेगी इस में लोगोंने मूर्ति के मुखमें छिद्र बना रक्खा है उस छिद्र में नाली लगा के कोई मनुष्य छिपके धूंआ खींचता है फिर वे पुजारी कहते हैं देखो साक्षात् मूर्ति हुक्का पीती है ऐसा बहका के धन हर लेते हैं ऐसे ही जयपुर के राज्यमें एक जीनदेवी बजती है वह मद्य पीती है सो भी बात झूठ है क्यों कि वह मूर्ति पोली बना रक्खी है उसके मुखमें छिद्र है मद्यके पात्र को मुख से लगा के ढरका देते हैं वह मद्य अन्य स्थानमें चला जाता है फिर उसी को लेके बेचते हैं तथा द्वारिका के विषय में लोग कहते हैं कि द्वारिका सोने की बनी है उस में एक पीपा भक्त समुद्रमें डूबके चला गया था उसको श्रीकृष्ण जी मिले उन से बातचीत भई पीपाने कहा कि मैं तो आपके पास रहूंगा। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि मर्त्यलोक का आत्मा यहां नहीं रह सक्ता सो तुम हमारा शंख चक्र गदा पद्म के चिन्ह द्वारका में लेजाओ और सबसे कह देओ कि इन चिन्हों का दाग तम करके जो लगवालेगा सो बैकुंठ में चला आवेगा

ऐसे ही चक्रांकित लोग भी कहते हैं सो सब बात मिथ्या है क्यों कि जीते शरीरको जलाने से कोई वैकुंठ में नहीं जा सक्ता है और जो जा सकता तो मरे भये शरीर को भस्म कर देते हैं इससे वैकुंठ के आगे भी जायगा फिर जीते शरीर को जो जलाना यह बात केवल मिथ्या है एक पंजाबमें ज्वाला जी का मंदिर है उसमें अग्नि निकलता रहता है इस को कहते हैं कि साक्षात् भगवती है इनसे पूछना चाहिये कि तुमारे घरमें जब रसोई करते हैं तब चूले में भी ज्वाला निकलती रहती है प्रश्न चूले में तो लकड़ी लगाने से निकलती है और वहां आप से आपही निकलती रहती है उत्तर ऐसे ही अनेक स्थानोंमें अग्नि निकलती है सो पृथिवी में अथवा पर्वत में गंधकादिक धातु हैं उनमें किसी प्रकार से अग्नि उत्पन्न हो के लग जाता है सो पृथिवी को फोड़ के ऊपर निकल आता है जब तक वे गन्धकादिक धातु रहती हैं तब तक अग्नि जलता ही रहता है यही पृथिवी के हिलने का कारण है क्यों कि जब भीतर से बाहर पर्वत में अग्नि निकलता है तभी पृथिवी में कंप हो जाता है सो यह बात केवल मनुष्यों ने अपनी आजीविका के वास्ते मिथ्या बना लई है एक उत्तराखण्ड में केदार और बद्रीनारायण ये दो स्थान प्रसिद्ध हैं इस विषय में लोग ऐसा कहते हैं कि बद्रीनारायण की मूर्ति पारस पत्थर की है और शङ्कराचार्य ने स्थापित किई है सो यह बात मिथ्या है क्यों कि जो यह पारस पत्थर की रहती तो पुजारी लोग

दरिद्र क्यों रहते और यह बात झूठ मालूम देती है कि पारस पत्थर से लोहा छुआने से सोना बन जाता है इसको किसी ने देखा तो है नहीं सुनते सुनाते चले आते हैं इस बात का क्या प्रमाण और शङ्कराचार्य तो मूर्तियों के तोड़ने वाले थे स्थापन क्यों करते केदार के विषय में ऐसी बात लोग कहते हैं कि जब पांडव लोग हिमालय में गलने को गये तब महादेव का दर्शन किया चाहते थे सो महादेव ने दर्शन नहीं दिया क्यों कि वे गोत्र नाम अपने कुटम्ब के पुरुषों को मारके युद्ध में आये थे सो महादेव पार्वती और सब उनके गणो ने भैंसे का रूप धारण कर लिया था सो नारद जी ने कहा कि महादेवादिकों ने भैंसा का रूप धारण कर लियाहै तुम को बहकानेके वास्ते इसकीयह परीक्षाहै कि महादेव किसीकी टांगके नीचे से नहीं निकलते सो भीमने तीन कोसके छोटे दो पर्वत थे उनके ऊपर दो टांग रख दिई एक २ के ऊपर फिर सब भैंसे तो उनके नीचे से निकल गये परन्तु एक भैंसा नहीं निकला तब भीम ने निश्चय कर लिया कि यही भैंसा है उसको पकड़ने को भीम दौड़ा तब वह भैंसा पृथिवी मे गुम हो गया उसका सिर नेपाल मे निकला जिसका नाम पशुपति रक्खा है तथा उसका पग काश्मीर मे निकला उसका नाम अमरनाथ रक्खा औरचूतड़ वहीं निकला जिसका नाम केदार है और जंघा जहां निकली उसका नाम तुंगनाथादि रक्खा है ऐसे पंच केदार लोगों ने रच लिये हैं इस में विचारना चाहिये कि नैपालमे भैंसे का शृंग नाक कान कुछ नहीं देख

पड़ता है तथा काश्मीर में खुर भी नहीं देख पड़ते ऐसे अन्यत्र कुछ भी नहीं भैंसे का चिन्ह देख पड़ता किन्तु सर्वत्र पाषाण ही देख पड़ता है परन्तु गम्भीर मिथ्या बात को मनुष्य लोग मान लेते हैं यह केवल अविद्या और मूर्खता का गुण है क्योंकि भीम इतना लंबा चौड़ा होता तो उसका घर कितना लंबा चौड़ा होता और नगर में वा मार्ग में कैसे चल सकता तथा द्रौपद्यादिक उन की स्त्री कैसे बन सकती और महादेव को क्या डर पड़ा था कि भैंसा हो जाय फिर इतना लंबा चौड़ा क्यों बन जाता और क्या अपराध वा पाप महादेव ने किया था कि चेतन से जड़ बन जाय इससे यह बात सब मिथ्या है एक कामाक्षास्थान बना रक्खा है उसमें एक कुंड बना रक्खा है उसका नाम योनि रक्खा है और वह रजस्वला होती है यह सब बात उन पुजा-रियों ने आजीविका के हेतु मिथ्या बना लिई है एक बौद्धगया स्थान है उसमें बौद्ध की मूर्ति बना रक्खी है उसकी पूजा और दर्शन आज तक करते हैं यह मूर्ति केवल जैनों की ही है सो ऐसा जानना चाहिये कि जितना पाषाण पूजन है और जो जड़ पदार्थों का पूजन सो सब जैनों का ही है एक गया स्थान बना रक्खा है उसमें बड़ा संसार का धन लूटा जाता है गया के गयवालों को मुफ्त का बहुत धन मिलता है सो वेश्यागमन मद्यपान और मांसाहार में ही जाता है केवल प्रमाद में अच्छे काम में कुछ नहीं किन्तु यजमान लोग जानते हैं कि गया के श्राद्ध से ही पितरों का उद्धार हो जाता है सो ऐसे कर्मों से उद्धार तो किसी का

होता नही परन्तु नरक होनेका संभव होता है फिर इस विषय मे ऐसा कहते हैं कि रामचन्द्र ने गया मे श्राद्ध किया था सो साक्षात् दशरथ जी उनके पिता उनने हाथ निकाल के गया मे पिण्ड ले लिया था उस दिन से गया का माहात्म्य चला है और वह स्थान गया सुर का था सो यह बात सब मिथ्या हैं क्योंकि वे लोग आज काल भी हाथ निकाल के क्यों नही पिण्ड ले लेते किसी समय कोई पुरुष फलगू नदी मे भूमि मे गुहा बना के भीतर बैठ रहा होगा और उनों ने संकेत बना रक्खा था ऐसेही उसने भूमि मेसे हाथ निकाल के पिण्ड ले लिया होगा फिर झूंठ बात प्रसिद्ध कर दिई कि साक्षात् पितृ लोग हाथ निकाल के पिण्ड ले लेते हैं उस स्थान का पण्डितों ने माहात्म्य बना लिया फिर प्रसिद्ध होगई और सब मानने लगे सो गया नाम जिस स्थान में श्राद्ध करें और अपने पुत्र पौत्र तथा राज्य जिस देश में अपने रहता होय उन का नाम गया वेदों के निघण्टु में लिखा है उसका अर्थ अभि-प्राय तो जाना नही फिर यह पाखण्ड रच लिया काशिराजने महाभारत में लिखा है कि उसने नगर बसाया था इस्से उस का नाम काशी पड़ा और वरुणा तथा असीनालाके बीच में होने से वाराणसी नाम रक्खा गया इसका ऐसा झूंठ माहा-त्म्य बना लिया है कि साक्षात महादेव की पुरी है और महा-देव ने मुक्ति का सदावर्त्त बांध रक्खा है तथा ऊसर भूमि है इस्से पाप पुण्य लगता ही नहीं सब देवता पंद्रह २ कला से काशी में रहते हैं और एक २ कला से अपने २ स्थान में रहते

है एक मणिकर्णिका कुंड रच रक्खा है कि यहां पार्वती के कान
का मणि गिर पड़ा था तथा काल भैरव यहां का कोटपाल है
सो सबको दण्ड देता है पाप पुण्य की व्यवस्था से इस काशी
का महाप्रलय में भी प्रलय नहीं होता क्यों कि काल भैरव
त्रिशूल के ऊपर काशी को रख लेता है और भूचाल में हलती
भी नहीं पंच काशी के बीच में जो कोई कीट पतंग तक भी
मरे तो उसको महादेव मुक्ति दे देते हैं अन्नपूर्णा सब को अन्न
देती है अन्तर्गृही और पंचकाशी के करने से सब पाप छूट
जाते हैं इत्यादिक मिथ्या २ जाल रच के काशी रहस्य और
काशी खण्डादिक ग्रन्थ बना लिये हैं और कहते हैं कि बारह
ज्योति लिंग होते हैं उनमें से एक यह विश्वनाथ है उन से
पूंछना चाहिये कि ज्योति लिंग होते तो मंदिर में कभी अन्ध
कार न होता और यह पाषाण मुक्ति वा बन्ध कभी नहीं कर सक्ता
क्यों कि उसी को कारीगरों ने मंदिर के बीच गढ़े में चिनकाके
बंध कर रक्खा है फिर अपने ही बंधन से नहीं छूट सक्ता फिर
अन्य की मुक्ति क्या कर सकेगा सो यह केवल पोपों ने
बात बना लई है कि काशी में मरने से मुक्ति होती है क्योंकि
इस बात को सुन के सब लोग काशी में मरने के हेतु आवेंगे
उससे हमारी आजीविका सदा हुआ करेगी इससे ऐसी २ जाल
रचा करते हैं प्रयाग में गंगा यमुना के संगम में एक तीसरी
झूंठ सरस्वती मान लेते हैं कि तीसरी सरस्वती भी यहां है
और इस स्थान में मुंडाने से सिद्ध हो जाता है सो ऐसा
अनुमान किया जाता है कि पहिले कोई नौवाधा उसने अपने

कुल की आजीविका कर लिई है और संगम में स्नान करने से मुक्ति हो जाती है यह केवल आजीविका के वास्ते झूठ २ बात और झूंठ २ पुस्तक लोगों ने बना लिए हैं कि प्रयाग तीर्थ राज है ऐसे ही अयोध्या में हनुमान जी को राम जी गद्दी दे गये हैं और अयोध्या में निवास से भी मुक्ति होती है यह भी उनकी बात मिथ्या ही है तथा मथुरा और वृन्दावन में बड़ी २ मिथ्या बात बना लिई हैं कि यमद्वितीया के स्नान से यम के बंधन से जीव छूट जाता है क्यों कि यमुना यमराज की बहिन है और वृन्दावन के विषय में मुक्ति भी रोती है कि मेरी मुक्ति कैसे होयगी मुक्ति मुक्ति के वास्ते वृन्दावन की गलियों में झाड़ू देती है और मन्दिरों में नाना प्रकार के प्रमादों से व्यभिचारादिक करते हैं तथा अनेक प्रकार के जालों से लोगों का धन हरण करलेते हैं एक चक्रांकितोंने मन्दिर बनाया है उनके दरवाजों का नाम बैकुंठ द्वार इत्यादिक रक्खे हैं और सकल पुंगव सब मनुष्य मिलके इकट्ठे खाते हैं सकल पुंगव उसका नाम है कि कच्चा पक्का सब प्रकार का पक्का कच्चा अन्न बनता है फिर ब्राह्मण से लेके अंत्यज पर्यन्त उनके जितने शिष्य हैं उनकी पांक्त लग जाती है उनके हाथ के बीच में थोड़ा २ सब पदार्थ सबको दे देते हैं और वे खा लेते हैं उनमें से कोई जल से हाथ धो डालता है और कोई वस्त्र से पोंछ लेता है और ठकुर जी को जुलाब देते हैं उसमें भी बड़े २ अनर्थ सुनने में आते हैं और एक रात्रि वेश्या के घर ठाकुर जी जाते हैं फिर उनको प्रायश्चित

कराते हैं और यमुना जी में डुबाके स्नान कराते हैं यह केवल उन का मिथ्या प्रपंच है पर धन हरने के वास्ते और मूर्खों को बहकाने वास्ते फिर उस मन्दिरमें बहुत लोगों को शंख चक्रादिक तपा के दाग देते हैं ऐसे २ मिथ्या छल प्रपंच से अपनी आजीविका करते हैं इन में कुछ सत्य वा चमत्कार नहीं तथा गंगादिक तीर्थों के विषय में सब पाप का छूटना वैकुंठ से आना मुक्ति का होना और ब्रह्मद्रव तथा साक्षात् भगवताका मानना यह बात मिथ्या है क्यों कि हिमवतः प्रभवतिगंगा यह व्याकरण महाभाष्यका वचन है इसका यह अभिप्राय है कि हिमालय से गंगा उत्पन्न होती है तथा यमुनादिक नदियां बहुत हिमालय से उत्पन्न भई हैं और विन्ध्याचलसे तथा तड़ागों से भी बहुत नदियां उत्पन्न होती हैं केवल जल सब में है उस जल में उत्तम मध्यम और नीचता भूमि के संयोग गुण से है इस्से अधिक कुछ नहीं सो जल होता है वह जड़ क्या पाप को छोड़ा सकेगा और मुक्ति को भी दे सकेगा कुछ भी नहीं जैसा जिस जल में गुण है शीत उष्ण मिष्ट निर्मलता वैसा ही उसमें होता है इनसे अधिक गुण नहीं वे क्षार मिष्टादिक गुण सब भूमि के संयोग से हैं अन्यथा नहीं गंगेत्यवदर्शनान्मुक्तिर्नजाने स्नानजंफलम् इत्यादिक नारदादिकों के नामों से मिथ्या २ श्लोक लोगों ने बना लिये हैं जो दर्शन से मुक्ति होती तो सब संसार की ही मुक्ति हो जाती और मुक्ति से कोई अधिक फल नहीं है कि संसार में स्नानसे कुछ अधिक होवै यह केवल मिथ्या कल्पना उनकी है कि काश्या-

स्मरणान्मुक्तिगंगेत्वद्दर्शनान्मुक्तिः सहस्रभगदर्शनान्मुक्तिः हरिस्मरणान्मुक्तिः ॥ इत्यादिक मिथ्या श्रुति लोगों ने बना लिई हैं किन्तु ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः यह सत्य श्रुति है कि बिना ज्ञान से किसी की मुक्ति नही होती क्योंकि सत्यासत्यविवेक के बिना असत्यके दोषोंका ज्ञान नही होता दोष ज्ञान के बिना मिथ्या व्यवहार और मिथ्या पदार्थोंसे कभी नही जीव छूटता इससे मुक्ति के वास्ते सत्यासत्य विवेक परमेश्वर में प्रीति धर्म का अनुष्ठान अधर्म का त्याग सत्सङ्ग सद्विद्या जितेन्द्रियतादिक गुण इन में अत्यन्त पुरुषार्थ से मुक्ति हो सकती है अन्यथा नही और जिसको इस बातका निश्चय करना होवै वह इस बात को करै कि जितने तीर्थों के पुरोहित और मन्दिर स्थान के पुरोहित उनके प्राचीन पुस्तकों के देखने से सत्य २ निश्चय होता है क्यों कि वह यजमान देश गांव जाति दिन मास और संवत्सर इनको यथावत् पुस्तक जो बही खाता उसमें लिखे रखते हैं उनके देखने से ठीक २ दिन मास और संवत्सर का निश्चय होता है कि इस तीर्थ वा इस मंदिर का प्रारंभ इस संवत्सर में भया है क्यों कि जब जिस का प्रारंभ होता है तब उसके पंडे और पुजारी तथा पुरोहित उसी समय बन जाते है देखना चाहिये कि विंध्याचल मूर्त्ति के विषय में लोग कहते हैं कि एक दिन में देवी तीन रूप धारण कर्ती है अर्थात् प्रातःकाल में कन्या मध्यान में जवान और संध्याकाल में बुढ्ढी बन जाती है इन से पूंछना चाहिये कि रात में उस मूर्त्ति की कौन अवस्था होती है सो केवल पुजारी

लोगों की धूर्त्तता है क्यों कि जैसा वस्त्र आभूषण धारण करें वैसा ही स्वरूप देख पड़ता है और कहते हैं कि इस मंदिर में मक्खी नहीं होती परंतु असंख्यात मक्खी होतीं हैं सो केवल झूठ बका करते हैं आजीविका के वास्ते तथा वैजनाथ के विषय में कहते हैं कि कैलाश से रावण ले आया है यह सब मिथ्या कल्पना लोगों की है क्योंकि आज तक नये २ मंदिर नये २ मूर्त्तियों के नाम धरते हैं और संप्रदायी लोगों ने अपने २ सम्प्रदाय के पुष्टि के वास्ते बना लिये हैं उनका नाम रख दिया पुराण और ऐसा भी वे कहते हैं कि अष्टादश पुराणानांकर्त्ता-सत्यवतीसुतः इसका यह अभिप्राय है कि अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यास जी हैं जो कि सत्यवती के पुत्र हैं यह बात मिथ्या है क्योंकि व्यास जी बड़े पंडित थे और सत्यवादी सब पदार्थ विद्या यथावत् जानते थे उनका कथन यथावत् प्रमाण युक्त ही होता है क्योंकि उनके बनाये शारीरक सूत्र हैं और महाभारत में जो २ श्लोक हैं वे भी यथावत् सत्य ही हैं प्रश्न महाभारत में अन्य भी श्लोक हैं अथवा सब व्यास जी के बनाये हैं उत्तर कई हजार श्लोक संप्रदायी लोगों ने महाभारत में मिला दिये हैं अपने २ संप्रदाय के प्रमाण के वास्ते क्यों कि शांति पर्व में विष्णु की बड़ाई लिखी है और सबकी न्यूनता और उसीमें सहस्र नाम लिखे हैं इससे विरुद्ध उसी पर्व में शिव सहस्र नाम जहां लिखे हैं वहां विष्णु को तुच्छकर दिया है तथा जहां विष्णु की बड़ाई है वहां महादेव को तुच्छ कर दिया है और जहां गणेश और कार्तिक स्वामी की स्तुति किई है वहां अन्य सबको तुच्छ

बना दिये हैं तथा भीष्म पर्व और विराट् पर्व में जहां देवी की कथा लिखी है वहां अन्य सब तुच्छ गिने हैं एक भीम और धृतराष्ट्र की कथा लिखी कि धृतराष्ट्र के शरीर में ६००० हाथी का बल था तथा भीम के शरीर में दस हजार हाथी का बल था और एक गरुड़ पक्षी का बल ऐसा वर्णन किया जिसका तोलन नहीं हो सका। उस गरुड़ का बल विष्णु के आगे तुच्छ गिना तथा उस विष्णु का बल वीर भद्र के आगे तुच्छ कर दिया है वीर भद्र का रुद्र के आगे और रुद्र का विष्णु के विष्णु का वीरभद्र के आगे ऐसी परस्पर मिथ्या कथा व्यास जी की बनाई महा-भारत में नहीं बन सकती और भी ऐसी२ कथा लिखी हैं कि भीम को दुर्योधन ने विषदान दिया जब वह मूर्च्छित होगया तब उसको बांध के गंगा जी में गिरा दिया सो वह पाताल को चला गया वहां सर्पों ने बहुत काटा फिर जब उसका विष उतर गया तब सर्पों को मारने लगा उस्से सर्प भाग गये वासुकी राजा से जाके फिर कहा कि एक मनुष्य का लड़का आया है सो बड़ा पराक्रमी है तब वासुकी भीम के पास गया और पूंछा कि तू कौन है कहां से आया है तब भीम ने कहा कि मैं पंडु का पुत्र हूं और युधिष्ठिर का भाई तब तो वासुकी बड़े प्रसन्न भये और भीम से कहा कि जितना तुझसे इन कुंडों मेंसे जल पीया जाय उतना पी क्योंकि ये नव कुंड अमृत से भरे हैं ऐसा सुन के उठा और नव कुंडों का सब जल पी गया सो नव हजार हाथी का बल बढ़ गया इसमें विचारना चाहिये कि विष के देने से वह भीम मर क्यों न गया और जल में एक घड़ी भर

नहीं जी सका और पातालका मार्ग वहां कहां होसका है और जो हो सका तो गंगा काजल सब पातालमें चला जाता ऐसी २ मिथ्या कथा व्यासजीकी कभी नही हो सकती और जितनी सत्य कथा है वे सब महाभारत में व्यास जी की हो कही हैं और जितने पुराण हैं उनमें व्यास जी का किया एकश्लोक भी नही क्योंकि शिव पुराणादिक सब शैव लोगों के बनाये हैं उनमें केवल शिव कोही ईश्वर वर्णन किया है और नारायणादिक शिव के दास हैं फिर रुद्राक्षभस्म नर्मदा का लिंग और मृत्तिका का लिंग बना के पूजने बिना किसी की मुक्ति नही होती यह केवल शैवों की मिथ्या कल्पना है और इन बातों से कभी नही मुक्ति होती बिना धर्मानुष्ठान विद्या और ज्ञान से फिर वही शिव जिसको कि ईश्वर वर्णन किया था पार्वती के मरने में सर्वत्र रोता फिरा ऐसी कथा श्रेष्ठ पुरुषों की कभी नही होती किन्तु यह केवल शैव संप्रदाय वालोंकी बनाई है तथा शाक्त लोगोंने देवी भागवत तथा मार्कण्डेय पुराणादिक बनाए हैं उनमे ऐसी २ कथा झूठ लिखी है कि श्रीपूर में एक भगवती परमब्रह्मरूप थी उसनें संसार रचने की इच्छा किई तब प्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न किया और कहा कि तूं मेरे से भोग कर तब ब्रह्माने कहा कि तूं मेरी माता है तुझ से मैं समागम नही कर सकता तब कोप से भगवती ने ब्रह्मा को भस्म कर दिया और दूसरा पुत्र उत्पन्न किया जिस का नाम विष्णु है उससे भी वैसा ही कहा फिर विष्णु ने भी समागम नहीं किया इस्से उसको भी भस्म कर

दिया फिर तीसरा पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम शिव है उससे भी कहा कि तूं मुझ से समागम कर तबमहादेवने कहा कि तूं तो मेरी माता है तेरे से मैं समागम नही कर सकता परन्तु तूं अपने अङ्ग से एक स्त्री को पैदा कर उससे मैं समागम करूंगा फिर उसने पैदा किई और दोनों का विवाह भी किया फिर महादेव ने देखा कि ये दो भस्म क्या पडी हैं तब देवी ने कहा कि तेरे भाई हैं इन दोनों ने मेरी आज्ञा नही मानी इस्से इनको मैंने भस्म कर दिया फिर महादेवने कहा कि मेरे भाई हैं इनको जिला देओ तब भगवती ने जिला दिये और फिर कहा कि और दो कन्या उत्पन्न करो कि मेरे भाई का भी विवाह हो जाय भगवतीने उत्पन्न किई विवाह होगया एक का नाम उमा दूसरी का नाम लक्ष्मी तीसरी सावित्री इनके विषय मे ब्रह्मानारायण की नाभि से उत्पन्न भया कहीं लिखा कि ब्रह्मा से रुद्र और नारायण उत्पन्न भये कहीं लिखा कि उमा-दक्ष की कन्या कहीं लिखा हिमालय की कन्या है लक्ष्मी समुद्र की कन्या है कहीं लिखा कि वरुण की कन्या कहीं लिखा कि सावित्री सूर्य की कन्या है कहीं लिखा कि ब्रह्मा से जगत उत्पन्न भया कहीं नारायण से कहीं महादेव से कहीं गणेश से कहीं स्कंद से ऐसी झूंठ २ कथा पुराणों में बना रक्खीहै प्रश्न इसमे विरोध नही क्योंकि ये सब कथा कल्पकल्पान्तर की हैं उत्तर यह बात मिथ्या है क्यों कि सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत् जैसी सूर्यादिक सृष्टि पुर्वकल्प में भई थी वैसी सब कल्पमें होती है ऐसा जो कहोगे तो किसी कल्प में एक से

भी खाते होंगे और मुख से चलते होंगे नेत्र से बोलते होंगे जीभ से न बोलते होंगे इत्यादिक सब जानने लोगोंने मार्क-ण्डेय पुराणान्तर्गत जो दुर्गा स्तोत्र है जिसका नाम रक्खा है सप्तशती उसमें ऐसी २ झूंठ कथा लिखीहै कि रुधिरौघमहा-नद्यः स्रवस्तत्रप्रसुस्रुवुः रक्तबीज और देवी के युद्धमें रुधिरकी बड़ी २ नदियां चली इन से पूंछना चाहिए कि रुधिर वायुके स्पर्श से जम जाता है उसकी नदी कभी नहीं चल सकती रक्त बीज इतने बढ़े किसब जगत् पूर्ण होगया उनके शरीर से उनसे पूंछना चाहिए कि वृक्ष नगर गांव पर्वत सप्तशती भगवती का सिंह कहां खड़े थे यस्याःप्रभावमतुलंभगवाननन्तो ब्रह्माहरश्च-नहिवक्तुमलंबलंचसा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय नाशाय-चाशुभभयस्यमतिंकरोतु इस श्लोक में ब्रह्मा विष्णु और महा-देव को तो मूर्ख बनाया क्यों कि चण्डिका का अतुल प्रभाव और बल को वे नहीं जानते हैं अर्थात् मूर्ख ही भये चण्डिकोपे इस धातु से चण्डिका शब्द सिद्ध होता है जो कोप रूप है वह अधर्म का स्वरूप ही है विष्णुःशरीर ग्रहणमहमीशानएवच कारितास्तेयतोऽतस्त्वांकः स्तोतुंशक्तिमानभवेत् ब्रह्मा विष्णु और महादेव मैंने ही शरीर धारण वाले किये हैं फिर मेरी स्तुति करने को समर्थ कौन हो सकता है ऐसा कहके त्वंस्वाहा त्वंस्वधा त्वंहि इत्यादिक स्तुति करने भी लगा यह बड़ी भारी प्रमादकी बात है कि जिसका निषेध करै उसीको करने लग जाय सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः मनुष्यो-मत्प्रसादेन भविष्यतिनसंशयःपूंछना चाहिये उस भगवती को

प्रतिज्ञा है कि मेरा इस स्तोत्र का पाठ और मेरी भक्ति करेगा अर्थात् सब दुःखों से छूट जायगा और धान्य धन पुत्रोंसे युक्त होगा है सो यह प्रतिज्ञा न जाने कहां गई कि इस पाठके करने और कराने वाले अनेक दुःखों में पीड़ित देखने में आते हैं धन धान्य पुत्रोंकी इच्छाभी अत्यन्त होती है और मिलता कुछ नहीं यहां तक कि पेट भी नहीं भरता ऐसी २ मिथ्या कथाओं में विद्याहीन पुरुषोंको विश्वास होजाता है यह बड़ा एक आश्चर्य है ऐसे ही विष्णुपुराण ब्रह्मवैवर्त और पद्मपुराणादिकों में अनेक २ झूंठ कथा लिखी हैं तथा भागवत में बहुत मिथ्या कथा लिखा है कि शुकाचार्य व्यास जी के पुत्र परीक्षित के जन्म से सौ १०० बरस पहिले मर गया था परीक्षित का जन्म पीछे भया है सो मोक्ष धर्म में महाभारत के लिखा है फिर जो मनुष्य कहते हैं कि शुकाचार्य ने सप्ताह सुनाया सो केवल मिथ्या बात है क्यों कि उस समय शुकाचार्य का शरीर ही नहीं था और ऋषि का शाप था कि यम लोक को परीक्षित जाय फिर भागवत में लिखा कि परीक्षित परमधाम को गया यह इनकी बात पूर्वापर विरुद्ध और मिथ्या है और चतुःश्लोकी सब भागवत का मूल मानते हैं सो नारायण ने ब्रह्मा से ब्रह्मा ने नारद से नारद ने व्यास जी से व्यास जी ने शुक से शुक ने परीक्षित से फिर भागवत संसार मे चल निकसा सो यह बड़ा जाल रच लिया है क्यों कि ज्ञानंपरम गुह्यं मे यद्विज्ञान समन्वितम् सरहस्यंतदंगंचगृहाणगदितंमया इत्यादिक चारश्लोक बना लिये है क्यों कि परम और गुह्य ये

दोनों ज्ञान के विशेषण होने से वही विज्ञान हो जाता है फिर यद्विज्ञानसमन्वित यह जो उसका कहना सो मिथ्या होता है और गुह्य विशेषण से सरहस्य मिथ्या होता है क्यों कि रहस्य नाम एकान्त और गुह्य का ही है परम ज्ञान के कहने से तदंग अर्थात् मुक्ति का अंग है यह उसका कहना मिथ्या ही है क्यों कि परमज्ञान जो होता है सो मुक्ति का अंग ही होता है जैसा यह श्लोक मिथ्या है वैसा सब भागवत भी मिथ्या है क्यों कि जय विजय की कथा भागवत में लिखी है सनकादिक चार बैकुंठ को गये थे उस समय नारायण लक्ष्मी जी के पास थे जय और विजय ये दोनों बैकुंठ के द्वारपालों ने उनको रोक दिया तब उनको क्रोध भया और शाप जय विजय को दिया कि तुम जाओ भूमि में गिर पड़ो तब तो उनको बड़ा भय भया और उनको प्रार्थना किई कि महाराज मेरे शाप का उद्धार कैसे होगा तब सनकादिकों ने कहा कि जो तुम प्रीति से नारायण की भक्ति करोगे तो सातवें जन्म तुमारा उद्धार होगा और जो वैर से भक्ति करोगे तो तीसरे जन्म तुमारा उद्धार होगा इस में विचारना चाहिये कि सनकादिक सिद्ध थे वैवायुवत् आकाश मार्ग से जहां चाहे वहां जाते थे उनका निरोध कैसे हो सकता है तथा जय विजय नैयामक रूप थे चारों को क्या रोका क्यों कि वे क्या दोनों मूर्ख थे और वे साक्षात ब्रह्म ज्ञानी थे उनको क्रोध क्यों होता और कोई किसी को प्रीति से सेवा करैं और दूसरा उसको दण्डे से मारैं उनमें से किस के ऊपर वह प्रसन्न होगा जो

कि सेवा कर्त्ता है और जो दण्डा मारता है उसके ऊपर कभी किसी की प्रसन्नता नहीं हो सकी फिर वे हिरण्याक्ष और हिरण्य कश्यप् दोनों भये एक को बराह ने मारा और दूसरे को नृसिंह ने उसका पुत्र था प्रल्हाद उसके विषय में बहुत झूंठ कथा भागवत में लिखी है कि उसको कूंए में गिराया और पर्वत से गिराया परन्तु वह न मरा फिर लोहे का खंभ अग्नि से तपाया और प्रल्हाद से कहा कि तूं इसको पकड़ नहीं तो तेरा सिर मैं काट डारूंगा फिर प्रल्हाद खंभ के सामने चला और चित्त में डरा भी कुछ कि मैं जल न जाऊं सो नारायण ने चिवटी उसके ऊपर चलाई उनको देख के प्रल्हाद निडर होके खंबे को पकड़ा तब खंभा फट् गया और बीच में से नृसिंह निकले सो उसके पिता को पकड़ के पेट चीर डाला और नृसिंह को बड़ा क्रोध आया सो ब्रह्मा महादेव लक्ष्मी तथा इन्द्रादिक देवों से नृसिंह के कोप की शांति हो नहीं भई फिर प्रल्हाद से सब ने कहा कि तूं ही शान्ति कर सो प्रल्हाद नृसिंह के पास गया और नृसिंह शांत हो गया सो प्रल्हाद को जीभ से चाटने लगा और कहा कि वर मांग तब प्रल्हाद ने कहा कि मेरे पिता का मोक्ष होय तब नृसिंह बोले कि मेरे वर से २१ पुरुषों का मोक्ष हो गया तेरे पितादिकों का इनसे पूंछना चाहिये कि नारायण ने शूकर और पशु का शरीर क्यों धारण किया और कैसे धारण कर सके हिरण्याक्ष पृथिवी को चटाई की नाईं धर के सिराने सो गया सो किसके ऊपर सोआ

और पृथिवी को उठाई सो किसके ऊपर खड़ा होके और पृथिवी को कोई उठा भी सकता है और कोई नारायण के भक्त हो पर्वत से गिरादे वा कूप में डाल दे वह मर जायगा अथवा हाथ गोड टूट जायगा रक्षा कोई नहीं करेगा खंभ में से नृसिंह का निकलना यह बात बड़ी मिथ्या है और नृसिंह जो नारायण का अवतार और सर्वज्ञ होता तो पहिली बात को क्यों भूल जाता जो सनकादिकों ने सात वा तीन जन्म में सद्गति कही थी उसने पहिले ही जन्म में सद्गति क्यों दे दिई और प्रथम ही उनका जन्म था उसकी २१ पीढ़ी नहीं बन सकती और जो कश्यप मरीचि ब्रह्मा तक विचारें तो भी चार पीढ़ी हो सकती हैं २१ तक कभी नहीं फिर उसने लिखा कि हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यप ही रावण कुंभकर्ण शिशुपाल और दन्त वक्र होते भये फिर सद्गति किनको भई यह बड़ी मिथ्या कथा है अजामील की कथा में लिखा है कि उसने पुत्र को मरण समय में बोला था उसका भी नाम नारायण था सो नारायण ने इतना जाना भी नहीं कि मेरे को पुकारता है वा अपने पुत्र को और वह बड़ा पापी था परन्तु एक समय नारायण के नाम से उस को वैकुंठ का वास देदिया सो बड़ा भारी अन्याय कि पाप करें और दण्ड न होय ऐसी कथा सुन के लोगों की भ्रष्ट बुद्धि हो जाती है क्यों कि एक बार नारायण के नाम से सब पाप छूट जाते हैं फिर कोई पाप करने से भय नहीं करेगा व्यास जीने सब वेदवेदांग विद्याओं को पढ़ लिया और परमेश्वर पर्यन्त यथावत् पदार्थों

का साक्षात्कार किया था तथा अणिमादिक सिद्धि भी भई थी फिर भी सरस्वती नदी के तट मे एक वृक्ष के नीचे शोकातुर हो के जैसे रोता होवे वैसे बैठे थे उस समयमें वहां नारद आये और व्यास जी से पूछा कि आप ऐसी व्यवस्था मे क्यों बैठे हैं तब व्यास जी बोले कि मैंने सब विद्या पढ़ी और सब प्रकारका ज्ञान भी मुझको भया परन्तु मेरे चित्त को शान्ति नही भई तब नारद जी बोले कि तुमने भगवत कथा नही किई और ऐसा ग्रन्थ भी कोई नही बनाया जिस में भगवत कथा होवे सो आप भागवत बनावें कृष्ण जी के गुण युक्त तब आपका चित्त शान्ति होगा इसमे विचारना चाहिये कि व्यास जी जो नारायण का अवतार होते तो उनको अज्ञान शोक और मोह क्यों होना और जो उन को अज्ञानादिक थे तो अज्ञानी का बनाया जो भागवत उसका प्रमाण नही हो सका फिर इस कथा मे वेदादिकों को केवल निन्दा आती है क्यों कि वेदादिकों के पढ़नेसे व्यास जी को ज्ञान नही भया तो हम लोगोंको कैसे होगा फिर भी निगमकल्पतरोर्गलितंफलं इत्यादिक श्लोकों से केवल वेदोंकी निन्दा ही किई है क्यों कि वेदादिक सत्य शास्त्रों का यह निन्दा न करता तो इस महा मिथ्या जालरूप जो भागवत ग्रन्थ उस की प्रवृत्ति ही नही होती फिर उसने नृगराजकी कथा लिखी कि यावत्यः सिकताभूमौयावन्तोदिवितारकाः यावत्योवर्षधाराश्च तावतीरददंस्मगाः॥ नृगराजा ने इतनी गाय दिई कि जितने भूमि मे कणिका हैं इस्से पूछना चाहिये कि इतनी गाय कहां खड़ी

रहती थीं क्यों कि एक गाय तीन वा चार हाथ के जगह में खड़ी रहती हैं उस भूमि के कणों को सब भूमि के मनुष्य करोड़हां लाखहां वर्ष तक गिने तो भी पारावार नही होवे फिर भी उस मिथ्यावादी को संताप नही भया मिथ्या कहने से कि जितने आकाश मे तारे और जितने वृष्टि के बिंदु उतने गो दान नृगराज ने किये फिर भी वह दुर्गति को प्राप्त भया क्यों कि एक गाय एक ब्राह्मण को पहिले दिई थी फिर भूल के दूसरे को दे दिई फिर दोनों ब्राह्मण लड़ने लगे कि एक कहे यह मेरी गाय है दूसरा कहे कि मेरी तब नृगराज ने कहा कि दोनों तुम समझ के एक तो इस गाय को लेलेओ दूसरा एक के बदले मे सौ हजार लाख करोड़ और सब राज्य ले लेओ परन्तु लड़ामत वे दोनों ऐसे मूर्ख कि लड़ते ही रहे किन्तु शान्त न भये और फिर राजा को शाप देदिया कि तू दुर्गति को जा इसमें बिचारना चाहिये कि एक तो इसने कर्म कांड की निन्दा किई की थोड़ी सी भी भूल पड़जाय तो दुर्गति को जाय इस्से कर्मकाण्डमे कुछफलनही ऐसा उसकी मिथ्याबुद्धि थी कि इस प्रकारकी मिथ्या कथा उसने लिखी और ब्राह्मणोंकी निन्दा लिखी कि सदा हठी होते हैं और राजाने उन को दण्ड भी नही दिया ऐसे पुरुषों को दण्ड देना चाहिये राजाको फिर कभी हठ दुराग्रह न करे और राजा का अपराध क्या भया था कि उसको शाप लगा एक गोदान के व्यतिक्रम से दुर्गती को वह गया और असंख्यात गोदान का पुन्य उस का कहां गया यह अन्धकार की बात उसकी कि इतने उसने गोदान

किये परन्तु सब उसके नष्ट होगये बहुत गोदानों के पुन्यने कुछ सहाय नहीं किया फिर उसने एक कथा लिखीकि रथेनवायुवेगेन जगामगोकुलंप्रति जब कंसने अक्रुर जी को श्रीकृष्ण के लेने के वास्ते भेजा तब मथुरा से सूर्योदय समयमें वायुवेग रथके ऊपर बैठके चले दो कोस दूर गोकुलथा सो चार प्रहरमें अर्थात् सूर्यास्त समय में गोकुल को आ पहुंचे इस्से पूंछना चाहिये कि रथ का वायु वेग कहां नष्ट होगया जो कोई कहे कि अक्रूर जी को प्रेम हुआ सो देर से पहुंचे परन्तु घोड़े को और सईस को प्रेम कहां से आया और उसका वायुबेग उसने क्यों मिथ्या लिखा फिर पूतनाको श्रीकृष्णने मारके गोकुल मथुरा के बीचमें उसका शरीर डाल दिया सो छः कोस तक उस शरीर की स्थूलता लिखी फिर कंस को मालूम भी नहीं भया कि पूतना मारी गई वा नहीं जो छः कोस की स्थूलता होती तो दो कोसके बीचमें कैसे समाता किन्तु गोकुल मथुरा ये दोनों चूर्ण हो जाते और गोकुल मथुरा के पार कोस २ तक शरीर गिरता सो ऐसी २ झूठ कथा लिखी हैं परन्तु कथा करने और कराने वाले सब भांगपान करके मस्त हो गये हैं कि ऐसे झूठ को भी नहीं जान सकते ब्रह्मा जी को नारायण जी ने वर दिया कि। भवानकल्पविकल्पेषुन विमुह्यतिकर्हिचित् जब तक सृष्टि है इसका नाम है कल्प और जब तक प्रलय बना रहे उसका नाम है विकल्प सो नारायणने ब्रह्माजी से कहा कि तुमको कभी मोह न होगा फिर वत्सहरण कथामें

लिखा कि ब्रह्मा मोहित होगये और बछड़े को हरलिया और उनी ब्रह्मा ने तो कहा था कि आप वासुदेव और देवकी के घर में जन्म लीजिये फिर कैसी गाढ़ी भांग पी लिई कि झट भूल गये कि यह गोप है वा विष्णु का अवतार है और भागवत बनाने वालेने ऐसा नशा किया है कि बड़ा अन्धकार इसके हृदय में है कि ऐसा बड़ा पूर्वा पर विरुद्ध लिखता है और जानता भी नहीं प्रिय व्रत की कथा उसने लिखी कि सात दिन तक सूर्योदय नहीं भया तब प्रिय व्रत रथ पै बैठ के सूर्य की नाई प्रकाशित होके घूमने लगा सो उस रथ के पहिये के लीक से सात दिन तक घूमने से सात समुद्र सप्त द्वीप बन गये इससे पूंछना चाहिये कि रथ के चक्र को इतनी बड़ी स्थूल लीक भई तो उस रथ के चक्र का क्या प्रमाण रथ अश्व और प्रिय व्रत के शरीर का क्या प्रमाण होगा एक रथ इस कथा से इतना स्थूल होगा कि पृथ्वी के ऊपर अवकाश नहीं हो सकता और सूर्य आकाश में भ्रमण करता है प्रिय व्रत ने पृथ्वी के ऊपर भ्रमण किया फिर जितना सूर्य का प्रकाश उतना उससे कभी नहीं हो सकता और सूर्य लोक के इतना स्थूल भी कभी नहीं हो सकता भूगोल के विषय में जैसा उसने लिखा है वैसा उन्मत्त भी न लिखे तथा सुमेरु पर्वतके विषय में जैसा लिखा है वैसा बालक भी नहीं लिखेगा सो ऐसी असंभव और मिथ्या कथा भागवत का करने वाला लिखता है श्री कृष्ण विद्वान धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे ऐसा महाभारतकी कथासे यथा-वत् निश्चय होताहै सो श्रीकृष्णको जैसी निन्दा इसने कराई

ऐसी किसी की न होगी क्योंकि उसने रास मंडल की कथा लिखी उसमें ऐसी २ बात लिखी जिस्से यथावत् श्री कृष्ण की निन्दा होय जैसे कि वृन्दावन से महावन छः कोस है वृन्दावनमें वंसी बजाई उसकाशब्द निकट २ गांव औरमथुरा में किसी ने नहीं सुना किन्तु जैसा बांदर उड़ के जाय वैसा शब्द उड़ के महावन में कैसे गया होगा फिर उस शब्द को सुन के महावन की स्त्रियां व्याकुल होगईं फिर उनके पतियों ने निरोध भी किया तो भी किसीने न माना फिर उलटा आभूषण और वस्त्र धारण करके वहां से चली सो छः कोस वृन्दावन में न जाने पक्षीकी नाईं उड़ गई होंगी पग का आभूषण नाकमें नाकका आभूषण पगमें कैसे धारण कर लेगी फिर श्रीकृष्णने गोपियोंसे कहाकि तुमने बड़ा बुराकाम किया इस्से तुम अपने २ घर को चली जाओ और अपनी २ पतिकी सेवा करो पतियों की आज्ञा भंग मत करो फिर गोपियां बोलीं कि ये झूठ पति हैं सत्य पति तो आप ही हैं हम उनके पास क्यों जाय आपको छोडके तबतो श्रीकृष्णभी प्रसन्न होगये औरहाथ से हाथ पकड़ के झट क्रीड़ा करने लगे सो छः मास की रात्रि कर दिई क्यों कि स्त्रियां बहुत थीं और कामातुर थी फिर श्रीकृष्ण ने भी बिचारा कि इनसे थोड़े काल में तृप्ति न होगी इस्से छः मास क्रीड़ाके वास्ते काल बनाया फिर क्रीड़ा करते२ अन्तर्ध्यान होगए फिर गोपियां बहुत व्याकुल होने लगीं और रोने लगीं तब श्रीकृष्ण फिर प्रसिद्ध हो गये तब फिर गोपी प्रसन्न होगईं फिरभी सब मिलके क्रीड़ा करने लगे फिर एकबार

एक गोपीको श्रीकृष्ण कंधे पर ले के बनमें भाग गए उस स्त्री का वीर्य स्राव होगया इसमें विचारना चाहिये कि श्रीकृष्ण कभी ऐसी बात न करेंगे इससे बहुत जगत् का अनुपकार होता है क्यों कि स्त्री लोग गोपियों का दृष्टान्त सुनके व्यभिचारिणी हो जांयगी तथा पुरुष भी श्रीकृष्ण का दृष्टान्त सुनके व्यभिचारी हो जांयगे ऐसी कथा से बहुत जगत का अनुपकार होता है फिर वहां परीक्षितने प्रश्न किया कि यह धर्मका उल्लंघन श्रीकृष्णने क्यों किया उसका शुकने उत्तर दिया ॥ धर्म व्यतिक्रमोदृष्टईश्वराणांचसाहसम् तेजीयसांनदोषायवन्हेः सर्वभुजोयथा इस का यह अभिप्राय है कि जो ईश्वर होता है सो धर्म का उल्लंघन कर्त्ता ही है किन्तु जैसा चाहै वैसा करे पर स्त्री गमन करले वा चोरी भी करले उनको दोष नहीं जैसे तेजस्वीपुरुष जो चाहै सो करले जैसी अग्नि सबको जला देती है और दोष नहीं लगता है वैसे कृष्णादिक समर्थ थे उनको भी दोष नहीं लगता इसमें विचारना चाहिये कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा थे ऐसा काम कभी नहीं करेंगे और जो श्रीकृष्ण ऐसा करते तो कुंभी पाक से कभी न निकलते इससे श्रीकृष्णने कभी ऐसा काम नहीं किया था क्योंकि वे बड़े धर्मात्मा थे ईश्वराणांवच सत्यं तथैवाचरितंक्कचित् इस का यह अभिप्राय है कि ईश्वर का वचन कहीं २ जैसे सत्य होता है वैसे आचरण भी सत्य कहीं २ होता है सर्वथा ईश्वर असत्य बोलता है और अधर्मको ही करते है किन्तु कदाचित् सत्य बचन बोलता है ईश्वर और सत्य आचरण इन से पूछना चाहिये की यह ईश्वर की बात

है वा उन्मत्त की वे कहते हैं कि जिसके कण्ठ में रुद्राक्ष वा तुलसी की माला न होय वा ललाटमें तिलक उनके मुख देखने से पाप होता है उन से कहो कि उनकी पीठ देखने से तो पुण्य होता होगा और वे कहें कि उनके हाथ से जल लेने में पाप होता है तो उन से कहो कि वह बग से जल देदे फिर तो कुछ पाप नही होगा ऐसी २ बातें लोगों ने मिथ्या बना लिई हैं और भागवत के विषय में हमने थोड़े से दोष देखा है परन्तु भागवत सबदोष रूप हीहै वैसेही अठारह पुराण अठारह उप-पुराण और सब तन्त्र ग्रन्थ वे नष्ट हो हैं इस्से कुछ जगत् का उपकार नही होता सिवाय अनुपकार के प्रश्न ब्रह्मा विष्णु महादेवादिक देव उनका निवास स्थान कहां है उत्तर महाभा-रत की रीति से और युक्ति से भी यह निश्चय होता है कि ब्रह्मादिक सब हिमालय में रहते थे क्यों कि इस भूमि में उन के चिन्ह पाये जाते हैं खांडव वन इन्द्र का बाग था पुष्कर में ब्रह्माने यज्ञ किया कुरुक्षेत्र में देवोंने यज्ञ किया अर्जुन और श्रीकृष्णसे इन्द्रादिकों का युद्ध होना तथा पांडवों से गान्धर्वों का युद्ध होना दमयन्ती के स्वयंवर में इन्द्रादिकों का आना अर्जुन का महादेव से पाशुपतास्त्रकासीखना तथा देवलोक में जाके विद्या का पढ़ना भीम का कुवेर पुरी में जाना तथा दश-रथ और कैकेयीका रथके ऊपर चढ़के देवासुर संग्राममें जाना सर्वत्र युद्ध देखने के वास्ते विमानों पर चढ़के देवों का आना इस देशवासियों का अनेकबार समागम का होना महोदधि और गंगा का ब्रह्मलोक से आना स्वर्गारोहिणी का कैलास से

निकलना अलक नन्दा का कुबेर पुरी से आना वसुधारा का वसुपुरी से गिरना नर और नारायण का बद्रिकाश्रम में तप का करना युधिष्ठिर का शरीर सहित स्वर्ग में जाना नारद का देव लोक से इस लोक में आना यज्ञों में देवों को निमन्त्रण देना और उनों का यज्ञों में आना नहुष के इन्द्र का होना युधिष्ठिर और यमराज का समागम का होना इस वक्त तक ब्रह्म लोक कैलास वैकुंठ इन्द्र वरुण कुबेर वसु-अग्नयादिक आठवसुपुरियों का इन सबके आज तक उत्तर खण्ड में प्रसिद्ध विद्यमानों का होना महाभारत और केदार खण्डादिकों में सब के जो २ चिन्ह लिखे हैं उनके प्रत्यक्ष का होना हिमालय की कन्या पार्वती से महादेव का विवाह होना वरुण की कन्या से नारायणका विवाह होना इत्यादिक हेतुओं से हिमालयमें ही देशलोक निश्चित था इसमें कुछ संदेह नहीं सो प्रथम जब सृष्टि भई थी इस्से क्या आया कि प्रथम सृष्टि मनुष्यों की हिमालय में भई थी फिर धीरे २ बढ़ते चले वैसे २ सब भूगोल में मनुष्य वास करते चले और फैलते भी चले सो जितने पुरुष हैं मनुष्य सृष्टि में वे सब हिमालय उत्तराख-ण्ड से ही बढ़े हैं सो उत्तराखण्ड में ३३ करोड़ मनुष्य प्रथम थे सब पर्वतों में मिलके फिर जब बहुत बढ़े तब चारों ओर मनुष्य फैल गये उनमें से विद्याबल बुद्धि पराक्रमादिक गुणों से जो युक्त थे वे ब्रह्मादिक देव कहातेथे और उनकी गद्दी पर जो बैठता था उनका नाम ब्रह्मा पड़ता था वैसे ही महादेव विष्णु इन्द्र कुबेर और वरुणादिक नाम पड़तेथे जैसे मिथिला-

पुरीमें जो गद्दी पर बैठता था उसका नाम जनक पड़ताथा तथा जो कोई राज्याभिषेक होके राज्य पर बैठे हैं उसका नाम पदवी के योग्य अब तक पड़ता जाता है जैसे अमात्यों का नाम दीवानलाट जज कलक्टर इत्यादिक नाम प्रत्यक्ष पड़तेही हैं परन्तु वे हिमालय वासी देव पदार्थ विद्या को हस्तक्रिया सहित अच्छी प्रकार से जानते थे उनमें से विश्वकर्मा बड़े पदार्थ विद्या युक्त थे अनेक प्रकार के यन्त्र अग्नि जलवायु इत्यादिक के योगसे विमानादिक रथ चलतेथे धर्मात्मा तथा जितेन्द्रियादिक श्रेष्ठ गुण वाले होते थे और बड़े शूरवीर थे नाना प्रकार के आकाश पृथिवी और जल में फिरने के वास्ते बना लेते थे आकाश में जो यान रचते थे उसका नाम विमान रखते थे सो उन मनुष्योंमें से बहुत दुष्ट कर्म करने वाले थे उनको हिमालय से निकाल दिये थे सो हिमालय से दक्षिणदेश में आकरहते थे फिर बड़े कुकर्म करने को लग गये थे उनका नाम राक्षस पड़ा था और कुछ उन डाकुओं मे से अच्छे थे उनका नाम दैत्य पड़ गया था इन दैत्य और राक्षसों से हिमालय वासी देवोंका वैर बन गया था जब उन देवों का बल होता था तब इनको मारते थे और उनका राज्य छीन लेते थे जब दैत्यादिकों का बल होता था तब देवों का राज्य छीन लेते थे और मारते भी थे एक शुक्राचार्य दैत्यों का गुरु था और बृहस्पति देवों का वे दोनों अपने अपने चेलों को विद्या पढाते थे जब जिसका बल बुद्धि पराक्रम बढता था उनका विजय होता था परन्तु, देवविद्या

ओं में सदा श्रेष्ठ होते थे और हिमालय में देवों के राज्य स्थान थे इस्से दैत्यों का अधिक बल नही चलता था सो अब उस हिमालय देवलोक में कोई नही है किन्तु सब जो पर्वत वासी हैं देवों का परीवार वही है आर्य्यावर्त्तादिक देशों में जितने उत्तम आचार वाले मनुष्य हैं वे देवों के परीवार हैं और जितने हवसी आदिक आज तक भी जो मनुष्यों के मांस को खालेते हैं वे राक्षस और दैत्यके कुल के हैं सो महाभारतादिक इतिहासों से स्पष्ट निश्चय होता है इसमें कुछ संदेह नही एक जयपुर में नाभाडोम जाति का था जिसका गुरु अग्रदास था सो उसको उनने चेला कर लिया था उसका नाम नाभादास रक्खा था सो वैरागियों का जूठ खाता था और जहां वैरागी लोक मुख हाथ धोते थे उसका जल पीता था सो वैरागियों के जूंठ अन्न और जूंठ जल खाने पीने से सिद्ध होगया इस प्रमाण से आजतक वैरागी लोक परस्पर जूंठ खाते हैं क्यों कि जैसे नाभा सिद्ध होगया वैसे हम लोक भी सिद्ध हो जांयगे परन्तु आज तक कोई जूंठ के खाने और पीने से सिद्ध नही भया इस्से यह भी निश्चित भया कि नाभा भी सिद्ध नही था उनने एक ग्रन्थ बनाया है उसका नाम भक्तमाल रक्खा है उसमें वैरागियोंका नाम सन्त रक्खा है सो पीपा की कथा उसने लिखी है उसकी स्त्री का नाम सीता था, सो उनके पास वैरागी दस पांच आए उनकेखानेपीनेकेवास्ते पीपाकेपास कुछनहीथा सोउसकीस्त्रीके पास कहा कि इन साधुओं के खाने के वास्ते कुछ ले आना

चाहिये क्यों कि उसको कोई उधार वा मांगने से नही देता था और उसकी स्त्री सीता रूपवती थी सो एक दुकानदार के पास गई और कहा कि हमको अन्न और घी तुम देओ तब वैश्य ने उसको देख के कहा कि तूं एक रातभर मेरे पास रहे तो तुझको मैं देऊं तब सीता ने कहा कि कुछ चिन्ता नही साधुओं कि सेवा के वास्ते मेरा शरीर है तब वैश्य ने अन्नादिक दिये और उन वैरागियों को भोजन उनने कराया फिर जब पहर रात्रि गई।तब पीपा से कहा की ऐसी बात कहके मैं पदार्थ ले आई हूं तब तो पीपा ने धन्यवाद दिया कि तूं बड़ी साधुओं की सेवक है परन्तु उस वक्त कुछ २ वृष्टि होती थी सो सीता को कन्धे पर ले जाके उस बनिये के पास पहुंचा दिया तब बनिये ने कहा कि वृष्टि होती है वृष्टि में तेरा पग भी नही भीजा फिर तूं कैसे आई तब सीता ने कहा कि तुझको इस बात का क्या प्रयोजन है तुझको जो करना होय सो कर तब वैश्य ने कहा कि तूं सच्च बोल सीता ने कहा कि मेरा पति कांधे पर चढ़ा के तेरे दुकान पै पहुंचा दिया तब तो वह वैश्य सीता के चरण में गिर पड़ा और कहा कि तूं और तेरा पति धन्य है क्यों कि तुमने संतो के वास्ते अपना शरीर भी बेच डाला यह सब बात उसकी अधर्मयुक्त और झूंठ है क्यों कि यह श्रेष्ठ पुरुषों का काम नही जो कि वेश्या और भडुओं का काम करै ऐसे ही धन्ना भगत का विना बीज से खेत जम गया नाम देव की पाषाण की मूर्त्ति ने दूध पी लिया मीराबाई पाषाण की मूर्त्ति में समा गई और कोई

भगत के पास से नारायण कुत्ता बन के रोटी उठाके भागे और मीरा विष पीने से भी नहीं मरी इत्यादिक भगत मालकी बात झूंठ है और एक परिकाल उन साधुओं की सेवा करता था जो कि चक्रांकित थे वह भी चक्रांकित था परन्तु वह परिकाल डांकूपने से धन हरण करके साधुओं को देता था सो एक दिन चोरी से वा डांकूपनसे धन नहीं पाया फिर बड़ा व्याकुल भया और घोड़े पर चढ के जहां तहां घूमता था सो नारायण एक धनाढ्य के वेष से रथ पैं बैठ के परिकाल को मिले सो झट परिकाल ने उनको घेर लिया और कहा कि तुमको मार डालूंगा नहीं तो तुम सब कुछ रख देओ परन्तु उनके रखने में कुछ देर भई सो झट उतर के नारायण के अंगुली में सोने की अंगुठियां थीं सो अंगुठी सहित अंगुली को काट लिई तब नारायण बड़े प्रसन्न भये और दर्शन दिया कि तूं बड़ा भक्त है देखना चाहिये कि नारायण भी कैसे अन्यायकारी हैं डांकूओं के ऊपर कृपा कर देते हैं अर्थात् डांकू और चोरों के संगी हैं फिर वे चक्रांकित लोग नित्य उपदेश सब करते हैं कि चोरी करके भी पदार्थ ले आवै और नारायण तथा वैष्णवों की सेवा में लगावैं तो भी वह बड़ा भक्त होता है और वैकुंठ को जाता है फिर वह परीकाल कोई बनिये के जहाज पर बैठ के समुन्द्र पार बनियों के साथ चला गया वहां बनियों ने जहाज में सुपारी भरी सो एक सुपारी का आधा खण्ड परिकाल ने जहाज में धर दिया और वैश्यों से कह दिया कि मैं आधी सुपारी पार आके ले लेऊंगा तब वैश्यों ने कहा कि

एक क्या दश तुम ले लेना तब परीकाल ने कहा कि नहीं मैं तो आधी ही लेऊंगा फिर जहाज पार को आ गया जब सुपारी जहाज से उतारने लगे तब परिकाल ने कहा कि आधी सुपारी हमको दे देओ तब वैश्य लोग सुपारी का आधा खण्ड देने लगे सो परीकाल बड़ा क्रोध करके सब से कहने लगा कि ये वैश्य मिथ्यावादी हैं क्यों कि देखो इस पत्र में आधी सुपारी मेरी लिखी है सो ये देते नहीं सो अत्यन्त धूर्त्तता करने लगा और लड़ने को तैयार भया फिर जाल-साजी करके आधी सुपारी नांव में से धरवा लिई उन वैरा-गियों के सेवा में सब धन लगा दिया सो ऐसी परीकाल की चक्रांकित के संप्रदाय में बड़ी प्रतिष्ठा है सो चक्रांकित के मन्त्रार्थ ग्रंथ में ऐसी बात लिखी है सो जितने संप्रदाई हैं वे अपने चेले को ऐसे २ उपदेश करके और ऐसे ग्रन्थों को सुना के पापों में लगा देते हैं फिर भगतमाला में एक कथा लिखी है कि एक साधू एक ब्राह्मण के घर में ठहरा था और ब्राह्मण उसकी सेवा करता था उसकी एक कुमारी कन्या थी उस्से वह साधू मोहित होगया सो उस कन्याको लेके रात्रिमें कुकर्म किया और खट्टिया के ऊपर दोनों नगे सोगये थे सो जब उस कन्याका पिता प्रातःकाल उठा तब दोनोंकोनंगे देखके अपनी चादर दोनों पर ओढा दीई औ सिपाहियों से कहा कि यह साधू भाग न जाय फिर वह बाहर चलागया तब वे दोनों उठे उठ के देखा कि वस्त्र किनने डाला सो कन्याने पहचान लिया कि मेरे पिताका यह वस्त्र है फिर वह कन्या डरके भाग

गई भाग के लिए गई और साधु भी वहां से निकल के जाने लगा तब सिपाहियोंने उसको रोक लिया तब तो साधू बहुत डरा तब तक कन्याका पिता बाहर से आया सो साधूके पास आके साष्टांग नमस्कार किया कि मेरा धन्य भाग्य है जो कि आपने मेरी कन्या का ग्रहण किया इससे मेरा भी उद्धार हो जायगा सो आप आनन्द से मेरे घर में रहिये और कन्या को भी मैंने आप को समर्पण कर दिया तब साधू बड़ा प्रसन्न हो के रहा और विषय भोग करने लगा इसको विचारना चाहिये कि बड़े अनर्थ की बात है क्यों कि ऐसी कथाको सुनके साधू और गृहस्थ लोग भ्रष्ट हो जाते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं फिर भक्तमाल में एक कथा लिखी है कि एक भक्त था उसके घर में साधू पाहुने आये फिर उन की सेवा के वास्ते पिता पुत्र दोनों चोरी करने के वास्ते गये सो एक बनिये की दुकान की भीत में सुरंग दे के पुत्र भीतर घुसा और पिता बाहर खड़ा रहा सो भीतर से घी चीनी अन्न निकाल के देता था और वह लेता था जब भीतर से बाहर निकलने लगा तब तक दुकान वाले जाग उठे सो उस के पग तो भीतर थे और सिर बाहर निकला था तब तक उसने उसके पग पकड़ लिये और सिर पकड़ लिया पिताने दोनों तर्फ खींचने लगे सो उसके पिता ने विचार किया कि हम पकड़ जायगे तो साधूओं की सेवा में हरकत होगी सो पुत्र का सिर काट के और घृतादिक पदार्थों को ले के भाग गया तब तक राज पुरुष आये और उनको

शरीर राज घर में ले गये और खोज होने लगा कि यह किस का है फिर वह अपने घर में चला गया और साधुओं के वास्ते भोजन बनाया और उनकी पंक्ती भई उस समयमें साधु ओं ने पूंछा कि कहां है तुमारा लड़का उसको जलदी बोला ओ तब उसके माता और पिता जो चोर उन्ने कहा कि कहीं चला गया होगा आजायगा आप तब तक भोजन कीजिये तब साधूओं ने कहा कि जब वह आवेगा तब हम लोग भोजन करेंगे अन्यथा नहीं तब उसकी माता ने रोके कहा कि वह तो मारा गया तब साधुओं ने पूंछा कैसे मारा गया कि हमारे घर में आपके सत्कार के हेतु पदार्थ नहीं था इस्से वे दोनों चोरी करने को गये थे वह मारा गया तब साधुओंने कहा कि उसका शरीर कहां है तब उन्ने कहा कि सिर हमारे घर में है और शरीर राज घर में है वे साधू लोग राज घरमें जाके शरीर ले आये शरीर और सिर का सन्धान करके थाल में रख दिया फिर वे साधू नाचने कूदने और गाने लगे फिरवह जो उठाऔरसाधुओंनेआनन्दसे भोजनकिया औरउनसे कहा साधुओं ने कितुम बड़े भक्तहो और स्वर्गमें तुम्हारा वास होगा इसमें विचारना चाहिये कि साधुओंकी आज्ञा होना और चोरी का करना फिर नरक में न जाना किन्तु स्वर्ग में जाना यह बड़ा मिथ्या कथा है ऐसी कथा को सुनके लोग सब भ्रष्ट बुद्धि हो जाते हैं ऐसी २ कथा सब भ्रष्ट भक्तमाल में लिखी हैं फिर भी लोगों की ऐसी मूर्खता है कि सुनते हैं और कर्ते हैं शिवपुराण मेंअघोरदशी प्रदोषव्रत जो कोईकरे वे नरकमें जांयगे

तन्त्र और देवी भागवतादिकों मे लिखा है नवरात्र का व्रत न करैं वे नरक में जांयगे तथा पद्म पुराणादिक में लिखा है कि दशमी दिग्पालों का एकादशी विष्णु का द्वादशी वामन का चतुर्दशी नृसिंह और अनन्त का अमावस्या पितृओं का पौर्णमासी चन्द्रका सो मत मतान्तरों से और पुराण तथा उपपुराणों से यह आया कि किसी तिथि में भोजन न करना और जल भी न पीना और जो कोई खाया वा पीया वह नरक को जायगा इस में वे कहते हैं कि जिस का बिवाह उस को गीत इस्से ऐसी कथा मे विरोध नहीं आता उन से पूछना चाहिये कि जिस का बिवाह होता है उस के गीत गाये जाते हैं परन्तु पहिले जिन के बिवाह भये थे और जिन के होने वाले हैं उनका खण्डन तो नहीं होता कि यही उत्तम है बा पहिले जिस्के बिवाह भये और जिनके होंगे उनको नीच तो नहीं बनाते इस्से ऐसे २ मूर्खता के दृष्टान्त से कुछ नहीं होता ऐसे २ श्लोक लोगों ने बना लिये हैं कि शीतलेत्वं जगन्माता शीतलेत्वं जगत्पिता शीतलेत्वंजगद्धात्री शीतलायैनमोनमः एक विस्फोटरोगहै उसकानाम शीतला रक्खागयाहै शीशीतला देवी ताहृशोवाहनः खरः शीतला अष्टमी को गधे की पूजा कर्ते हैं और हनूमानका रूप मानके वानरकी पूजा कर्ते हैं भैरवका बाहन कुत्ता को मान के पूजा कर्ते हैं तथा पाषाण पिप्पलादिक वृक्षतुलस्यादिक औषधी दूब और कुशादिक घास पित्तलादिक धातु चन्दनादिककाष्ठ, पृथ्वी, जल; अग्नि, वायु, जूता, और विष्ठा तक आर्यावर्त्त देशवाले पूजा कर्ते हैं इनको

सुख वा कल्याण कभी नहीं हो सक्ता जब तक इन पाखण्डों को आर्य्यावर्त्त वासी लोग न छोड़ेंगे तब तक इनका अच्छा कुछ नहीं होसक्ता फिर एक शालिग्राम पाषाण और तुलसी घास दोनों का बिवाह करते हैं तथा तड़ाग बाग कूपादिकों का बिबाह करते हैं औरनाना प्रकारकी मूर्तियां बना के मंदिर में रखते हैं उनके नाम शिव और पार्वती नारायण और लक्ष्मी दुर्गा काली भैरव बटुक ऋषि मुनि राधाऔरकृष्ण सीता और राम जगन्नाथ विश्वनाथ गणेश और ऋद्धि सिद्धि इत्यादिक रख लिये हैं फिर इनके पुजारी बहुत दरिद्र देखने में आते हैं और सब संसार से धन लेने के हेतु उपदेश करते हैं कि आवो यजमान धन चढ़ाओ देवताओं को नहीं तो तुमको दर्शन का फल न होगा आमनिया लेओ ठाकुर जी के हेतु बाल भोग ले आओ तथा राज भोगके वास्ते देओ और गहना चढ़ाओ तथा वस्त्र महादेव के वास्ते मंदिर बनवाओ और खूब आजीविका लगवाओ हम कहते हैं कि ऐसे दरिद्र देवता और महंत तथा पुजारी लोग आर्य्यावर्त्त के नाशके वास्ते कहांसे आ गये और कौन सा इसदेश का अभाग्य औरपाप था कि ऐसे २ पाखण्ड इस देश में चल गये फिर इनको लज्जा भी नहीं आती कि अपने पुरुषों का उपहास कर्त्ते हैं कियह सीता राम हैं इत्या-दिक नाम ले लेके दर्शन कराते हैं इसमें बड़ा उपहास है परन्तु समझते नहीं देखना चाहिये कि कृष्ण तो धर्मात्मा थे उनके ऊपर झूठ जाल भागवतमें लिखा है फिर उसी लीलाको रास मण्डल बना के कहते हैं उस किसी लड़केको कृष्ण बनाते हैं

किसीको राधा और गोपियां बना लेतेहैं तथा सीताराम और रावणादिक लड़कों को बनाके लीला करते हैं सो केवल बड़े लोगों का उपहास इसमें होता है और कुछ नहीं क्यों कि श्रीकृष्ण और रामादिकों के जो सत्य भाषणादिक व्यवहार तथा राजनीति का यथावत् पालना और जितेन्द्रियादिक सब विद्याओं का पढ़ना इन सत्य व्यवहारों का आचरण तो कुछ नहीं करते किन्तु केवल उपहासकी बातें तथा पापों को प्रसिद्ध करते हैं अपने कुगति के वास्ते दशसूनासमंचक्रं दशचक्रसमोध्वजः दशध्वजसमोवेशो दशवेशसमोनृपः ॥ यह मनु का श्लोक है इसका यह अभिप्राय है कि सूना नामहत्या सोदशहत्या केतुल्यजीवों को पीड़ा और हननचक्र से होता है सो तेली वा कुहार के व्यवहार से जीवों को दशगुण पीड़ा वा हनन होता है इस्से दशगुण धोबी वा मद्य के निकालने वालेके व्यवहार में सौगुण हत्या होती है तथा इस्से दशगुण हत्या वेष में होती है अर्थात् वेष किस को कहते हैं कि किसी का स्वरूप बनाना और नकल करना अर्थात् मूर्त्तिपूजन रामलीला और रास मण्डलादिक जितने व्यवहार हैं वे सब वेष में ही गिने जाते हैं क्यों कि उनका वेषधारण ही किया जाता है इस्से वेष में हजारहत्या का अपराध है तथा जो राजा न्याय से पालन नहीं करता और अन्याय कर्त्ता है वह इस्से हजार हत्या का स्वरूप है इस्से वेष बनाना वा बनवाना तथा देखना भी सज्जनों को न चाहिये और इन सब व्यवहारों को छोड़ना चाहिये और अच्छे व्यवहारों को करना चाहिये ऐसी

इस देश में नष्ट प्रवृत्ति भई है कि कोई ऐसा कहता है मारण मोहन उच्चाटन वशीकरण और विद्वेषणादिक मैं जानता हूं इनसे पूंछना चाहिये कि तूं जीवन मरे भये का भी करा सकता है वा नही सो कोई दैवयोग से मर जाता है वा कपट छल से विषादि दे के मार डालते हैं फिर कहते हैं कि मेरा पुरश्चरण सिद्ध हो गया यह बात सब झूंठ है कोई रोगी होता है उस को बतलाता है कि भूत चढ गया है फिर दूसरा बतलाता है कि इस के ऊपर शनैश्चरादिक ग्रह चढे हैं तीसरा कहता है किसी देवता की व्यार है चौथा कहता है कि किसी का श्राप लगा है ये सब बात मिथ्या हैं कोई कहता है कि मैं रसायन बनाता हूं और दूसरा कहता है कि मैं पारे की भस्म बनाता हूं उसको कोई खाले तो बुड्ढे का जवान हो जाता है यह भी मिथ्या ही जानना और बहुत से पाखण्डी लोग बहुत पुरुष और स्त्रियों से कहते हैं कि जाओ तुम को पुत्र होजायगा सो सब तो बन्ध्या होती ही नही हैं जो किसी को पुत्र होजाता है तब वह पाखण्डी कहता है कि देख मेरे वर से पुत्र हो गया औरों से भी कहता है कि मेरे वर से पुत्र हो गया वह स्त्री और उस का पति भी बकते रहते हैं कि बाबा जी के वर से मुझको पुत्र भया उनकी बात सुनके बहुत मूर्ख लोग मोहित होके बाबा जी की पूजा में लग जाते हैं फिर वह पाखण्डी धन पाके बडे २ अनर्थ करते हैं यह सब बात झूंठ हैं मुद्दाले और मुद्दई इन दोनों से धूर्त्त लोग कह देते हैं कि तुम्हारा विजय होगा सो दोनों का तो पराजय तो होता नही जिसका

विजय होता है उस्से खूब धन लेते हैं कि हमारे पुरश्चरण और वर से तेरा विजय भया है अन्यथा कभी न होता फिर बहुत बुद्धिहीन पुरुष इस बात से भी धन नाश करते हैं कोई कहता है कि जो कुछ होता है सो ईश्वर की इच्छा से ही होता है जैसा चाहता है वैसा करा लेता है और किसी के कुछ करने से होता नही सबको नचावै राम गोसांई ऐसे २ झूठ वचन बना लिये हैं इनसे पूछना चाहिये कि जो वह मिथ्या भाषण चोरी परस्त्रीगमनादिक कराता है तो वह बहुत बुरा है वह कभी ईश्वर वा श्रेष्ठ नही हो सकता कोई कहता है कि जो कुछ होता है सो प्रारब्ध से ही होता है इनसे पूछना चाहिये कि तुम व्यवहार चेष्टा क्यों करते हो सो पुरुषार्थ में ही सदा चित्त देना चाहिये अन्यत्र नही बहुत ऐसे२ बालकों को और स्त्रियों को बहकाते हैं कि वे जन्म तक नही सुधर सकते ऐसा कहते हैं कि वह माता पिता तो झूठ है तुम आजाओ नारायण के शरण और एक २ साधु हजार २ को मूड लेता है और बहका के पतित कर देते हैं उनका मरण तक कुछ सुकर्म नही होता क्यों कि सुधरे तो तब जो कुछ विद्या पढे और बुद्धि होती फिर एक घर को छोड देते हैं और माता पिता की सेवा भी छोड देते हैं फिर कुटी मठ और मन्दिरों को बना के हजारहों प्रकार के जाल में फस जाते हैं उनसे पूछना चाहिये कि तुम लोगोंने घर और माता पिता-दिक क्यों छोडे थे तब वे कहते हैं कि ऐसा सुख घरमें नही है ठीक है कि घरमें छप्परके नीचे रहना पडता था मजूरी मेहनत

से चना और जव का आटा भी पेट भर नही मिलता था सो आर्य्यावर्त्त में अन्धकार पूर्ण है नित्य मोहन भोग मिलता है और नित्य नये भोग ऐसा सुख स्त्री का भी गृहाश्रम न में ही होता इससे गृहाश्रम में कुछ है नही देखिये कि एक रुपैया कोई मन्दिर में चढ़ाता है उसको एक आने का प्रसाद देते हैं कभी नही देते हैं परन्तु हम लोगों ने इसको विचार लिया है कि सोलह पचासमी और हजार गुना तक भी इस मन्दिर के दुकानदारो में तथा तीर्थ में होता है अन्यत्र कैसी ही दुकानदारी करो तो भी ऐसा लाभ नही होता क्यों कि खाना नित्य नयी स्त्रियां और नित्य नाना प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति अन्यत्र कहीं नही होती सिवाय मन्दिर पुराणादिकों की कथा और चेलों के मूड़नेमे इससे आप हजार कहो हम लोग इस आनन्द को छोड़ने वाले हैं नही अच्छा हमने भी जान लिया है कि जब तक यजमान विद्या और बुद्धि युक्त नही होंगे तब तक तुम लोग कभी नही छोड़ोगे परन्तु कभी दैव योग से विद्या और बुद्धि आर्य्यावर्त्त में होगी फिर तुमको और तुमारे पाखण्डोंको वे सेवक और यजमानही छोड़ेंगे तब पीछे झक मारके तुम लोग भी छोड़ देओगे ऐसे२ मिथ्या मत चलगये हैंकि कानकोफाड़के मुद्राको पहरनेसे योगी और मुक्ति होतीहै सो इनके मतमें मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथदो आचार्य भये हैं उनने यह मत चलाया उनको शिव का अवतार और सिद्ध मानते हैं नमःशिवाय उनका मन्त्र है और अपने मत का शिवजय भी बना लिया है और जलंधर पुराण हठ प्रदीपिका

गोरक्षशतकादिक बना लिये हैं फिर कहते हैं ये ग्रन्थ महादेवने बनाये हैं उनका अनाचार वाम मार्गियों की नांई है क्यों कि जैसे वाम मार्गी लोग श्मशान मे पुरश्चरण करते हैं तथा मनुष्य कपाल खाने पीने के वास्ते रखते हैं तथा रजस्वला स्त्री का वस्त्र शिखा वा बाहु में बांध रखते हैं इस्से अपने को धन्य मानते हैं और ऐसे २ प्रमाण मान लेते हैं रजस्वलास्ति-पुष्करंचाण्डालीतुस्वयं काशीव्यभिचारिणी तुब्राह्मस्यात्पुंश्चली-तुकुरुक्षेत्रंयमुनाचर्म कारिणी इत्यादिक वचनोंमे वे ऐसा मानते हैं कि इन स्त्रियों के साथ समागम करने से इन तीर्थों का फल प्राप्त होता है फिर वे ऐसे २ श्लोक कहते हैं कि हालांपि-बतिदीक्षितस्यमंदिरे सुप्तोनिशायांगणिका गृहेषु दीक्षित नाम रक्खा है मद्य बेचने वाले का उस के घरमे जो पुरुष निर्भय और निर्लज्ज हो के मद्य पीता है फिर वेश्या के घरमे जाके उससे समागम करे और वहीं सो जाय उस का नाम सिद्ध और महावीर रखते हैं और लज्जादिक आठ पाशों को छोड़दे तब वह शिव होता है इसमें ऐसा प्रमाण करते हैं॥ पाशबद्धोभवेज्जीवः पाशमुक्तःसदाशिवः अर्थात जितने व्यभिचारादिक पाप कर्म हैं उनके करनेमें लज्जादिक जब तक करता है तब तक वह जीव है जब निर्लज्जादिक दोषों से युक्त होता है तब सदा शिव हो जाता है देखना चाहिये, कि यह कैसी मिथ्या बात उनकी है फिर उनने मद्य का नाम तीर्थ रक्खा है मांस का नाम शुद्धि मत्स्य का नाम तृतीया रोटी का नाम चतुर्थी और मैथुनका नाम पंचमी। अब वे आपस में बात करते

हैं कि ले आओ तीर्थ और पीयो इस वास्ते इनने ऐसे नाम रख लिये हैं कि कोई और न जाने और जितने वाम मार्गी हैं उन के कौलवीर भैरव आर्द्र और गण ये पांच नाम रख लिये हैं स्त्रियों के नाम भगवती देवी दुर्गा काली इत्यादिक रख लिये हैं और जो उन के मत में नही हैं उन का नाम पशु कण्टक शुष्क और विमुखादिक नाम रख लिये हैं सो केवल मिथ्या जाल उन का है इस को सज्जन लोग कभी न मानै वैसे ही कान फटे नाथों का व्यवहार है क्योंकि वे भी स्मशान में रहते हैं मनुष्यों का कपाल रखते हैं वाम मार्गियों से वे मिलते हैं इत्यादिक बहुत नष्ट व्यवहार आर्यावर्त्त मे चल जाने से देश का श्रेष्ठ व्यवहार नष्ट हो गया और सब देश खराब हो गया परन्तु आज कल अंगरेज के राज्य से कुछ २ सुधरता और सुख भया है जो अब अच्छे २ ब्रह्मचर्याश्रमादिक व्यवहार वेदादिक विद्या और पाखण्ड पाषाण पूजनादिकों का त्याग करैं तो इनको बहुत सुख हो जाय क्यों कि राज्य का आज काल बहुत सुख है धर्म विषय में जो जैसा चाहै वैसा करै और नाना प्रकार के पुस्तक भी यन्त्रालयों के स्थापने से सुगमता से मिलते हैं अच्छे २ मार्ग शुद्ध बन गये हैं तथा राजा और दरिद्र की भी बात राज घरमे सुनी जाती है कोई किसी का जबरदस्ती से पदार्थ नही छीन सक्ता अनेक प्रकार की पाठशाला विद्या पढनेके वास्ते राज प्रेरणासे बनती हैं और बनी भी हैं उनमे बालकों की यथावत् शिक्षा होती है और पढने से आजीविका भी राज घरमे पढने वाले की होती

है किसी का बन्धन वा दण्ड राज्य में नहीं होता जिसमें जिस का खुशी होय उस को वह करै अपनी प्रसन्नता से अत्यन्त देश में मनुष्यों की वृद्धि भई है और पृथिवी भी खेत आदिकों से बहुत होगई है वनादिक नहीं रहे हैं लड़ाई बखेड़ा गदर कुछ इस वक्त नहीं होते हैं और व्यवस्था राज प्रबन्धसे सब प्रकार से अच्छी बनी है परन्तु कितनी बात हम को अपनी बुद्धि से अच्छी मालूम नहीं देती हैं उन को प्रकाश करते हैं न जाने वे बड़े बुद्धिमान हैं उनने इन बातों में गुण समझा होगा परन्तु मेरी बुद्धिमें गुण इन बातों में नहीं देख पड़ते हैं इस्से इन बातों को मैं लिखता हूं एक तो यह बात है कि नोन और पौन रोटी में जो कर लिया जाता है वह मुझ को अच्छा नहीं मालूम देता क्यों कि नोन के बिना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं होता किन्तु सब को नोन का आवश्यक होता है और वे मजूरी मेहनत से जैसे तैसे निर्वाह करते हैं उनके ऊपर भी यह नोन का दण्ड तुल्य रहता है इससे दरिद्रों को क्लेश पहुंचता है इस्से ऐसा होय कि मद्य अफीम गांजा भांग इनके ऊपर चौगुना कर स्थापन होय तो अच्छी बात है क्यों कि नशादिकों का छूटना ही अच्छा है और जो मद्यादिक बिलकुल छूट जांय तो मनुष्यों का बड़ा भाग्य है क्यों कि नशा से किसी का कुछ उपकार नहीं होता परन्तु रोग निवृत्ति के वास्ते औषधार्थ तो मद्यादिकों की प्रवृत्ति रहना चाहिये क्यों कि बहुत से ऐसे रोग हैं कि जिनके मद्यादिक ही निवृत्तिकारक औषध हैं सो वैद्यक शास्त्र की

रीति से उन रोगों की निवृत्ति हो सकी है तो उनको ग्रहण करै जब तक रोग न छूटे फिर रोग के छूटने से पीछे मद्यादिकों को कभी ग्रहण न करैं क्यों कि जितने नशा करने वाले पदार्थ हैं वे सब बुध्यादिकों के नाशक हैं इस्से इनके ऊपर ही कर लगाना चाहिये और लवणादिकों के ऊपर न चाहिये पौन रोटी से भी गरीब लोगों को बहुत क्लेश होता है क्यों कि गरीब लोग कहीं से घास छेदन करके ले आये वा लकडी का भार उनके ऊपर कौडियों के लगने से उनको अवश्य क्लेश होता होगा इस्से पौन रोटी का जो कर स्थापन करना सो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं तथा चोर डाकू परस्त्रीगामी और जूआके करने वाले इनके ऊपर ऐसा दण्ड होना चाहिये कि जिसको देख वा सुनके सब लोगों को भय हो जाय और उन कामों को छोड दे क्यों कि जितने अनर्थ होते हैं वे सब उन से ही होते हैं सो जैसा मनु स्मृति राज धर्म में दण्ड लिखा है वैसा ही करना चाहिये जब कोई चोरी करै तब यथावत् निश्चय करके कि इसने अवश्य चोरी किई है कुत्ते के पंजे की नांई लोहे का चिन्ह राजा बना रक्खे उसको अग्नि में तपा के ललाटके भौंके बीच में लगादे कुछ बेत भी उसको मारदे और गधे पैं चढाके नगर के बीच में बजार में जूतियां भी लगतीं जाय और घुमाया करै फिर उसके कुछ धन दण्ड दे अथवा थोडे दिन जह-लखान रक्खे वहां सूखे चने पाव भर तक खाने को दे और रात भर पिसवावै न पीसे तो वहां भी उसको जूते बैठें और

दिवस में भी कठिन काम उस्से करावे जब तक वह निर्बल न हो जाय परन्तु ऐसा बहुत दिन न रक्खे जिस्से कि मर न जाय फिर उसको दो तीनदिनतक शिक्षा करै कि सुन भाई तैंने मनुष्य होके ऐसा बुरा काम किया कि तेरे ऊपर ऐसा दण्ड हुआ हमको भी तेरा दण्ड देख के बड़ा हृदय में दुःख भया और आप भले आदमी होके व्यवहार करना फिर ऐसा काम कभी न करना चाहिये अच्छे २ काम करना चाहिये जिस्से राजघर में और सभा में तथा प्रजा में तुम लोगों की प्रतिष्ठा होय और आप लोगों के ऊपर ऐसा कठिन जो दण्ड दिया गया सो केवल आप लोगों के ऊपर नहीं किन्तु सब संसार के ऊपर यह दंड भया है जिस्से इस दण्ड को देख या सुन के सब लोग भय करैं और फिर ऐसा काम कोई न करैं ऐसे शिक्षा जितने बुरे कर्म करने वाले हैं उनको दण्ड के पीछे अवश्य करनी चाहिये क्यों कि दण्डका तो सदा उसको स्मरण रहे और हठी न विरोधीन बन जाय इस वास्ते शिक्षा अवश्य करना चाहिये केवल शिक्षा व केवल अत्यन्त दण्ड से दोनों सुधर नहीं सके किन्तु दोनों से मनुष्य सुधर सके हैं फिर भी बड़ी चोरी करै तो उसका हाथ काट डालना चाहिये फिर भी वह न मानै तो उसको बुरी हवाल से मार डालना चाहिये किसी दिन उसकी आंखें निकाल डालै किसी दिन कान किसी दिन नाक और सब जगह घुमाना चाहिये कि जिसको सब देखैं फिर बहुत मनुष्यों के सामने उसको कुत्ते से चिथवा डालैं ऐसा दण्ड एक पुरुष को होय तो उसके

राज्य भरमें कोई चोरीकी इच्छा भी न करेगा और राजाको भी इनके प्रबन्ध में बड़ा आनन्द होगा नही तो बड़े प्रबन्ध में क्लेश होते हैं साधारण दंड से वे कभी सूधे होंगे नहीं डाकुओं को भी चोर की नाई दंड देना चाहिये और जूआ क-रने वालों को एक बार करने से ही बुरी हवाल से जैसा की चोरी का लिखा गधे पर चढ़ानादिक सब करके फिर कुत्तेसे चिथवा डालना चाहिये क्यों कि चोरी परस्त्री गमन और जितने बुरे कर्म हैं वे जुआरी से ही होते हैं इससे उनके सहाय करने वाले को भी ऐसा दण्ड देना चाहिये क्योंकि जितने लड़ाई दंगा चोरी पर स्त्री गमनादिक इनसे ही उत्पन्न होते हैं इससे इनके ऊपर राजा दण्ड देने में कुछ थोड़ाभी आलस्य न करै सदा तत्पररहै महा भारतमें एक दृष्टान्त लिखा है किसोने चांदी अच्छे २ पदार्थ धरे रहैं उसको कोई न स्पर्श करै तब जानना कि राजा है और धनाढ्य लोग लाखहां रुपैयोंकी दुकान का किवाड़ कभी नही लगावै और रात दिन कोई किसीका पदार्थ न उठावै तब जानना कि राजा है धर्मात्मा इस वास्ते ऐसा उग्रदण्ड चाहिये कि सब मनुष्य न्याय से चलैं अन्याय से कोई नही जब स्त्री वा पुरुष व्यभि-चार करैं अर्थात पर पुरुष से स्त्री गमन करै पर स्त्री से पुरुष जब उनका ठीक २ निश्चय हो जाय तब स्त्री के ललाट में अर्थात् भौंके बीच मे पुरुष के लिंगेन्द्रिय का चिन्ह लोहे का अग्नि में तपा के लगा दे तथा पुरुष के ललाटमें स्त्रिके इन्द्रिय का चिन्ह लगा दे फिर जिसको सब देखा करैं फिर उनको

भी खूब फजीहत करैं और कुछ धन दण्ड भी करैं पीछे उसी प्रकार से शिक्षा भी करैं सबको फिर भी वे न मानैं और ऐसा काम करैं तब बहुत स्त्रियों के सामने उस स्त्री को कुत्तों से चिथवा डाले और पुरुषको बहुत पुरुषोंके सामने लोहे के तख्त को अग्निसे तपाके सोवाई उसके ऊपर फिर उसके ऊपर घुमावे उसी पर्यंकके ऊपर उसका मरण हो जाय फिर कोई पुरुष व्यभिचार कभी न करेगा ऐसा दण्ड देख के वा सुन के और सर्कार कागद को बेचती है और बहुत सा कागजों पर धन बढा दिया है इससे गरीब लोगों को बहुत क्लेश पहुंचता है सो यह बात राजा को करनी उचित नही क्योंकि इसके होने से बहुत गरीब लोग दुःख पाके बैठ रहते हैं कचहरी में बिना धन से कुछ बात होती नही इससे कागजों के ऊपर जो बहुत धन लगाना है सो मुझको अच्छा मालूम नही देता इसको छोडने से ही प्रजा में आनन्द होता है क्योंकि थाने से लेके आगे २ धन का ही खर्च देख पडता है न्याय होना तो पीछे फिर नाना का प्रकार के लोग साक्षी झूंठ सच्च बना लेते हैं यहां तक कि सच्च खाने को दे देओ और झूंठ गवाही हजार तक देया देओ जो जैसा मनुमें दण्ड लिखा है वैसा दण्ड चले तो खाने पीने के वास्ते झूंठी साक्षी देने को कोई तैयार नही होय प्रवाङ्तरकमर्येति प्रेत्यस्वर्गाच्चहीयते इसका यह अभिप्राय है कि जब यह निश्चयहो जाय कि इसने झूंठ साक्षी दिई तब उसकी जीभ कचहरी के बीचमें काट ले वहां अवाक् नाम जीभ रहित जो नरक भोग उसको प्रत्यक्ष होय क्यों कि राजा

प्रत्यक्ष न्याय कर्त्ता है उसी तरह उसको प्रत्यक्ष ही फल होना चाहिये और जितने अमात्य विचार पति राज घर में होवें उनके ऊपर भी कुछ दण्ड व्यवस्था रखनी चाहिये क्योंकि वे भी अत्यन्त सच झूंठ के विचार में तत्पर होके न्याय ही करने लगें देखना चाहिये कि एक के यहां अर्जी पत्र दिया उसके ऊपर विचार पति ने विचार करके अपनी बुद्धि और कानून की रीति से एक की जीत किई और दूसरे का पराजय जिसका पराजय भया उसने उसके ऊपर जो हाकिम होता है उसके पास फिर अपील करी सो प्रायः जिसका प्रथम विजय भया था उसकी दूसरे स्थानमें पराजय होता है और जिसका पराजय होता है उसका विजय फिर ऐसे ही जब तक धन नही चूकता दोनों का तब तक विलायत तक लड़ते ही चले जाते हैं प्रायः रईस लोग इस बात से हठ के मारे बिगड़ जाते हैं इससे क्या चाहिये कि विचार करने वाले के ऊपर भी दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिये जिस्से वे अत्यन्त विचार करके न्याय ही करैं ऐसा आलस्य न करैं कि जैसा हमारी बुद्धि में आया वैसा कर दिया तुमको इच्छा होय तो तुम जाओ अपील कर देखो ऐसी बातोंसे विचारपति भी आलस्य में आ जाते हैं और विचार पति को अत्यन्त परीक्षा करनी चाहिये कि अधर्म से डरते होय और विद्या बुद्धि से युक्त होय काम क्रोध लोभ मोह भय शोकादिक दोष जिनमें न होय और अन्तर्यामी जो सबका परमेश्वर उस्से ही जिनको भय होय और से नहीं सो पक्षपात कभी न करैं किसी प्रकारसे तब उस राजा की प्रजा को सुख हो सकता है अन्यथा नहीं और

पुलिस का जो दरजा है उसमें अत्यन्त भद्र पुरुषों को रखना चाहिये क्योंकि प्रथम स्थान न्याय का यही है इस्से ही आगे प्रायः वादविवाद के व्यवहार चलते हैं इस स्थान में जो पक्षपात से अनर्थ लिखा पढ़ा जायगा सो आगे भी अन्यथा प्रायः लिखा पढ़ा जायगा और अन्यथा व्यवहार भी प्रायः हो जायगा इस्से पुलीस में अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुषों को रखना चाहिये अथवा पहिले जैसे चौकीदार महल्ले२ में एक २ रहता था उस्से बहुधा अन्याय नहीं होता था जबसे पुलिस का प्रबन्ध भया है तब से बहुधा अन्यथा व्यवहार ही सुनने में आता है और गाय बैल भैंसी छेरी भेंडी आदिक मारे जाते हैं इस्से प्रजा को बहुत क्लेश प्राप्त होता है और अनेक पदार्थों की हानि भी होती है क्योंकि एक गैया दस १० सेर दूध देती है कोई ८ सेर छः ६ सेर पांच ५ सेर और दो २ सेर तक उसके मध्य छः २ सेर नित्य दूध गिना जाय कोई दस १० मास तक दूध देती है कोई छः ६ मास तक उसका मध्यस्थ आठ मास तक गिना जाता है सो एक मास भर में सवा चार मन दूध होता है उसमें चावल डालके चीनी भी डाल दें तो सौ पुरुष तृप्त हो सक्ते हैं जो ऐसे ही पावें तो ८० पुरुष तृप्त हो जायगे और ८०० वा ६५० पुरुष तृप्त होसक्ते हैं कोई गाय १५ दफे बियाती है कोई दस दफे उस का हमने १२ घर रख लिये सो १६००से पुरुष तृप्त हो सक्ते हैं फिर उसके बछडे और बछियां बढ़ेंगी उनसे बहुत बैल और गाय बढ़ेंगी एक

गाय से लाख मनुष्यों का पालन हो सक्ता है उसको मारके मांस से ८० पुरुष तृप्त हो सक्ते हैं फिर दूध और पशुओं की उत्पत्ति का मूल ही नष्ट हो जाता है जो बैल आर्यावर्त्त में पांच रुपैयों से आता था सो अब ३० से भी नही आता और कुछ गांव और नगर के पास पशुओं के चरने के वास्ते उस की सीमामें भूमि रखनी चाहिये जिसमें कि वे पशु चरैं जैसी दुग्धादिक से मनुष्य शरीर की पुष्टि होती है वैसी सूखे अन्ना-दिकों से नही होती और बुद्धि भी नही बढती इस्से राजा को यह बात अवश्य करनी चाहिये कि जिन पशुओं से मनुष्य के व्यवहार सिद्ध होते हैं और उपकार होता है वे कभी न मारे जांय ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये जिस्से सब मनुष्योंको सुख होय वैसा ही प्रजास्थ पुरुषोंको भी करना उचित है सो राजा से प्रजा जिस्से प्रसन्न रहे और प्रजा से राजा प्रसन्न रहे यही बात करनी सबको उचित है देखना चाहिये कि महाभारत में सगर राजा की एक कथा लिखी है उसका एक पुत्र असमंजा नाम था उसको अत्यन्त शिक्षा किई गई परन्तु उसने अच्छा आचार वा विद्या ग्रहण नहीं किई और प्रमाद में ही चित्त देता था सो उसकी युवावस्था भी हो गई परन्तु उसको शिक्षा कुछ न लगी राजादिक श्रेष्ठ पुरुषों को उसके ऊपर प्रसन्नता नही भई फिर उसका विवाहभी करा दिया एक दिन सजूं में असमंजा स्नान के लिये गया था वहां प्रजा के बालक आठ २ दश २ बरस के जल में स्नान करते थे और क्रीडा भीकर्ते थे सो उनमें से एक बालक बाहर निकला उसको

पकड़ के असमंजा ने गहिरे जल में फेंक दिया सो बालक डूबने लगा तबतक कोई प्रजास्थ पुरुष ने बालक को पकड़ लिया उसके शरीर में जल प्रविष्ट होने से वह मूर्छित हो गया उसकी दशा देख के असमंजा बहुत प्रसन्न भया और हस के घर को चला गया कोई बालक उसके पिता के पास गया और कहा कि तुमारे बालककी यह दशा है राजा के पुत्र ने कर दिई सुनके उसकी माता पिता और सब कुटुंब के लोग दुःखी भये उसको देख के फिर उस बालक को उठाके जहां सगर राजा की सभा लगी थी वहां को चले राजा सभा के बीच में सिंहासन पें बैठे थे सो उनको आते दूर से देखके झट उठ के उनके पास चले गये और पूंछा कि इस बालक को क्या भया तब उनकी माता रोने लगी राजा ने देख के बहुत उनका धैर्य दिया कि तुम रोओ मत बात कह देओ कि क्या भया तब बालक का पिता बोला कि हमारे बड़े भाग्य हैं कि आपके जैसे राजा हम लोग के ऊपर हैं दूर से देख के प्रजा के ऊपर कृपा करके पूंछना और दौड़ के आना यह बड़ा प्रजा का भाग्य है इस प्रकार का राजा होना फिर राजा ने पूंछा कि तुम अपनी बात कहो तब उसने राजा को कहा कि एक तो आप हैं और एक आपका पुत्र है जो कि अपने हाथसे ही प्रजाको मारनेलगा और जैसा भया था वैसा सच्चा२ हालराजासेकहदिया तबराजाने वैद्योंको बोलाके उसका जल निकलवा डाला और औषधों से उसी वक्त स्वस्थ बालक

होगया फिर सभा के बीच में बालक उसकी मात पिता और जिसने बालक निकाला था वह भी वहां था फिर राजा ने सिपाहियों को आज्ञा दिई कि असमंजा कि मुसके चढ़ा के ले आओ सिपाई लोग गये और वैसे ही उसको बांध के ले आये असमंजा की स्त्री भी संग २ चली आई और सभा म खड़े कर दिये राजा ने पुत्र की स्त्री से पूंछा कि तूं इसके साथ जाने में प्रसन्न है वा नहीं तब उसने कहा कि अब जो दुःख वा सुख हो सो होय परन्तु मेरे अभाग्य से ऐसा पति मिला सो मैं साथ ही रहूंगी पृथक् नहीं तब राजाने असमंजा से कहा कि तेरा कुछ भाग्य अच्छा था कि यह बालक मरा नहीं जो यह मर जाता तो तुझको बुरे हवाल से चोर की नाईं मैं मार डालता परन्तु तुझको मैं मरण तक बनबास देता हूं सो तूं कभी गांव में वा नगर में अथवा मनुष्यों के पास खड़ा रहा वा गया तो तुझको चोर की नाईं मार डालेंगे इससे तू ऐसे बन जाके रह कि जहां मनुष्य का दर्शन भी न होय सिपाहियों से हुकुम दे दिया कि जाओ तुम घोर बन में इन दोनों को छोड़ आओ उसको न वस्त्र दिये अच्छे २ न स्वारी दिई न धन दिये किन्तु जैसे सभा से दोनों खड़े थे वैसे ही छोड़ आये फिर वे बन में रहे और उन दोनों से बन में ही पुत्र भया उसकी स्त्री अच्छी थी सो अपने पास ही बालक को रक्खा और शिक्षा भी किई जब पांच वर्ष का भया तब ऋषियों के पास पुत्र को वह स्त्री रखने आई और ऋषियोंसे

कहा कि महाराज यह आपका ही बालक है जैसे यह अच्छा बने वैसा कीजिये तब ऋषि बहुत प्रसन्न होके उसको रक्खा कि इसको अच्छी प्रकार से शिक्षा किई जायगी क्यों कि यह सगर का पौत्र है फिर स्त्री चली गई अपने स्थान पर और ऋषि लोगों ने उस बालक के यथावत् संस्कार किये विद्या पढाई और सब प्रकार की शिक्षा भी किई और उसने यथावत् ग्रहण किई जब वह २८ वरस का होगया तब उसको लेके सगर राजा के पास से ऋषि लोग गये और कहा कि यह आपका पौत्र है इसकी परीक्षा कीजिये सो राजा ने उसकी परीक्षा किई और प्रजास्थ श्रेष्ठ पुरुषों ने भी सो सब गुण और विद्या में योग्य ही ठहरा तब प्रजास्थ पुरुषों ने राजा से कहा कि असमंजाम जो आपका पौत्र सो राजा होने के योग्य है तब राजाने कहा कि सब बुद्धिमान प्रजास्थ जो श्रेष्ठ पुरुष उनकी प्रसन्नता और सम्मति होय तो इसका राज्याभिषेक हो जाय फिर सब श्रेष्ठ लोगों ने सम्मति दिई और उसका राज्याभिषेक भी होगया क्यों कि सगर राजा अत्यन्त वृद्ध हो गये थे राज्य कार्य में बहुत परिश्रम पडता था सो सब अधिकार उसके ऊपर देदिया परन्तु आपन भी जितना हो सका था उतना करते थे राजा ऐसा ही होना चाहिये कि एक भरत राजा था जिसके नाम से इस देश का भरतखण्ड नाम रक्खा गया है उससे भी नव पुत्र थे सो २५ वर्ष के ऊपर सब होगये थे परन्तु मूर्ख और प्रमादी थे राजा ने और प्रजास्थ

पुरुषों ने विचार किया कि इनमें से एक भी राजा होने के योग्य नही सो भरत राजा ने इश्तिहार करके पुरुष और स्त्री लोगों को बोलाया जोप्रतिष्ठित राजा औरप्रजास्थ थे सो एक मैदान में समाज स्थान बनाया उसके बीच में एक मंचान भा गाड दिया सो जब सब लोग एक दिन इकट्ठे भये परन्तु किसी को विदित न भया कि राजा क्या करेगा और क्या कहेगा फिर मंचान के ऊपर राजा चढ के सब से कहाकि जिन राजा अथवा प्रजास्थ रहीस लोगों का पुत्र इस प्रकार दुष्ट होय उसको ऐसा ही दण्ड देना उचित है जो कि इस वक्त हम अपने पुत्रों को देंगे सो सदा सब सज्जन लोग इस रीति को मानैं और करैं फिर मंचान से उतरे और नव पुत्र भी बीच में खड़े थे सब समाज वाले देख भी रहे थे और उनकी माता भी सो सबके सामने खड्ग हाथ में लेके नवों का सिर काट के और मंचान के ऊपर बांध दिये फिर भी सबसे कहाकि जो किसी का पुत्र ऐसा दुष्ट होय उसको ऐसा ही दण्ड देना चाहिये क्यों कि जो हम इनका सिर न काटते तो ये हमारे पीछे आपस में लड़ते राज्य का नाश करते और धर्म की मर्यादा को तोड डालते इससे राजपुत्र वा प्रजास्थ जो श्रेष्ठ धनाढ्य लोग उनको ऐसा ही करना उचित है अन्यथा राज्य धन और धर्म सब नष्ट हो जांयगे इसमें कुछ संदेह नही देखना चाहियेकि आर्यावर्त्त देश मे ऐसे २ राजा और प्रजास्थ श्रेष्ठ पुरुष होते थे सो इस वक्त

आर्य्यावर्त्त देशमें ऐसे भ्रष्टाचार हो गये हैं की जिनकी संख्या भी नही हो सकी ऐसा सर्वत्र भूगोल में देश कोई नही ऐसा श्रेष्ट आचार भी किसी देश मे नही था परन्तु इस वक्त पाषाणादिक मूर्ति पूजनादिक पाखण्डों से चक्रांकितादिक संप्रदायों के वाद विवादों से भागवतादि ग्रन्थों के प्रचार से ब्रह्मचर्य्याश्रम और विद्या के छोडने से ऐसा देश बिगडा है कि भूगोल में किसी देश की नही जैसी कि दुर्दशा महाभारत के युद्ध के पीछे आर्य्यावर्त्त देश की भई है सो आज काल अंगरेजके राज्य मे कुछ २ सुख आर्य्यावर्त्त देशमें भया है जो इस वक्त वेदादिक पढने लगें ब्रह्मचर्य्याश्रम आश्रम चालीस वर्ष तक करें कन्या और बालक सब श्रेष्ट शिक्षा और विद्या वाले होवें इन मत मतान्तरोंके वादविवाद आग्रहों को छोडें सत्य धर्म और परमेश्वर की उपासना में तत्पर होवें तो इस देश की उन्नति और सुख हो सक्ता है अन्यथा नही क्यों कि विना श्रेष्ट व्यवहार विद्यादिक गुणों से सुख नही होता आज काल जो कोई राजा जमीदार व धनाढ्य होता है उनके पास मतमतान्तर के पुरुष और खुशामदी लोग बहुत रहते हैं वे बुद्धि धन और धर्म नष्ट कर देते हैं इस्से सज्जन लोग इन बातों को विचार के समझले और करने के व्यवहारों को करें अन्यथा नही एक ब्रह्म समाज मत चला है वे ऐसा मानते हैं नित्य परमेश्वर सृष्टि कर्त्ता है अर्थात् जीवादिक सबे२ नित्य उत्पन्न कर्त्ता है जीव पदार्थ ऐसा है कि जड और चेतन मिला भया

उत्पन्न ईश्वर कर्त्ता है जब वह शरीर धारण कर्त्ता है तब जड़ांश से शरीर बनता है और चेतनांश जो है सो आत्मा रहता है जब शरीर छूटता है तब केवल चेतन और मन आदिक पदार्थ रहते हैं फिर जन्म दूसरा नही होता किन्तु पापों का भोग पश्चात्ताप से कर लेता है ऐसे ही क्रम से अनन्त उन्नति को प्राप्त होता है यह बात उनकी युक्ति और विचार से विरुद्ध है क्यों कि जो नित्य २ नई सृष्टि ईश्वर कर्त्ता तो सूर्य चन्द्र पृथिव्यादिक पदार्थों की भी सृष्टि नई २ देखने में आती जैसे पृथिव्यादिक की सृष्टि नई २ देखने मे नही आती ऐसे जीव की सृष्टी भी ईश्वर ने एकी बेर किई है सो केवल कल्पना मात्रसे ऐसा कथन वे लोग कहते हैं किन्तु सिद्धान्त बात यह नही है इस्से ईश्वर में नित्य उत्पत्ति का विक्षेप दोष आवेगा और सर्व शक्ति मत्वादिक गुण भी ईश्वर में नही रहेंगे क्यों कि जैसे जीव क्रम से शिल्प विद्या से पदार्थों की रचना कर्त्ता है वैसा ईश्वर भी होजायगा इस्से यह बात सज्जनोंकी मानने के योग्य नही और एक जन्म वाद जो है सोभी विचार विरुद्ध है क्यों कि अनेक जन्म होते हैं सो प्रथम पूर्वार्द्ध में विचार किया है वही देख लेना और पश्चात्ताप मे पापों की निवृत्ति मानना यह भी युक्ति विरुद्ध है सो प्रथम लिख दिया है कि पश्चात्ताप जो होता है सो किये भये पापों का निवर्त्तक नही होता किन्तु आगे कर्त्तव्य पापों का निवर्त्तक होताहै विना शरीर से पाप पुण्यों का फल भोग कभी नही हो सक्ता और विना

शरीर के जीव रहता ही नही जो मन में पश्चात्ताप से पापों का फल जीव भोक्ता तो जिस २ देश काल और जीवों के साथ पाप और पुण्य किये थे उनका भी मरन मे स्मरण होता और जो स्मरण होता तो फिर भीजीव मोह के होने से वही अपने पुत्र स्त्रियादिक संबन्धियों के पास आ जाता सो कोई आता नही इस्से यह बात भी उनकी प्रमाण विरुद्ध है और वर्णाश्रम की जो सत्य व्यवस्था शास्त्र की रीति से उसका छेदन करता है सो सब मनुष्यों के अनुपकार का कर्म है यह तृतीय समुल्लास में विस्तार से लिख दिया है वही देख लेना यज्ञोपवीत केवल विद्यादिक गुणों का और अधिकार का चिन्ह है उसका तोड़ना साहस से इस्से भी अत्यन्त मनुष्यों का उपकार नही होता किन्तु विद्यादिक गुणों से वर्णाश्रम का स्थापन करना शास्त्र की रीति से इस्से ही मनुष्यों का उपकार हो सका है संसाराचार की रीति से नहीं वे ब्राह्मणादिक वर्ण मात्र जो शब्द हैं उनको जाति मात्र ब्राह्मण लोग जान के निषेध करते हैं सो केवल उन का भ्रम है किन्तु शास्त्र की रीति से मनुष्यादिक जाति वाचक शब्द हैं सो मनुष्य पशु वृक्षादिक की एकता कोई नहीं कर सका सोई मनुष्यादिक शब्द जाति वाचक शास्त्र में लिखे हैं सो सत्य ही है और खाने पीने से धर्म किसी का बढ़ता नही और न किसी का घटता इसमें भी अत्यन्त जो आग्रह करना कि सबके साथ खाना वा किसी के साथ नही खाना वही

धर्म मान लेना यह भी अनुचित बात है किन्तु नष्टभ्रष्टसंस्कार हीन पदार्थों के खाने और पीने से मनुष्य का अनुपकार होता है अन्यत्र नही और वार्षिक उत्सवादिकोंसे मेला करना इसमें भी हमको अत्यन्त श्रेष्ठ गुण मालूम नही देता क्योंकि इसमें मनुष्य की बुद्धि बहिर्मुख हो जाती है और धन भी अत्यन्त खर्च होता है केवल अंग्रेजी पढने से संतोष कर लेना यह भी अच्छी बात उनकी नही है किन्तु सब प्रकार की पुस्तक पढना चाहिये परन्तु जब तक वेदादिक सनातन सत्य संस्कृत पुस्तकों को न पढेंगे तब तक परमेश्वर धर्म अधर्म कर्तव्य और अकर्तव्य विषयों को यथावत् नही जानेंगे इस्से सब पुरुषार्थ से इन वेदादिकों को पढना और पढाना चाहिये इस्से सब विघ्न नष्ट हो जांयगे अन्यथा नही और हमको ऐसा मालूम देता है कि थोड़े ही दिनों से ब्राह्म समाज के दो तीन भेद चल गये हैं और उनका चित्त भी परस्पर प्रसन्न नही है किन्तु ईर्ष्या ही एक से दूसरे की होती है सो जैसे वैराग्यादिकों में अनेक भेदों के होने से अनेक प्रमाद और विरुद्ध व्यवहार हो गये हैं ऐसा उनका भी कुछ काल में हो जायगा क्योंकि विरोध से ही विरुद्ध व्यवहार मनुष्यों के होते हैं अन्यथा नही सो वेदादिक सत्य शास्त्रों को ऋषि मुनियों के व्याख्यान सनातन रीति से अर्थ सहित पढें तो अत्यन्त उपकार हो जाय अन्यथा नही तो आगे २ व्यवहार हो जायगा ईसा मूसा महम्मद नानक चैतन्य प्रभृतियों को ही साधु

मानना और जैगीषव्य पंचशिखा असुरि ऋषि और मुनियों को नहीं गिनना यह भी उनकी भूल है अन्य बात जो परमेश्वर की उपासनादिक वे सब उनकी अच्छी हैं इसके आगे जैन मत के विषय में लिखा जायगा॥

इति श्रीमद्दयानन्द सरस्वतिस्वामि कृते सत्यार्थ-प्रकाशे सुभाषा विरचिते एकादशः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ११ ॥

अथ जैन मत विषयाव्याख्यास्यामः॥ सब संप्रदायों से जैनका मत प्रथम चला है उसको साढे तीन हज़ार वर्ष अनुमान से भये हैं सो उनके २४ तिर्थङ्कर अर्थात् आचार्य भये हैं जैनेन्द्र परशनाथ ऋषभदेव गौतम और बौधादिक उनके नाम हैं उन्ने अहिंसा धर्म परम माना है इस विषय में वे ऐसा कहते हैं कि एक बिन्दु जल में अथवा एक अन्न के कण में असंख्यात जीव हैं उन जीवों के पांव आजाय तो एक बिन्दु और एक कण के जीव ब्रह्माण्ड में न समावैं इतने हैं इस्से मुख के ऊपर कपड़ा बांध रखते हैं जल को बहुत छानते हैं और सब पदार्थों को शुद्ध रखते हैं और ईश्वर को नहीं मानते ऐसा कहते हैं कि जगत् स्वभाव से सनातन है इसका कर्त्ता कोई नहीं जब जीव कर्म बन्धन से छूट जाता है और

सिद्ध होता है तब उसका नाम केवली रखते हैं और उसी को ईश्वर मानते हैं अनादि ईश्वर कोई नहीं है किन्तु तपोबल से जीव ईश्वर रूप हो जाता है जगत् का कर्त्ता कोई नहीं जगत् अनादि है जैसे घास वृक्ष पाषाणादिक पर्वत बनादिकोंमें आपसे आप ही हो जाते हैं ऐसे पृथिव्यादिक भूत भी आपसे आप बन जाते हैं परमाणु का नाम पुद्गल रक्खा है सो पृथिव्यादिकों के पुद्गल मानते हैं जब प्रलय होता है तब पुद्गल जुदे २ हो जाते हैं और जब वे मिलते हैं तब पृथिव्यादिक स्थूल भूत बन जाते हैं और जीव कर्मयोग से अपना २ शरीर धारण कर लेते हैं जैसा जो कर्म करता है उसको वैसा फल मिलता है आकाश में चौदह राज्य मानते हैं उनके ऊपर जो पद्मशिला उसको मोक्षस्थान मानते हैं जब शुभ कर्म जीव कर्ता है तब उन कर्मों के वेग से चौदह राज्यों को उल्लंघन करके पद्मशिला के ऊपर विराजमान होते हैं चराचर को अपनी ज्ञानदृष्टि से देखते हैं फिर संसार दुःख जन्म मरण में नहीं आते वहीं आनन्द करते हैं ऐसी मुक्ति जैन लोग मानते हैं और ऐसा भी कहते हैं कि धर्म जो है सो जैनका ही है और सब हिंसक हैं तथा अधर्मी क्यों कि जे हिंसा करते हैं वे धर्मात्मा नहीं जे यज्ञ में पशु मारते हैं और ऐसी २ बातें कहते हैं के यज्ञ में जो पशु मारा जाता है सो स्वर्ग को जाता होय तो अपना पुत्र वा पिता का न मार डालें स्वर्ग को जाने के वास्ते ऐसे २ श्लोक उनने बना रक्खे हैं त्रयोवेदस्य कर्त्तारो

धूर्त्त भण्ड निशाचराः इसका यह अभिप्राय है कि ईश्वर विषय कि जितनी बात वेद में हैं वह धूर्त्त की बनाई है जितनी फल स्तुति अर्थात् इस यज्ञ को करैं तो स्वर्ग में जाय यह बात भाण्डों ने बना रक्खी है और जितना मांस भक्षण पशु मारने का विधि है वेद में सो राक्षसों बनायेया है क्यों कि मांस भोजन राक्षसों को बड़ा प्रिय है सब बात अपने खाने पीने और जीविका के वास्ते लोगोंने बनाई है और जैन मत है सो सनातन है और यही धर्म है इसके विना किसी की मुक्ति वा सुख कभी नहीं हो सका ऐसी २ वे बातें कहते हैं इन से पूंछना चाहिये कि हिंसा तुम लोग किस को कहते हो जो वे कहें कि किसी जीव को पीड़ा देना सो तो बिना पीड़ा के किसी प्राणि का कुछ व्यवहार सिद्ध नहीं होता क्योंकि आप लोगों के मत में ही लिखा है कि एक बिन्दु में असंख्यात जीव हैं उसको लाख वस्त्र छाने तो भी वे जीव पृथक् नहीं हो सकें फिर जल पान अवश्य किया जाता है तथा भोजनादिक व्यवहार और नेत्रादिकों की चेष्टा अवश्य किई जाती है फिर तुमारा अहिंसा धर्म तो नहीं बना प्रश्न जितने जीव बचाये जाते हैं उतने बचाते हैं जिसको हमलोग देखते ही नहीं उनकी पीड़ा में हम लोगों को अपराध नहीं उत्तर ऐसा व्यवहार सब मनुष्योंकाहै जे मांसाहारी हैं वे भी अव्यावहारिक पशुओंको बचाते हैं वैसे तुम लोग भी जिन जीवों से कुछ व्यवहार का प्रयोजन नहीं है जहां अपना प्रयोजन है वहां मनुष्यादिकों को नहीं बचाते

हो फिर तुमारी अहिंसा नही रही प्रश्न मनुष्यादिकोंको ज्ञान है ज्ञानसे वे अपराध कर्त्ते हैं इस्से उनको पीड़ा देनेमें कुछ अपराध नही वे पश्वादिक जीव बिना अपराधहैं उनको पीड़ा देना उचित नही उत्तर यह बात तुम लोगों की विरुद्ध है क्योंकि ज्ञान वालों को पीड़ा देना और ज्ञान हीन पशुओं को पीड़ा न देना यह बात विचार शून्य पुरुषों की है क्योंकि जितने प्राणी देह-धारी हैं उनमें से मनुष्य अत्यन्त श्रेष्ठहै सोमनुष्योंका उपका-र करना और पीड़ाका न करना सबको आवश्यकहै हिंसा नाम है बैरका सो योग शास्त्र व्यास जी के भाष्य में लिखा है सर्वथा सर्वदा सर्वभूतेष्वनभिद्रोहः अहिंसा यह अहिंसा धर्म का लक्षण है इसका यह अभिप्राय है कि सब प्रकार से सब काल में सब भूतों में अनभिद्रोह अर्थात् वैर का जो त्याग सो कहाता है अहिंसा सो आप लोग अपने संप्रदाय मे तो प्रीति करते हो और अन्य संप्रदायों में द्वेष तथा वेदादिक सत्य शास्त्र तथा ईश्वर पर्यन्त आप लोगों की वैर और द्वेष है फिर अहिंसा धर्म आप लोगों का कहने मात्र है अपने संप्रदायों के पुस्तक तथा बात भी अन्य पुरुषों के पास प्रका-शित नही कर्त्ते हो यहभी आप लोगोंमें हिंसा सिद्ध है ईश्वर को आप लोग नही मानते हैं यह आप लोगों की बड़ी भूल है और स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति का मानना यह भी तुम लोगों की झूंठ बात है इसका उत्तर ईश्वर और जगत् की उत्पत्तिके विषयमें देख लेना प्रथम जीवका होना और साधनों

का करना पश्चात् यह सिद्ध होगा जब जैवादिक जगत् विना कर्त्ता से उत्पन्न ही नहीं होता और प्रत्यक्ष जगत् में नियमों के जगत् में देखने से सनातन जगत् का नियन्ता ईश्वर अवश्य है फिर उसको ईश्वर नही मानना औरसाधनों से सिद्ध जो भया उसी को ही ईश्वर मानना यह बात आप लोगों की सब झूठ हैं आप से आप जीव शरीर धारण कर लेते हैं तो शरीर धारणमें जीव स्वतन्त्र ठहरे फिर छोड़ क्यों देते हैं क्योंकि स्वाधीनता से शरीर धारण कर लेते हैं फिर कभी उस शरीर को जीव छोडेगा ही नही जो आप कहे कि कर्मों के प्रभाव से शरीर का होना और छोडना भी होता है तो पापोंके फल जीव कभीनही ग्रहण कर्त्ता क्योंकि दुःख की इच्छा किसी को नही होती सदा सुख की इच्छा ही रहती है जब सनातन न्यायकारी ईश्वर कर्म फल की व्यवस्था का करने वाला न होगा तो यह बात कभी न बनेगी आकाश में चौदह राज्य तथा पद्मशिलामुक्ति का स्थान मानना यह बात प्रमाण और युक्ति से विरुद्ध है केवल कपोल कल्पना मात्र है और उसके ऊपर बैठ के चराचर का देखना और कर्म वेग से नहीं चला जाना यह भी बात आप लोगोंकी असत्य है यज्ञों के विषय में आप कुतर्क करते हैं सो पदार्थ विद्या के नही होने से क्यों कि घृत दूध और मांसादिकों के यथावत् गुण जानते और यज्ञ का उपकारकि पशुओं को मारने में थोडा सा दुःख होता है परन्तु यज्ञ में चराचर का

अत्यन्त उपकार होता है इनको जो जानते तो कभी यज्ञ में विषय में तर्क कर्त्ते वेदों का यथावत अर्थ के नही जानने से ऐसी बात तुम लोग कहते हो कि धूर्त्त भाण्ड और निशाचरों ने लिखा है यह बात केवल अपने अज्ञान और संप्रदायों के दुराग्रहसे कहते हो और वेद जो है सो सबके वास्ते हितकारी है किसी संप्रदाय का ग्रन्थ वेद नही है किन्तु केवल पदार्थ विद्या और सब मनुष्यों के हित के वास्ते वेद पुस्तक है पक्ष-पात उसमें कुछ नही इन बातों को जानते तो वेदों का त्याग और खण्डन कभी न करते सो वेद विषय में सब लिख दिया है वहीं देख लेना और यज्ञ में पशु को मारने से स्वर्ग में जाता है यह बात किसी मूर्ख के मुख से सुन लिई होगी ऐसी बात वेद में कहीं नही लिखी जीवों के विषयमें वे ऐसा कहते हैं कि जीव जितने शरीर धारी हैं उन के पांच भेद हैं एक इन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जडमें एक इन्द्रिय मानते हैं अर्थात् वृक्षादिकों में सो यह बात जैनोंकी विचार शून्य है क्यों कि इन्द्रिय सूक्ष्म के होने से कभी नही देख पडती परन्तु इन्द्रिय का काम देखने से अनुमान होता है कि इन्द्रिय अवश्य है सो जितने वृक्षादिकों के बीज हैं उन को पृथिवीमें जब बोते हैं तब अंकुर ऊपर आता है और मूल नीचे जाता है जो नेत्रेन्द्रिय उनको नही होता तो ऊपर नीचे को कैसे देखता इस काम से निश्चित जाना जाता है कि नेत्रेन्द्रिय जड़ वृक्षादिकों में भी है तथा बहुत लता होतीं है सो वृक्ष

और भित्ती के ऊपर चढ़ जाती है जो नेत्रेन्द्रिय न होता तो उसको कैसे देखता तथा स्पर्शेन्द्रिय तो वे भी मानते हैं जीभ इन्द्रिय भी वृक्षादिकों में हैं क्यों कि मधुर जल से बागादिकों में जितने वृक्ष होते हैं उनमें खारा जल देनेसे सूख जाते हैं जीभ इन्द्रिय न होता तो स्वाद खारे वा मीठे का कैसे जानते तथा श्रोत्रेन्द्रिय भी वृक्षादिकों में है क्यों कि जैसे कोई मनुष्य सोता होय उसको अत्यन्त शब्द करने से सुन लेता है तथा तोफ आदिक शब्द से भी वृक्षों में कम्प होता है जो श्रोत्रेन्द्रिय न होता तो कम्प क्यों होता क्यों कि अकस्मात् भयंकर शब्द के सुनने से मनुष्य पशु पक्षी अधिक कम्प जाते हैं वैसे वृक्षादिक भी कम्प जाते हैं जो वे कहैं कि वायु के कम्प से वृक्ष संचेष्टा हो जाती है अच्छा तो मनुष्यादिकों को भी वायु की चेष्टा से शब्द सुन पड़ता है इस्से वृक्षादिकों में भी श्रोत्रेन्द्रिय है तथा नासिका इन्द्रिय भी है क्योंकि वृक्षोंको रोग धूप के देने से छूट जाता है जो नासिकेन्द्रिय न होता तो गन्ध का ग्रहण कैसे करता इस्से नसिका इन्द्रिय भी वृक्षादिकों मे है तथा त्वचाइन्द्रिय भी है क्यों कि कुमोदिनि कमल लज्जावनी अर्थात् छुई मुई ओषधि और सूर्यमुखी आदिक पुष्पों में और शीत तथा उष्ण वृक्षादिकों मे भी जान पड़ते हैं क्यों कि शीत तथा अत्यन्त उष्णता से वृक्षादिक कुमला जाते हैं और सूख भी जाते हैं इस्से तत्तत इन्द्रियों का कर्म देखने से तत्तत् इन्द्रिय वृक्षादिकों में अवश्य मानना

चाहिये यह भ्रम जैन संप्रदाय वालों को स्थूल गोलक इन्द्रियों क नहीं देखने से हुआ है सो इस्से जैन लोग इन्द्रियों को नही जान सकते परन्तु काय द्वारा सब बुद्धिमान लोग वृक्षादिकों म भी इन्द्रिय जानते हैं इसमें कुछ संदेह नही और जहां जीव होगा वहां इन्द्रिय अवश्य होगा क्योंकि इन सब शक्तियों का जो संघात इसी को जीव कहते हैं जहां जीव होगा वहां इन्द्रियां अवश्य होंगी जैनों का ऐसा भी कहना है कि तालाव बावली कुआं नही बनवाना क्यों कि उनमें बहुत जीव मरते हैं जैसे तालाव करवाने से भैंसी उसमें बैठेगी उसके ऊपर मेंढा बैठेगा उसको कौआ ले जायगा और मार भी डालेगा उसका पाप तालाव बनाने वालेको होगा क्यों कि वह तालाव न बनाता तो यह हत्या न होती इस में उन्ने कुछ नही समझा क्योंकि उस तालाव के जल से असंख्यात जीव सुखी होंगे उसका पुण्य कहां जायगा सो पाप के वास्ते तालाव कोई नहीं बनाता किन्तु जीवों के सुख के वास्ते बनाते हैं इस्से पाप नही हो सक्ता परन्तु जिस देश में जल नही मिलता होय उस देश में बनाने से पुण्य होता है जिस देशमें बहुत जल मिलता होवै उस देश में तडागादिकों का बनाना व्यर्थ है और वे बडे २ मंदिर और बडे २ घर बनाते है उनमें क्या जीव नही मरते होंगे सो लाखहां रुपैये मन्दिरादिकों में मिथ्या लगा देते हैं जिनसे कुछ संसार का उपकार नही होता और जो उपकार की बात है उसमें दोष लगाते हैं

फिर कहते हैं कि जैन का धर्म श्रेष्ठ है और इसके विना मुक्ति भी किसी को नहीं होती सो यह बात उनकी मिथ्या है क्यों कि कच्ची बात और ऐसे कर्मों से मुक्ति कभी नहीं हो सक्ती मुक्ति तो मुक्ति के कर्मों से सर्वत्र होती है अन्यथा नहीं जितना मूर्त्ति पूजन चला है सो जैनों से ही चला है यह भी अनुपकार का कर्म है इस्से कुछ उपकार नहीं संसार में बिना अनुपकार के सो जैनों को बड़ा भारी आग्रह है जो कोई कुछ पुण्य किया चाहता है धनाढ्य सो मन्दिर ही बना देता है और प्रकार का दान पुण्य नहीं कर्ते हैं उनने जैन गायत्री भी एक बना लिई है और एक यती होते हैं उनको श्वेताम्बर कहते हैं दूसरा होता है दिगम्बर जिनको मुनि और श्रावक कहते हैं उनमें से ढूंढिये लोग मूर्त्ति पूजनको नहीं मानते और लोग मानते हैं उनमें एकश्री पूज्य होता है उसका ऐसा नियम होता है कि इतना धन जब सेवक लोग दें तब उसके घर में जाय और मुनि दिगम्बर होते हैं वे भी उनके घर में जब जाते हैं तब आगे २ थान बिछाते चले जाते हैं और उनके मत में न होय वह श्रेष्ठ भी होय तो भी उसकी सेवा अर्थात् जल तक भी नहीं देते यह उनका पक्षपात से अनर्थ है किन्तु जो श्रेष्ठ होय उसी की सेवा करनी चाहिये दुष्ट की कभी नहीं यह सब मनुष्यों के याक्ने उचित है जे ढूंढिये होते हैं उनके केशों में जूआं पड़ जांय तो भी नहीं निकालते और हजामत नहीं बनवाते किन्तु उनका साधु जब आता है तब जैनी लोग

उसकी दाढी मोंछ और सिर के बाल सब नोंच लेते हैं जो उस वक्त वह शरीर कम्पावै अथवा नेत्र से जल गिरावै तब सब कहते हैं कि यह साधु नही भया है क्योंकि इसको शरीर के ऊपर मोह है बिचार करना चाहिये कि ऐसी २ पीडा और साधुओं को दुःख देना और उनके हृदय में दया का लेश भी नही आना यह उनकी बात बहुत मिथ्या है क्योंकि बालों के नोंचने से कुछ नही होता जब तक काम क्रोध लोभ मोह भय शोकादिक दोषहृदय से नही नोंचे जायगे यह ऊपर का सब ढोंग है उनमें जितने आचार्य भये हैं उनके बनाये ग्रन्थों को वेद मानते हैं सो अठारह ग्रन्थ वेहैं तथा महाभारत रामायण पुराण स्मृतियां भी उन लोगों ने अपने मत के अनुकूल ग्रन्थ बना लिये हैं अन्य भगवती गीता ज्ञान चरित्रादिक भी ग्रन्थ नाना प्रकार के बना लिये हैं बहुत संस्कृत में ग्रन्थ हैं और बहुत प्राकृत भाषा में रच लिये हैं उन में अपने संप्रदाय की पुष्टि और अन्य संप्रदायों का खण्डन कपोल कल्पना से अनेक प्रकार लिखा है जैसे कि जैन मार्ग सनातन है प्रथम सब संसार जैन मार्ग मे था परन्तु कुछ दिनों से जैन मार्ग को छोड दिया है लोगों ने सो बड़ा अन्याय है क्योंकि जैन मार्ग छोडना किसी को उचित नही ऐसी २ कथा अपने ग्रन्थों में जैनों ने लिखी है सो सब संप्रदाय वाले अपनी २ कथा ऐसी ही लिखते हैं और कहते हैं इसमें प्रायः अपने मत-लब के लिये बातें मिथ्या बना लिई हैं यावज्जीवसुखंजीवे

नास्तिमृत्योरगोचरः। भस्मीभूतस्यदेहस्य पुनरागमनंकुतः॥ यावज्जीवेत्सुखंजीवे दृणंकृत्वाघृतंपिबेत्। अग्निहोत्रंत्रयोवेदा त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्॥ बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेतिबृहस्पतिः। अग्निरुष्णोजलंशीतं शीतंस्पर्शस्तथानिलः॥ केनेदंचित्रितंतस्मात स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः॥नस्वर्गोनापवर्गोवा नैवात्माऽपारलौकिकः। नैववर्णाश्रमादीनां क्रियाश्चफलदायकाः। अग्निहोत्रंत्रयोवेदा त्रिदण्डंभस्मगुण्ठनम्॥ बुद्धिपौरुषहीनानांजीविकाधातृनिर्मिता॥ पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति॥ स्वपितायजमानेन तत्रकस्मान्नहिंस्यते। मृतानामपिजंतूनां श्राद्धंचेत्तृप्ति कारणम्॥ गच्छतामिह जंतूनां व्यर्थंपाथेय कल्पनम्। स्वर्गः स्थितायदा-तृप्तिं गच्छेयुस्तत्रदानतः॥ प्रासादस्योपरिस्थाना मत्रकस्मा-न्नदीयते। यदिगच्छेत्परंलोकं देहादेषविनिर्गतः॥ कस्माद्भूयो-नचायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः। ततश्चजीवनोपायो ब्राह्मणै र्विहितस्त्विह॥ मृतानांप्रेतकार्याणि नत्वन्यद्विद्यतेक्वचित्। त्रयोवेदस्यकर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचराः॥ जर्फरीतुर्फरीत्यादि पंडितानां वचः स्मृतम्। अश्वस्यात्रहिशिश्नन्तु पत्नीग्राह्यं-प्रकीर्त्तितम्॥ भण्डैस्तद्वत्परंचैव ग्राह्यजातंप्रकीर्त्तितम्। मांसानां खादनं तद्वन्निशाचर समीरितम् इत्यादिक श्लोक जैनों ने बना रक्खे हैं और अर्थ तथा काम दोनों पदार्थ मानते हैं बाक सिद्ध जो राजा सोई परमेश्वर और ईश्वर नहीं पृथवी जल अग्नि वायु इनके संयोग से चेतन उत्पन्न होके इनीमें लीन हो जाता है और चेतन पृथक् पदार्थ नहीं ऐसे २

प्राकृतदृष्टान्त देकनिर्बुद्धि पुरुषों को बहका देते हैं जो चार भूतों के योग से चेतन उत्पन्न होता तो अब भी कोई चार भूतों को मिला के चेतन देखलादे सो कभी नहीं देख पड़ेगा इन स्वभाव से जगत की उत्पत्ति आदिक का उत्तर ईश्वर और सृष्टि के विषय में लिख दिया है वहीं देख लेना भूतेभ्यो-मूर्त्युपादानवत्तदुपादनम् इत्यादिक गोतम मुनि जी के किये सूत्र नास्तिकों के मत देखाने के वास्ते लिखे जाते हैं और उनका खण्डन भी सो जान लेना जैसे पृथिव्यादिक भूतों से बालु पाषाणगेरूअञ्जनादिक स्वभाव से कर्त्ता के बिना उत्पन्न होते हैं वैसे मनुष्यादिक भी स्वभाव से उत्पन्न होते हैं न पूर्वापर जन्म न कर्म और न उनका संस्कार किन्तु जैसे जल में फेन तरंग और बुद्बुदादिक अपने आपसे उत्पन्न होते हैं वैसे भूतों से शरीर भी उत्पन्न होता है उसमें जीव भी स्वभाव से उत्पन्न होता है उत्तर न साध्यसमत्वात् २ गो० जैसे शरीर की उत्पत्ति कर्म संस्कार के बिना सिद्ध मानते हो वैसे बालुकादिक की उत्पत्ति सिद्ध करो बालुकादिकों के पृथिव्यादिक प्रत्यक्ष निमित्त और कारण हैं वैसे पृथिव्यादिक स्थूल भूतों का कारण भी सूक्ष्म मानना होगा ऐसे अनवस्था दोष भी आजायगा और साध्यसमहेत्वाभास के नांई यह कथन होगा और इस्से देहोत्पत्ति में निमित्तान्तर अवश्य तुमको मानना चाहिये नोत्पत्तिनिमित्तत्वान्मातापित्रोः ३ गो० यह नास्तिकका अपने पक्ष का समाधान है कि शरीर की

उत्पत्ति का निमित्त माता और पिता हैं जिनसे कि शरीर उत्पन्न होता है और बालुकादिक निर्बीज उत्पन्न होते हैं इस्से साध्यसम दोष हमारे पक्ष मे नही आता क्योंकि माता पिता खाना पीना कर्त्ते हैं उस्से वीर्य बीज शरीर का हो जयागा उत्तर प्राप्तौचानियमात् ४ गो० ऐसा तुम मत कहो क्योंकि इसका नियम नही माता और पिता का संयोग होता है और और वीर्य भी होता है तोभी सर्वत्र पुत्रोत्पत्ति नही देखनेमे आती इससे यह जो आपका कहा नियम सो भङ्ग होगया इत्यादिक नास्तिक के खण्डन में न्याय दर्शन में लिखा है जो देखा चाहै सो देख ले दूसरे नास्तिक का ऐसा मत है कि अभावा-द्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्यप्रादुर्भावात् ५ गो० अभाव अर्थात् असत्य से जगत् की उत्पत्ति होती है क्योंकि जैसे बीज के नाश करके अंकुर उत्पन्न होता है वैसे जगत् की उत्पत्ति होती है उत्तर व्याघातादप्रयोगः ६ गो० यह तुमारा कहना अयुक्त है क्योंकि व्याघातके होने से जिसका मर्द्दन होता है बीज के ऊपर भाग का यह प्रकट नही होता और जो अंकुर प्रकट होता हैं उसका मर्द्दन नही होता इस्से यह कहना आपका मिथ्या है तीसरा नास्तिक का मत ऐसा है ईश्वरःकारण पुरुषकर्माफल्यदर्शनात ७ गो० जीव जितना कर्म कर्ता है उसका फल ईश्वर देता है जो ईश्वर कर्मफल न देता तो कर्म का फल कभी न होता क्योंकि जिस कर्म का फल ईश्वर देता है उसका तो होता है और जिसका नही देता उसका नही

होता इससे ईश्वर कर्मका फल देने में कारण है उत्तर पुरुषकर्माभावेफलानिष्पत्तेः ८ गो० जो कर्मफल देनेमें ईश्वर कारण होता तो पुरुष कर्म कर्ता तो भी ईश्वर फल देता सो बिना कर्म करने से जीव को फल नहि देता इससे क्या जाना जाता है कि जो जीव कर्म जैसा कर्त्ता है वैसा फल आप ही प्राप्त होता है इससे ऐसा कहना व्यर्थ है फिर भी वह अपने पक्ष को स्थापन करने के वास्ते कहता है कि तत कारितत्वा-दहेतुः ६ गो० ईश्वर ही कर्म का फल और कर्म कराने में कारण है जैसा कर्म कराता है वैसा जीव कर्त्ता है अन्यथा नही उत्तर जो ईश्वर कराता तो पाप क्यों कराता और ईश्वर के सत्य संकल्प के होने से जो जिव जैसा चाहता वैसा ही हो जाता और ईश्वर पाप कर्म कराके फिर जीव को दण्ड देता तो ईश्वर को भी जीव से अधिक अपराध होता उस अपराध का फल जो दुःख सो ईश्वर को भी होना चाहिये और केवल छली कपटी और पापों के कराने से पपी होजाता इससे ऐसा कभी कहना चाहिये कि ईश्वर कराताहै चौथे नास्तिक का ऐसा मत है कि अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टक तैक्ष्ण्यादिदर्शनात् १० गो० निमित्त के बिना पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है क्यों कि वृक्ष में कांटे होते हैं वे भी निमित्त के बिना ही तीक्ष्ण होते हैं कण्टकों की तीक्ष्णता पर्वत धातुओं की चित्रता पाषाणों की चिक्कनता जैसे निर्मित्त देखने मे आती है वैसेही शरीरादिक संसारकी उत्पत्ति कर्त्ताके बिना होती है

इसका कर्त्ता कोई नही उत्तर अनिमित्त अनिमित्तत्वाञ्चा निमित्ततः ११ गो० बिन निमित्त के सृष्टि होती है ऐसा मत कहो क्यों कि जिस्स जो उत्पन्न होता है वही उसका निमित्त है वृक्ष पर्वत पृथिव्यादिक उन के निमित्त जानना चाहिये वैसे ही पृथिव्यादिक की उत्पत्ति का निमित्त परमेश्वर ही है इस्से तुमारा कहना मिथ्या है पांचवें नास्तिक का ऐसा मत है कि सर्वमनित्य मुत्पत्ति विनाशधर्मकत्वात् १२ गो० सब जगत् अनित्य है क्यों कि सब की उत्पत्ति और विनाश देखने में आता है जो उत्पत्ति धर्म वाला है सो अनुत्पन्न नही होता जो अविनाश धर्म वाला है सो विनाशी कभी नही होता आकाशादि भूत शरीर पर्यन्त स्थूल जितना जगत है और बुद्ध्यादि सूक्ष्म जितना जग है सो सब अनित्य ही जानना चाहिये उत्तर नानित्यता नित्यत्वात् १३ गो० सब अनित्य नहीहै क्यों कि सबकी अनित्यता जो नित्य होगी तो उस के नित्य होनेसे सब अनित्य नही भया और जो अनित्यता अनित्य होगी तो उसके अनित्यहोनेसे सबजगत्‌नित्य भयाइस्सेसब अनित्यहै है ऐसा जो आपका कहना सो अयुक्त है फिर भी वह अपने मत को स्थापन करने लगा तदनित्यत्वमग्नेर्दाह्यं विनाश्यानु विनाशवत् १४ गो० यह जो हमने अनित्यता जगत् की कही सो भी अनित्य है क्यों कि जैसे अग्निकाष्ठादिक का नाश करके अपने भी नष्ट हो जाता है वैसे जगत् को अनित्य करके आप भी अनित्यता नष्ट हो जाती है उत्तर नित्यस्याप्रत्याख्यानंय-

धोपलब्धिव्यवस्थानात् १५ गो० नित्य का प्रत्याख्यान अर्थात् निषेध कभी नही हो सक्ता क्यों कि जिसकी उपलब्धि होती है और जो व्यवस्थितपदार्थ है उस की अनित्यता नही हो सक्ती जो नित्य है प्रमाणों से और जो अनित्य सो नित्य २ ही होता है और अनित्य २ ही होता है क्यों कि परम सूक्ष्म कारण जो है सो अनित्य कभी नही हो सक्ता और नित्यके गुण भी नित्यहैं तथा जोसंयोग से उत्पन्न होताहै औरसंयुक्तके गुण वे सब अनित्य हैं नित्य कभी नही हो सक्ते क्यो कि पृथक् पदार्थों का संयोग होता है वे फिर भी पृथक् हो जाते हैं इस में कुछ संदेह नहीं छःटहा नास्तिक यह है कि सर्वं नित्यंपंच-भूतनित्यत्वात् १६ गो० जितना आकाशादिक यह जगत है जो कुछ इन्द्रियों से स्थूल वा सूक्ष्म जान पड़ता है सो सब नित्य ही है पांच भूतों के नित्य होने से क्यों कि पांच भूत नित्य हैं उन से उत्पन्न भया जो जगत् सो भी नित्य ही होगा उत्तर नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः १७ गो० जिसका उत्पत्ति कारण देख पड़ता है और विनाशकारण वह नित्य कभी नही हो सक्ता इत्यादिक समाधान न्याय दर्शन में लिखे हैं सो देख लेना सातवांनास्तिक का मत यह है कि सर्वंपृथक्भाव लक्षणपृथक्त्वात् १८ गो० सब पदार्थ जगत् में पृथ-क् २ ही हैं क्योंकि घटपटादिक पदार्थों के पृथक् २ चिन्ह देख पड़ते हैं इस्से सब वस्तु पृथक् २ ही हैं एक नही उत्तर नाने-लक्षणैरेकभावानिष्पत्तेः १९ गो० यह बात आपकी अयुक्त है

क्योंकि घडे में गंधादिक गुण हैं और मुखादिक घडे के अवयव भी अनेक पदार्थों से एक पदार्थ युक्त प्रत्यक्ष देख पड़ता है इस्से सब पदार्थ पृथक् २ हैं ऐसा जो कहना सो आपका व्यर्थ है आठवां नास्तिक का मत यह है कि सर्वमभावोभावेष्वितरेतराभावसिद्धेः २० गो० यावत् जगत है सो सब अभावही है क्योंकि घडे में वस्त्र का अभाव और वस्त्र में घड़े का अभाव तथा गाय में घोडे का और घोड़े मे गाय का अभाव है इस्से सब अभाव ही है उत्तर नस्वभावसिद्धेर्भावानाम् २१ गो० सब अभाव नही है क्योंकि अपने में अपना अभाव कभी नही होता जैसे घडे में घडे का और घोडे में घोडे का अभावनही होता है और जो अभाव होता तो उसकी प्राप्ति और उस्से व्यवहार सिद्ध कभी नहीहोतो इस्से सबअभावहै ऐसा जो कहना सो व्यर्थ है क्योंकि आप ही अभाव हो फिर आप कहते और सुनते हो सो कैसे बनता सो कभी नही बनता ऐसे २ वाद् विवाद् मिथ्या जे करते हैं वे नास्तिक गिने जाते हैं सो जैन संप्रदाय में अथवा किसी संप्रदाय में ऐसा मतवाला पुरुष होय उसको नास्तिक ही जान लेना जैन लोगों में प्रायः इस प्रकार के वादहैं वेसब मिथ्याही सज्जनोंको जानना चाहिये यजमान की पत्नी अश्व के शिश्न को पकडे यह बात मिथ्या है तथा संसार में राजा जो है सोई परमेश्वर है यह भी बात उनकी मिथ्याहै क्योंकिमनुष्य क्यापरमेश्वरकभी होसक्ताहै धर्म को बहाना समझना औरअर्थतथा कामकोही उत्तम समझना

यह भी उनकी बात मिथ्या है इत्यादिक बहुत उनके मत मे मिथ्या २ कल्पना है उनको सज्जन लोग कभी न मानै ॥

इति श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविरचिते द्वादशः समुल्लासः संपूर्णः ॥ १२ ॥

इति ।